प्रकाशक
श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर ३३४४०३

प्रकाशन सौजन्य
शातिलालजी साखला

सस्करण
सप्तम सन् २००६



मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक
कल्याणी प्रिन्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरभाष २५२६८६०

# प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठम् युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे। अपने युग के क्रातदर्शी सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग में मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जागत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन वृत्तान्तों को सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानव–जाति उनके उद्‌बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे जवाहर–ज्योति विचारसार किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण, कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बांठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर साहित्य को लागत मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व में सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद में सस्था की स्वर्ण जयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासों से किरणावलियो की सख्या बढाकर 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार में जवाहर विद्यापीठ, भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन–निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू, धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ में समस्त जवाहर साहित्य प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियॉ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला [illegible] श्रीमान् प्रेमचन्दजी बोथरा मद्रास एव [illegible] रिखबचन्दजी बैद दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 26 (जवाहर–ज्योति विचारसार) के अर्थ सहयोगी श्री शातिलालजी साखला हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

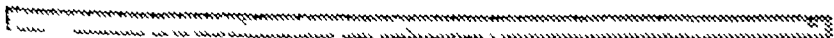
चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मत्री

# आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा

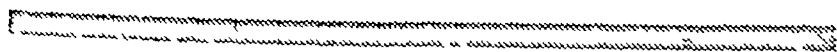
## जीवन तथ्य

| | |
|---|---|
| जन्म स्थान | थादला मध्यप्रदेश |
| जन्म तिथि | वि स 1932 कार्तिक शुक्ला चतुर्थी |
| पिता | श्री जीवराजजी कवाड |
| माता | श्रीमती नाथीबाई |
| दीक्षा स्थान | लिमडी (म प्र) |
| दीक्षा तिथि | वि स 1948 माघ शुक्ला द्वितीया |
| युवाचार्य पद स्थान | रतलाम (म प्र) |
| युवाचार्य पद तिथि | वि स 1976 चैत्र कृष्णा नवमी |
| आचार्य पद स्थान | जैतारण (राजस्थान) |
| आचार्य पद तिथि | वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया |
| स्वर्गवास स्थान | भीनासर (राज) |
| स्वर्गवास तिथि | वि स 2000, आषाढ शुक्ला अष्टमी |



# आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा.

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक काति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री पाप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जाग्रत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल प जवाहरलाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जैन व जैनेतर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।



# हुक्म संघ के आचार्य

1 आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि स 1917

ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 आचार्यश्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933

प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्यश्री उदयसागरजी म सा – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि स 1954

विलक्षण प्रतिभा के धनी, वदीमान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4 आचार्यश्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957

महान क्रियावान, सागर–सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5 आचार्यश्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि स 1977

सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्भुत स्मृति के धारक जीव–दया के प्राण।

6 आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000

ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी, क्रातद्रष्टा, युगपुरुष।

7 आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962 स्वर्गवास वि स 2019

शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्यश्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996 स्वर्गवास वि स 2056

समता–विभूति, विद्वद्शिरोमणि जिन–शासन प्रद्योतक धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9 आचार्यश्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031, आचार्य वि स 2056 से

आगमज्ञ तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी सिरीवाल प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।

## अर्थ–सहयोगी परिचय

## सघ–समर्पित, शासन–गौरव, समाजसेवी श्री शातिलालजी साखला मुम्बई

स्वनाम धन्य श्रेष्ठिवर्य, उदारमना सुश्रावक श्रीमान माणकचन्दजी साखला तथा उनकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती भवरकवर देवी साखला के अगज हे युवा समाजसेवी दानवीर सुश्रावकरत्न श्रीमान शातिलालजी साखला। जेठाना जिला अजमेर की मातृभूमि मे जन्मे हुवमसघ के सुश्रावकरत्न श्रीमान् शातिलालजी साखला शासननिष्ठ अनन्य गुरुभक्त सघ समर्पित ऐसे प्रसिद्ध युवारत्न व्यवसायियो मे प्रमुख व अग्रपक्तियो मे से एक हे कि जिन्होने अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर रत्न व्यवसाय मे स्वल्पावधि मे ही कीर्तिमान स्थापित कर लिया हे।

सरलता, सहजता, मिलनसारिका, विनम्रता एव मधुस्मिता गुणो से समन्वित श्री शान्तिलालजी साखला का व्यक्तित्व प्रदर्शन आडम्बर एव विज्ञापन से सर्वथा दूर सादगी सेवा तथा उदारता का प्रतीक है।

आपने अहता, ममता और जगत के पदार्थो की आसक्ति से ऊपर उठकर कि उक्ति के इस मत्र को मिशन बना लिया है जिसमे परहित बस जिनके मन माही। विनकह जग कछु दुर्लभ नाही। क्षमा, सोच, अस्तेय जितेन्द्रिया, पर दु ख कातरता आदि शील के अन्तर्गत के यह सब दैवीय गुण उन्ही को प्राप्त होते हैं, जो अपने मन मे सदा पर हित की भावना को सजोए रखते हैं।

आपकी सहधर्मिणी पत्नी सुश्राविकारत्न श्रीमती कमलादेवी साखला भी उन्ही के गुणो का पदानुसरण करती हुई इसी प्रकार अपने कुल वश की कीर्ति मे चार चाद लगा रही है।

आपके तीन सुपुत्र एक सुपुत्री है। प्रथम श्री सजयजी साखला जिनकी धर्मपत्नी काजल साखला है, जो प्रख्यात उधोगपति दानवीर सुश्रावक श्रीमान् कमलचन्दजी सिपानी बैंगलोर की सुपुत्री है। द्वितीय श्री अमितजी साखला जिनकी धर्मपत्नी श्रीमती दर्शना है जो कि

# हुक्म संघ के आचार्य

1 आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि स 1917

ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 आचार्यश्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933

प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्यश्री उदयसागरजी म सा – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि स 1954

विलक्षण प्रतिभा के धनी, वदीमान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4 आचार्यश्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957

महान क्रियावान, सागर–सम गभीर, सयम के सशक्त पालक शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5 आचार्यश्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि स 1977

सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्भुत स्मृति के धारक जीव–दया के प्राण।

6 आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000

ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी, क्रातद्रष्टा युगपुरुष।

7 आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि स 2019

शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्यश्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि स 2056

समता–विभूति, विद्वद्शिरोमणि, जिन–शासन प्रद्योतक धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9 आचार्यश्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031, आचार्य वि स 2056 से

आगमज्ञ, तरुण तपस्वी, तपोमूर्ति उग्रविहारी सिरीवाल प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।

## अर्थ–सहयोगी परिचय

## सघ–समर्पित, शासन–गौरव, समाजसेवी श्री शातिलालजी साखला, गुम्बई

स्वनाम धन्य श्रेष्ठिवर्य, उदारमना, सुश्रावक श्रीमान् माणकचन्दजी साखला तथा उनकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती भवरकवर देवी साखला के अगज है युवा समाजसेवी, दानवीर, सुश्रावकरत्न श्रीमान् शातिलालजी साखला। जेठाना जिला अजमेर की मातृभूमि मे जन्मे हुक्मसघ के सुश्रावकरत्न श्रीमान् शातिलालजी साखला, शासननिष्ठ, अनन्य गुरुभक्त, सघ समर्पित ऐसे प्रसिद्ध युवारत्न व्यवसायियो मे प्रमुख व अग्रपक्तियो मे से एक है कि जिन्होने अपनी दूरदर्शिता, कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर रत्न व्यवसाय मे स्वल्पावधि मे ही कीर्तिमान स्थापित कर लिया है।

सरलता सहजता, मिलनसारिका, विनम्रता एव मधुस्मिता गुणो से समन्वित श्री शान्तिलालजी साखला का व्यक्तित्व प्रदर्शन, आडम्बर एव विज्ञापन से सर्वथा दूर सादगी, सेवा तथा उदारता का प्रतीक है।

आपने अहता, ममता और जगत के पदार्थो की आसक्ति से ऊपर उठकर कि उक्ति के इस मत्र को मिशन बना लिया है जिसमे परहित बस जिनके मन माही। विनकह जग कछु दुर्लभ नाही। क्षमा, सोच अस्तेय जितेन्द्रिया पर दु ख कातरता आदि शील के अन्तर्गत के यह सब दैवीय गुण उन्ही को प्राप्त होते हैं, जो अपने मन मे सदा पर हित की भावना को सजोए रखते हैं।

आपकी सहधर्मिणी पत्नी सुश्राविकारत्न श्रीमती कमलादेवी साखला भी उन्ही के गुणो का पदानुसरण करती हुई इसी प्रकार अपने कुल वश की कीर्ति मे चार चाद लगा रही है।

आपके तीन सुपुत्र एक सुपुत्री है। प्रथम श्री सजयजी साखला जिनकी धर्मपत्नी काजल साखला है, जो प्रख्यात उधोगपति दानवीर सुश्रावक श्रीमान् कमलचन्दजी सिपानी, बैंगलोर की सुपुत्री है। द्वितीय श्री अमितजी साखला जिनकी धर्मपत्नी श्रीमती दर्शना है जो कि

सुश्रावकरत्न श्री भवरलालजी नाहर, अहमदाबाद की सुपुत्री है। तृतीय श्री मनीषजी साखला है। आपकी एक सुपुत्री श्रीमती सगीता है, जिनके पति श्री पकजकुमारजी बलिया, जयपुर है। आपका आदर्श भरा–पूरा परिवार है। शासनदेव से प्रार्थना है कि आप चिरायु हो और जिनशासन की अनवरत सेवा करते रहे।

युगदृष्टा युगपुरुष आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के प्रवचनों की श्रृखला जवाहर किरणावली के उक्त भाग के सहयोगी के रूप मे आपने जो सहयोग प्रदान किया है, यह आपकी उदार दृष्टी एव सघनिष्ठा का अनुपम उदाहरण है।

# जवाहर–ज्योति

## ब्रह्मचर्य

## प्रार्थना

कुथु जिनराज! तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बाह दृढ गहिये ।। कुथु०।।

श्री कुथुनाथ भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए इस सबध मे ज्ञानियो और भक्तो ने अपने हृदयगत भाव प्रकट करके जनता के समक्ष अनेक मार्ग प्रस्तुत किये हैं। फिर भी सर्वसाधारण जनता सरलता से प्रार्थना कर सके इसके लिए कोई साधारण नियम होना चाहिए। महान ज्ञानी और महान भक्तजन चाहे जिस पद्धति से प्रार्थना करे उनकी पद्धति उनके लिए सुलभ और सरल हो सकती है किन्तु जनसाधारण के लिए उनका मार्ग सुगम नही हो सकता। अतएव हमे यह देखना चाहिए कि साधारण जनता के लिए प्रभु मे तन्मय होने का सरल मार्ग क्या है? यद्यपि आजकल कुछ लोग परमात्मा के नाम से ही चिढते हैं और ईश्वर को एक बडी उपाधि समझते है फिर भी बहुत–से व्यक्तियो मे ईश्वर–भक्ति की भावना विद्यमान है। जो लोग ईश्वर को व्याधि मानते हैं, वे अज्ञान से जकडे हुए है। उनके अन्तरग मे जो स्वाभाविक तरगे उठती हैं वे उन्हे भी ईश्वर की ओर धकेल रही है ऐसा ज्ञानियो का विश्वास है। इसी विश्वास की प्रेरणा से उन्होने शास्त्र प्रकट किये हैं। आज का विषय ब्रह्मचर्य है किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है और इस विषय पर दो–चार शब्द

बोले बिना मेरे अन्त करण को शान्ति नही मिलती। प्रार्थना के विषय मे बोलने का यही कारण है और मेरे अन्त करण को यदि शान्तिलाभ हुआ तो इससे आपको भी लाभ होगा।

अभी जो प्रार्थना मैंने की है, वह केवल मेरी नहीं, सभी की है। आप यह कह सकते हैं कि हम प्रार्थना करना चाहते हैं या नहीं, यह बात जाने बिना ही आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? पर मेरा विश्वास है कि ऊपर से कोई भले ही यह कहे कि मैं प्रार्थना नहीं करना चाहता, पर प्रार्थना के बिना जीवन निभ नही सकता। कदाचित् कोई कहे कि मुझे सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है, मैं दीपक आदि के प्रकाश से अपना काम चला लूगा तो उसका यह कथन क्या सही हो सकता है? नही, क्योकि सूर्य की सहायता के बिना जीवन नही टिक सकता, जीवन की गति ही कुठित हो जाती है। अतएव सूर्य के प्रकाश की अनावश्यकता बतलाने वाला भूल करता है। सूर्य की जीवन मे अनिवार्य उपयोगिता है। सूर्य अपनी निन्दा करने वाले को और अपनी प्रशसा करने वाले को समान प्रकाश देता है, वह किसी से भेदभाव नही रखता। सूर्य के विषय मे जब यह कहा जा सकता है, तब परमात्मा के विषय मे ज्ञानीजन इस प्रकार कहते हैं–

**सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके।**

–भक्तामर स्तोत्र

अर्थात् हे प्रभो! तुम्हारी महिमा अनन्त सूर्यों से भी अधिक है। इस प्रकार जब परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक महिमाशाली है तो उसकी प्रार्थना के बिना क्या जीवन निभ सकता है? कदाचित् तुम कहोगे – सूर्य प्रत्यक्ष मे जीवनोपयोगी जान पडता है, मगर ईश्वर तो कही दीखता भी नही ऐसी हालत मे ईश्वर का अस्तित्व और जीवन के लिए उसकी प्रार्थना की उपयोगिता कैसे मानी जा सकती है?

इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानीजन बतलाते है कि यदि तुम्हारी चर्मचक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने मे समर्थ नहीं है तो इससे क्या हुआ? चर्मचक्षु के अतिरिक्त हृदयचक्षु भी है और उसके द्वारा परोक्ष वस्तु जानी जा सकती हे और उस वस्तु पर विश्वास भी किया जा सकता हे। परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे ज्ञानीजन यही कहते हैं कि तुम चर्मचक्षुओ पर ही निर्भर न वनो हमारी वात मानो। वचपन मे जव तुमने वहुत–सी वस्तुए नही देखी हाती हैं तव माता के कथन पर तुम भरोसा करते हो। क्या उससे तुम्हे कभी हानि हुई है? वचपन मे तुम साप को भी साप नहीं समझते थे मगर माता पर विश्वास

रखकर ही तुम साप को साप समझ सके हो और साप के दश से अपनी रक्षा कर सके हो। फिर उन ज्ञानियो पर, जिनके हृदय मे माता के समान करुणा और वात्सल्य का अविरल स्रोत प्रवाहित होता रहता है, श्रद्धा रखने से तुम्हे हानि कैसे हो सकती है? उन पर विश्वास रखने से तुम्हे हानि कदापि न होगी प्रत्युत लाभ ही होगा। अतएव जब ज्ञानीजन कहते हैं कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना – स्तुति करने से शान्तिलाभ होता है तो उनके इस कथन पर विश्वास रक्खो। स्मरण रखना, इस प्रकार के विश्वास से तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यो नही रहता? यह प्रश्न अनेक के मस्तक मे उत्पन्न होता है। इसका उत्तर ज्ञानी यह देते हैं कि आन्तरिक निर्बलता ही परमात्मा के प्रति विश्वास को स्थायी नही रहने देती। परमात्मा के प्रति विश्वास होने के जो कारण है, उनमे से एक कारण ब्रह्मचर्य है। जीवन मे यदि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई तो निस्सदेह ईश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धा का भाव स्थायी रह सकता है।

## ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य किसी साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज नहीं, किन्तु महापुरुषो द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तो मे से एक परम उच्च्य सिद्धान्त है। ब्रह्मचर्य का विषय इतना मार्मिक महत्त्वपूर्ण एव व्यापक है कि अनेक भाषणो मे भी उसका सर्वागपूर्ण विवेचन हो सकना सम्भव नही है। ऐसी अवस्था मे एक दिन के व्याख्यान मे उसका परिपूर्ण वर्णन होना कैसे सम्भव है? फिर भी आज ब्रह्मचर्य के सबध मे कहना ही है तो पूर्ण को भी अपूर्ण रूप मे कहना होगा। आप सावधान होकर सुनिये।

ससार मे ऐसा कोई भी धर्म नही है जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन न किया हो। अन्य धर्म ब्रह्मचर्य के विषय मे क्या कहते हैं? यह आज न बतलाते हुए सिर्फ यही कहना चाहता हू कि जैन धर्म ब्रह्मचर्य के विषय मे क्या कहता है? ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए जैन शास्त्र कहता है–

जम्बू! एत्तो य बभचेर तव–नियम–नाण–दसण–चरित्त–सम्मत्त–विणयमूल यमनियम गुणप्पाहाणजुत्त हिमवत महत, पसत्थगभीरथिमियमज्झे।

–प्रश्न व्याकरण चतुर्थ सवर।

भगवान सुधर्मा स्वामी अपने ज्येष्ठ शिष्य से कहते हैं – हे जम्बू! अब मैं तुम्हे ब्रह्मचर्य का विषय कहता हू।

ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या है? यह हमे पहले ही समझ लेना चाहिए। 'ब्रह्मचर्य' पद मे ब्रह्म और चर्य, ये दो शब्द हैं। ब्रह्म' शब्द का अर्थ है आत्मा अथवा सत्य, तप, क्षमा आदि गुण। ब्रह्म शब्द मे समस्त सद्‌गुणो का समावेश हो जाता है। और जिस क्रिया द्वारा इन सद्‌गुणो की प्राप्ति होती है, उस क्रिया को 'चर्य' कहते हैं। इस प्रकार जिन गुणो द्वारा या जिन साधनो से आत्मा का साक्षात्कार होता है, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं – ब्रह्मचर्य तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। वृक्ष मे तना डाली फल, फूल आदि होते हैं, किन्तु इन सबका मुख्य आधार मूल ही होता है तो उसके आधार पर वृक्ष फलता–फूलता है। मूल न हो तो वृक्ष नहीं टिक सकता। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य सब उत्तम क्रियाओ का मूल है। जहा ब्रह्मचर्य है वही उत्तम क्रियाए पार पड सकती हैं। शुभ क्रियाओ मे तप सर्वप्रथम बताया गया है परन्तु ब्रह्मचर्य के बिना तप भी सार्थक नहीं हो सकता। कहा भी है–

**तपो वै ब्रह्मचर्यम्**

–उपनिषद्

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही तप है। जिस तप मे ब्रह्मचर्य का स्थान नही वह तप वस्तुत तप ही नहीं है। क्योकि जहा मूल नही है वहा वृक्ष कैसे हो सकता है? ब्रह्मचर्य तप का मूल है। इसी प्रकार वह नियम ज्ञान दर्शन, चारित्र्य सम्यक्त्व और विनय आदि का भी मूल है। यमो और नियमो मे भी ब्रह्मचर्य प्रधान है। यम अर्थात् महाव्रत और नियम अर्थात् त्याग–प्रत्याख्यान। पर्वतो मे जैसे हिमालय पर्वत प्रधान है, उसी प्रकार यम–नियमो मे ब्रह्मचर्य प्रधान है।

सभव है आपने हिमालय पर्वत न देखा हो पर हिमालय की बदौलत आपको जो सुख और शान्ति मिल रही है उसका यदि विचार करोगे तो उसके उपकारो के आगे आपका मस्तक झुक जायेगा। उसी प्रकार यदि ब्रह्मचर्य की शक्ति पर विचार किया जाय तो शायद ही कोई ऐसा सभ्य पुरुष होगा जो अपनी सम्पर्ण शक्यिो को ब्रह्मचर्य की ही बदौलत स्वीकार न करे। वस्तुत हमारी समस्त शक्तिया ब्रह्मचर्य की शक्तिया हैं। आप ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा गाते हैं उससे भी अधिक महिमा शास्त्रो मे वर्णन की गई है। कदाचित आप यह कहे कि शास्त्र मे ब्रह्मचर्य का जैसा चमत्कार वर्णन किया गया है वैसा चमत्कार बताने वाला ब्रह्मचारी हमे दिखाई पडे ता हम स्वीकार कर सकते हैं। पर ऐसा कोई चमत्कारी ब्रह्मचारी हमे ता कहीं नजर नही आता।

इस दशा मे उस महिमा को किस प्रकार अगीकार किया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वैसा चमत्कार दिखाई न देने पर भी वह कल्पना मे आता है या नही? आप कह सकते हैं कि कल्पना मे आई हुई बात किस काम की? किन्तु अनेक बाते ऐसी होती हैं जो पत्यक्ष देखकर ही काम मे आती है और अनेक बाते ऐसी भी होती है जो कल्पना द्वारा ही काम मे आती है। मैं अपनी यह बात बलात् स्वीकार कराना नही चाहता, मगर यदि आप मेरे कथन पर गहरा विचार करेगे तो आप स्वय ही इसकी सत्यता को स्वीकार करने लगेगे। आज बुद्धिवाद का युग चल रहा है अतएव प्रत्येक बात बुद्धि की कसौटी पर कसी जाने पर ही मान्य होती है। पर मैं कहता हू कि आप मेरे कथन को हृदय की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार कीजिए। अगर कोई बात हृदय स्वीकार न करे तो उसे मत मानिये। ज्ञानी भी कहते हैं कि हमारी प्रत्येक बात को हृदय की कसौटी पर चढाने के पश्चात् ही स्वीकार करो।

जो बात प्रत्यक्ष नही है पर कल्पना मे आती है उसे मस्तक मे किस प्रकार उतारा जा सकता है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसका उत्तर यह है कि स्कूलो मे पढने वाले बालक रेखागणित मे भूमध्य रेखा की मोटाई मानकर एक रेखा बनाते हैं पर वास्तव मे भूमध्यरेखा मे मोटाई होती नहीं है। जब भूमध्य रेखा मे मोटाई नही है तो फिर उसकी कल्पना क्यो की जाती है? और वह किसलिए खीची जाती है? इसके लिए यह कहा जाता है कि भूमध्य रेखा बनाये बिना, उसकी कल्पना न की जाय तो आगे काम ही नही चलता।

पूर्ण ब्रह्मचारी को समस्त शक्तिया प्राप्त हो जाती हैं। कोई भी शक्ति ऐसी नहीं बचती जो उसे प्राप्त न हो। वह शक्ति भले ही प्रत्यक्ष दिखाई न दे पर यदि उसे शास्त्र की कल्पना का आधार प्राप्त है तो उसे मानने मे कुछ भी हानि नही है। भले ही वह कथन कल्पनायुक्त हो पर आप उस कथन को दृष्टि मे रखते हुए उस ओर प्रगति करो तो लाभ ही होगा। जैसे रेखागणित मे भूमध्य रेखा को मान लेने से काम चलता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य मे ही पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को अगीकार करना अनिवार्य है फिर भले ही वह आदर्श कल्पना पर ही अवलबित क्यो न हो।

यह तो हुई पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात। आइए अब यह विचार करे कि अपूर्ण ब्रह्मचर्य कैसा होता है और अपूर्ण से पूर्ण की ओर किस प्रकार प्रयाण किया जा सकता है?

ज्ञानीजन कहते हैं – समस्त इन्द्रियो पर अकुश रखना और विषय–भोग मे इन्द्रियो को प्रवृत्त न होने देना, पूर्ण ब्रह्मचर्य है। और वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्यरक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा स्वीकार की जाती है, पर वास्तव मे सब इन्द्रियो और मन को विषयो की ओर प्रवृत्त न होने देना ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है। केवल वीर्यरक्षा अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। अलबता अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुचा जा सकता है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 16वे अध्ययन की निर्युक्ति मे ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये गये हैं। नाम ब्रह्मचर्य, स्थापना ब्रह्मचर्य, द्रव्य ब्रह्मचर्य और भाव ब्रह्मचर्य।

जो लोग नाम से ब्रह्मचारी हैं, पर ब्रह्मचर्य का पालन नही करते उनके ब्रह्मचारीपन को शास्त्र 'नाम ब्रह्मचर्य' कहते हैं। नाम के ब्रह्मचर्य से कुछ भी होता–जाता नहीं है। उसके साथ 'भाव ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। जो भाव से ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए भी नाम से ब्रह्मचारी कहलाते है वे दुनिया मे सन्मान प्राप्त करने की कामना करते हैं। ससार मे हीरा–मोती पहनने वालो का आदर होते देखकर कितने–क लोग सच्चे हीरे–मोतियो के अभाव मे, आदर–सत्कार पाने के लिए नकली हीरा–मोती पहनते हैं। नकली हीरा–मोती पहनने का उनका उद्देश्य सिर्फ यही होता है कि नखरे करके किसी प्रकार लोगो को धोखा दिया जाय। इसी प्रकार ससार मे ब्रह्मचारी का आदर–सम्मान होते देखकर उसी प्रकार का आदर–सम्मान पाने की लालसा से कुछ लोग नाम मात्र के ब्रह्मचारी बन बैठते हैं – वे ब्रह्मचर्य का पालन नही करते। ऐसे ब्रह्मचर्य को शास्त्रकार 'नाम ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह नाम ब्रह्मचर्य की बात हुई।

जो स्वय ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता किन्तु ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी की मूर्ति बनाकर और उससे काम चल जायेगा – ऐसा सोचकर मूर्ति की स्थापना करके उसे मानता है तो वह स्थापना ब्रह्मचारी है। उसके इस ब्रह्मचर्य को 'स्थापना ब्रह्मचर्य' कहते हैं। इस स्थापना ब्रह्मचर्य से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता। लाभ तो तभी हो सकता है जब कि जिस गुण के कारण तुम उसकी मूर्ति बनाकर मानते हो उस गुण का स्वय पालन करो।

तीसरा 'द्रव्य ब्रह्मचर्य है। शारीरिक शक्ति आदि प्राप्त करने के लिए जो ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है वह द्रव्य ब्रह्मचर्य है। इस द्रव्य ब्रह्मचर्य से शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है। कहा भी है–

**ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठाया वीर्यलाभ**

– योगसूत्र

द्रव्य ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य की रक्षा होती है। जिसमे वीर्य होता है, उन्हे वीर्यवान् कहा जाता है।

देश मे आज जो रोग, शोक, दरिद्रता आदि जहा–तहा दृष्टिगोचर होते हैं उन सबका एकमात्र कारण वीर्यनाश हैं। आज बेकार वस्तु की तरह वीर्य का दुरुपयोग किया जा रहा है। लोग यह नही जानते कि वीर्य मे कितनी अधिक शक्ति विद्यमान है। इसी कारण विषय–भोग मे वीर्य का नाश किया जा रहा है और उसी मे आनन्द माना जा रहा है। ऐसा करने से जब अधिक सतान उत्पन्न होती है तो घबराहट पैदा होती है, पर उनसे मैथुन त्यागते नहीं बनता। भारतीयो को इस प्रश्न पर गहरा विचार करना चाहिए। विदेशी लोग ब्रह्मचर्य की महत्ता भले ही न समझते हो या स्वीकार न करते हो, परन्तु भारत मे तो ऐसे महान् ब्रह्मचारी हो गये हैं, जिन्होने ब्रह्मचर्य द्वारा महान् शक्ति–लाभ कर जगत् के समक्ष यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि ब्रह्मचर्य के प्रशस्त पथ पर चलने मे ही मानव–समाज का कल्याण है। ब्रह्मचर्य ही कल्याण का मार्ग है यह समझते–बूझते हुए भी विषय–भोग मे सुख मानना और जब सन्तान उत्पन्न हो तो उसका निरोध करने के लिए कृत्रिम उपाय काम मे लाना घोर अन्याय है। वीर्य को वृथा बर्बाद करने के समान दूसरा कोई अन्याय नही है।

हमारे अन्दर जो शक्ति और साहस है, वह वीर्य के ही प्रताप से है। अगर शरीर मे वीर्य न हो तो मनुष्य हलन–चलन–गमनागमन आदि क्रियाए करने मे भी समर्थ नही हो सकता।

इस प्रकार वीर्य की रक्षा करने मे लाभ है और उसे नष्ट करने मे हानि है। आज भारत की जो दीन–हीन अवस्था दिखाई देती है उसका प्रधान कारण वीर्यनाश ही है। जिस वीर्य के प्रताप से बाल सफेद हुए बिना दात गिरे बिना और आख की शक्ति कम हुए बिना सौ वर्ष तक जीवित रहा जा सकता है उस वीर्य को बुरे कामो मे या जघन्य आमोद–प्रमोद मे नष्ट करना क्या उचित कहा जा सकता है? जो लोग ब्रह्मचर्य की मर्यादा का भलीभाति पालन नही करते उन्ही लोगो की बदौलत भारतवर्ष की यह दुर्दशा हुई है। तुम्हे ब्रह्मचर्य से प्रेम हो सकता है पर केवल बाते बनाने से ही तो काम नही चलता। अतएव ब्रह्मचर्य को जीवन मे स्थान दो। तभी यह कहा जा सकता है कि तुम्हारे हृदय मे ब्रह्मचर्य के प्रति सच्चा प्रेम–भाव है। आज तो ब्रह्मचर्य के सामान्य नियमो का भी पालन नही होता और इसी कारण देश की दुर्दशा हो रही है।

चौथा 'भाव ब्रह्मचर्य' है। शास्त्रकारो ने भाव ब्रह्मचारी के दस नियम बताये हैं। ये दस नियम पूर्ण ब्रह्मचारी और मुनियो के लिये हैं। पर अपूर्ण ब्रह्मचारी के लिए भी दस नियम है, जो विवाहित–अविवाहित–युवा–वृद्ध सबके लिए लाभप्रद हैं। तुम भी उन नियमो पर श्रद्धा रखकर उनका पालन करो। तुमने और अनेक दवाए ली होगी, पर वीर्य–रक्षा की दवा शायद नहीं ली होगी। यह नियम वीर्य–रक्षा की दवा है। तुम इस दवा का उपयोग कर देखो। देखना इससे कितना अधिक लाभ होता है?

अपूर्ण ब्रह्मचर्य के दस नियमो मे पहला नियम **भावना** है। माता–पिता को ऐसी भावना लानी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने। इस प्रकार की भावना से वहुत लाभ होता है। आप लोगो को – जो यहा बैठे हैं – अलग–अलग तरह के स्वप्न आते होगे। उसका क्या कारण है? कारण यही है कि सबकी भावना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। यह बात प्राय सभी जानते हैं कि जैसी भावना होती है, वैसा ही स्वप्न आता है। इसी प्रकार सतान के विषय मे माता–पिता की भावना जैसी होती है वैसी ही सतान बन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है, उसी प्रकार भावना से सतान के विचारो और कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता है ओर यही बात सतान के विषय मे भी समझनी चाहिए। सतान के विषय मे तुम जैसी भावना लाओगे, आगे चलकर सतान वैसी ही बन जाएगी। अतएव सतान के लिए और अपने लिए ब्रह्मचर्य की भावना निरन्तर लानी चाहिए।

ब्रह्मचर्य का दूसरा नियम भोजन सबधी विवेक है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस खान–पान मे आनन्द आता है वही भोजन है। पर यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ब्रह्मचारी के भोजन मे और अब्रह्मचारी के भोजन मे वडा अन्तर होता है। गीता मे रजोगुणी तमोगुणी ओर सतोगुणी का भोजन अलग–अलग बताया है। पर आज के लोग जिह्वा के वशवर्ती वनकर भोजन के गुलाम हो रहे हैं। यदि तुम अपनी जीभ पर भी अकुश नही रख सकते तो आगे किस प्रकार बढ सकोगे? विद्याभ्यास और शास्त्रश्रवण का फल यही हे कि बुरे कामो मे प्रवृत्ति न की जाय। पर आजकल खान–पान के सवध म वडी भयकर भूले हो रही है ओर हालत ऐसी जान पडती हे माना विद्याभ्यारा का फल खान–पान का भान भूल जाना ही हो।

आज चाय पीने का शौक इतना अधिक वट गया हे कि वरा पूछिय नही। रोग के कारण किरी समय चाय पी लेना एक वात ह पर उरा एक पेग

पदार्थ समझ कर स्त्रिया बालको को चाय पिलावे अथवा तेजी या स्फूर्ति पैदा करने के लिए चाय पीना – पिलाना, यह दूसरी बात है। चाय एक केफी पदार्थ है। इसके सेवन से शरीर को जो हानि पहुचती है, उसका विचार करो। चाय ने आज कितना आधिपत्य जमा लिया है, इस सबध मे एक गुजराती कवि ने कहा है –

चाय तारी चाहना ज्या–त्या विशेषे बधी पडी,
पोह फाटता मुह फाटता तुज आटे तलसी जीभडो।
दातण कर्यु के ना कर्यु, पण राड तू तो झट खडी,
तारो अमोने हिदमा जोटो बीजो मलतो नथी।
अटको नहि तो एटले, ज्या शाक लेवा जन जता,
बाजार मा सुख–शान्ति गृह मा, देखी तुजने बेसता।
बकवाद पण तारो थतो ने जागवु तुज जाप थी,
नासी गया ए दूध दही पापिणी ताए पाप थी।
भिजमान ज्या आव्या घरे, सत्कार ताएथी थतो,
उत्सव अने मीजीलीस विषै वैभव न तुज बिन छाजतो।
नाटक विषे चेटक विषे मुसाफरीया तु खडी,
खूब गरम फडफडती क्लेजु वाली ने करी ठीकरी।
आचार–भ्रष्ट कर्यो वली ने जागवु तुज जाप थी,
करी मद जठर अनूप तू धातु के बाली नाखती।
चूडेल चूसे रक्त निशदिन, रोजना रोगी कर्या,
आश्चर्य वैद्य हकीम डाक्टर सर्व ने ते वश कर्या।
जे न्यायता दातार न्यायाधीश पण तुजने वर्या,
फरियाद तारी क्या करू सर्व ने ते वश कर्या।
भूल्यो तने हु दोष देता तु विचारी शु करे
ज्या भलभला जन अध थईने दीप लई कुवे पडे।
सर्प छछेड्यो सूतेलो तो करउता वार शु,
छेडी तुने वलगो पडी त्या दोष तूज लगार शु?

चारो ओर घोर अधकार व्याप रहा है और इस अधाधुधी मे लोग इधर–उधर भटकते फिरते हैं। कोई मनुष्य नागिन को माला समझकर गले मे पहन ले या घर मे सभाल कर रख छोडे तो निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि वह मनुष्य अधकार मे पडा हुआ है। कोई कह सकता है कि कौन इतना मूर्ख होगा जो जहरीली नागिन को घर मे सभाल कर रखेगा? पर मै कहता

हू कि ऐसे मूर्खों का अस्तित्व न स्वीकार करने वाले स्वय ही ऐसा मूर्खतापूर्ण आचरण कर रहे हैं। क्या चाय नागिन की नाईं जहरीली नहीं है? जो समय प्रभु की प्रार्थना करने के लिए है और जिस समय अपना दैनिक कार्यक्रम बनाना चाहिए, उस समय चाय की उपासना करना कहा तक उचित है? अगर किसी का यह खयाल हो कि चाय लाभदायक है तो वह किसी डाक्टर से पूछ देखे कि वह लाभदायक है या हानिकारक है? जो डाक्टर स्वय चाय का गुलाम है वह भले ही चाय की तारीफ करदे, मगर और कोई चाय की प्रशसा नही करता। जब गरमागरम चाय कोमल बालको के पेट मे पहुचती होगी, तब वह बालक की धातुओं को कितनी अधिक हानि पहुचाती होगी! धातु क्षीण हो जाने से उन्हे कितने रोग उत्पन्न होते होगे! यदि चाय द्वारा पहुचाई हुई हानि के इतिहास की खोज की जाय तो बहुत–से रहस्यो का उद्घाटन हो सकता है। चुडैल का भय तो आजकल जनता मे कम हो गया है पर बीसवीं सदी की यह नई चुडैल रात–दिन मानव–रक्त को चूसकर उन्हे सत्त्वहीन बना रही है। पर इस चुडैल की फरियाद किससे की जाय? न्यायाधीश और राजा स्वय भी इसके गुलाम बन रहे हैं। ऐसा होने पर भी चाय की फरियाद सुनने वाले मौजूद हैं और वे हैं – चाय का त्याग करने का उपदेश देने वाले। फिर भले ही उनकी बात कोई माने या न माने। इस प्रकार की अनेक असावधानिया आज भोजन के विषय मे दृष्टिगोचर हो रही हैं।

तमाम ग्रन्थो और शास्त्रो मे मदिरापान का निषेध किया गया है फिर भी शराब के शौकीन शराब का 'लाल शर्बत' नाम रखकर उसे गटक जाते हैं। चाय, शराब, तमाखू, बीडी आदि वस्तुए वीर्यनाशक है। ऐसी वीर्यनाशक वस्तुए खा–पीकर आज की प्रजा वीर्यहीन बन गई है। जब आज की प्रजा वीर्यहीन है, तो भविष्य की प्रजा भी ऐसी ही वीर्यहीन होगी यह निश्चित है। अतएव वीर्यरक्षा के लिए इस प्रकार की केफी चीजो का त्याग करना आवश्यक है। अपूर्ण ब्रह्मचर्य की रक्षा का यह दूसरा उपाय हे। जिन चीजो के खान–पान से वीर्य का नाश होता हो ऐसी प्रत्येक चीज का त्याग करो भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखो और वीर्यरक्षा करो तो शरीर मन और बुद्धि का भी विकास हो सकता है। शरीर की चरबी वढाना वल का प्रतीक नही है किन्तु मनोबल बढाना और मनोव्यापार को नियन्त्रण मे रखना ही राच्चा वल है। आज भी ऐसे मनुष्यो की सत्ता है जिनका शरीर चरवी से पुप्ट नही जान पडता फिर भी बडे–बडे पहलवान तक उनका मुकाबिला नहीं कर सकते। इसलिए ऐसा न समझो कि चरबी बढाने से शरीर की शक्ति बढ जाती है वरन्

खाद्याखाद्य का विवेक रखते हुए मनोबल को सुसस्कृत बनाने का प्रयत्न करो।

बालक और वृद्ध का खान–पान भी आज एकसा हो रहा है। वृद्ध लोग बालको को अपने साथ भोजन करने बिठलाते हैं। कोई–कोई तो यहा तक कहते हैं कि बालक को साथ बिठलाये बिना भोजन रुचता ही कैसे है? पर वे वृद्ध यह सोचने का कष्ट नही करते कि जिस भोजन मे मिर्च–मसाले का उपयोग किया गया है, जो भोजन गरिष्ठ और अत्यधिक तामसिक है, वह बालको के योग्य कैसे हो सकता है? ऐसे भोजन से तो बालको की धातुओ का क्षय होता है।

इसी तरह स्त्रियो को भी खान–पान मे विवेक रखने की आवश्यकता है। सधवा और विधवा तथा कुमारी और विवाहिता स्त्रियो को भी भोजन मे विवेक रखना चाहिए। खान–पान का विवेक न होने से तथा भावना शुद्ध न होने से आज की कुमारिकाए छोटी उम्र मे ऋतुमती बन जाती है और फिर उनकी सतान निर्बल उत्पन्न होती है। अतएव कुमारियो मे भी ब्रह्मचर्य की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। 'तुझे कैसी बहू चाहिए', 'तेरे लिए कैसा दूल्हा ढूढे' इस प्रकार की बाते आजकल के माता–पिता अपने पुत्र–पुत्रियो से करते रहते है और यह समझते हैं कि हम उनसे प्रेम करते हैं। पर वास्तव मे ऐसे निन्दनीय प्रेम द्वारा वे अपनी सतान पर बचपन से ही बुरे सस्कार डालते हैं। आजकल प्रसूतिगृहो मे स्त्रियो की अधिक मृत्यु होने का एक कारण यह भी है कि वे कच्ची उम्र मे ही गर्भवती हो जाती है।

प्रसव–वेदना की वृद्धि मे पुरुषो का अत्याचार भी एक कारण है। मन पर नियत्रण न रखने से और खान–पान आदि का विवेक न रखने से ही यह भयानक स्थिति उत्पन्न हो गई है। आज जो थोडे–से धनवान् लोग हैं, वे यह सोचते हैं कि हम तो मौज मजा करे– स्त्री मर जाय तो भले मर जाय – दूसरी अनायास ही मिल जायेगी। इस दुर्भावना के कारण वे उचित–अनुचित का खयाल नही रखते। एकपत्नीव्रत की भावना होती तो यह खराब स्थिति उत्पन्न न होती। पर एकपत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रिया पुरुषो की विषयवासना का भोग बन गई है।

कहने का आशय यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए सर्वप्रथम भावना शुद्ध रखनी चाहिए दूसरे भोजन पर नियत्रण रखना चाहिए और तीसरे पोशाक का ध्यान रखना चाहिए। पोशाक का भावना के साथ भी घनिष्ठ सबध है। हम साधुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। अतएव वस्त्रो का हमे बहुत ध्यान रखना पडता है। यदि हम श्वेत वस्त्र के बदले रगीन वस्त्र

पहने तो तुम लोग हमे उपालभ दोगे और कहोगे कि साधुओ को रगीन वस्त्र पहनना उचित नही है। पर वस्त्रो के विषय मे जैसे साधुओ का ध्यान रखते हो वैसा ध्यान तुम अपने लिये क्यो नही रखते?

कितने-क लोग अपनी फिलासफी बघारते हुए कहते हैं कि हम खादी पहने या विलायती वस्त्र पहिने, इसमे क्या धरा है? वस्त्रो के विषय मे राग-द्वेष क्यो रखना चाहिए? इस प्रकार कुछ लोग वस्त्रो की बात को राग-द्वेष का रूप देते हैं और खादी के वस्त्रो को राजनीतिक रूप देते हैं। पर वास्तव मे खादी मे, मिल के वस्त्र मे और विदेशी वस्त्र मे बहुत अन्तर है। पहले यही देखो कि मिल के ओर चर्बी लगे हुए वस्त्रो का आरम्भ कब से हुआ है?

वस्त्र बनाने की कला सर्वप्रथम ऋषभदेव ने सिखाई थी। क्या भगवान यत्रकला से अनभिज्ञ थे जिससे उन्होने मिल का निर्माण और उसके द्वारा वस्त्र बनाना नही बताया? वस्तुत वे यत्रकला से अनभिज्ञ नहीं थे मगर उनकी यह मान्यता थी कि यत्रकला मे जगत् का विनाश सन्निहित है। यही कारण है कि उन्होने यत्रकला जैसी तूफानी कला नहीं सिखाई थी। उन्होने ऐसी सादी कला का उपदेश दिया जिससे जनता अपना जीवन निर्वाह भी कर सके और उसे किसी प्रकार की हानि भी न पहुचने पाए। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे कहा है कि भगवान ऋषभदेव ने 'जणाहिपट्ठाए अर्थात जनता के हित के लिए कला का उपदेश दिया था। भगवान् यत्रकला को एक प्रकार का तूफान मानते थे, अतएव उन्होने इस कला का उपदेश न देकर ऐसी सादी कला जनता को सिखाई कि जिससे जनता सुगमता के साथ अपना निर्वाह कर सके।

कहने का तात्पर्य यह है कि पोशाक मे भी विवेक की आवश्यकता है। सादी पोशाक पहनने वाले और चटकीली-भडकीली पोशाक पहनने वाले पुरुषो की भावनाए भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। जो लोग मिल के चमकीले वस्त्र पहनते हैं, वे अगर खादी पहनकर देखे तो उन्हे ज्ञात होगा कि वस्त्र के साथ भावना का कितना घनिष्ठ सबध है? कदाचित् कोई कहने लगे कि खादीधारियो मे भी लुच्चे-लफगे पाये जाते हैं तो इसका उत्तर यह है कि साधु-वेषधारियो मे क्या कुछ बुरे लोग नही होते? साधु-वेषधारियो मे कौन भला है, कौन बुरा है यह निर्णय जैसे अपनी बुद्धि से करते हो वैसे ही खादीधारियो मे भी भले-बुरे की पहचान कर सकते हो। यदि कोई खादी पहनने वाला मनुष्य धूर्त या लुच्चा है तो क्या यह कहा जा सकता है कि सभी

खादी पहनने वाले धूर्त या लुच्चे होते हैं? सब धान बाईस पसेरी नही तुलते। कहावत है–'फैशन फासी है, सादगी आजादी है। अर्थात् फैशन से बधनो की वृद्धि होती है और सादगी से आजादी हासिल होती है। अतएव वीर्यरक्षा के लिए सादगी धारण करके पोशाक पहनने मे विवेक रखना नितान्त आवश्यक है।

वीर्यनाश का एक कारण एक ही कमरे मे, एक–ही बिछौने पर स्त्री–पुरुष का शयन करना भी है। एक ही कमरे मे और शय्या पर सोने से वीर्य स्थिर नही रह सकता। शास्त्र मे जहा स्त्री और पुरुष के सोने का वर्णन मिलता है वहा ऐसा ही वर्णन है कि स्त्री और पुरुष अलग–अलग शयनागार मे सोते थे। पर आज इस नियम का पालन होता नजर नही आता।

निष्क्रिय बैठे रहना भी वीर्यनाश का एक कारण है। जो लोग अपने शरीर और मन को किसी सत्कार्य मे सलग्न नही रखते, उन लोगो का वीर्य भी स्थिर नही रह सकता। यदि शरीर और मन को निष्क्रिय न रखा जाय तो वीर्य को हानि नहीं पहुचती।

रात्रि मे देर तक जागरण करना, सूर्योदय होने के बाद भी सोते रहना और अश्लील साहित्य का पढना, सब भी वीर्यनाश के कारण हैं। अश्लील चित्र देखने से और अश्लील पुस्तके पढने से भी वीर्य स्थिर नही रहता। आज जहा–तहा अश्लील पुस्तके पढने और अश्लील चित्र देखने का प्रचार हो गया है। आजकल लोग महापुरुषो ओर महासतियो के जीवन–चरित्र पढने के बदले अश्लीलतापूर्ण पुस्तके पढने के शौकीन हो गये हैं। उन्हे यह विचार ही नहीं आता कि ऐसा करने से जीवन मे कितने विकार आ घुसे हैं? कहावत है– 'जैसा वाचन वैसा विचार। इस कहावत के अनुसार अश्लील पुस्तको के पठन से लोगो के विचार भी अश्लील बनते जा रहे हैं।

नाटक–सिनेमा देखना भी वीर्यनाश का कारण है। आजकल नाटक सिनेमाओ की धूम मची हुई है। जहा देखो वहीं गरीब से लेकर अमीर तक – सबको नाटक–सिनेमाओ मे फसाने का प्रयत्न किया जा रहा है। और इस प्रकार सिनेमा वीर्यनाश के साधन बन रहे हैं।

कदाचित कोई कहने लगे कि सब नाटक–सिनेमा खराब नही होते, कुछ तो बहुत ही अच्छे होते हैं। बहुतेरे नाटको मे राम–हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुषो के चित्र प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसी अवस्था मे नाटक देखने मे क्या हानि है? इसका उत्तर यह है कि यदि किसी बगीचे मे दो–चार वृक्ष अच्छे हो और शेष सभी वृक्ष जहरीले हो तो क्या तुम उस बगीचे मे जाना पसन्द

करोगे? इसी प्रकार नाटकों मे कुछ ही पात्र नाम–मात्र के लिए अच्छे होते हैं। शेष सभी पात्र खराब होते हैं और मन पर उनका बहुत बुरा प्रभाव पडता है। आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते हैं कि कोई भला मानुष अपने बाल–बच्चो के साथ उन्हे देख नहीं सकता। सिनेमाओ के कारण आज लाखो नवयुवक आचरणहीन बन रहे हैं। इन सिनेमाओ की बदौलत भारतीय नारी अपनी महत्ता का विस्मरण कर भारतीय सभ्यता के मूल मे कुठाराघात कर रही है। यह अत्यन्त खेद की बात है। इसी प्रकार ग्रामोफोन को भी आनन्द का साधन समझा जाता है, पर उसके द्वारा सस्कारो मे कितनी बुराइया घुस रही हैं, इस ओर कितने लोगो का ध्यान जाता है?

स्वप्नदोष मे भी वीर्य का नाश होता है। कुछ लोग कहा करते हैं कि वीर्यरक्षा से स्वप्नदोष होता है, पर यह कथन भ्रमपूर्ण है। इस भ्रामक विचार का परित्याग करके, स्वप्नदोष के असली कारण का पता लगाना चाहिए। फिर उस कारण से बचकर दोष–निवारण का प्रयत्न करना चाहिए। जब तुम सो रहे होओ तब तुम्हारे जेब मे से अगर कोई रत्न निकाल कर लेजाने लगे और उसी समय तुम जाग उठो तो आखो देखते क्या रत्न ले जाने दोगे? नहीं तो फिर स्वप्नदोष के कारण जान–बूझकर वीर्य को नष्ट होने देना कहा तक उचित कहा जा सकता है?

वीर्यरक्षा करने के लिए ऊपर जिन उपायो का निर्देश किया गया है उनके साथ ही आत्म–सयम की भी आवश्यकता है। आत्म–सयम के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते रहो। इससे तुम्हे उस परम तत्व की प्राप्ति होगी जो अब तक तुम्हे प्राप्त नही हो सका है।

अब इन सब बातो का सार एक प्राचीन कथा द्वारा तुम्हे समझाता हू।

ब्रह्मचर्य के विषय मे भी आज युवको और वृद्धो मे बडी खेचतान चल रही है। कुछ लोग कहते हैं – कन्या को अपनी इच्छा के अनुसार वर पसद कर लेने का अधिकार है, पर जाति–भेद आदि कारणो से इस अधिकार मे बाधा खडी हुई है। इसके विरुद्ध पुराने जमाने के वृद्ध या उन जेसे विचार रखने वाले लोग कहते हैं – 'आज का युवक उच्छृखल बन गया हे अतएव लडको और लडकियो को जरा भी अधिकार नहीं है। हम जिसके साथ उनका विवाह करेगे उसी के साथ रहने को उन्हे तैयार रहना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धो और युवको के बीच सघर्ष चल रहा है। इस सघर्ष का किस प्रकार निवारण किया जा सकता है? यह बात इस प्राचीन कथा से जानी जा सकेगी।

## भीष्मकुमार की कथा

यह भीष्मकुमार की कथा है। पहले भीष्म का नाम गगकुमार था। फिर उनका नाम देवव्रत हुआ और फिर भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण 'भीष्म' नाम पड गया।

एक बार भीष्म से किसी ने कहा – आपने विवाह नहीं करके बहुत बुरा किया है। इससे भारत को बहुत हानि पहुची है। अगर आप विवाह करते तो आपकी सतान भी आपकी ही तरह पराक्रमी और वीर्यवान् होती। पर आपके विवाह न करने से भारत ऐसी सतान से वचित रह गया। यही भारत की बडी हानि है।

भीष्मकुमार ने कहा – मै विवाह करता तो मेरे सन्तान मेरी जैसी होती यह नही कहा जा सकता। क्षीरसागर मे विष भी हो सकता है। मगर मेरे ब्रह्मचर्य को आदर्श मानकर न मालूम कितने व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करेगे और इस प्रकार अपना तथा जगत् का कल्याण करेगे।

गगकुमार का विचार पहले ब्रह्मचर्य पालने का नहीं था। किन्तु उन्होने सोचा – जहा तक मैं आजीवन ब्रह्मचर्य न पालूगा वहा तक पिता की इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इस प्रकार अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। इस कथा से यह भी विदित हो जायेगा कि पिता का क्या धर्म है और पुत्र का क्या कर्तव्य है?

सत्यवती उर्फ मत्स्यगधा या योजनगधा को देखकर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन ही मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वोत्कृष्ट कन्या के साथ विवाह कर इसे रानी बना लेना चाहिए। अब वह यह सोचने लगे कि इस विचार को कार्यरूप मे किस प्रकार परिणत किया जाय? राजा ने पूछा–'तुम किसकी पुत्री हो? कन्या ने उत्तर दिया–'सुदास की।

राजा अपनी सत्ता से सुदास को अपने पास बुला सकता था। पर केवल हुक्म चलाना बुद्धि का कार्य है हृदय का कार्य तो धर्म का विचार करना है। राजा शान्तनु धर्म का विचार कर स्वय याचक बनकर सुदास के पास

गया। राजा ने उसे दाता बनाया और आप स्वय याचक बना। यहा यह देखने योग्य है कि कन्या के पिता का क्या कर्तव्य है? सुदास यह सोच सकता था कि मैं अपनी कन्या राजा को दे दूगा तो मेरा वैभव बढेगा और मैं धनवान बन जाऊगा। पर वह इस प्रलोभन मे नहीं पडा। उसने अपनी कन्या का भावी हित देखा और एक राजा द्वारा मगनी करने पर भी उसने राजा से कहा – 'मैं अपनी कन्या आपको देने मे असमर्थ हू। आपका पुत्र गगकुमार विकट वीर है। राज्य का स्वामी वही बनेगा और मेरी कन्या से उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य का अधिकारी नहीं हो सकेगा। वह इधर–उधर मारा–मारा भटकता फिरेगा। अतएव मैं अपनी कन्या आपको देने के लिए लाचार हू।' वास्तव मे माता–पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपनी सतान के हित पर पहले ध्यान दे। उन्हे अपने स्वार्थ–साधन का जरिया न बनावे।

सुदास का उत्तर सुनकर राजा सोचने लगा – यद्यपि यह कन्या मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु इसके लिए अपने प्रिय पुत्र गगकुमार का अधिकार कैसे छीना जा सकता है? मैं अपनी इच्छा को दबाये रखूगा, पर गगकुमार के अधिकार का अपहरण न करूगा।

भाति–भाति के विचारो मे डूबता–उतराता हुआ राजा राजमहल की ओर लौट आया। वह सुदास की कन्या की मगनी करने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। दूसरी ओर उसका हृदय सुदास की कन्या की ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गया था और इस कारण वह सुन्दरी कन्या उसके मानस चक्षुओ के सामने पुन–पुन प्रकट होकर राजा को चिन्तातुर बनाये हुए थी। इसी चिन्ता का मारा राजा दिनो–दिन क्षीण होता जा रहा था।

पिता की चिन्ता का कारण मत्रियो द्वारा जानकर गगकुमार ने अपने पिता का कष्ट दूर करने के उद्देश्य से सुदास के पास जाने का निर्णय किया। मत्रियो ने कहा – सुदास को यहा क्यो न बुला लिया जाय? आपका उसके पास जाना नहीं सोहता। गगकुमार ने कहा – जब हम उसकी कन्या लेना चाहते हैं तो धर्म–विरुद्ध कार्य नही करना चाहिए। अत उसी के घर जाना उचित है। इस प्रकार निर्णय कर गगकुमार मत्रियो के साथ सुदास के घर चला। गगकुमार और मत्रियो को अपने घर की ओर आता देख सुदास ने सोचा – मैंने महाराज को अपनी कन्या देना स्वीकार नही किया है शायद इसी कारण मुझे दण्ड देने के लिए तो ये लोग नही आ रहे है। पर मैंने उन्हे कोई अनुचित उत्तर नहीं दिया। ऐसी अवस्था मे अगर प्राण जाए तो चले जाए मुझे डर किस बात का है।

गगकुमार ने सुदास से कहा—'अपना सौभाग्य समझो कि पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते हैं और तुम्हारे जामाता बन रहे है। नातेदारी के लिहाज से तुम मेरे नाना बन रहे हो। फिर भी – तुम इस सबध को अस्वीकार क्यो कर रहे हो?' सुदास ने उत्तर दिया – इस सबध मे आप ही बाधक हैं। यदि आप यह प्रतिज्ञा करे कि सत्यवती (मत्स्यगधा) का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा तो महाराज के साथ अपनी कन्या का विवाह करने मे मुझे तनिक भी आनाकानी नही है।

सुदास का उत्तर सुनकर गगकुमार सोचने लगे– 'आज वास्तव मे यज्ञ का अवसर उपस्थित है। लोग यज्ञ का अर्थ सिर्फ आग मे घी होमना करते हैं पर सच्चा यज्ञ क्या है इस विषय मे कहा गया है–

**श्रोत्रादीनीन्द्रियान्यन्ये सयमाग्निसु जुह्नति,**
**शब्दादि विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्नति।**
**सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि प्राणकर्माणि चापरे,**
**आत्मसयमयोगाग्नौ जुह्नति ज्ञानदीपते।**

आज श्रोत्र आदि इन्द्रियो को पिता के हित के लिए मैं यज्ञ मे समर्पण करता हू। हे कान! तूने बहुत बार सुना है कि गगकुमार युवराज है, पर अब इस कथन का पिता के हित की अग्नि मे आज उत्सर्ग करना होगा और सत्यवती का पुत्र युवराज है इस कथन मे आनन्द मानना होगा। ऐ नेत्रो! तुम राजसी पोशाक को देखकर आनन्द मानते थे, पर अब इस इच्छा को यज्ञ मे होमना होगा और भाई को राजा के रूप मे देखकर प्रफुल्लित होना पडेगा। हे जिह्वा! तू भी अपने विषयो से लोलुपता त्याग दे क्योकि पिता के हित के लिए तेरे विषयो को भी यज्ञ की सामग्री बनाऊगा! अरे मस्तक! तू बहुत दिनो तक उन्नत–ऊचा रहा है पर अब सत्यवती के पुत्र के सामने तुझे झुकना होगा! और उसे राजा स्वीकार करना होगा।

अग्नि मे घी का होम करके यज्ञ करने वालो की कमी नही है पर ऐसा महान यज्ञ करने वाले विरले ही होते है।

गगकुमार कहता है – हे शरीर! तू राजा बनना चाहता था पर अब भाई को राजा बनाकर अपने हाथ से उसके ऊपर चवर ढोरने पडेगे। इस प्रकार पिता के हित के लिए अपने स्वार्थ का यज्ञ करना पडेगा।

युवको के लिए यह एक महान आदर्श है। देश धर्म और माता–पिता के लिए ऐसा अनूठा त्याग करने वाले युवको की बात कौन नही मानेगा?

इसी प्रकार पिता का कर्तव्य क्या है? यह बात राजा शान्तनु के विचारो से देखो। राजा चाहता तो यह वचन दे सकता था कि सत्यवती की कूख से जन्म लेने वाला पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा और यह वचन देकर वह सत्यवती के साथ विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने सोचा – मैं अपनी कामना की पूर्ति की खातिर पुत्र के अधिकार का अपहरण कैसे कर सकता हू। इस प्रकार के विचारो के वशवर्ती होकर उसने अपनी इच्छा का दमन करना न्यायसगत समझा, पर पुत्र के अधिकार को छीनना उचित न समझा। इसी प्रकार जहा पिता–पुत्र–एक दूसरे के हित का ही विचार करते है वहा कभी आपसी वैमनस्य या सघर्ष उत्पन्न नही होता। वृद्ध और युवक इसी भाति हिलमिल कर चले तो उत्थान और शान्ति के साथ–साथ आनन्द का सर्वत्र प्रचार हो सकता है। तो गगकुमार ने सुदास से कहा – 'पिता के हित के यज्ञ मे मैंने अपना सर्वस्व होम दिया है इस कारण सुदास! मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मैं राज्य स्वीकार नहीं करूगा और तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा।

गगकुमार की यह प्रतिज्ञा सुनकर सुदास कहने लगा – 'आप वास्तव मे वीर पुरुष हैं। आप जैसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है? पर मुझ से एक भूल हो गई है। आपका पुत्र भी आप ही जैसा पराक्रमी होगा। आप राज्य नही स्वीकार करेगे पर आपका पुत्र, मेरी पुत्री के पुत्र को राजसिहासन पर भला कब बैठने देगा? वह यह कहेगा कि राज्य मेरे पिता के अधिकार का है अतएव राज्य का असली अधिकारी मैं ही हू। मेरे पिता ने यदि राज्य त्याग दिया था तो क्या हुआ? मैंने तो कभी राज्य का परित्याग नही किया है। मैं अपने उत्तराधिकार को क्यो त्याग दू? इस प्रकार कहकर आपका पुत्र मेरी पुत्री के पुत्र को राजसिहासन पर न बैठने दे यह सभव है। ऐसी परिस्थिति मे अपनी कन्या आपके पिताजी को सौंप देना मेरे लिए शक्य नही है।

जो लोग अपनी कन्या को धन के लोभ मे फसकर बेच डालते हैं उन्हे सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक साधारण श्रेणी का आदमी – धीवर भी अपनी कन्या के अधिकार के सरक्षण के लिए कितने उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणी और उच्च–कुलीन होने का दावा करने वाला को अपनी पुत्री के अधिकारो के सबध म कितने उच्चतर विचार रखने चाहिए।

सुदास का यह कथन सुनकर गगकुमार ने कहा– तुमने ठीक कहा है। तुम्हे मेरे भावी पुत्र का भय है पर यदि मैं विवाह ही नही करूगा तो पुत्र

कहा से आएगा? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हू कि मैं जीवन–पर्यन्त विवाह नही करूगा। मैं जीवन–भर ब्रह्मचारी रहूगा।

गगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज इससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देती है। आज अनेक विषयलोलुप विवाह करके भी नैमित्तिक सम्बन्ध जोडने से नही हिचकते। और यूरोप की तो लीला ही निराली है। वहा विवाह के बधन को ही बुरा समझा जाता है। और कहा जाता है स्वेच्छा से बधन मे पडना भला कौनसी बुद्धिमत्ता है। इस धारणा के कारण वहा स्वैरविहार का प्रचार हो रहा है। अनेक पुरुष और युवतिया वहा न विवाह करते हैं न ब्रह्मचर्य ही पालते है। इससे दुराचार और तज्जन्य अनर्थ फैल रहे हैं। यह पतन का पथ है। पर तुम्हारे सामने तो भीष्म का भव्य आदर्श विद्यमान है। अतएव ब्रह्मचर्य की आराधना और साधना मे ही अनेक महान मगल निहित है।

गगकुमार की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुना, तो सुदास और सत्यवती स्तब्ध रह गये। गगकुमार ने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा की थी, इसीसे उनका नाम ही 'भीष्म' पड गया। अन्त मे भीष्म सत्यवती को अपने पिता के पास ले गये। सत्यवती का राजा शान्तनु ने यथाविधि पाणिग्रहण किया। भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। उन्होने विवाह नही किया था फिर भी ब्रह्मचर्य के कारण वे जगत् मे 'पितामह' के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुए।

तुम भी ब्रह्मचर्य के आदर्श का अनुसरण करो। वृद्ध और युवक एक–दूसरे के साथ हिलमिल कर रहो। इसी मे स्व–पर कल्याण है।

तथास्तु

# संतति–नियमन

**समुद्रविजय–सुत श्रीनेमीश्वर, जादव कुल को टीको,**
**रतन कूख धरणी शिवादेवी, तेहनो नन्दन नीको।**
**श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।।1।।**

श्री अरिष्टनेमी भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। आज मुझे जिस विषय पर बोलने के लिए कहा गया है, वह विषय भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना से ही प्रतिभाषित हो रहा है।

ससार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषो ने जो आचरण किया है और उन्होने जिस पथ पर प्रयाण किया है उस पथ का अनुसरण करने के लिए वे समस्त ससार को आह्वान कर गये हैं। उन्होने कहा – ऐ जगत् के जीवो! समय की विचित्रता और विपरीतता के कारण कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब तुम किकर्तव्यविमूढ हो जाओ तुम्हे यह न सूझ पडे कि ऐसी दशा मे क्या करे क्या न करे। उस समय तुम लोग हमारे आचरण को दृष्टि मे रखकर हम जिस मार्ग पर चले हैं उस मार्ग पर चलोगे और उस मार्ग को छोडकर उलटे मार्ग पर नहीं चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होना निश्चित है। इस प्रकार महापुरुष अपने आचरण का आदर्श जगत् के हित के लिए उत्तराधिकार के रूप मे छोड गये हैं।

इन महापुरुषो मे भगवान् अरिष्टनेमि का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। वे ससार के समक्ष ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श उपस्थित कर गये हैं। आज उनके समान परिपूर्ण ब्रह्मचर्य न पाला जा सके तो भी यदि उनके ब्रह्मचर्य के आदर्श को दृष्टि के सामने रखकर जीवन–व्यवहार चलाया जाय तो कल्याण हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने भर–जवानी मे विवाह करने का त्याग किया था। यद्यपि वे ब्रह्मचारी ही रहने वाले थे और उनसे पहले के इक्कीस

तीर्थंकरो ने उनके विषय मे यही भविष्यवाणी की थी कि भगवान अरिष्टनेमि बाल–ब्रह्मचारी रहेगे, फिर भी उन्होने स्वय यह घोषित नही किया था कि मै बाल–ब्रह्मचारी रहूगा, ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। इसका कारण मुझे अपनी बुद्धि के अनुसार यह पतीत होता है कि उस समय ससार मे हिसा का घोर आतक फैला हुआ था। यह तो नही कहा जा सकता कि उस समय अहिसा की पवृति थी या नहीं या ब्रह्मचर्य को बुरी निगाह से देखा जाता था पर इन्द्रियलोलुपता के कारण उस समय हिसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था। रसेन्द्रिय के लोलुप लोग अपनी लोलुपता का पोषण करने के लिए घोर हिसा करने मे सकोच नही करते थे। मेरी समझ मे इस घोर हिसा का निवारण करने के लिए ही भगवान् ने बाल–ब्रह्मचारी रहने की घोषणा नहीं की थी।

## सतति–नियमन

भगवान् अरिष्टनेमि के समय मे रसनेन्द्रिय की लोलुपता बढ जाने का ही उल्लेख मिलता है, किन्तु इस जमाने मे जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति मे वृद्धि हो रही है। सतानो की इस बढती को देखकर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान–वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय। न रहेगा बास न बजेगी बासुरी।

यह उपाय सतति–नियमन या सतति–निरोध कहलाता है। और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचार पत्रो और कुछ पुस्तको को पढकर मैं यह जान पाया हू कि कुछ लोग बडे जोर–शोर से कहते हैं कि बढती जाती हुई सतान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जननशक्ति का नाश कर दिया जाय उनके गर्भाशय का ऑपरेशन कर डाला जाय या फिर उनके गर्भाशय को इतना निर्बल बना दिया जाय कि सतान की पैदाइश हो ही न सके। इस उपाय द्वारा सतति–निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं–

ससार आज बेकारी के बोझ से दबा जा रहा है। भारतवर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है। ऐसी दुर्दशा मे खर्च मे वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है? इधर सतान की वृद्धि के साथ ... रूप से व्यय मे वृद्धि होती है। सतान जब उत्पन्न होती है तब भी

खर्च होता है, उसके पालन–पोषण मे खर्च होता है, उसकी शिक्षा–दीक्षा मे भी खर्च उठाना पडता है। उस दशा मे, जब कि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो पडा है, सतान उत्पन्न करके खर्च मे वृद्धि करना आर्थिक सकट को अपने हाथो आमत्रण देना है। आर्थिक सकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ जाते हैं। अतएव स्त्रियो की जननशक्ति नष्ट करके यदि सतानोत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाय तो बहुत–से कष्टो से बचा जा सकता है।

यह आधुनिक सुधारको या सतति–नियमन के कृत्रिम उपायो के प्रचारको की प्रधान युक्ति है। इस पर यदि गहरा विचार किया जाय तो साफ मालूम हो जायेगा कि यह युक्ति निस्सार है। ससार मे बेकारी बढ गई है गरीबी बढ गई है, और इससे दु ख बढ गया है, इस कारण सतति–नियमन की आवश्यकता है, यह सब तो ठीक है। किन्तु गरीबी और बेकारी की विपदा से बचने के लिए सतति–निरोध का जो उपाय बताया जाता है वह उपाय प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त ही हानिकारक, निन्दनीय और घृणित है। इस सबध मे मैं जो सोचता हू, उसे कोई माने या न माने, यह अपनी–अपनी इच्छा और सस्कार पर निर्भर है, पर मैं प्रकट कर देना चाहता हू। आजकल यह कहा जाता है कि यह विचार स्वातन्त्र्य का युग है। सबको अपने–अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। अतएव इस सबध मे जो बात मेरे मन मे आई है वह प्रगट कर देना मै अपना कर्तव्य समझता हू।

कल्पना करो, एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है। इस बगीचे मे भाति–भाति के वृक्ष हैं। इन वृक्षो मे एक बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। भारतीयता की दृष्टि से इस सुन्दर वृक्ष को आम का पेड समझा जा सकता है। क्योकि आम भारतवर्ष का ही वृक्ष है, ऐसा सुना जाता है।

समय के परिवर्तन के कारण अथवा जमीन नीरस हो जाने के कारण आम के वृक्ष मे यद्यपि फल बहुत लगते हैं किन्तु जो फल पहले सुन्दर स्वादिष्ट और लाभकारक होते थे उनके बदले अब उसमे नीरस और हानिकारक फल आने लगे हैं। अब कुछ लोग जो जनसमाज के हितैषी होने का दावा करते हैं, आपस मे मिलकर यह विचार करने लगे कि आम के फलो से जनता मे फैलने वाली बीमारी का निवारण किस प्रकार किया जाय?

उनमे से एक ने कहा – इसमे आम के पेड का तो कोई अपराध नही है। पेड बेचारा क्या कर सकता है? उसके फलो से जनता को हानि पहुच रही

है और जनता को उस हानि से बचाने का भार बुद्धिमानो पर है।
बुद्धिमानो को ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए जिससे यह सुन्दर वृक्ष भी नष्ट न हो और उसके फलो से जनता को हानि भी न पहुचे।

दूसरे ने कहा – मैं ऐसी एक रासायनिक औषधि जानता हू जिसे वृक्ष की जड मे डाल देने से वृक्ष फल देना ही बन्द कर देगा। ऐसा करने से सारा झझट ही मिट जायेगा। उस औषधि के प्रयोग से न तो वृक्ष मे फल लगेगे, न लोग उसके फल खाने पावेगे। तब फलो द्वारा होने वाली हानि अपने आप ही बन्द हो जायेगी।

तीसरे ने कहा – वृक्ष मे फल ही न लगने देना उसकी स्वाभाविक शक्ति का विनाश करने के समान है। ऐसा किया जायेगा तो आम वृक्ष का नाम–निशान तक शेष न बचेगा। इसलिए यह उपाय उचित नहीं प्रतीत होता।

चौथे ने कहा – मैं एक ऐसा उपाय बता सकता हू जिससे वृक्ष मे अधिक फल नहीं आने पाएगे। जितने फलो की आवश्यकता होगी उतने ही फल आएगे और शेष सारे फल नष्ट हो जाएगे।

पाचवा बोला – इससे लाभ ही क्या हुआ? जितने भी फल नष्ट होने से बच रहेगे वे तो हानिजनक होगे ही। वे भी नीरस, निस्सत्त्व और खराब ही होगे। तो फिर इस उपाय से दुनिया को क्या लाभ होगा? मैं एक ऐसा उपाय जानता हू जिससे यह वृक्ष भी सुन्दर और सुदृढ बनेगा और इसके फल भी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकारी होगे। साथ ही जितने फलो की आवश्यकता होगी उतने ही फल इसमे लगेगे अधिक नहीं लगेगे। वे फल इतने मधुर और लाभप्रद होगे कि उनसे किसी को हानि पहुचने की सभावना तक न रहेगी, वरन लाभ ही लाभ होगा।

चौथे सज्जन ने कहा – यह एकदम अनहोनी बात है। ऐसा कोई उपाय सफल नही हो सकता। इस उपाय से वृक्ष भी नहीं सुधर सकता और आवश्यकता के अनुसार परिमित फल भी नहीं आ सकते।

पाचवे ने उत्तर दिया – भाई तुम्हारा उपाय कारगर हो सकता है और मेरा उपाय नहीं यह क्यो? मेरी बात का समर्थन करने वाले अनेक प्रमाण मौजूद है। प्राचीनकालीन शास्त्र से भी मेरी बात पुष्ट होती है और वर्तमान–कालीन व्यवहार से भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी दशा मे प्रत्यक्ष–सिद्ध वस्तु को भी स्वीकार न करना और असभव कहकर टाल देना कहा तक उचित है?

इस पाचवे सज्जन ने अपने कथन के समर्थन मे ऐसे अनेक प्रमाण उपस्थित किये जिनसे प्रभावित होकर सबने एक स्वर से उसका कथन स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा बताया उपाय सब ने पसन्द किया।

यह एक दृष्टान्त है और सतति–नियमन के सबध मे इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है–

यह ससार एक बगीचे के समान है। ससारी जीव इस बगीचे के वृक्ष हैं। जीव–रूपी इन वृक्षो मे मानव–वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव–रूपी वृक्ष मे किसी कारण से अतिसन्तान–रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल नि:सत्त्व और हानिकारक होने से भार–रूप प्रतीत होते हैं। अतिसतति की बदौलत मनुष्य के बल–वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ गया है, बेकारी बढ गई है और अतएव सन्तान भी दु खी हो रही है।

आज के सुधारक, जो अपने को ससार के और विशेषत मानव–समाज के हितैषी मानते हैं, इस दुरवस्था को समझे और उसे दूर करने के लिए उपायो पर विचार करने लगे।

इन सुधारको मे से एक कहता है – विज्ञान की बदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोजा निकाला है, जिससे मनुष्य रूपी वृक्ष कायम रहेगा, उसके सुख–सौन्दर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुचेगी और साथ ही उस पर अति–सतति रूपभार भी न पडेगा। और वह उपाय यह है कि शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाय।

इस प्रकार सतति–नियमन के लिए एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है। दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य–समाज ही समूल नष्ट हो जायेगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय नही है।

आजकल के सुधारक बढती हुई सतति का निरोध करने के लिए इसी को अन्तिम उपाय मानते हैं। बहुत–से लोगो को यह उपाय पसन्द भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं। सुना तो यहा तक जाता हे कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए सरकार भी सहायता दे रही है।

लोग यह सोचते हैं कि इस उपाय का प्रयोग करने से हमारे विषय–भोग मे भी बाधा नही पडेगी और हमारे ऊपर सतान का बोझ भी न पडेगा। अतिसतति की उलझन से भी छुटकारा मिल जायगा और आमोद–प्रमोद म भी कमी न करनी पडेगी। जान पडता है, इसी विचार से प्रेरित होकर लोग इस उपाय का अवलम्बन करने के लिए ललचा उठे हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि के जमाने मे जिस प्रकार जिह्वा–लालुपता का प्रचार हो रहा था। उसी प्रकार आज जननेन्द्रिय अथवा स्पर्शनन्द्रिय ने प्राय सर्वसाधारण को अपना दास बना लिया है। विषय–लोलुपता क कारण आज की जनता मे अपनी सन्तान के प्रति भी द्रोह की भावना उत्पन्न हो गई है और

इसी कारण सन्तान को विषय–भोग मे बाधक माना जा रहा है। इस विघ्नबाधा को हटाकर, अपनी काम–लिप्सा को निरकुश और निर्विघ्न बनाने के जघन्य उद्देश्य से पेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम मे लाना पसन्द करते है। जहा विषय–भोग की वासना मे वृद्धि होती है वहा इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है। गीता मे कहा है–

**ध्यायतो विषयान् पुस सगस्तेषूपजायते,**
**सगात्सजायते काम, कामात् क्रोधोऽभिजायते ।।**
**क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम,**
**स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।**

इन्द्रिय–लोलुपता किस पकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार बताया गया है–

विषयो का विचार करने से सग उत्पन्न होता है, सग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के नाश से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के फलस्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति–नियमन के लिए जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायो को कल्याणकारी समझा जा रहा है उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सब विनाश का पथ है।

जनसाधारण के विचार के अनुसार विषय–भोगो का त्याग नहीं किया जा सकता। इसी भ्रान्त विचार के कारण विषय–लालसा के अधीन बन विषय–भोग का सेवन किया जाता है। अधिक से अधिक स्त्री–सग करके विषयो का सेवन किया जाय ऐसी इच्छा की जाती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलिया याकूती गोलिया आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजो का उपयोग किया जाता है। आजकल विषय–भोग की लालसा इस सीमा तक बढ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली कामवर्धक चीजो के विज्ञापनो को रोकने की और तो तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता उलटे सतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लिया जा रहा है।

कहने का आशय यह है कि स्त्री–सग करने से काम–वासना जाग्रत होती है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। जो काम–वासना को चरितार्थ करने मे बाधक हो उस पर क्रोध आना स्वाभाविक ही है। सतान पर क्रोध आने का यही प्रधान कारण है। इस भावना के कारण अपनी प्यारी सतान भी

शैतान का अवतार प्रतीत होती है। यही कारण है कि सतान से खर्च मे वृद्धि होती है, और वह भोग भोगने मे विघ्न उपस्थित करती है। इस कारण ऐसे उपायो की योजना की जाती है जिनसे सतान पैदा ही न होने पाए। किन्तु यह वृत्ति अत्यन्त भयकर है। जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर आज सतान पर क्रोध किया जाता है, उसके प्रति द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है, उस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय, तो जान पडेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरे बढती हुई कुछ भी काम न कर सकने वाले, अतएव भारस्वरूप समझ लिये जाने वाले वृद्ध और अपाहिज पुरुषो के विनाश के लिए प्रेरित करेगी। इससे जिस प्रकार सतान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है उसी प्रकार वृद्धो के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रिया भी यह सोचने लगेगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है। वह मेरे लिए अब भारस्वरूप है और मेरी स्वतत्रता मे बाधक है। ऐसी दशा मे क्यो न उसका विनाश कर डाला जाय! पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियो को अयोग्य एव असमर्थ समझकर उनके विनाश का विचार करेगा। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय खर्च से बचने ओर सतति-नियमन के काम मे लाया जाता है वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणो का सहार करने के काम मे लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणो का नाश हो जायेगा। समाज की श्रृखला भग्न हो जायेगी, हिसा-राक्षसी की चडाल-चौकडी मच जायेगी और जो भयकर काल अभी दूर है, वह एकदम नजदीक आ जायेगा।

सतति-नियमन के भयकर और प्रलयकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय मे स्त्रिया यह सोच सकती हैं कि सतान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का ऑपरेशन किया जाता हे अतएव ऑपरेशन की झझट से बचने के लिए सतान उत्पन्न होते ही क्यो न उसका गला घोट दू?

शस्त्र-प्रयोग से जब सतति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार सतति के प्रति अन्त करण मे बसने वाली स्वाभाविक ममता वात्सल्य और दया को तिलाजलि दी जा सकती हे तो यह क्या असभव हे कि एक दिन ऐसा आ जाय जब लोग अपनी लूली-लगडी या अविनीत सतान का भी वध करने पर उतारू हो जाए?

इस प्रकार सतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम उपायो के कारण घोर अनर्थ फैल जाएगे और मानवीय अन्त करण मे विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाए समूल नष्ट हो जाएगी।

यहा एक आशका की जा सकती है। वह यह कि जो सतान उत्पन्न हो चुकी हो उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर सतान को उत्पन्न न होने देने के लिए गर्भाशय का ऑपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है?

इस आशका का समाधान यह है। मान लीजिए एक मनुष्य किसी नौका मे छेद कर रहा है और उस पर बहुत-से मनुष्य सवार हैं। वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यो को तो मार नहीं रहा है, सिर्फ नौका मे छेद कर रहा है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियो के प्राण नही ले रहा है? यदि यह नही कहा जा सकता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्ति-स्थान को नष्ट करके अपने विषयभोग चालू रखने के लिए हिसा नही की जा रही है? इसके अतिरिक्त, जब मनुष्य को परोक्ष हिसा से घृणा नही होगी वरन् जानबूझकर परोक्ष हिसा की जायेगी, तो प्रत्यक्ष हिसा करने मे भी घृणा उठ जायेगी।

कहा जा सकता है कि इस बढती जाने वाली सतान का निग्रह किस प्रकार करना चाहिए? सतान का नियमन न किया जाय तो पिल्लो की तरह सतान बढाते चले जावे? इस प्रश्न के उत्तर मे सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषय-वासना को सदा के लिए ही शात क्यो न कर दिया जाय? कामवासना मे वृद्धि क्यो की जाय और स्त्री-प्रसग क्यो किया जाय? इस समस्या को हल करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान अरिष्टनेमि का आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यो न किया जाय? ब्रह्मचर्य का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो सतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होगी।

किसी ने भीष्म से कहा-आपने विवाह न करके ससार को बहुत हानि पहुचाई है। आपने ब्याह किया होता तो आपकी सतान भी आपकी ही तरह बलवान् होती और बलवान् सतान से ससार का बडा ही उपकार होता।

भीष्म ने उत्तर दिया-बुद्धि भ्रष्ट होने से ही ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पहले तो यह कहना ही कठिन है कि विवाह करने से पुत्र होता ही। ससार मे अनेक लोग विवाहित होने पर भी पुत्रहीन देखे जाते हैं। कदाचित् पुत्र होता भी तो क्या प्रमाण है कि वह मेरे जैसा ही वीर होता या नहीं?

महात्मा भीष्म की यह आशका निर्मूल नही है। आज भी ऐसे अनेक उदाहरण देखे जाते हैं जिनसे जान पडता है कि पुत्र पिता के ही समान हो ऐसा नियम नही है। शिवाजी एक गुफा मे थे। उस समय एक सरदार एक

सुन्दरी को उनके पास पकड ले गया। पर गुफा से वाहर निकल कर शिवाजी ने पूछा–'मेरी इस माता को क्यो पकड लाये हो?' इस प्रकार शिवाजी परस्त्री को माता के समान समझते थे, पर शिवाजी के पुत्र शभाजी ने सुरा और सुन्दरी की सेवा मे अपने जीवन की सफलता समझी। इस प्रकार हम अनेक जगह देख सकते हैं कि पिता–पुत्र के स्वभाव एक–से हो, ऐसा कोई नियम नहीं है।

भीष्म ने कहा–यह कौन कह सकता हे कि मेरा पुत्र मेरे समान ही होता या दुष्ट होता? पर मैंने विवाह नहीं किया और ब्रह्मचर्य का पालन किया है तो आज सारा ससार मेरी सतान–रूप बन गया है।

भगवान नेमिनाथ ने भी ससार के समक्ष ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित किया था। वह सतति–नियमन के उपाय भी जानते थे और बलिष्ठ सतान उत्पन्न भी कर सकते थे, पर उन्होने ब्रह्मचर्य को ही श्रेष्ठतर समझा और विवाह न करके ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित किया। इसी भाति अगर तुम विवाह न करो और ब्रह्मचर्य का ही पालन करो तो क्या हानि है? अगर तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो तो फिर सतति–नियमन का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

कहा जा सकता है कि हम भीष्म या भगवान् अरिष्टनेमि की तरह ब्रह्मचर्य पालने मे समर्थ नही हैं। ऐसी अवस्था मे सतान–वृद्धि को रोकने के लिए कोई उपाय भी करना होगा। हमारा सोचा हुआ उपाय यदि उचित नही है, तो आप कोई उपाय बताइए।

इसके लिए मैंने पहले आम का उदाहरण दिया था। उस पर विचार करो। जिस प्रकार आम का पेड बना रहे, उसके फल भी आवश्यकतानुसार ही आवे और वे फल सबके लिए लाभदायक हो, इस वात के लिए जो उपाय पहले सोचा गया था वैसा ही कोई उपाय सतान के लिए भी हो सकता हे या नहीं? इस प्रश्न पर गहरा विचार करो। अगर ऐसा कोई उपाय सभव हे तो क्यो न उसका ही प्रयोग किया जाय? और क्यो औषधियो द्वारा गर्भाशय को नष्ट करने की विडबना की जाय?

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना सतति–निरोध का सर्वोतम उपाय है। यदि यह शक्य न हो तो जब तक स्त्री–पुरुष मे अपनी सतान क पालन–पोषण की शक्ति न आवे तब तक ब्रह्मचर्य का नियमित रूप से पालन करना चाहिए अथवा दो–चार सतान उत्पन्न हो जाने के पश्चात् सतोष धारण कर विषय–सेवन से निवृत्त हो ब्रह्मचर्य मे प्रवृत्त होना चाहिए।

इस पकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से सतति–नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिये हानिकारक उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता नही रह जाती। सतति–नियमन के लिए ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है। पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुए चाहते है कि न तो विषय–भोग का परित्याग करना पडे और न सतान ही उत्पन्न होने पावे। और इस दुरभिसधि की पूर्ति के लिए शस्त्र–प्रयोग आदि उपायो से जननशक्ति का ही नाश करने की तरकीबे खोजते हैं। पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायो द्वारा सतति–नियमन किया जायेगा तो इससे भविष्य मे अपार और असीम हानिया होगी। ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए सतान को कृत्रिम साधनो द्वारा रोका जायेगा और पानी की भाति वीर्य का दुरुपयोग किया जायेगा तो निर्बलता मानव–समाज को गस लेगी और तब सतान की अपेक्षा मनुष्य स्वय अपने लिए भार–रूप बन जायेगा ऐसा भार जिसे सभालना कठिन हो जायेगा।

विषय–भोग की कामना का नियत्रण नही हो सकता–यह कामना अजेय है। इस पकार की दुर्भावना पुरुष–समाज मे एक बार पैठ गयी तो भयकर अनर्थ होगे और उन अनर्थो की परम्परा का सामना करना सहज नही होगा।

यद्यपि आजकल भी अनेक लोग हैं जिनकी यह भ्रान्त धारणा हो गई है कि मनुष्य कामभोग की वासना पर विजय नही प्राप्त कर सकता। सभवत वे लोग मनुष्य को कामवासना का कीडा समझते हैं। पर प्राचीन आर्य ऋषियो का अनुभव इस धारणा का विरोध करता है। कोई व्यक्ति–विशेष ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ रहे यह एक बात है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना सभव नही है यह दूसरी बात है। किसी व्यक्ति की असमर्थता के आधार पर किसी व्यापक सिद्धान्त का निर्माण कर बैठना सचाई के साथ अन्याय करना है। इस प्रकार असमर्थता की ओट मे विषय–भोगो का पचार करना सर्वथा अनुचित है। आज भी ससार मे ऐसे व्यक्तियो का मिलना असभव नही है जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उपासना कर रहे है। फिर भीष्म और भगवान नेमिनाथ जैसे पवित्र ब्रह्मचारियो का उच्च आदर्श जिनके मार्ग–पदर्शन कर रहा हो उन भारतवासियो के हृदय मे न मालूम कैसे यह भूत घुस गया है कि–विषय वासना पर काबू करना सभव नही है। साधु हुए बिना ब्रह्मचर्य का पालन हो ही नही सकता और गृहस्थ–जीवन मे ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान एकदम अशक्यानुष्ठान है। वास्तव मे

यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मनोबल दृढ होने पर पूर्ण या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। यही नहीं, वरन् विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थ–जीवन मे भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य पालने से किसी भी प्रकार की हानि की समावना नहीं है। यही नहीं किन्तु अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। कहा भी है–

**ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठाया वीर्यलाम**

– योगसूत्र

अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य का लाभ होता है–वीर्य (शक्ति) का सरक्षण होता है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने से भी वीर्य का लाभ होता है और विवाह करके ब्रह्मचर्य पालने से भी वीर्य का लाभ होता है। इसके विपरीत, 'विषय–विकार को जीतना समव नहीं है'– इस भावना का पोषण करने से और इस दुर्भावना के कारण शस्त्र–प्रयोग आदि उपायो द्वारा सतति का निरोध करने से स्व की भी और पर की भी घोर हानि होने की समावना है।

कुछ महानुभावो ने एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया है। उनकी अनोखी–सी समझ यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर मे रोग उत्पन्न होते हैं। पर न तो आज तक यह सुना गया है कि ब्रह्मचर्य–पालन से किसी को किसी रोग का शिकार होना पडा है, और न ऐसा कोई उदाहरण ही देखा गया है। हा, ठीक इससे उलटे, जो लोग विषयी होते हैं, वे ही रोगो द्वारा सताये जाते है। यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। अतएव अपने हृदय से इस भ्रान्ति को निकाल फेंको कि ब्रह्मचर्य से रोग पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य जीवन है, उससे शक्ति का लाभ होता है। जहा शक्ति है वहा रोगो का आक्रमण नही होता। अशक्त और दुर्बल मनुष्य ही रोगो से सताये जाते हैं।

कहने का आशय यह है कि सतति–नियमन के लिए ब्रह्मचर्य ही अमोघ उपाय है–वही प्रशस्त साधन है। इस अमोघ उपाय की उपेक्षा करके, उसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनों से सतति–नियमन करना और विषय–भोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमो का अतिक्रमण करना है। और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नही हो सकता। यदि सतति–नियमन का उद्देश्य विषय–भोग का सेवन नहीं है किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सतति–नियमन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है तो भी ब्रह्मचर्य ही एक मात्र अमोघ उपाय है।

कोई यह कह सकता है कि सतति–नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय–भोग की इच्छा को रोक सकना शक्य नही है। ऐसी लाचारी की हालत मे ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम मे लिया जाय?

किसी उपवास–चिकित्सक के पास कोई रोगी जाय और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता हू और उपवास– चिकित्सा–पद्धति को अच्छा भी मानता हू, पर उपवास करने मे असमर्थ हू, तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा? निस्सन्देह वह यही कह सकता है कि अगर आप उपवास नही कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय मे नही है। इसी प्रकार जब तुम विषय–भोग की इच्छा को जीत नही सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है? तुम ब्रह्मचर्य का पालन नही करना चाहते और विषय–भोग की पवृत्ति चालू रखकर सतति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम– सतति नियमन के सच्चे उपाय को काम मे नही लाना चाहते बल्कि विषय– वासना की पूर्ति मे तुम्हे सतान बाधक जान पडती है इसलिए उसका निरोध करना चाहते हो।

खेद है कि लोगो के मन मे यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय–भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है। परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोश मे से निकाल डालने का कहा था, उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से कामभोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय–भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

## हनुमान की कथा

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई सतान कितनी बलिष्ठ होती है इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमे बल देगे इस भावना से लोग उनकी पूजा करते हैं, पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी वह ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हुई थी। वे शील के पुत्र थे। पवन महासुन्दरी अजना का पाणिग्रहण करके उसे अपने घर लाये। फिर अजना के प्रति उनके हृदय मे किचित सदेह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होने अजना का परित्याग कर दिया। उन्होने इस अवस्था मे अपने मन पर पूर्ण नियत्रण रखा। अजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय मे शका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण

वे अपने ऊपर पूर्ण अकुश रखते हुए मुझसे अलग–अलग रहते हैं। यह समझ कर अजना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय कर लिया।

अजना की दासी ने एक बार अजना से कहा–पवनजी तुम्हारे लिए पति नहीं, प्रत्युत पापी है। वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते?

अजना ने उत्तर दिया–दासी! जीभ सभाल कर बोल। मेरे पति की निन्दा मत कर। वे सच्चे धर्मात्मा हैं। वे राजपुत्र है–चाहे तो अनेक कन्याओ का पाणिग्रहण कर सकते हैं। पर नहीं, मेरी खातिर वे अपने मन पर सयम रख रहे हैं। मेरे किसी पूर्वकृत पाप के कारण उन्हे मेरे विषय मे सदेह उत्पन्न हो गया है। जब मेरा पाप दूर हो जायेगा तो मेरे पति का सदेह दूर हो जायेगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह चाहने लगेगे।

एक दिन वह था जब स्त्रिया अपने पति का प्रेम–सपादन करने के लिए आत्मसमर्पण करती थी और आज वह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिये स्त्रियो को भरसक उत्तेजित किया जाता है। उनके हृदय में काम–वासना की आग भडकाई जाती है। पुरुष स्वय काम–वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा–विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खडा हो गया है। अगर विधवाओ की भाति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करे और त्यागमय जीवन व्यतीत करे तो सहज ही यह प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से रोने का ढोग भले ही करते हो, पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय मे प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियो के लिए अजना का आदर्श है इसी प्रकार पुरुषो के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अजना–दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही उसी प्रकार पवनकुमार भी बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार भी कर सकते थे। पर उन्होने यह नही किया। उन्होने सोचा–जब मै अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हू तो मैं स्वय दुराचार करके क्यो भ्रष्ट होऊ? मै भी क्यो न पत्नीव्रती बनू? मैं यह अनर्थ कैसे कर सकता हू?

आज का पुरुष वर्ग स्त्रियो की टीका करने मे कमी नही रखता पर खुद कैसी–कैसी करतूते कर रहा है, इस ओर उसका ध्यान ही नही जाता। पुरुष समझता है, मुझे सब–कुछ करने का अधिकार है क्योकि मैं पुरुष हू। पर यह एकपक्षीय बात है। अतएव मैं यह कहता हू कि स्त्री और पुरुष दोनो

को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र मे पुरुष के लिए स्वदार–सन्तोष और स्त्री के लिए स्वपति सतोष व्रत बताया गया है। यदि पुरुष स्वदार–सतोष का पालन करे तो स्त्रिया स्वपति–सतोष व्रत का पालन क्यो न करेगी? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आशिक व्रत का पालन किया जाय और स्त्री–पुरुष सतोषपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करे तो सतति–नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध मे जाते हुए पवनकुमार ने जगल मे पडाव डाला। वही पास मे किसी पेड के नीचे एक चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा–रात मे चकवा–चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा–जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पात मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दु ख का क्या ठिकाना होगा जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है। मुझे उसके विषय मे सदेह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा–अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सदेह हो गया था? इस विषय मे आपने आज तक मुझसे कुछ भी जिक्र नही किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सदेह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सदेह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा–वह सती है। उस पर आपका यह सदेह अनुचित है। आपका सदेह सच्चा होता तो वह इतने दिनो तक घर मे न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सदेह हो गया है वह दूषण नही भूषण है, गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सदेह काफूर हो गया। उन्होने प्रहस्त से कहा–मैने एक सती–साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुचाया है। इस समय मै समरागण मे जा रहा हू और कदाचित् मैं युद्ध मे मारा गया तो यह दु ख काटे की तरह मुझे सदा ही सालता रहेगा। क्या ऐसा कोई उपाय नही है कि मै रात–भर उसके पास रहकर वापस लौट सकू? प्रहस्त ने कहा–है क्यो नही मै ऐसी विद्या जानता हू।

आज एरोप्लेन–वायुयान हैं पर पहले आकाश मे उडने की विद्या भी थी। इस विद्या के बल से प्रहस्त के साथ पवनकुमार अजना के निवास–स्थान पर आए। जिस समय पवनकुमार अजना के पास पहुच रहे थे उस समय [illegible]

अजना की एक दासी उससे कह रही थी–जिसे तुम अपना सुहाग समझती हो, तुम्हारे उस पति ने तुम्हारा शकुन न लेकर तुम्हारा अपमान किया है। वास्तव मे तुम्हारा पति अत्यन्त क्रूर है। मैं तो सोचती हू–वह युद्ध मे अवश्य मारा जायेगा।

अजना और उसकी दासी के वार्तालाप से सहज ही यह समझा जा सकेगा कि वास्तव मे दासी और रानी मे कितना अन्तर होता है। दासी के कथन के उत्तर मे अजना ने कहा– खबरदार जो ऐसी बात मुह से निकाली। युद्ध मे मेरे स्वामी अवश्य विजय–लाभ करेगे। मेरी भावना तो निरन्तर यही रहती है कि उन्हे शीघ्र ही विजय प्राप्त हो।

दासी–जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है, उसी की तुम विजय चाहती हो? कैसी भोली हो मालकिन।

अजना–मेरे पतिदेव के हृदय मे मेरे विषय मे सदेह उत्पन्न हुआ है। वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध को जाते समय उन्होने मेरा शकुन नहीं लिया है। मेरे पति महापुरुष और वीर हैं। उन्होने अपने पिताजी को युद्ध मे नहीं जाने दिया और आप स्वय युद्ध मे सम्मिलित होने गये हैं। वे ऐसे शूरवीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। ऐसे सच्चरित्र और वीर पुरुष की जीत नहीं होगी तो किसकी होगी?

इस प्रकार अजना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शान्तचित्त से सुनी। पवनकुमार, अजना की अपने प्रति प्रगाढ निष्ठा देखकर गद्गद हो गये। प्रहस्त से उन्होंने कहा–मित्र! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है। अब किस प्रकार इसे अपना मुह दिखाऊ?

प्रहस्त ने कहा–थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए। इतना कहकर प्रहस्त ने अजना के मकान की खिडकी खडखडाई। खिडकी की खडखडाहट सुनकर अजना गरज उठी–कौन दुष्ट है जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है? जो भी कोई हो, फौरन यहा से भाग जाय अन्यथा उसे प्राणो से हाथ धोना पडेगा।

प्रहस्त ने उत्तर दिया और कोई नहीं है। दूसरे किसकी हिम्मत है जो यहा आने का विचार भी कर सके। यह पवनकुमारजी हैं और इनके साथ मैं इनका मित्र प्रहस्त हू। यह शब्द सुनते ही अजना के अग–अग म मानो बिजली दौड गई। उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जब तक उसे खातिरी न हो गई उसने किवाड न खोले। जब उसने खिडकी मे से देखकर यकीन कर लिया, तभी दरवाजा खोला।

अजना ने अर्घ लेकर अपने प्राणपति पवनकुमार की आरती उतारी और कुछ–कुछ लजाते हुए, सकुचते हुए विनम्र वाणी से कहने लगी–'क्षमा करना नाथ, मैने आपको बहुत कष्ट पहुचाया है।'

कष्ट किसने किसे पहुचाया था? पवनकुमार ने अजना को अथवा अजना ने पवनकुमार को? वास्तव मे तो पवनकुमार ने ही अजना को कष्ट दिया था। फिर भी अजना ने इस तरह की शिकायत न करते हुए उलटा यही कहा कि–'मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। मेरे कारण ही आपने एक–निष्ठता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला है। इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा दीजिए। आपका सदेह दूर हो गया है, यह जानकर आज मुझे असीम आनन्द की अनूभूति हो रही है।

पवनकुमार ने मन ही मन लजाते हुए कहा–'सती! क्षमादान दो। अनजान मे मैंने तुम सरीखी परम सती महिला को मिथ्या कलक लगाया है। मेरे इस घोर अपराध को क्षमा करो।'

अन्त मे दोनो का ससार सबध हुआ। दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला था, अतएव पवनकुमार के वीर्य से हनुमान जैसे बली बालक का जन्म हुआ।

आशय यह है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करने से सतान भी बलवान् होती है। अतएव सतति–नियमन के सबध मे पवनकुमार का आदर्श सामने रखना चाहिए।

तुम कदाचित् भीष्म और भगवान अरिष्टनेमि की तरह पूर्ण ब्रह्मचारी नही रह सकते तो पवनकुमार की भाति ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन तो अवश्य बिता सकते हो। पर काम–वासना पर काबू नही रखा जा सकता– इस भ्रमपूर्ण भावना का परित्याग करो। इस दुर्भावना के कारण ही विषय–वासना वेगवती बनती है।

मेरे सम्पूर्ण कथन का साराश यही है कि इस समय सतति–नियमन की आवश्यकता तो है पर आजकल उसके लिए शस्त्र क्रिया या औषध का जो उपाय बताया जाता है वह सच्चा हितकर उपाय नही है। यह उपाय प्रत्येक दृष्टि से लाभ के बदले हानि ही पहुचाएगा। अतएव हानिकारक उपायो का उपयोग न करके सतति–नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का अमोघ और कल्याणकारी उपाय काम मे लाना चाहिए। ब्रह्मचर्य के अवलम्बन से सतति का नियमन होगा और जो सतान होगी वह स्वस्थ सबल और सम्पन्न होगी। साथ ही तुम भी शक्तिशाली और चिरजीवी बन सकोगे।

सतति–नियमन करके द्रव्य के अपव्यय या अधिक व्यय से बचना चाहते हो–द्रव्य तुम्हे प्यारा है, तो असली धन–जीवन के मूल और शक्ति के स्रोत वीर्य के अपव्यय से भी बचने का प्रयास करो। द्रव्य–धन की अपेक्षा वीर्य–धन का मूल्य कही अधिक है, बहुत अधिक है। फिर भी इस ओर दृष्टिनिपात क्यो नही करते?

शस्त्र–क्रिया या औषध के प्रयोग द्वारा सतति–नियमन करने से अपनी हानि के साथ–साथ परम्परा से दूसरो की भी हानि होगी। इसके अतिरिक्त आजकल तो स्त्री–पुरुष की समानता का प्रश्न भी उपस्थित हो गया है। ऐसी दशा मे, सभव है स्त्रियो की ओर से यह प्रश्न खडा कर दिया जाये कि सतति–नियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ही ऑपरेशन क्यों किया जाय? क्यो न पुरुषो को ही ऐसा बना दिया जाय जिससे सतान की उत्पत्ति ही न हो सके। पुरुषो की उत्पादक शक्ति का ही विनाश क्यो न कर दिया जाय?

सतति–नियमन के जिन कृत्रिम उपायो के कारण भविष्य मे ऐसी भयानक स्थिति उत्पन्न होने की सभावना है उन उपायो का प्रयोग न करना ही विवेकशीलता है। कदाचित् सरकार सतति–नियमन के लिए ऐसे कृत्रिम उपायो को काम मे लाने के लिए कानून बना दे, तो सरकार के उस काले कानून को मानना या न मानना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। अगर तुम्हे भी सतति–नियमन के कृत्रिम उपाय अनुचित और हानिजनक जान पडते हो तो इन उपायो का परित्याग करो और सतति–नियमन के लिए अमोघ उपाय ब्रह्मचर्य का प्रयोग करो। इसी मे तुम्हारा, समाज का देश का और अन्तत विश्व का कल्याण है।

# मानव–धर्म

## प्रार्थना

**चेतन! जान कल्याणकरन को, आन मिलो अवसर रे।**
**शास्त्र–प्रमान पिछान प्रभू गुन, मन चचल थिर कर रे।।**
**श्रेयास जिनद सुमर रे।।1।।**

श्री श्रेयासनाथ भगवान की यह प्रार्थना की गई है। आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना क्यो करनी चाहिए? इस सबध मे मैं यथाशक्ति थोडा–बहुत कहता ही रहता हू। आज यद्यपि मुझे 'मानव–धर्म' विषय पर बोलना है, किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है और प्रार्थना करना भी मानव–धर्म है, इसलिए इस विषय मे आज भी कुछ कह रहा हू।

हे आत्मा! उठ जाग और परमात्मा का स्मरण कर', यह प्रेरणा इस प्रार्थना मे की गई है। इस पर यह प्रश्न उठता है कि परमात्मा की प्रार्थना किसलिए करनी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर एक साधारण उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है।

एक बालक गन्ने का टुकडा लेकर चूस रहा है और दूसरा बालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे बालक ने पहले को शक्कर की डली दिखलाकर कहा–देख कैसी मीठी है यह शक्कर है! तब पहले बालक ने उत्तर दिया–यह शक्कर आई कहा से है? इसी गन्ने से तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने मे तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

गन्ने मे शक्कर भरी है– ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य बोलता है? उसका कहना यदि सत्य है तो गन्ने मे से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है? नही प्रयत्न भी वृथा नही है और गन्ने मे शक्कर भरी है यह कहना भी असत्य नही है। क्योकि गन्ने मे शक्कर

स्वय ज्ञानवान् नही हो, पर तुम जिनकी सन्तान हो वह तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान ऋषभदेव की सन्तानो मे मनु नामक कुल-गुरु भी थे। इन मनु की सन्तान मानव कहलाती है। अथवा मनुस्मृति के कर्ता भी मनु कहलाते हैं, उनकी सन्तान भी मानव कहलाती हे। मुसलमान भी आदम को मानते है और आदम की सन्तानो को इनसान कहते हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार मानव की व्याख्या की जाती है। सब व्याख्याओ का सार यही है कि ज्ञानवान् की सतान ही मानव कहलाती है। इस प्रकार तुम ज्ञानवानो की सन्तान हो और इस कारण अपने पूर्वजो को भूल न जाओ। वश-परम्परा से चले आये हुए सस्कारो की वदोलत ही आज तुम्हारी हस्ती है।

वेदान्त ओर उपनिषद् मे मानव का खूब महत्त्व वतलाया गया है। वहा मनुष्य का अग्नि के रूप मे वर्णन किया गया है। हम जिसे अन्न और पानी कहते हैं, वह अन्न और पानी भी मनुष्य के पेट मे पहुचकर भस्म हो जाता है, इस कारण मनुष्य को अग्नि कहा गया हे। पेट मे पहुचकर अन्न-पानी किस प्रकर भस्म हो जाता है और रस-भाग एव खल-भाग किस प्रकार अलग-अलग हो जाता है, यह विषय वहुत लम्वा है। अतएव इस सवध मे इतना ही कहना चाहता हू कि मनुष्य के पेट मे अन्न-पानी भी भस्म हो जाता है। इसी कारण वेदान्त और उपनिषद् मे मनुष्य का अग्नि-रूप मे वर्णन किया गया है। डॉक्टर भी किसी रोगी मनुष्य की अग्नि की पहले परीक्षा करता हे। मनुष्य एक जीवित और चलती-फिरती आग हे। इस आग मे जो कुछ भी प्रक्षेप किया जाता है वह बेकार नही जाता किन्तु आकृति के रूप मे पलट जाता है। अन्न पानी से वीर्य बनता है ओर वीर्य से वाद मे उसी प्रकार की सन्तान उन्पन्न होती है। ऐसी यह परम्परा है। परन्तु इस परम्परा म यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्न-जल जेसा होगा, वीर्य वेसा ही वनेगा ओर जेसा वीर्य होगा वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। अतएव जो अपने धर्म कर्म अपनी परम्परा ओर अपनी भावी सन्तान का ध्यान रखता हे वही मनुष्य कहलाता है।

इस कथन से एक प्रश्न यह उपस्थित होता हे कि इस दृष्टि स क्या विद्वान-मूर्ख वालक-वृद्ध गवार ओर नागरिक सभी मनुष्य कहलाने लगेगे? इस प्रश्न का समाधान करते हुए ज्ञानीजन कहते हैं कि जिनमे मानव-धर्म पाया जाय उन्हे ही मानव कहा जा सकता है। जिनमे मानव-धर्म नहीं है वे परम्परा के अनुसार मानव-कुल मे भले ही उत्पन्न हुए हो फिर भी वे मानव नही हैं। एक कवि ने कहा हे-

दीसत के नर दीसत है,
पर लक्षण तो पशु के सब ही है,
पीवत–खावत ऊठत–बैठत,
वो घर वो वनवास यही है।
साझ पडे रजनी फिर आवत,
सुन्दर यो फिर भार वही है,
और तो लक्षण आन गिले सब,
एक कमी सिर सीग नही है।।

जिनमे मानव–धर्म नही है उन्हे सभी ने बिना सीग–पूछ का पशु कहा है। ज्ञानियो का कथन है कि जिनमे केवल द्रव्य–मानवता है और भाव–मानवता नही है अर्थात् मानव–धर्म नही पाया जाता, वह 'मानव' नही है। आकृति आदि के कारण उसे द्रव्य–मानव तो कहा जा सकता है, किन्तु उसमे भाव–मानवता न होने से भाव की अपेक्षा मानव नहीं कहा जा सकता। जो केवल द्रव्य को ही देखता है द्रव्य मे ही रहता है जो भाव को नही देखता उसमे मानवता भी नही रह सकती। जिस सोने मे सोने का धर्म न हो, उसे कौन सोना कहेगा? कौन उसे सोने के भाव मे खरीदेगा? इसी प्रकार जिसमे मानव–धर्म नही है–मानवता नही है उसे मानव कोन कहेगा? इसीलिए ज्ञानियो का कथन है कि कवल द्रव्य–मानवता मे रहकर मानव–धर्म की उपेक्षा न करो।

आज कुछ लोगो को धर्म अनावश्यक एव भार–रूप प्रतीत होने लगा है। किन्तु यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि उन्होने धर्म के ठीक–ठीक स्वरूप को समझा नही है। वास्तव मे धर्म के बिना जीवन ही नहीं टिक सकता। आज के युवक सुधार करना चाहते है पर धर्म की सहायता के बिना सुधार होना सभव नही है। पत्येक क्षेत्र मे धर्म की आवश्यकता है।

स्वय ज्ञानवान् नही हो, पर तुम जिनकी सन्तान हो वह तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान ऋषभदेव की सन्तानो मे मनु नामक कुल–गुरु भी थे। इन मनु की सन्तान मानव कहलाती है। अथवा मनुस्मृति के कर्ता भी मनु कहलाते हैं, उनकी सन्तान भी मानव कहलाती है। मुसलमान भी आदम को मानते हैं और आदम की सन्तानो को इनसान कहते हैं। इस प्रकार अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार मानव की व्याख्या की जाती है। सब व्याख्याओ का सार यही है कि ज्ञानवान् की सतान ही मानव कहलाती है। इस प्रकार तुम ज्ञानवानो की सन्तान हो और इस कारण अपने पूर्वजो को भूल न जाओ। वश–परम्परा से चले आये हुए सस्कारो की वदौलत ही आज तुम्हारी हस्ती है।

वेदान्त ओर उपनिषद् मे मानव का खूब महत्त्व बतलाया गया है। वहा मनुष्य का अग्नि के रूप मे वर्णन किया गया है। हम जिसे अन्न और पानी कहते हैं, वह अन्न और पानी भी मनुष्य के पेट मे पहुचकर भस्म हो जाता है, इस कारण मनुष्य को अग्नि कहा गया है। पेट मे पहुचकर अन्न–पानी किस प्रकर भस्म हो जाता है ओर रस–भाग एव खल–भाग किस प्रकार अलग–अलग हो जाता है यह विषय बहुत लम्बा है। अतएव इस सबध मे इतना ही कहना चाहता हू कि मनुष्य के पेट मे अन्न–पानी भी भस्म हो जाता है। इसी कारण वेदान्त और उपनिषद् मे मनुष्य का अग्नि–रूप मे वर्णन किया गया है। डॉक्टर भी किसी रोगी मनुष्य की अग्नि की पहले परीक्षा करता हे। मनुष्य एक जीवित और चलती–फिरती आग है। इस आग मे जो कुछ भी प्रक्षेप किया जाता है वह वेकार नही जाता किन्तु आकृति के रूप मे पलट जाता है। अन्न पानी से वीर्य बनता ह और वीर्य से वाद मे उसी प्रकार की सन्तान उन्पन्न होती है। ऐसी यह परम्परा है। परन्तु इस परम्परा म यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्न–जल जेसा होगा वीर्य वैसा ही वनेगा ओर जैसा वीर्य होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। अतएव जो अपने धर्म कर्म अपनी परम्परा और अपनी भावी सन्तान का ध्यान रखता है वही मनुष्य कहलाता हे।

इस कथन से एक प्रश्न यह उपस्थित होता हे कि इस दृष्टि से ता विद्वान–मूर्ख, वालक–वृद्ध गवार ओर नागरिक सभी मनुष्य कहलाने लगेगे? इस प्रश्न का समाधान करते हुए ज्ञानीजन कहते हैं कि जिनम मानव–धर्म पाया जाय उन्हे ही मानव कहा जा सकता ह। जिनम मानव–धर्म नही हे व परम्परा के अनुसार मानव–कुल मे भले ही उत्पन्न हुए हो फिर भी व मानव नही हैं। एक कवि ने कहा हे–

दीसत के नर दीसत है,
पर लक्षण तो पशु के सब ही है,
पीवत-खावत ऊठत-बैठत,
वो घर वो वनवास यही है।
साझ पडे रजनी फिर आवत,
सुन्दर यो फिर भार वही है,
और तो लक्षण आन मिले सब,
एक कमी सिर सीग नही है।।

जिनमे मानव-धर्म नहीं है उन्हे सभी ने बिना सीग-पूछ का पशु कहा है। ज्ञानियो का कथन है कि जिनमे केवल द्रव्य-मानवता है और भाव-मानवता नही है अर्थात् मानव-धर्म नहीं पाया जाता, वह 'मानव' नही है। आकृति आदि के कारण उसे द्रव्य-मानव तो कहा जा सकता है, किन्तु उसमे भाव-मानवता न होने से भाव की अपेक्षा मानव नही कहा जा सकता। जो केवल द्रव्य को ही देखता है द्रव्य मे ही रहता है जो भाव को नही देखता उसमे मानवता भी नही रह सकती। जिस सोने मे सोने का धर्म न हो उसे कौन सोना कहेगा? कौन उसे सोने के भाव मे खरीदेगा? इसी प्रकार जिसमे मानव-धर्म नही है-मानवता नही है उसे मानव कौन कहेगा? इसीलिए ज्ञानियो का कथन है कि केवल द्रव्य-मानवता मे रहकर मानव-धर्म की उपेक्षा न करो।

बन जायगा। किसी मनुष्य से शरीर पर कपास लपेटने के लिए कहा जाय तो वह इसे स्वीकार नहीं करेगा, किन्तु उसी कपास का सस्कार–उपक्रम कर दिया जाय, अर्थात् कपास से रुई ओटकर, सूत बनाकर, कपडा बना दिया जाय और उसे सुन्दर रूप मे सिल दिया जाय तो वही कपास शरीर पर धारण किया जा सकता है। इसी प्रकार बालक का जन्म होने पर यदि उसमे सस्कार–उपक्रम न किया जाय तो उसका जीवन कच्चे कपास की तरह असस्कारी ही बना रहेगा। ज्ञानीजन कहते हैं कि राग के समान कोई जुल्मी नही है। कितनेक लोग, माता–पिता कहलाकर फूले नहीं समाते, किन्तु राग के वश होकर अपने बालको को ऐसे सस्कारहीन रहने देते हैं कि आगे चलकर वही बालक भार–रूप जान पडने लगते हैं। कच्चे कपास की तो थोडी–बहुत कीमत भी उपजती है, किन्तु सस्कारहीन सतान को तो ससार मे कोई टके सेर भी नही पूछता। इस प्रकार धर्म का उपक्रम किये बिना जीवन का सुधार नही हो सकता। धर्म मानव–जीवन का सस्कर्ता है।

अनुयोगद्वार सूत्र मे उपक्रम के–नाम–उपक्रम स्थापना–उपक्रम द्रव्य–उपक्रम, क्षेत्र–अपक्रम, काल–उपक्रम और भाव–उपक्रम ये छ भेद बतलाये गये हैं। इन सब उपक्रमो का वर्णन करने का इस समय अवकाश नही है, अतएव जिस उपक्रम के साथ विषय का सबध है उसी का यहा। वणन करना उचित होगा। भूत और भविष्य को छोडकर जो वर्तमान मे वर्त रहा है उसका उपक्रम करना द्रव्य उपक्रम कहलाता है। द्रव्य उपक्रम के दो भेद है– (1) सचित्त द्रव्य उपक्रम और (2) अचित्त द्रव्य उपक्रम। सचित्त द्रव्य–उपक्रम के द्विपद, चतुष्पद और अपद ये तीन भेद हैं। द्विपद मे मनुष्य चतुष्पद मे पशु और अपद मे वृक्षो का समावेश होता है। इन सबका उपक्रम होता है। इस उपक्रम के वस्तु–विनाश और परिक्रम इस प्रकार दो भेद हैं। वस्तु को भ्रष्ट करना वस्तु–विनाश उपक्रम है और वस्तु का विभिन्न प्रकार से विकास करना परिक्रम कहलाता है। मनुष्य का शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास करना परिक्रम है। जैसे मिट्टी मे बासन बनने की शक्ति है किन्तु कुम्हार यदि क्रिया द्वारा उस शक्ति की अभिव्यक्ति न करे और मिट्टी के बर्तन न बनावे तो शक्ति विद्यमान होने पर भी मिट्टी मे से बर्तन नहीं बन सकता। अर्थात् मिट्टी का उपक्रम न बन सकेगा। और उपक्रम न होने के कारण मिट्टी के ढेले मे खिचडी नहीं पकाई जा सकती। जब मिट्टी का परिक्रम होगा मिट्टी म से हडिया बनाई जायेगी तभी उससे खिचडी पकायी जा सकेगी। हाडी यद्यपि मिट्टी मे से बनी है पर कुम्हार के प्रयत्न के बिना नही बनी है। मनुष्य का शरीर

भी मिट्टी के समान है और यदि उसका परिक्रम किया जाय तो उसमे भी शक्ति का ऐसा विकास हो सकता है कि देखने वाले चकित रह जाएगे।

कहने का आशय यह है कि केवल आकृति या इन्द्रियो के कारण ही कोई मनुष्य नही हो सकता। जिसमे मानव–धर्म हो और उस मानव–धर्म का परिक्रम किया जाय वही मानव कहला सकता है। 'परिक्रम' शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है। साधारणतया परिक्रम को विकास या अनुशीलन कहा जाता है। जिसका परिक्रम किया गया हो, वह प्रत्येक कार्य को बडी सरलता से सम्पादन कर लेता है। यह बात दूसरी है कि जिसका परिक्रम जिस ओर हुआ हो वह उसी काम को अधिक सरलता से कर सकता है। पर कोई भी कार्य क्यो न हो उसे वही कर सकेगा जिसका परिक्रम उस ओर हुआ हो। मान लीजिए आप पढे–लिखे हैं। आपको बहुत–से पत्र लिखने है। तो आप थोडी–सी देर मे सब पत्र लिख डालेगे और उसमे विशेष कठिनाई का अनुभव न करेगे। पर जो लोग पढे–लिखे नहीं हैं उनसे एक अक्षर लिखने को कहा जाय तो उनके लिए घोर सकट का काम होगा। वे लिख नही सकेगे। इसका कारण क्या है? यही कि आपका लिखने मे परिक्रम हुआ है और उनका इस विषय मे परिक्रम नही हुआ है। आज पढे लिखो की सख्या बढ गई है अतएव इस परिक्रम का अधिक महत्त्व नही रह गया है अन्यथा यह भी आश्चर्य चकित कर देने वाला परिक्रम है। धर्म मर्म, कर्म इत्यादि शब्दो के लिखने मे लेखक को इस बात की सावधानी रखनी पडती है कि पहले कौनसा वर्ण कौनसा स्वर कौनसा व्यजन लिखना चाहिए और किस प्रकार लिखना चाहिए?

विकास हुआ नजर नहीं आता। पर यदि किसी मे सम्पूर्ण परिक्रम हो जाये तो उसमे और परमात्मा के बीच मे कुछ भी अन्तर न रह जाये, वह स्वय परमात्मा वन जाये। इतना सम्पूर्ण विकास न कर सकने के कारण निराश होने की आवश्यकता नही है। प्रयत्न करने से सम्पूर्ण विकास भी साधा जा सकता हे।

शास्त्र मे मेघकुमार के अध्ययन मे कहा है कि मेघकुमार राजकुमार था। उसने वचपन से ही सव क्रियाए सीख ली थीं, फिर भी जव वह कुछ वडा हुआ तो वह कलाचार्य के सुपुर्द कर दिया गया था। वहा वह लेखन–शिक्षा से लगाकर शकुन–शास्त्र की शिक्षा तक वहत्तर कलाए सीखा था। इन वहत्तर कलाओ मे मानव–जीवन की आवश्यकता सवधी समस्त वातो का समावेश हो जाता है। इस विषय का पूर्ण विवरण ज्ञान सूत्र (नाया धम्मकहा) मे दिया गया है। यहा उसके विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवकाश नहीं है। इस समय तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल मे सवको वहत्तर कलाए सूत्र से, अर्थ से और कर्म से सिखाई जाती थी। आजकल हाई स्कूलो और कॉलेजो मे दी जाने वाली शिक्षा मे तथा प्राचीन काल मे दी जाने वाली शिक्षा मे कितना अधिक अन्तर है? यह बात गहरे पैठकर विचार करने से अपने–आप विदित हो जायेगी। आजकल जो पुस्तके पढाई जाती हैं उनका सक्रिय शिक्षण नही दिया जाता और आधुनिक शिक्षा की दुर्दशा का यही कारण है। आज के विद्यार्थी से अमुक वस्तु कर दिखाने के लिए कहा जाता है तो तत्काल उत्तर मिलता है–'यह वस्तु कैसे वनती है यह बात हमने पुस्तक मे पढी है, बाची है, पर बनाने मे हम असमर्थ हैं। इस प्रकार की निष्क्रिय शिक्षा से उदीयमान प्रजा को कितना और क्या लाभ पहुच सकता है यह एक विचारणीय बात है।

शास्त्र मे मेघकुमार की शिक्षा के विषय मे यह बताया गया हे कि उसने पहले सूत्र–रूप मे शिक्षा ग्रहण की फिर अर्थ–रूप मे ओर फिर क्रिया–रूप मे। अन्न किस प्रकार उत्पन्न करना उसे खाने के योग्य बनाना और किस प्रकार उसे पकाना चाहिए? इस तरह सूत्रत अर्थत ओर कर्मत –तीनो प्रकार से शिक्षा का उपयोग करने से ही वह जीवन मे उपयोगी सिद्ध हो सकती हे।

पढी हुई शिक्षा यदि गुनी न जाय अर्थात ज्ञान को यदि सक्रिय न बनाया जाय तो वह शिक्षा सार्थक नही हो सकती। अतएव युवका को चाहिए कि वे केवल पुस्तक पढ लेने मात्र से अभिमान न कर वरन् सक्रिय कार्य कर। इसी मे शिक्षा की सार्थकता हे। युवक जो–कुछ पढे जो–कुछ भी कहे उरा

करके दिखावे। आज भारतवर्ष की जो हीन दशा दृष्टिगोचर हो रही है, उसका कारण यह है कि लोग थोडा–सा पढना–लिखना सीखे नही कि अभिमान मे डूब जाते है और कार्य को छोड बैठते हैं।

सुना है कि एक अमेरिकन गृहस्थ भारत मे किसी उच्च पद पर बहुत वर्षो तक कार्य करके पेन्शन पाकर अमेरिका लौट गया। एक बार उसका एक भारतीय मित्र उससे मिलने के लिए उसके घर गया। घर पहुच कर उसने अपने अमेरिकन मित्र की खोज की। खोज करने पर पता चला कि वह बाहर गया है। उसकी पत्नी ने उसे आदरपूर्वक बिठलाया और कहा– आप जरा विश्राम कीजिए वे अभी आये जाते हैं। थोडी देर बाद अमेरिकन मित्र की पत्नी ने कहा–देखिए साहब आ रहे हैं। भारतीय ने देखा–साहब चडडी पहने हाथ मे कुदाल लिये और मिट्टी से भरे शरीर से आ रहे हैं। साहब को इस रूप मे देखकर भारतीय सज्जन आश्चर्य मे पड गये और सोचने लगे–'यही साहब भारत मे कितने ऊचे पद पर प्रतिष्ठित थे और यहा इनकी यह दशा थी।' साहब आकर सीधे स्नान–गृह मे गये और नहा–धोकर तथा कपडे बदलकर बैठक मे आये। भारतीय ने उनसे पूछा–'भारत मे तो आप बडे ठाठ से रहते थे और यहा इस हालत मे क्यो रहते हैं? साहब बोले– भारत मे यह भी त्रुटि है कि वहा के लोग जरा–सी साहबी पाकर फूले नही समाते हैं ओर अपने धन्धो को तिलाजलि दे बैठते है। जब हम वहा जाते है तो भारतीयो की देखादेखी हमे भी वैसा करना पडता है परन्तु हम लोग चाहे जितने ऊचे पद पर क्यो न आसीन हो मगर अपना घरू धन्धा कभी नही छोडते। मुझे धन की

तो दुनिया मे चलता ही रहता है। आप तो भावपरिक्रम की बात कहिए। पर यह न भूल जाइए कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नहीं हो सकती। जिनका शरीर और मन दुर्बल है, वे क्या धर्म का भलीभाति आराधन कर सकते हैं? वे क्या धर्म को अपने जीवन मे स्थान दे सकते हैं? आज शरीर का परिक्रम नही किया जाता और इस कारण शरीर भी सशक्त नहीं होता। बालक के शरीर का शारीरिक परिक्रम करने से ही विकास हो सकता हे और उसका शरीर शक्तिशाली बन सकता है।

अहमदनगर मे राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे चाहे जैसा निर्बल और अशक्त पाच वर्ष का बालक सौंप दिया जाय मैं वीस वर्ष की उम्र मे उसे दूसरा राममूर्ति बना सकता हू। इस प्रकार भाव परिक्रम करने के लिए द्रव्य परिक्रम की भी आवश्यकता होती है।

यह तो हुई द्रव्य–धर्म की बात। भाव–धर्म के लिए द्रव्य–धर्म की भी आवश्यकता होती है पर केवल द्रव्य–धर्म हो और भाव–धर्म न हो तो अकेला द्रव्य–धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नही हो सकता। शास्त्र मे कहा है–

**सव्वा कला धम्मकला जिणइ।**

भाव–धर्म के बिना द्रव्य–धर्म से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। कदाचित् तुम कहोगे कि जब जीवन–व्यवहार सबधी कार्य द्रव्य–धर्म से चल सकते हैं, तो फिर भाव–धर्म की क्या आवश्यकता है? भाव–धर्म के बिना क्या हमारा काम रुक जायेगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस भाव–धर्म के लिए द्रव्य–धर्म किया जाता है उस भाव–धर्म को ही यदि भुला दिया जाय तो फिर द्रव्य–उन्नति कैसे हो सकती है? तुम जो–कुछ भी करते हो वह किसके लिये करते हो? आत्मा के लिए ही करते हो न? तब यदि आत्मा को ही न जानो तो उसकी उन्नति किस प्रकार कर सकते हो? और इस प्रकार जब तक आत्मा को न जानो, तब तक भाव–धर्म की साधना भी किस प्रकार हो सकती है?

यदि कोई कहे कि हम तो यह भी नही जानते कि आत्मा क्या चीज है? तो इसका उत्तर यह है कि तुम जिस शरीर को प्रत्यक्ष देख रहे हो उसके विषय मे यह विचार करो कि शरीर कार्य हे या कारण? शरीर कार्य है और उसका कारण पचभूत है। जैसे घडी कार्य है ओर उसके साचे उसके कारण हैं उसी प्रकार शरीर कार्य है और पचभूत उसके कारण हैं। यहा तक समझने मे तो भूल नही होती पर आगे चलने पर भूल हो जाती हे। अब आगे यह समझिये कि शरीर जब कार्य है तो इसका कर्ता कौन है? कितनेक लाग कहते

हैं कि जैसे पुर्जे तरतीबवार जमा देने से घडी चालू हो जाती है, इसी प्रकार पाच भूतो के सयोग मात्र से यह शरीर भी बोलता–चलता बन जाता है। जैसे घडी के पुर्जे बिखरने से घडी बन्द हो जाती है उसी प्रकार पाच भूतो के बिखरने से यह शरीर भी बोलता–चलता नही रहता। इसके लिए परलोक या आत्मा को मनाने की क्या आवश्यकता है?

कल–पुर्जो को यथास्थान जमा देने से घडी चालू हो जाती है, यह तो ठीक है पर प्रश्न तो यह है कि पुर्जो को जमाया किसने और बनाया किसने है? मकान तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है पर उसे बनाया किसने है? यद्यपि मकान बनाने मे ईट–चूना आदि कारणभूत हैं, पर इसलिए ईट–चूने को तो कोई मकान नही कहता है। किन्तु जब कोई कारीगर ईट–चूना आदि सामग्री से मकान बनाता है तभी वह मकान कहलाता है। यहा कर्ता कारीगर था तभी मकान बन सका है, अकेले ईट–चूना आदि कारणो से मकान नही बना है। ईट–चूनादि कारणो मे कारीगर की शक्ति का उपयोग किया गया है। उसके बाद वह ईट–चूना नहीं कहलाता, वरन् मकान कहलाने लगता है। इसी प्रकार शरीर पाच भूतो से बना हुआ है, इस कारण पचभूत को शरीर नही कहा जा सकता बल्कि पचभूत से शरीर बना है, ऐसा कहा जा सकता है। जैसे ईट–चूना से मकान बनता है पर उसका बनाने वाला कोई अवश्य होता है वैसे ही पचभूत से बने हुए शरीर को बनाने वाला कोई अवश्य होना चाहिए। मकान को राजगीर बनाता है, घडी को कोई कारीगर बनाता है, तो क्या शरीर को बनाने वाला कोई नही है? जब शरीर का कारण पचभूत है ओर शरीर कार्य है तब इसका कर्ता भी कोई होना ही चाहिए। तुम शरीर को स्वीकार करते हो उसके कारण–रूप मे पाच भूतो को मानते हो परन्तु जिसने पाच भूतो से शरीर बनाया है उसे नही मानते यह क्या उचित कहा जा सकता है? शरीर का कर्ता न मानना बस यही भयकर भूल है।

मोमबत्ती बनाई जा सकती है। पानी सूख जाने से लोग समझते हैं कि पानी का नाश हो गया है। पर वास्तव मे पानी का नाश नही होता। वह हवा के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। पानी दो प्रकार की वायु के सम्मिश्रण से बनाता है, अतएव उन दोनो हवाओ का सयोग करने से फिर पानी बन सकता है। किसी घडे को फोड दिया जाय तो उसके ठीकरे हो जाएगे। ठीकरो को पीस दिया जाय तो रेत या मिट्टी जैसा कोई पदार्थ बनेगा, पर उस द्रव्य का अत्यन्त अभाव कदापि नही हो सकता। वह द्रव्य घडे के ठीकरे आदि के रूप मे रूपान्तरित होता जायेगा, किन्तु उसका सर्वथा अभाव न होगा। इसी प्रकार जब कोई साधारण वस्तु भी नष्ट नही होती तो फिर शरीर को बनाने वाले कर्ता का नाश कैसे हो सकता है? इस प्रकार शरीर को बनाने वाला कर्ता कदापि नष्ट नही हो सकता।

कहने का आशय यह है कि शरीर है तो उसका कर्ता भी है और जो उसका कर्ता है वही आत्मा है। वह आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है। इस प्रकार आत्मा का अस्तित्त्व सिद्ध होता है। ओर आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता रहती है, उसी को मानव-धर्म कहते हैं।

मानव-धर्म को जैन बोद्ध वेदान्ती या ईसाई आदि सम्प्रदायो की दृष्टि से न बतलाते हुए मैं यह बतलाना चाहता हू कि मानव-धर्म सामान्य धर्म है। सामान्य धर्म मे किसी भी प्रकार का विरोध नही होता। जिस धर्म पर साम्प्रदायिकता का रग नही चढा है ओर जिस धर्म को सभी लोग समान भाव से स्वीकार करते है उसे सामान्य धर्म कहते हैं। सामान्य धर्म के विषय मे सब सम्प्रदाय वालो ने बहुत विचार किया है। सामान्य-धर्म मे समस्त ससार का विचार किया जा सकता है, पर उस सबका वर्णन नही किया जा सकता। अतएव 'स्थालीपुलाक न्याय' से कुछ ऐसी बाते बतलाता हू जो समस्त शास्त्रा मे मिलती हैं और सबके काम आती है।

जिस शास्त्र मे सामान्य धर्म की बाते नही, वह शास्त्र भी नही है। अधिक से अधिक उसे एक पक्षीशास्त्र कहा जा सकता हे किन्तु ऐसा शास्त्र समग्र मानव-जाति के लिए उपयोगी नही हो सकता।

सामान्य धर्म का वर्णन सबने किया हे यह बताने के लिए म पहले कुरान की साक्षी पेश करता हू। कुरान मे कहा हे –

**ला तो अजे बोखला कुल्ला।**

अर्थात् हे मुहम्मद! दुनिया को विश्वास दिला द कि अल्लाह की दुनिया को कोई सतावे नही।

देखना चाहिए कि अल्लाह की सतान कौन है? क्या हिन्दू अल्लाह की सतान नही है? यदि केवल मुसलमान ही अल्लाह की सतान हो तो अल्लाह पक्षपाती कहलाएगा। जब वह सबका मालिक कहलाता है सारा ससार उसी का है तो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब उसी की सतान है। किसी हिन्दू को कोई मुसलमान सताता है तो क्या वह हिन्दू उसे यह नही कहता कि क्या तू अपने मालिक को जानता है? तू अपने मालिक को सारे ससार का स्वामी कहता है तो क्या उसने किसी को सताने की आज्ञा दी है? इसी प्रकार यदि किसी मुसलमान को हिन्दू सतावे तो क्या वह मुसलमान उस हिन्दू से यह नही कहता कि क्या तुम्हारे परमात्मा ने किसी को सताने का हुक्म दिया है क्या? तुम्हारा परमात्मा पूरी दुनिया का मालिक नही है? इस प्रकार जब अल्लाह या परमात्मा सकल ससार का स्वामी है तो ससार मे किसका समावेश नही हो जाता?

मान लीजिए कोई वृद्ध पुरुष हाथ मे माला लेकर परमात्मा का नाम जप रहा है। इतने मे किसी ने आकर उसे गालिया देना शुरू किया। वह वृद्ध कहने लगा—देखते नही हो मैं परमात्मा के नाम की माला जप रहा हू। मेरा परमात्मा तेरा सत्यानाश कर डालेगा। तब वह दूसरा पुरुष कहने लगा—क्या परमात्मा तेरा ही है? मेरा नही है? वह मेरा भी है इसलिए तेरा नाश कर देगा।

इस प्रकार दोनो आपस मे कहने लगे कि परमात्मा तेरा नाश कर देगा। अब बतलाइए परमात्मा किसका पक्ष लेकर किसका नाश करेगा?

निर्वैर सर्वभूतेषु, य स मामेति पाण्डव। 11/55

भावार्थ—समस्त प्राणियो के प्रति निर्वैर बनो। किसी के ऊपर वैरभाव न रखो।

इस प्रकार कुरान मे जो कहा गया है वही केवल दूसरे शब्दो मे गीता मे कहा गया है।

अब मैं उस शास्त्र की बात सुनाता हू जिसके लिए मैं उत्तरदायी हू। जैन शास्त्र मे कहा है—

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ।
पिहिआसवस्स दतस्स, पावकम्म न बधई।

दश सू 4/9

अर्थात् हे शिष्य। तू सब प्राणियो को अपने समान समझ। जैसे तेरी आत्मा अविनाशी है उसी प्रकार अन्य प्राणियो की आत्मा भी अविनाशी है। अतएव सब प्राणियो को अपने समान मान। किसी के साथ वैर बाधकर पाप का भागी न बन।

उदयपुर मे एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया था कि आत्मा जब अविनाशी है, वह किसी के मारे मरता नहीं है, तो किसी को मारने से पाप कैसे लग सकता है? इस प्रश्न के उत्तर मे मैंने कहा था—आत्मा अविनाशी है इसलिए पाप लगता है और उस पाप का फल भोगना पडता है। आत्मा अगर विनाशी होता तो कोई झगडा ही न रहता। मारने वाला और मरने वाला यदि नष्ट हो जाता, तो पाप का प्रश्न ही कैसे उपस्थित होता? लोक—व्यवहार मे भी, जो मर जाता है, उसके ऊपर किसी प्रकार का दावा नहीं हो सकता।

इसी प्रकार आत्मा यदि नाशशील होता तो किसी प्रकार का झगडा ही न रहता। मरे हुए पर दावा नही होता, पर जीवित पर तो होता है न? इसी तरह मारने वाला भी नष्ट नहीं हुआ और मरने वाला भी नष्ट नहीं हुआ है अतएव किसी को मारने से पाप भी लगता है और उस पाप को धोने के लिए धर्म की भी आवश्यकता रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो सब प्राणियो को आत्म—तुल्य मानेगा वह किसी के साथ वैर नही बाधेगा और इसलिये वह पाप का भी बध नहीं करेगा। यह सामान्य मानव—धर्म है। श्री स्थानाग सूत्र मे ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म आदि दस धर्मो का वर्णन किया गया है। मैंने इन दस धर्मो पर व्याख्यान किया है जो पुस्तक रूप मे प्रकाशित भी हुआ है।* मुझे मालूम हुआ है कि यह पुस्तक लोगो को अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। इसी प्रकार मनु ने भी ग्रामधर्म आदि धर्मो का वर्णन किया है।

*देखो धर्म और धर्मनायक प्रसिद्धकर्त्ता—शान्तिलाल वनमालीराठ

यह सब सामान्य धर्म हैं। जो इस सामान्य धर्म का पालन करता है वही मानव है और इस धर्म का पालन करना ही मानव–धर्म का पालन करना कहलाता है।

महाभारत मे मनुष्य का सामान्य धर्म यह बताया गया है–

**श्रद्धा कर्म तपश्चैव, सत्यमक्रोध एव च,**
**स्वेषु दारेषु सन्तोष, शौच विद्या न सूयिता।**
**आत्मज्ञान तितिक्षा च, धर्म साधारणो नृप।**

महापुरुष किसी राजा से कहते हैं–हे राजन्! मैं मनुष्य मात्र का साधारण धर्म कहता हू। वह इस पकार है–श्रद्धा रखना सत्कर्म करना, तप करना सत्य भाषण करना क्रोध न करना अपनी पत्नी मे सन्तुष्ट रहना, पवित्र रहना विद्याध्ययन करना क्षमा रखना–किसी के साथ वैर न बाधना, यह मनुष्य मात्र का सामान्य धर्म है। जिस घर मे इस धर्म का पालन नही होता, उस घर मे हाहाकार मच जाता है।

यह हुई मानव–धर्म की व्याख्या। अब कदाचित् कोई यह कहे कि हम जन्म से ही मनुष्य हैं तो फिर हमे इस सामान्य धर्म के पालने की क्या आवश्यकता है? यह बात, तुम जिस वृक्ष की छाया मे बैठे हो उसी वृक्ष को काटने के समान है। ऐसा कहने वाले को समझना चाहिए कि उसकी खुद की रक्षा भी धर्म द्वारा ही हो रही है। मानलो कि तुम्हारी माता साधारण धर्म का पालन न करती हुई जन्मते ही तुम्हे बाहर फेक देती तो क्या तुम्हारा जीवन टिक सकता था? माता मे सामान्य धर्म था इसीलिए उसने तुम्हारा पालन–पोषण किया है और इसी कारण तुम्हारा जीवन टिक सका है। इतना होते हुए भी पूछते हो कि मानव–धर्म की क्या आवश्यकता है? जीवन मे वस्त्र और भोजन की जितनी आवश्यकता है उससे कही अधिक आवश्यकता मानव–धर्म की है।

जो–कुछ कह रहे हैं, वह तो नीति है, धर्म नहीं। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि नीति, धर्म का ही एक अग है। नीति का आधार लेकर उस पर धर्म का महल किस प्रकार खडा करना चाहिए, इस बात का विचार करो। नीति किस प्रकार धर्म का पोषण करती है, यह बताने के लिए हितोपदेश की एक कथा कहता हू, जिससे यह बात जल्दी और सरलता से समझ मे आ जाए।

**हितोपदेश की 'पक्षी की कथा'**

कबूतरो की एक टोली जगल मे विचर रही थी। इस टोली का नेता चित्रग्रीव था। वैज्ञानिक कहते हैं कि सर्वसाधारण जनता जिन्हे अपने से बडा मानती है, उनमे कोई असाधारण गुण होता है। इस कथन के अनुसार कबूतरो ने चित्रग्रीव मे नेता के योग्य गुण देखकर उसे अपना नेता बनाया था और उसकी सम्मति से सब साथ–साथ विचरते थे। विचरते–विचरते कबूतरो ने जगल मे चावल बिखरे देखे। एक पारधी ने चावल बिखेर कर उनके ऊपर जाल फेलाया था। चावलो को देखकर कुछ कबूतर कहने लगे–'चलो चावल पडे हैं, उन्हे खाए।' पर राजा चित्रग्रीव ने विचार कर कहा–

**अत्र निर्जन वने कुत्र तण्डुल कणाना सम्भव?**
**निरुप्यता तावत् भद्रमिद न पश्यामि।**

अर्थात्–इस निर्जन वन मे चावलो के दाने कहा से आये? मुझे तो इन चावलो को खाने मे कल्याण नही जान पडता। अतएव थोडी देर राह देखो। मैं जाच–पडताल कर आता हू।

राजा चित्रग्रीव ने ऐसा कहा। पर आज के युवक माने तो वे कबूतर माने। ऐसे थे वे कबूतर। राजा या नेता बना तो दिया जाता हे पर बहुत बार उसकी आज्ञा मानने मे कठिनाई प्रतीत होती हे। इस प्रकार एक हठी कबूतर को राजा चित्रग्रीव का कथन रुचिकर न हुआ। वह बोला–विपदा के वक्त बूढो की बात माननी चाहिए। भोजन के समय बूढो की बात मानने से तो हानि ही होती है। यदि हम ऐसी शका करते रहेगे तो सभी जगह ऐसी शकाए उत्पन्न होगी और फल यह होगा कि तडप–तडप कर भूखो मरना पडेगा। आखो के आगे चावल पडे ह फिर भी चावल लेगे तो 'यह होगा वह हागा'– इस तरह कार्य–कारण भाव का विचार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता हे? राजा की यह बात हमे तो जचती नही।

आज के नवयुवक यह कहने लगत हैं कि हम यदि इन बूढो के कथनानुसार चलेगे तो अणुमात्र भी सुधार न हो सकेगा। कबूतर भी यही कहने लगे। पर ऐसी परिस्थिति म नेता का क्या कर्तव्य हे यह देखिए।

चित्रग्रीव ने सोचा--'सब कबूतर एकमन हो गये हैं। मै इनके मत के विरुद्ध चलूगा तो अनैक्य आ घुसेगा। इस प्रकार विचार कर उसने कबूतरो से कहा–'यदि सभी का विचार चावल खाने का है, तो चलो। भूख तो मुझे भी लगी है। चित्रग्रीव ने यह नही कहा कि तुम लोग मेरी बात नही मानते तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मै तो तुम से अलग ही रहूगा। चित्रग्रीव को भलीभाति ज्ञान था कि यहा सकट है फिर भी उसने सोचा–सकटकाल मे मुझे सबके साथ रहना चाहिए। यही मेरा कर्तव्य है। जब सिर पर सकट आ पडेगा तब आप ही मेरी बात मानेगे।

यह विचारकर राजा भी सब कबूतरो के साथ चल दिया। कबूतरो ने चावल के दाने तो खाये पर सबके पैर जाल मे फस गये। वे उडने मे असमर्थ हो गये। अब सभी कबूतर उस जवान कबूतर को कोसने लगे कि तूने राजा की आज्ञा नही मानी और सब को जाल मे फसा दिया। राजा ने सबको सान्त्वना देते हुए कहा कि जो होनहार था सो हो गया है। अब उसे कोसना छोडकर जाल मे से छुटकारा पाने का उपाय खोजो। उपालम्भ देने से काम नही चलेगा।

आपदामापतन्तीना हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने।।

यह भोगना पड रहा है। अब आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेगे और आप जो आज्ञा देगे वही करेगे।'

सकट एक शिक्षाप्रद बोध–पाठ है। राजा ने कहा–'यदि सब एकमत हो जाओ तो हम सकट से मुक्त हो सकते हैं। एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो सकट से मुक्त नही हो सकेगे। अतएव सब हिलमिल कर एक साथ उडो और इस जाल को साथ ही साथ उठाओ, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।'

आज भारत मे फूट है। इसी फूट के कारण पारधियो की बन पडी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल मे न फसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश मे उड चले। कबूतर को उडते देख पारधी उनके पीछे–पीछे दौडा और सोचने लगा–मैं इन कबूतरो को अपने जाल मे फसाना चाहता था, पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय ये सब एकमत हो रहे हैं अतएव गिरते नहीं हैं पर जब इनमे फूट पडेगी तब सारे नीचे आ गिरेगे। यह सोचकर पारधी कबूतरो के पीछे–पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा– देखो पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस मे झगडना नही और यह न सोचना कि उडने मे सब अपने बल का उपयोग कर रहे हैं तो मैं अपने बल का उपयोग क्यो करू? यदि आपस मे लडोगे–झगडोगे या एक–दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पडेगे और काल का ग्रास बन जाएगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिलकर उडने लगे। पारधी थोडी दूर तो पीछे–पीछे दौडा पर अन्त मे वह थक गया और वापस लौट गया। पारधी को पीछा लौटा देखकर कबूतरो ने राजा से कहा–'शत्रु तो लौट रहा है, अब हमे क्या करना चाहिए? राजा ने कहा–'हम लोग एक आपत्ति से मुक्त हो गये हैं, पर अभी जाल से मुक्त होना बाकी है। जाल को तोडने की शक्ति हम लोगो मे नही है। यह शक्ति जमीन खोदने वालो मे ही होती है। अतएव हम आगे उडते चले। हम तो सिर्फ उडना जानते हैं हमे जाल काटना नही आता।'

आज स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं किन्तु जो लोग आकाश मे स्वैर–विहार करने की तरह केवल लम्बे–चौडे भाषण ही करना जानते हैं उनसे परतन्त्रता का जाल कट नहीं सकता। परतन्त्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाले किसान ही काट सकते है।

राजा ने कबूतरो से कहा–'गडकी नदी के किनारे हिरण्यक नामक मेरा एक मूषक (चूहा) मित्र रहता है। हालाकि मैं कबूतर हू और वह चूहा है

फिर भी वक्त–बेवक्त कभी एक–दूसरे को सहायता पहुचा सके, इस उद्देश्य से हमने आपस मे मित्रता की है। अतएव हम सब उसके पास चले, तो वह इस जाल के बन्धनो को काट डालेगा और हम लोगो को बन्धन–मुक्त कर देगा।

सब कबूतर उडते–उडते गडकी नदी के किनारे आ पहुचे। जाल के साथ कबूतरो को उडते आते देख हिरण्यक अकचका गया। सोचने लगा–यह कौनसी आफत आई है। लेकिन उसने अपने बिल मे सौ द्वार बना रखे थे, इसलिए कि आपत्ति आने पर किसी–न–किसी द्वार से निकल बाहर हो सके। कबूतरो को देखकर वह चट से अपने बिल मे घुस गया।

हिरण्यक के बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने कहा–'मित्र हिरण्यक! बाहर निकलो मैं तो तुम्हारा मित्र हू।' मित्र की आवाज पहचान कर हिरण्यक बाहर निकला और चित्रग्रीव से कहने लगा–'तुम इतने बुद्धिमान हो, फिर इस जाल मे कैसे फस गये। राजा ने उत्तर दिया–'यह तो समय की बलिहारी है।' राजा ने यह नही कहा कि इन कबूतरो ने मेरा कहना नही माना इस कारण जाल मे फस गये। हिरण्यक यह सुनकर चित्रग्रीव मित्र का जाल काटने के लिए उसके पास आया। पर चित्रग्रीव ने कहा– मित्र! पहले मेरे इन साथियो के बन्धन काटो।' चित्रग्रीव चाहता तो पहले अपने बन्धन कटवा सकता था। पर उसने ऐसा न करते हुए अपने साथियो के बन्धन काटने का आदेश दिया। हिरण्यक ने कहा– मित्र! मैं बहुत छोटा प्राणी हू। मै इन सबके बन्धन कैसे काट सकूगा? मेरे दात भी इतने मजबूत नही है कि सबके बन्धन काट सकू। अतएव पहले तुम्हारे बन्धन काट देता हू। इसके बाद यदि मेरे दातो मे शक्ति होगी तो दूसरो के भी काट दूगा।

हिरण्यक की यह बात चित्रग्रीव ने स्वीकार न की। नीति कहती है–

आपदर्थे धन रक्षेद् दारान् रक्षेद धनैरपि।
आत्मान सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।

भावार्थ–आपत्ति के समय धन की रक्षा करनी चाहिए और धन का [illegible] भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए परन्तु आत्म–रक्षण के समय स्त्री [illegible] भी ख्याल नही करना चाहिए। जब नीति यह कहती [illegible] पहले क्यो नही कटवा लिया? उत्तर यह [illegible] हो पर [illegible] कुछ और ही बतलाता [illegible] बल्लह [illegible] कहा–

[illegible] किन्चरमरगदाश्रिताना दु ख सोढु [illegible]।

राजा ने कहा—नीति भले ही ऐसा विधान करती हो पर मैं तो नीति से आगे बढ गया हू। नीति मस्तक की उपज है, जब कि धर्म हृदय से उद्भूत होता है। नीति अपने आश्रितो की परवाह न करके अपनी रक्षा करने का उपदेश देती है, पर धर्म बतलाता है कि स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरो को सुखी बनाओ। राजा ने कहा—मै तो धर्म का पालन करूगा। प्रिय मित्र! मैं तुम्हारे ऊपर अधिक बोझ लादना नही चाहता। तुममे जितनी शक्ति हो उसी के अनुसार मेरे इन आश्रितो के बन्धन काटो। कदाचित् तुम कहोगे कि दूसरो के लिए आप स्वय बधन मे क्यो पडे रहोगे? लेकिन मित्र! मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि—

**धनानि जीवित चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।**
**सन्निमित्ते वर त्यागो, विनाशे नियते सति।।**

धर्म का यह विधान है कि दूसरो के लिए धन और यहा तक कि जीवन का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, जब कि नीति स्वय अपना रक्षण करने के लिए कहती है।

धर्म और नीति मे यही अन्तर है। धर्म कहता है—'लीजिए नीति कहती है—'लाये जाओ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती है धर्म परमार्थ की ओर सकेत करता है। जिस प्रकार माता का धर्म बालक को चूमना पुचकारना ही नही है, किन्तु बालक का पालन—पोषण करना है, इसी प्रकार आगे बढते जाइये और इस नीति द्वारा धर्म को हृदय मे स्थान देते चले जाइए।

चित्रग्रीव ने हिरण्यक से कहा—मैं पहले अपने बन्धन न कटवा कर अपने साथियो के बन्धन कटवाने का आग्रह क्यो करता हू? इसका कारण यह है—

**जाति द्रव्यगुणानाञ्च, साम्यमेषा मया सह।**
**मत्प्रभुत्वफल ब्रूहि कदा कि तद् भविष्यति।।**

हे मित्र! जाति से मैं भी कबूतर हू ओर ये सब भी कबूतर हैं। द्रव्य से मेरे दो पख है और इन सबके भी दो—दो पख हैं। गुण के लिहाज से भी हम सब बराबर हैं। इतनी समानता होने पर भी ये मुझे राजा मानते है। अब आप ही बताइये कि इसका लाभ इन्हे कब मिलेगा?

आज सबल के दो भाग बताये जाते हैं। क्या राजा भी दो भाग लेने वाला है? ऐसा कहने वाला वास्तव मे बलवान् नही है। सच्चा बलवान वह है जो अपने सर्वस्व का समर्पण करके अपने आश्रित जनो की रक्षा करता है।

चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! जब मे राजा हू तो राजा की हैसियत से अपने आश्रितो की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है या नही? मित्रता की खातिर

तुम्हारा भी यह कर्तव्य है कि पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काटकर फिर मेरे बन्धन काटो। मित्र! पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काट कर मेरे इस भौतिक शरीर के बदले मेरे यश रूपी शरीर की रक्षा करो। यह भौतिक शरीर नाशवान् है जबकि यश शरीर अविनश्वर है। अतएव हे मित्र! मेरे भौतिक शरीर का भोग देकर भी यश–शरीर को बचाओ।

आज के वृद्ध भी स्वार्थ मे डूबे हैं। इसलिए वृद्धो का कर्तव्य भी युवको को बताना पडता है।

मित्र की यह बात सुनकर हिरण्यक को अत्यन्त आनन्द हुआ। उस हर्ष के आवेश मे उसने सब कबूतरो के बन्धन काट फेके। हिरण्यक चित्रग्रीव से कहने लगा–मित्र! तुम्हारे उन्नत और उज्ज्वल गुण तुम्हे तीन लोक का स्वामी बनाने के लिए पर्याप्त हैं। वास्तव मे त्रिलोकपति वह है जो स्वय कष्ट सहन करके दूसरो को कष्ट से बचाता है। यही मानव–धर्म है। स्वय आपत्तियो को झेल कर दूसरो को सुख–शान्ति पहुचाना ही मानव–धर्म है।

हिरण्यक ने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव के बन्धन काटे। राजा ने सब कबूतरो से कहा–जो हुआ सो हुआ **बीती ताहि विसार दे, आगे की सुधि लेहु।** अब उसे याद न करना अन्यथा परस्पर मे लडाई होगी।

हिरण्यक ने कहा–'मै आपका क्या सत्कार करू? मेरे पास इतनी भोजन सामग्री भी नही है कि आप सबको भोजन करा सकू? राजा ने उत्तर दिया-भोजन देना कोई बडा काम नही है। तुमने हमे बन्धनो से मुक्त कर दिया है तो अब खाने की क्या चिन्ता है?

इसी प्रकार आप भी दूसरो को कष्टो से मुक्त करने का प्रयत्न करो और ऐसा चिन्तन करते रहो कि मै स्वय कष्ट झेलकर भी दूसरो को सुखी करू। प्राणी मात्र को आत्मतुल्य समझू। इसके लिए परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करो

दयामय! ऐसी मति हो जाय।
औरो के सुख को सुख समझू
सुख का करू उपाय।
अपने दुख मे सहू
किसी पर दुख न देखा जाय।। दया.।

# जन–सेवा

(1)

※※※※

## प्रार्थना

**कुथु जिनराज! तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।**
**त्रिलोकीनाथ तू कहिये हमारी बाह दृढ गहिये।।कुथु.**

श्री कुथुनाथ भगवान की यह प्रार्थना है। आज मस्तिष्क मे वैसी स्वस्थता एव शान्ति नहीं है, जिसकी व्याख्यान करते समय आवश्यकता है। सभव है इस कारण बोलने मे कुछ अपूर्णता रह जाय। किन्तु परमात्मा की प्रार्थना का विषय तो ऐसा है जिसमे अपूर्णता या न्यूनता को कोई स्थान ही नही है। चाहे जैसी तबीयत हो, चाहे जितनी शक्ति या योग्यता हो पर परमात्मा की स्तुति सदा ही की जा सकती है। ज्ञानीजनो के इस कथन पर मेरा पूर्ण विश्वास है।

परमात्मा की प्रार्थना के सबध मे गट बात हुई है। हमे यह विचार करना चाहिए कि परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए।

विचार, बुद्धि और दृष्टिबिन्दु भिन्न–भिन्न होने के कारण परमात्मा की प्रार्थना की रीतिया भी भिन्न–भिन्न हो सकती हैं ओर हैं भी। पर ज्ञानीजन इस विभिन्नता मे भी एकता का दर्शन और प्ररूपणा करते हैं। भिन्न–वाक्यता मे किस प्रकार एक–वाक्यता समायी रहती है इस बात का विवेचन ज्ञानीजन ही भलीभाति कर सकते हैं फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार में भी इस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता हू।

प्रार्थना की पूर्वोक्त कडियो मे जो– कुछ कहा गया हे उससे यह विदित होता है कि कोई सिद्ध है कोई साधक हे। साधक सिद्ध वनने के लिए साधन का उपयोग करता है क्योकि साधन द्वारा ही 'सिद्ध वना जा सकता

है। सिद्धो की साधना देखकर यह समझा जा सकता है कि यदि अप्राप्त अच्छे साधन हमे मिल सके तो हम भी सिद्ध हो सकते हैं। जिन्होने 'सिद्ध' पद पा लिया है वे हमारे लिए साधन का जो आदर्श छोड गये हैं, अगर उसी आदर्श मार्ग का अनुसरण किया जाय और उलटे मार्ग का अवलम्बन न लिया जाय तो हम भी निस्सन्देह सिद्धि–लाभ कर सकते हैं।

सिद्धो ने हमारे लिए कौनसा आदर्श मार्ग बताया है? इस प्रश्न के उत्तर मे मै कहता हू–वह मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करने का मार्ग है।

परमात्मा की प्रार्थना यदि सम्यक् प्रकार से की जाये, उसमे किसी प्रकार के छल कपट का समावेश न हो तो आत्मा ससार की इस भूलभुलैया मे कदापि न भटके। लेकिन आत्मिक अशुद्धि को दूर करने जाते दूसरे प्रकार की अशुद्धि न आ जाये परमात्मा की प्रार्थना करते समय इस बात की सतत सावधानी रखनी चाहिए। क्योकि परमात्मा की प्रार्थना का उद्देश्य आत्मिक अशुद्धता को धो डालना है।

आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूलकर ससार की ऋद्धि के प्रलोभन मे पड जाता है और फिर उन प्रलोभनो के पीछे–पीछे भटकता फिरता है। वह जगत् के एक दु ख को दूर करने के प्रयास मे दूसरे अनेक नये दु खो का शिकार बन जाता है। वह इस मूल तथ्य की ओर नहीं देखता कि–'मैं जिन कष्टो को दूर करने के लिए व्यग्र हो रहा हू, उन कष्टो का उदगम स्थान क्या है? ये कष्ट क्यो और कहा से आये है? अब वे कष्ट किस प्रकार विनष्ट किये जा सकते है?

मनुष्य भूख का दु ख आने पर भोजन का सहारा लेता है। वह यह नही सोचता कि भूख का दु ख क्यो आता है? कदाचित भूख के कारण पर विचार करता भी है तो उसमे ऐसी कोई भूल कर बैठता है जिससे एक कष्ट को दूर करने के प्रयास मे दूसरे कष्टो को आमन्त्रित कर लेता है। परमात्मा की प्रार्थना नवीन कष्टो को न्योता देने के लिए नही है। आगत कष्टो के मूल कारण की खोज करके उनसे मुक्त होने के लिए और अशुद्धि का निवारण

जीवन–सिद्धान्त का सबध आत्मा से है और बुद्धिवाद का बुद्धि के साथ। आत्मा भूत, भविष्य और वर्तमान–इन तीनो कालो मे एकरस रहता है। बुद्धि नाना रूपधारिणी है। वह किसी समय कुछ और किसी समय कुछ बन जाती है। आत्मा नित्य है, बुद्धि अनित्य है। आत्मा सबका एकसा है और बुद्धि सबकी अलग–अलग प्रकार की है। धर्मी, अधर्मी ज्ञानी, अज्ञानी, वीर, कायर स्त्री, पुरुष, सभी की बुद्धि सुषुप्ति अवस्था मे कौन जाने कहा लीन हो जाती है। परन्तु आत्मा उस अवस्था मे भी सबका स्वस्थान पर ही रहता है। गाढ निद्रा की अवस्था मे बुद्धि विलीन हो जाती है। इन्द्रियो की और मन की सुषुप्ति निद्रा कहलाती है। इस सुषुप्ति मे बुद्धि भी शान्त हो जाती है। किन्तु आत्मा जब जागता है, तो वीर पुरुष जागकर जैसे अपने हथियार सभालता है, उसी प्रकार वह भी अपने सस्कारो के अनुसार बुद्धि को सभालता है। लेकिन सुषुप्ति अवस्था मे बुद्धि कहा गायब हो रहती है इसका उसे पता नही रहता। मगर आत्मा उस समय भी जाग्रत बना रहता है। ऐसी अवस्था मे जीवनवाद–आत्मा के सामने बुद्धिवाद को अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता।

आज सर्वसाधारण की बुद्धि बहिर्मुख हो गई है। बुद्धि दृश्यमान भौतिक पदार्थों को पकडने दौड रही है। मगर बुद्धि की यह दौड आत्मा की परछाई तक नहीं पा सकती। आत्मा की शोध बुद्धि के सामर्थ्य से परे है। यही नही, बल्कि बुद्धि के द्वारा आत्मा का कल्याण भी होना सम्भव नहीं है।

पाश्चात्य लोगो ने बुद्धि द्वारा बाह्य भौतिक पदार्थों का खूब विकास किया है। रेडियो की बदौलत अमेरिका मे गाया हुआ गीत भारत मे बैठे–बैठे सुन सकना क्या छोटी बात है? इस प्रकार बाह्य पदार्थों की शोध मे और उनका विकास करने मे बुद्धि का उपयोग करने के कारण बुद्धि बहिर्मुखी हो गई है। और बहिर्मुखी बुद्धि वाले आत्मा की खोज नहीं कर सकते। यही नही कुछ लोग तो बहिर्मुखी बुद्धि के प्रभाव से प्रभावित होकर यहा तक कहने का साहस करते हैं कि आत्मा कोई वस्तु है ही नही। ऐसे लोग बुद्धि के द्वारा भौतिक पदार्थों के सान्निध्य मे इतने अधिक आ गये हैं कि उनकी दृष्टि मे भौतिक पदार्थों के सिवाय और कोई वस्तु ही नही है। यह भ्रम इसी कारण उत्पन्न हुआ है कि बुद्धि बहिर्मुखी हो गई हे। यदि बुद्धि को बहिर्मुखी न बनाकर अन्तर्मुखी बनाया जाये तो वही बुद्धि आत्मोन्मुख बन सकती है। बुद्धि को अन्तर्मुखी बनाने वाले महात्मा आज भी भारतवर्ष मे मौजूद हैं। ऐसे महात्मा मौजूद न होते तो जगत् मे प्रलय न मच जाता। प्राचीन काल मे महात्माओ ने

बुद्धि को भौतिक पदार्थो से विमुख रखकर अन्तर्मुखी बनाया था। उन्होने कहा था–'इन दृश्यमान बाह्य पदार्थो मे ही विश्व की परिसमाप्ति नही हो जाती। इन भौतिक पदार्थो से परे एक वस्तु और भी विश्व मे विद्यमान है और वह आत्मा है। वह आत्मा शाश्वत है–सनातन है।' इन महात्माओ के कथन पर प्रगाढ श्रद्धा रखो बुद्धि को बहिर्मुख न बनने देकर अन्तर्मुखी बनाओ और फिर परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से प्रार्थना करो। बुद्धि अपने–आप मे निकम्मी या तुच्छ वस्तु नहीं है। बुद्धि का सहारा लिये बिना आगे प्रगति भी नही हो सकती। पर बात इतनी ही है कि बुद्धि एकान्त बहिर्मुख नही होनी चाहिए। अगर बुद्धि अन्तर्मुखी हो तो आत्मा की शीघ्र ही पहचान हो सकती है।

बुद्धि की बदौलत ही हम मनुष्य कहलाते हैं। आत्मा की दृष्टि से तो मनुष्य और पशु मे कुछ अन्तर नही है। दोनो मे बुद्धि का ही भेद है। पशु की बुद्धि का विकास नही हुआ है। वह भूतकाल और भविष्यकाल के सबध मे ठीक विचार नही कर सकता। मनुष्य की बुद्धि विकसित है। वह पूर्वापर का भलीभाति विचार कर सकता है।

मान लीजिए किसी पशु को दुर्भिक्ष के कारण घास–चारा नही मिला है। इस कारण उसने बहुत सकट उठाये है। पर अब उसे घास की गाडी मिल जाती है तो वह भूतकाल के सकटो का स्मरण करके घास को सिलसिले से सभाल कर नही खाता। वह एक ही साथ सारा घास रौद डालता है। इस कारण पशु भूतकाल के सकटो का स्मरण रखकर भविष्य मे उनसे बचने के उपाय नही सोच पाता। इसी से वह पशु कहलाता है जबकि मनुष्य भूत भविष्य और वर्तमान की परिस्थिति के सबध मे भलीभाति विचार कर सकता है। पशु और मनुष्य मे यही अन्तर है।

इतिहास के निर्माण का उद्देश्य भूतकाल से परिचय प्राप्त करना है। प्राचीन काल मे कैसे–कैसे बुद्धिमान पुरुष थे और उन्होने केसे–केसे शुभ कार्य किये थे यह बात विदित होती है। भूतकालीन वृत्तात को इतिवृत्त द्वारा [illegible] जान सकते है। भूतकाल से शिक्षा ग्रहण करके भावी जीवन

अक्सर पूछा जाता है—जीवन को सुखपूर्ण बनाने का कोई उपाय है? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि यदि जीवन को सुखमय बनाने का कोई उपाय नही होता, तो महात्मा पुरुष ऐसा करने का उपदेश ही क्यो देते? यही नही, वे सुखप्राप्ति के साधनो का निर्देश भी कर गये हैं।

ससार के सभी जीव दु खो और सकटो से बचने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। पर इस प्रयत्न मे मनुष्य को जितनी सफलता प्राप्त हो सकती है, उतनी सफलता किसी अन्य प्राणी को नहीं प्राप्त हो सकती।

जीवन को सुखी बनाने का उपाय परमात्मा की प्रार्थना है। अगर तुम सुखी बनना चाहते हो तो परमात्मा की प्रार्थना के साथ प्रीति—सबध स्थापित करो, ऐसा सबध जो रग—रग मे रम जाय, नस—नस मे व्याप जाय। ऐसा न हो कि जब तक यहा बैठे हो तब तक तो परमात्मा को याद करो और यहा से बाहर पैर धरते ही उसे भूल जाओ। अगर कोई बालक, पाठशाला मे 'पाच और पाच दस' गिनना सीखा हो, पर पाठशाला से पिड छूटते ही 'ग्यारह' गिनने लगे तो उसकी सच्ची शिक्षा नहीं कहलाती। इसी प्रकार यहा से विदा होते ही अगर मस्तक मे से परमात्मा के नाम को भी विदा करदो तो तुम्हारा उपदेश श्रवण भी वास्तविक सफल नही कहला सकता। अतएव जब यहा से बाहर चले जाओ तब भी परमात्मा को भूलो नहीं। वरन् परमात्मा की प्रार्थना द्वारा, ससार मे अवश्यभावी जन्म—जरा—मरण आदि भयो से मुक्त होकर अमर बनने का प्रयत्न करो। जीवन के इस प्रधान लक्ष्य को भूल न जाना।

कुछ लोगो को यह भ्रम है कि गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भावना अमृतमय नहीं बन सकती। अतएव वे कहते हैं—हम क्या करे, भावना को अमृतमय बनाये या ससार—व्यवहार का निर्वाह करें? वास्तव मे गृहास्थावस्था साधक दशा मे बाधक है, किन्तु जो गृहस्थ अमृतभावना का अभ्यासी बन जाता है, उसके लिए गृहस्थ अवस्था सर्वथा बाधक नहीं है। अतएव मैं सिर्फ यही कहता हू कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा भावना को अमृतमय बनाने का प्रयास करो। प्रार्थना के विषय मे तुम बहुत दिनो से सुन रहे हो। उसका कुछ असर तुम्हारे हृदय पर पडा है या नही? जब द्रव्य वस्तु—स्थूल का प्रभाव भी अवश्य पडता है तो भाव का प्रभाव पडे बिना क्या रह सकता है? अगर तुम उपदेश को अपने हृदय मे स्थान दोगे तो उसका प्रभाव तुम्हारे जीवन पर अवश्य पडेगा और उससे तुम्हारा कल्याण भी होगा।

जानते हो भावना को अमृतमय बनाने और न बनाने मे क्या अन्तर है? कोई एक काम पापी पुरुष करे और वही काम कोई धर्मनिष्ठ करे तो इन

दोनो के काम मे जो अन्तर हो, वही अन्तर भावना को अमृतमय, बनाने–न बनाने मे है।

दोनो एक ही काम करते हैं, फिर भी पापी और धर्मी के कार्य मे अन्तर होता है। इस अन्तर का कारण, धर्मी पुरुष के अन्तर मे विद्यमान अमृतमयी भावना ही है। जिनके हृदय–रूपी झरने से भक्ति और अमृत भावना का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, उनके नेत्रो की और देखो, उनका मुह देखो उन की प्रत्येक चेष्टा पर दृष्टिपात करो। फिर धर्म से दूर–दूर भागने वाले की आखे देखो मुख देखो, प्रत्येक प्रवृत्ति देखो। तुम्हे स्वय दिखाई देने लगेगा कि दोनो मे कितना–क्या भेद है?

तुम चाहो तो तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृतमयी भावना का झरना फूट सकता है। पर तुम बाह्य प्रपचो मे इतने तन्मय हो रहे हो कि वह प्रशान्त प्रवाह दूसरे मार्ग पर चला गया है और तुम यह जानते ही नहीं हो। इसलिए तुम अपनी बुद्धि को बहिर्मुखी न होने देकर अन्तर्मुखी बनाओ। बस, तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृतमयी भावना का पीयूष–प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा।

जिन ज्ञानियो ने अपनी बुद्धि अन्तर्मुखी बना ली है, उनका मुख देखो, तो जान पडेगा कि अमृतमयी भावना के प्रभाव से उनका मुख कितना प्रफुल्लित है। कितना आह्लादमय है। कैसी अनुपम शाति उनके मुख पर किलोले कर रही है। उनके नेत्र देखो तो मालूम होगा, उनमे से कैसी अद्भुत ज्योति जग रही है। कैसा उल्लास उनमे से फूट पडता है। उनकी किसी भी चेष्टा का अवलोकन करो विदित होगा कि उसमे जैसे अलौकिक सयतता अगाध गभीरता और निस्पृहता भरी हुई है।

दुनिया के लोग जिसे पर्वत के समान दु ख अनुभव करते हैं उस भयकर दु ख के माथे पर आ पडने पर भी जिस दिव्य भावना का पवित्र त्राण पाकर ज्ञानीजन प्रसन्न एव प्रमोदमय बने रहते है मानो चीटी भी शरीर पर नही रेग रही है उस भव्य भावना को खोजो। उसमे एक अद्भुत सामर्थ्य है। यह भावना एक ऐसा अनोखा यन्त्र है जिसमे घोर से घोर दु ख भी सुख का रूप धारण कर लेता है। वह वेदना की विकृति को निकाल फेकती है। इस भावना से भूषित भव्य पुरुष कैसा होता है? यह स्पष्ट करने के लिए एक [illegible] मे आई हुई कथा उपयोगी होगी। यह कथा सुनकर तुम समझ [illegible] कि [illegible] भावना वाला पुरुष किस प्रकार स्व–पर का भेद भूल [illegible] वेदना मे कितना अधिक निश्चल और प्रसन्न रह [illegible]।

## मघा का वृत्तान्त ❖

मगध देश के एक गाव मे एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र मे हुआ था, अतएव उसका नाम भी 'मघा' रखा गया। जैन साहित्य मे आये हुए उल्लेख से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के लोग उसी नक्षत्र के आधार पर नाम रखते थे, जिस नक्षत्र मे बालक का जन्म होता था। आज नाम रखने की प्रथा और ही प्रकार की चल पडी है, पर पहले ऐसी प्रथा नही थी।

मघा पूर्वजन्म के विशेष सस्कार लेकर जन्मा था। उसकी आकृति–प्रकृति को परखने वाले लोग कहा करते–बालक अत्यन्त होनहार है। भविष्य मे उसके द्वारा कोई उत्तम कार्य होगा। आकृति पूर्वजन्म के सस्कारो की भव्यता का परिचय देती है। कहावत भी है–'पूत के पाव पालने मे ही दिख जाते हैं।' तथा **'होनहार विरवान के होत चीकने पात।'** ये कहावते तो पूत के लक्षण पालने मे परख लिये जाने की बात कहती है पर वास्तव मे तो जब पुत्र माता के गर्भ मे होता है, तभी उसके लक्षण परखे जा सकते हैं।

जैसे चन्द्रमा और कमल को देखकर हृदय खिल–सा जाता है उसी प्रकार बालक मघा को देखकर सब लोगो को आनन्द होने लगा। बालक को देखकर भविष्यवेत्ता कहने लगे–जनता जिस तत्त्व से अनभिज्ञ है, यह बालक वह तत्त्व सबको समझाएगा।

मघा की बालक्रीडा, उसके सस्कारो के अनुसार समाप्त हुई। वह कुछ बडा हुआ। अब वह पहाड, चन्द्र सूर्य नदी, सरोवर वृक्ष आदि निसर्ग की रचना देखकर आनन्द अनुभव करने लगा।

ज्ञानी और अज्ञानी के बीच यह एक महान् अन्तर है कि अज्ञानी जिन पदार्थो को अपने विनोद और आमोद–प्रमोद का साधन समझता है, ज्ञानी उन्ही पदार्थो को अपनी जीवन–साधना का कल्याणकारी साधन मानते हैं। किसी झरने का झर्–झर् शब्द सुनकर साधारण आदमी उसे विनोद का कारण मानकर थोडी देर खुश हो लेता है। परन्तु ज्ञानीजन उसी ध्वनि को सुनकर गम्भीर विचार करते हैं। वे सोचते हैं–'यह झरना मेरे आने से पहले भी झर–झर् ध्वनि कर रहा था इस समय भी यही ध्वनि कर रहा है और जब मैं यहा से चल दूगा तब भी इसका यह नाद निरन्तर जारी रहेगा। यह झरना न किसी की निन्दा की परवाह करता है न प्रशसा की यह तो इसी प्रकार

---

❖ बौद्ध जातक कथा

सगीत करता हुआ सागर मे समा जाता है। एक ओर मै हू, मनुष्य–प्रकृति का राजा। जो जरा–सी प्रशसा सुनकर फूलकर कुप्पा हो जाता हू और तनिक–सी निन्दा सुनते ही ज्वालाए उगलने लगता हू। ज्ञानीजन प्रकृति के प्रगाढ परिचय से ऐसा पाठ सीखते हैं।

मघा भी प्रकृति की पाठशाला मे ऐसा पाठ पढने लगा। विशाल सरिताए देखकर वह सोचने लगता–'ये गगा यमुना आदि नदिया कह रही हैं कि हम पहाड मे से निकल कर समुद्र से मिलने जा रही हैं। मगर मार्ग मे हमे जितनी गदगी मिलती है उसे अपने मे मिलाकर अपना–सा रूप प्रदान कर देती हैं। गदगी से मिलकर हम स्वय गदी नही बनती वरन् गदगी को ही अपनी पवित्रता दान कर अपनी–सी बना लेती है। अर्थात् गदगी भी हमारे ससर्ग से पवित्र बन जाती है।'

सुना है बनारस और कोलकाता आदि शहरो की गटरे गगा नदी मे उतारी गई हैं। गगा नदी इन गटरो की गदगी को अपने पावन जल से स्वच्छ बनाकर अपने मे समाविष्ट कर लेती है। महापुरुषो का स्वभाव भी ठीक ऐसा ही होता है। गन्दा मनुष्य भी उनके ससर्ग से बदा बन जाता है। गदे के ससर्ग से वे स्वय गन्दे नही बन जाते वरन् उस गन्दे को ही अपनी पवित्रता रूपी पानी से बदा बना देते है।

मघा ने पकृति से इस प्रकार की अनेक शिक्षाए प्राप्त की। मानो प्राकृतिक रचना ही उसकी पाठशाला बन गई। आज तो शिक्षा पाने के लिए कई स्कूल कॉलेज आदि शालाए खुल गई है पर वहा जीवन–शिक्षा मिलती है या नही इस बात की जाच–पडताल करने की किसे पडी है?

प्रकृति से शिक्षा पाकर मघा ने निश्चिय किया–जैसे प्रकृति अपना कर्तव्य निरन्तर पालन करती रहती है वह कर्तव्यपालन मे एक दिन भी भूल नही करती इसी प्रकार मै भी अपने कर्तव्य का अप्रमत्त भाव से पालन करूगा।

इस प्रकार निश्चिय करता हुआ मघा बडा हो गया। वह अपने हाथ [illegible] आता और अपने पडोसियो का आगन झाड–बुहारकर साफ–सुथरा [illegible] करता। मघा यह काम किसी की जोर–जबरदस्ती से नही निभाता

मघा किसी आशा से प्रेरित होकर नही, पर निष्काम भाव से अपना और अपने पडौसी का आगन साफ करता था। मघा के इस कार्य से उसके घर वाले आगबबूला हो उठते और उसे उलाहना देते। इतना ही बस न था। कोई–कोई अनपढ घर वाला तो उसे थप्पड भी जड देता। यह सब होने पर भी मघा अपने कर्तव्य मे तन्मय रहता और प्रकृति से पाई हुई शिक्षा की परीक्षा हो रही है– यह मानकर सभी कष्टो को शान्तिपूर्वक सह लेता। प्रारम्भ मे तो वह अपना और अपने पडौसी का ही आगन साफ करता था, पर ज्यो–ज्यो उसकी शक्ति का विकास होता गया, त्यों–त्यो उसने अपना कार्यक्षेत्र भी बढा दिया।

आजकल के लोगो की शक्ति का अधिकाश भाग तो मानसिक चिन्ताओ मे नष्ट हो जाता है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है, पर लोग शक्ति को विकसित करने का मार्ग भूल गये हैं और इसी कारण वह शक्ति दब गई है। इसके अतिरिक्त, इस युग मे आराम के जितने साधन प्रस्तुत हुए हैं, उनसे उतना ही आत्मिक शक्ति का ह्रास हुआ है। मोटर, वायुयान आदि साधनो ने तुम्हारी शक्ति का अपहरण किया है। तुम रेडियो सुनना पसन्द करते हो पर उसे सुनते–सुनते अपने स्वर को भी भूल गये हो।

मघा की शक्ति ज्यो ज्यो बढती गई, त्यों–त्यो वह अधिक विस्तृत कार्य करने लगा। लोग आध्यात्मिकता के नाम पर क्रिया की अवहेलना करते हैं, परन्तु सच्चा ज्ञान वही है जिसमे सक्रियता हो। मघा का जो ज्ञान था, वह उसके अनुरूप कार्य भी करता था। मघा कहने की अपेक्षा कर दिखाने मे विश्वास करता था। गली–कूचो मे पडे हुए कचरे को वह उठाता और बाहर फेक आता था। गदी जगह को साफ कर देता था। कई बार गलियो मे रहने वाली स्त्रिया, साफ की हुई जगह मे कूडा–कचरा फेक देती थीं और मघा उसे उठाकर बाहर डाल आता था। ऐसा करते समय मघा को जरा भी क्रोध न आता था। उलटे वह समझता था कि ये स्त्रिया मेरे कार्य मे वेग ला रही हैं। स्त्रिया मघा के इस मूक और निस्वार्थ सेवाभाव को देखकर लज्जित हो जाती और दुबारा ऐसा अनुचित कार्य न करतीं। उनमे से कोई–कोई तो उसके कार्य मे हाथ बटाने लगीं।

सभव है, आजकल की स्त्रियो को मघा का यह कार्य पापजनक प्रतीत होता हो, पर इससे उनका धर्म विषयक अज्ञान ही ध्वनित होता है। कचरा बाहर न फेकना और उसमे जीवो की उत्पत्ति होने देना अहिसा धर्म

की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। अहिसा धर्म तो क्षुद्र जीवो की उत्पत्ति न होने देने की हिदायत करता है। यद्यपि ये जीव कर्मवश उत्पन्न होते हैं पर मनुष्यो मे विवेक–बुद्धि है, अत गदगी इकट्ठी करके उसमे क्षुद्र जीव उत्पन्न न होने देने का विवेक रखना चाहिए।

मघा ज्यो–ज्यो अपना कार्य–क्षेत्र बढाता गया त्यो–त्यो उसकी निन्दा का क्षेत्र भी बढता चला गया। जहा कही लोगो की टोली जमा होती, वही मघा की निन्दा होने लगती। लोग निन्दा से घबराते हैं। अगर निन्दा से घबराहट न हो तो वह पौष्टिक पदार्थ की तरह शक्ति प्रदान करती है। मघा निन्दा से जरा भी विचलित नहीं होता था। वह अपने विकास मे निन्दा को भी एक साधन ही समझता था। अपनी निन्दा सुनकर सामान्यत लोगो को एक प्रकार का आवेश आ जाता है। ज्ञानीजन इस आवेश का सदुपयोग कर लेते हैं और अज्ञानी उसका दुरुपयोग करते हैं।

लोगो मे होती हुई अपनी निन्दा सुनकर मघा सोचता–अब मेरे काम की कद्र हो रही है। ऐसा सोचकर वह नया उत्साह और नई स्फूर्ति प्राप्त करता। घबराहट उसके पास तक न फटकने पाती।

मघा की निन्दा सुनकर वहा के दो नवयुवको ने आपस मे विचार किया– क्यो मघा की निन्दा की जाती है? उसने कौनसा निन्दनीय दुष्कर्म किया है? क्या वह मदिरापान करता है? वेश्यागमन करता है? जुआ खेलता है? वह क्या चिलम या हुक्का पीता है? (वर्तमान युग की भाषा मे) क्या बीड़ी–सिगरेट पीता है? या होटलो मे जाकर चाय और सोडा–लेमन डकारता है? मघा इनमे से किसी भी व्यसन का सेवन नही करता। इसके अतिरिक्त और कोई बुराई भी उसमे नही पाई जाती। फिर लोग क्यो उसे बदनाम करते हैं? इस गाव के सभी लोग तो मघा के निदक हैं फिर किसके सामने उसके कार्य की प्रशसा की जाय? सारा गाव मघा के कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है तो देखता रहे मगर उसका कार्य वस्तुत लोकोपयोगी है और [illegible] कार्य को प्रेम अवश्य मिलना चाहिए।

लोग मिल जावे और अपने अन्त करण की भावना एव वचन को क्रिया का रूप प्रदान करे।

ससार मे ऐसे लोगो की कमी नही है, जो किसी कार्य की प्रशसा मे 'वाह! वाह' के नारे लगाते हैं और जब वही कार्य सिर पर आ पडता है तो एक ओर खिसक जाते है। इस प्रकार की दुरगी नीति से कोई भी कार्य सिद्ध नही हो पाता। अतएव हमारी प्रामाणिकता का यह तकाजा है कि हम जिस कार्य को हृदय से अच्छा समझे उस कार्य को क्रिया मे उतारने का हृदय से प्रयास करे। दूसरो को खुश करने के लिए मुह से वाह–वाह करना कार्यकर्ताओं को और अपने अन्त करण को छलने की चालाकी है। चालाकी से दुनिया खुश हो सकती है, परमात्मा नही।

दूसरे नवयुवक ने उत्तर देते हुए कहा–मघा के साथ मिलने की क्या आवश्यकता है? वह जो कार्य कर रहा है, वही कार्य हम लोगो को भी आरम्भ कर देना चाहिए।

पहला नवयुवक–तो क्या मघा अपना गुरु बनेगा?

दूसरा नवयुवक–बेशक।

पहला नवयुवक–सुनते हैं गुरुपद का अधिकारी वही हो सकता है जिसने घर–द्वार त्याग दिया हो और जो भिक्षावृत्ति करके जीवन–निर्वाह करता हो। मघा ने तो अभी घर–द्वार नहीं त्यागा है। इस अवस्था मे उसे गुरु पद पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है?

दूसरा नवयुवक–अगर हमे गृहत्याग कर निवृत्ति मार्ग पर चलना हो तो गृहत्यागी–अनगार पुरुष को ही गुरु बनाना चाहिए। जब हम प्रवृत्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, तो मघा के समान सत्य प्रवृत्ति करने वाले गुरु की ही आवश्यकता है। मघा जैसे सत्पुरुष को गुरु बनाने से ही 'प्रवृत्ति' करते हुए भी अन्तरात्मा को पवित्र मार्ग पर लगाया जा सकता है।

इस प्रकार विचार–विनिमय करके दोनो युवक मघा के पास आये। मघा उस समय सफाई के काम मे लगा था। दोनो युवको ने मघा को प्रणाम किया। विनीत भाव से मघा ने उत्तर दिया–'भाइयो आप लोगो ने मुझ मे ऐसा क्या पाया है कि आप मुझे प्रणाम करते हैं? मैं एक साधारण मनुष्य हू। मुझे तो तन ढकने को पूरे कपडे भी नसीब नहीं होते। मुझ जैसे गरीब को आप किसलिए नमस्कार करके आदर दे रहे हैं?

मघा की इतनी अधिक नम्रता देख दोनो युवक चकित रह गये और भीतर ही भीतर उसकी निरभिमानता की प्रशसा करने लगे।

गाधीजी भी थोडे और सादे वस्त्र पहनते हैं और तुम कीमती कपडे पहनते हो। फिर भी तुम उनका कितना अधिक आदर करते हो? उनका जो आदर–सत्कार तुम करते हो सो उनका महत्वकार्य देखकर ही। इससे यह प्रकट होता है कि तुम्हारा अन्तरात्मा तो स्वभावत पवित्रता चाहता है पर ऊपरी ढोग उसकी भावना को दबा देता है कुचल डालता है। वस्तुत लज्जा–निवारण के लिए वस्त्र पहने जाते हैं। पर आज यह मूल उद्देश्य भुला दिया गया है। अब वस्त्रो मे शृगार को महत्त्व दिया जाता है। वस्त्र लज्जा की रक्षा के लिए पहनने चाहिए यह उद्देश्य क्या आजकल के स्कूलो और कॉलेजो मे समझाया जाता है?

मघा ने दोनो युवको को लक्ष्य कर कहा–भाइयो जैसा मेरा काम है वैसी ही मेरी पोशाक है। कीमती कपडे पहनकर मैं अपना काम करता तो मेरा काम पार ही न पडता। कारण यह है कि कीमती कपडे आलस्य की वृद्धि करते है और आलस्य बढाने वाले बहुमूल्य पोशाक कार्यकर्ताओ को नही सोहते। इसी कारण मैने अपनी पोशाक अपने कार्य के अनुरूप ही रख छोडी है।

मघा की यह सीधी और सच्ची बात सुनकर दोनो युवक मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने प्रसन्नता के साथ मघा से कहा–'हम दोनो आपके शिष्य बनने आये हैं। हम आपकी आज्ञा के अनुसार ही बर्ताव करेगे।

मघा ने कहा–भाइयो आप मेरे शिष्य बनना चाहते हो पर मेरे पास [illegible] मैं ऐसी भी स्थिति मे नही हू कि आपको खाने के लिए रोटी का [illegible] दे सकू। मेरे घर वाले बडी मुश्किल से मुझे भोजन देते हैं। वे कहते [illegible] औरो का करता है और खाने को यहा आ धमकता है। पर मैं [illegible] कटु वाक्यो की परवाह नही करता। मैं सोचता हू–घर वाले मुझे [illegible] रोटी के साथ यह वाक्य रूपी घी भी दे रहे हैं। जब मैं अपने [illegible] करता हू तो मेरे घर वालो को खुशी होती है। वे सिर्फ दूसरो [illegible] से नाराज होते हैं। पर मुझे अपना और पराया दोनो का [illegible] पसन्द मालूम होता है। मेरे और मेरे घर वालो के विचार मे [illegible] है। तो मैने अपनी स्थिति साफ–साफ आपके सामने [illegible] मेरे शिष्य बनना पसन्द करते हैं?

यहा राजकोट मे श्रावको के कुछ घर तो ठीक हैं, परन्तु कुछ घर अत्यन्त गन्दे हैं। जब मैं श्रावको के गन्दे घर देखता हू तो सोचने लगता हू– क्या सच्चे विवेकी श्रावक का घर गन्दा हो सकता है? जो गदगी फैलाता है वह दोषी नहीं, और जो गदगी साफ करता है वह दोषी कहलाये–नीच गिना जाये। मैं पूछता हू यह कहा का अनोखा न्याय है? वास्तव मे अहिसा धर्म को ठीक तरह न समझने के कारण ही घर मे गदगी रहती है। जिनके घरो मे आटा, दाल या इसी तरह की कोई अन्य खाद्य वस्तु सडी–गली पडी रहती है, और उसमे जीव–जन्तु उत्पन्न होते रहते हैं, उन लोगो ने अहिसा धर्म के मर्म को समझा नहीं है। इस कथन मे जरा भी अत्युक्ति नही है।

जो लोग अपना ही घर साफ–सुथरा नही रख सकते, वे दूसरो के घरो की क्या खाक सफाई करेगे?

कुछ लोग कहते हैं–जैन धर्म तो निवृत्तिप्रधान धर्म है, तब ऐसी प्रवृत्ति मे किसलिए पडना चाहिए? बात सही है। जब ससार से निवृत्त हो जाओ, तब निवृत्ति–धर्म का पालन करो यह उचित ही है, पर जहा तक तुम ससार से निवृत्त नहीं हुए हो, प्रवृत्ति मे पडे हुए हो, वहा तक पराधीन रहने और परावलम्बन का पोषण करने की आज्ञा जैन धर्म नहीं देता। जैन शास्त्र यह नही बतलाता कि तुम प्रवृत्ति मे पडे रह कर भी पराधीन बनो। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिए। जैन धर्म निवृत्तिप्रधान तो है पर एकान्त निवृत्ति रूप नही है। जो प्रवृत्ति निवृत्ति मे साधक हो और बाधक न हो, उसका जैन धर्म मे एकान्त निषेध नही है। जैन धर्म अनेकान्त–पोषक धर्म है।

भगवान महावीर ने गृहस्थधर्म का जो विधान किया है उसके अनुसार आचरण करने से गृहस्थ के घर मे अशुचि या अपवित्रता को अवकाश ही नही है। पर आजकल कुछ लोग गृहस्थ होते हुए भी सूक्ष्म हिसा का गहरा विचार तो करते हैं, पर परम्परा से होने वाली स्थूल हिसा की ओर ध्यान भी नही देते। जो स्थूल हिसा परम्परा से मनुष्य–हिसा तक का रूप धारण कर लेती है, उसे जब सरकारी कानून से बाध्य होकर मानते ही हो तो क्या यह बेहतर न होगा कि उसे धर्म का कानून समझ कर मानो? स्वेच्छा से अहिसा का पालन करना क्या श्रेष्ठतर नही हे?

मघा ने युवको से कहा– अगर आप निखालिस दिल से मेरे शिष्य बनना चाहते हो तो आपको मेरी आज्ञा का अनुसरण करना होगा। आप यह स्वीकार करते हैं?

युवको ने अपनी हार्दिक स्वीकृति जताई।

# जन–सेवा

(2)

## प्रार्थना

अरहनाथ अविनाशी शिव–सुख लीधो।
विमल विज्ञान विलासी, साहब सीधो।।1।।
तू चेतन भज अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवनराया।।
तात 'सुदर्शन' देवी माता, तेहनो नंद कहाया।।
साहब.

भीतर परमात्मा की प्रार्थना पर ऐसा प्रगाढ विश्वास पैदा हो जायेगा और प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी तुच्छ प्रतीत होने लगेगे, तब हमे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि परमात्मा की प्रार्थना मे कैसी अद्‌भुत शक्ति विद्यमान है। अत परमात्मा की प्रार्थना मे दृढ विश्वास रखो। हा, एक बात स्मरण रखनी चाहिए और वह यह है कि जब किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा को पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तब वह सच्ची प्रार्थना नहीं, वरन् ऊपरी ढोग बन जाती है। इस विषय मे भक्त केशवलाल ने ठीक ही कहा है–'परमात्मा की प्रार्थना मे पन्द्रह आना मन लगा हो, और केवल एक आना मन किसी सासारिक पदार्थ की पूर्ति मे लगा हो तो वह प्रार्थना भी ढोग रूप ही है।'

कहा जा सकता है कि किसी वस्तु की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए अथवा किसी कष्ट–निवारण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना का उपाय किया जाय तो क्या बुरा है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जब किसी वस्तु की आवश्यकता खडी हो या कोई सकट सिर पर आ पडे तो इस प्रकार विचार करना चाहिए– परमात्मा की प्रार्थना न करने के कारण ही ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई है। इसीलिए मुझे परमात्मा की प्रार्थना मे अपना मन लीन रखना चाहिए।

इस प्रकार सिर पर आये हुए सकट को प्रार्थना मे प्रवृत्त होने का साधन बना लेना चाहिए। जब निष्काम भावना से तुम परमात्मा की प्रार्थना में तन्मय होना सीख लोगे, तो सकट स्वयमेव तुम से दूर भागते फिरेगे।

किसान को घास और भूसे की भी आवश्यकता पडती है पर वह घास–भूसे के ही लिए खेती नहीं करता। उसका उद्देश्य तो धान्य की प्राप्ति करना होता है। फिर भी धान्य के साथ घास–भूसा भी आनुषगिक रूप मे उसे मिल ही जाता है। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करते समय ऐसा विचार करना चाहिए कि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मैं प्रार्थना करता हू, क्योकि प्रार्थना द्वारा भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने मे ही आत्मा का कल्याण समाया हुआ है। इस प्रकार की उन्नत भावना रखने से अन्न के साथ जैसे घास–भूसा आप ही मिल जाता है उसी प्रकार सासारिक पदार्थ भी अनायास ही मिल जाते हैं। लेकिन ससार की समस्त वस्तुओ को पा लेने की अपेक्षा आत्मा का कल्याण–साधन श्रेष्ठतर है। अतएव आत्मिक निर्मलता के लक्ष्य से ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर प्रर्थना द्वारा आत्मा का हित

साधन हो सकता है तो तुच्छ चीजो को पाने के लिए उस प्रार्थना का उपयोग करना चने के बदले रत्न देने के समान मूर्खतापूर्ण है। आत्मकल्याण की अभिलाषा रखने वालो को ऐसी मूर्खता कदापि नही करनी चाहिए।

परमात्मा की पार्थना किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती है। पर प्रार्थना मे आत्मसमर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य–सा स्थापित कर लेता है। वस्तुत आत्मोत्सर्ग के बिना सच्ची पार्थना नहीं हो सकती। इसीलिए भक्त–जन कहते हैं–

**तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने, इन पर वेग रिझास्या राज।**

अर्थात परमात्मा की प्रार्थना करने मे तन, धन और प्राण भी अर्पण कर दूगा। इस परम उज्ज्वल भावना के साथ तुम भी परमात्मा की प्रार्थना करो तो निस्सन्देह तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा। परमात्मा की प्रार्थना एक ऐसी वस्तु है जो सबको, सब समय मे सुलभ है। अतएव हमे इस सुलभ वस्तु का सदुपयोग कर लेना चाहिए और अपने जीवन मे ताने–बाने की तरह बुन लेना चाहिए। ऐसा करने से जल्दी हो या देर से पर आत्मा जाग्रत अवश्य होगी।

जब कोई मनुष्य तीन या चार बजे उठने का दृढ निश्चय करके सोता है तो भले ही वह देरी से सोए फिर भी निश्चित समय पर वह जाग जाता है। यह अनुभव तुमने भी कभी किया होगा। हममे ऐसी कौनसी शक्ति है जो भर नींद मे भी नियत समय पर हमे जगा देती है। आत्मा की इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए दृढ निश्चयपूर्वक परमात्मा की इस प्रकार प्रार्थना करो –

क्रोड जतन करता नही पामे ऐवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करीने लहिए मुक्ति अमोलक धाम।।

जिस प्रान्त मे मेरा जन्म हुआ, उसमे खूब वर्षा होती है। वहा वर्षा ऋतु मे आकाश बादलो से प्राय सदैव ढका रहता है। कभी–कभी तो यह जानना भी कठिन हो जाता है कि सूर्य अस्त हो गया या नही? किन्तु पोयणा का फूल देखकर मालूम किया जा सकता था कि सूर्य अस्त हो गया है। उस प्रान्त (मालवा) मे पोयणा नामक एक प्रकार का फूल होता है। वह फूल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और अस्त होते ही मुरझा जाता है। अतएव उसके खिलने और मुरझाने से सूर्य के उदय–अस्त का अनुमान किया जाता है।

यहा विचारणीय बात तो यह है कि एक फूल को तो सूर्य के उदय और अस्त का भान हो जाता है और हम जैसे मनुष्यो को उसका पता तक नही चल पाता, यह हमारी कितनी बडी अपूर्णता है? एक साधारण फूल उदय–अस्त को जान लेता है तो क्या हम लोग न जान पाते होगे? जान तो जरूर लेते होगे, पर ससार की दूसरी अनेक झझटो मे पडे रहने के कारण वह जानी–समझी हुई बात भी भुला दी जाती है। हमारा ध्यान जब दूसरी ओर अति–अधिक व्याप्त रहता है तब अपने शरीर पर लगी हुई चोट को भी हम भूले रहते हैं। यही कारण है कि हमे ऐसे प्रश्न पूछने पडते हैं कि हमे परमात्मा की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है? वास्तव मे ऐसे प्रश्नो के उद्‌भव का कारण आत्मा मे विद्यमान शक्ति का अज्ञान है। परमात्मा की प्रतीति करने के लिए आत्मा की शक्ति को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रयत्न करने पर भी अगर परमात्मा की प्रतीति और अनुभूति न हो तो, जैसे पोयणा के फूल से सूर्य के उदय–अस्त का पता लगाया जाता है, उसी प्रकार अपनी विशिष्ट आत्म–शक्ति द्वारा परमात्मा की अनुभूति करने वाले महात्मा पुरुषो के कथनानुसार आत्म शक्ति–सम्पादन कर परमात्मा को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हे प्रतिदिन आध्यात्मिक एव व्यावहारिक बाते इसीलिए सुनाई जाती हैं कि तुम परमात्मा की अनुभूति कर सको।

कुछ लोगो की यह भ्रमपूर्ण धारणा है कि अगर वे आध्यात्मिकता मे पड जायेगे तो उनका व्यवहार उलट जायेगा। पर वास्तव मे यह मान्यता भूल–भरी है।

आध्यात्मिकता का आश्रय लेने से तुम्हारा व्यवहार कदापि नही बिगड सकता। हा, एक बात अवश्य है। आज व्यवहार के नाम पर तुम जो धमाचौकडी मचाते हो उसे फिर तुम्हारे व्यवहार मे स्थान न मिल सकेगा। रोटी पकाते समय अग्नि इतनी अधिक तेज नहीं रखी जाती कि रोटी जलकर राख हो जाय। साथ ही इतनी मद भी नहीं रखी जाती कि रोटी सिकने ही

न पाय। उस समय आग ऐसी मध्यम कोटि की रखी जाती है कि रोटी न तो जल सके न कच्ची बनी रहे। इसी प्रकार आध्यात्मिकता को जीवन मे स्थान दिया जाय तो जीवन–व्यवहार ऐसे मध्यम मार्ग पर व्यवस्थित रूप से चलता है कि न तो जीवन मे छैला की तरह उडाऊगीरी आने पाती है न कृपण के समान कृपणता को ही स्थान मिल पाता है। उस अवस्था मे जीवन मध्यम स्थिति मे रहता है। अतएव इस भ्रम को निकाल डालना चाहिए कि जीवन–व्यवहार मे आध्यात्मिकता को स्थान देने से जीवन–व्यवहार ठीक तरह नही निभता। आजकल कुछ लोग आध्यात्मिकता की ओट मे कृपण बन जाते हैं। जो लोग तुच्छ और नगण्य वस्तु के भी ममत्व का परित्याग नही कर सकते जिन्हे दिन–रात का और भक्ष्य–अभक्ष्य तक का विवेक नहीं और जो आध्यात्मिकता की ओट मे कृपणता का सेवन कर रहे है कहना चाहिए कि वे लोग आध्यात्मिकता को बदनाम कर रहे है।

आध्यात्मिकता कोई साधारण वस्तु नही है। गीता मे आध्यात्मिकता को सब विद्याओ मे प्रथम स्थान दिया गया है। जहा दूसरे के कल्याण के लिए छोटी सी वस्तु का भी त्याग नही किया जा सकता वहा भला आध्यात्मिकता कैसे टिक सकती है? जहा लोभ दशा है वहा आध्यात्मिकता को स्थान नही मिल सकता। आध्यात्मिकता का स्थान वहा है जहा पर–कल्याण के लिये प्राणो का उत्सर्ग करने मे भी आनाकानी नही होती। राजा मेघरथ ने कबूतर की रक्षा के लिये शरीर त्याग किया था। क्या उसमे आध्यात्मिकता नही थी? निस्सन्देह मेघरथ मे आध्यात्मिकता थी और इसी कारण उसने पर–कल्याण के लिये शरीर का त्याग किया था। उसे भलीभाति ज्ञान था कि परोपकार के लिये आत्म समर्पण करना ही सच्ची आध्यात्मिकता है। इससे यह स्पष्ट है कि जो आध्यात्मिक होता है वह दूसरो के हित मे अपना हित मानता है। [illegible] हित किस प्रकार समाया रहता है इस बात को समझने के लिये [illegible] बतलाया जाता है –

प्रकृति के रहस्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो उसमे से आत्मा अपूर्व शिक्षा ग्रहण कर सकता है। छोटे–से फूल की पखुडी मे कौनसा तत्त्व समाया हुआ है, उसकी किस प्रकार की रचना है और उससे हम क्या सीख सकते हैं? इस प्रकार यदि गहरा विचार किया जाय तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा।

बडे–बडे कुशल कारीगर विशाल और सुन्दर प्रासाद के निर्माण में जिस कौशल को अभिव्यक्त करते हैं, उनका वह कौशल भी फूल की पखुडी की रचना की रमणीयता के सामने पानी भरता है।

मघा प्रकृति की शिक्षा के अनुसार कार्य करने लगा। वह अडौस–पडौस वालो का आगन भी साफ कर डालता और गाव के गली–कूचे भी। गली की अनेक स्त्रिया मघा के इस कार्य की निन्दा करके ही नहीं अघाती थी, वरन् उसके काम मे बाधा पहुचाने के उद्देश्य से साफ की हुई जगह मे कूडा–कचरा बिखेर देती थी। यह सब होने पर भी मघा सदैव एक–सा प्रसन्नचित्त रहता और प्रसन्नता के साथ गदी जगह को दुबारा झाड देता था। वह सोचता–मेरी यह बहिने मुझ पर बडा एहसान कर रही हैं–मेरा उपकार कर रही हैं, जो घर के भीतर सडते हुए कचरे को बाहर फेक कर मेरे कार्य मे सहायता पहुचा रही हैं।

जब तुम्हे कोई गाली दे तो तुम्हे भी ऐसा उज्ज्वल विचार करना चाहिए कि इसके मुह मे गाली की जो गदगी भरी थी वह बाहर आ गई। यह बहुत अच्छा हुआ। इतने अश मे गाली देने वाले का मुह शुद्ध हो गया यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है।

किसान खाद के रूप मे गदगी का सदुपयोग कर लेते हैं और उससे उत्तम उपज होती है। इस प्रकार तुम भी आत्मकल्याण के रूप मे गालियो का सदुपयोग कर सकते हो।

निन्दा से घबराना मघा ने सीखा ही नही था। वह हमेशा अपने नियत कार्य मे तन्मय रहता था। मघा की यह कार्य–प्रणाली देख दोनो युवक उसके शिष्य बनने को तैयार हुए। मघा ने उनसे कह दिया– मेरे पास खाने–पीने को कुछ भी नहीं है। हा मेरे साथ काम करने मे तुम्हे लोकनिन्दा का और गालियो का प्रसाद अवश्य मिलेगा और वह प्रसाद तुम्हे समताभाव से भोगना होगा। क्या तुम मेरे शिष्य बनकर निन्दा ओर गालियो का उपहार प्रेमपूर्वक स्वीकार करने के लिए तैयार हो?

मघा का यह कथन सुन दोनो युवक आपस मे कहने लगे–'गुरु हो तो ऐसा हो जो चेला मूडने के लिये दूसरे को झूठे प्रलोभन म न डाले। इस

प्रकार विचार कर दोनो ने मघा से कहा–'आपका स्पष्ट कथन सुनकर शिष्य बनने की हमारी भावना अधिक बलवती हो गई है। कृपा कर अब हमे गुरु–मत्र सुनाइये और दीक्षा दीजिए।

मघा ने कहा–'भाइयो, मैं पढा–लिखा तो हू नही फिर तुम्हे क्या गुरु–मत्र सुनाऊ।

युवक–पढे लिखों के मत्र तो हमने बहुत बार सुने हैं। उन्हे सुनते–सुनते ऊब–से गये हैं। अब हमे आप सरीखे कर्तव्यपरायण व्यक्ति का मत्र सुनने की उत्सुकता है। अत अपने कर्तव्य का मत्र हमे सुनाइये। बताइए आपका शिष्य बन जाने पर हमे क्या कार्य करना होगा? हम आपको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि आपका कर्तव्य–मत्र ही अन्त तक हमारा जीवनमत्र होगा।'

मघा–सुनो! तुम्हे जो कुछ करना होगा वह बतलाता हू। यद्यपि मैं पढा–लिखा नही हू, मगर प्रकृति से मैने यह शिक्षा ली है कि 'जो काम अपने लिए अनुकूल हो वह दूसरो के लिए करना चाहिए और जो अपने लिए प्रतिकूल हो वह दूसरो के लिए भी नही करना चाहिए। सक्षेप मे तुम्हे यह करना होगा–

आत्मौपम्येन सर्वत्र, सम पश्यति योऽर्जुन।

गीता – 6/32

अर्थात्–जो अपने लिए प्रियकर है वह दूसरो के लिए करना चाहिए। इस उपमा प्रमाण से प्रत्येक कार्य करना चाहिए यही ज्ञानियो का कथन है।

तुम्हारे पास दो कोट हैं। उनमे से एक फालतू है। अगर तुम्हारे सामने कोई गरीब आदमी सख्त सर्दी का मारा थर–थर काप रहा हो, तो अपना फालतू कोट उसे दे देने की इच्छा तुम्हारे अन्त करण मे उत्पन्न होनी चाहिए। अगर तुम इस अवस्था मे उसे अपना कोट नहीं दे सकते, तो यह समझा जायेगा कि तुम अब तक परायी पीडा को पहचान नही पाये हो। भोजन से तुम्हारा पेट ठसाठस भर गया हो, फिर भी बची हुई रोटी किसी गरीब को दे देने की भावना तुम्हारे हृदय मे पैदा न हुई और रोटी सेक कर या सुखा रखकर दूसरे दिन खाने की तृष्णा बनी रही, तो माना जायेगा कि अभी तुम दूसरे की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझने मे समर्थ नहीं हो सके हो।

मघा ने युवको से कहा–अगर तुम मेरे शिष्य बनना चाहते हो तो तुम्हे समस्त प्राणियो को आत्मतुल्य समझना होगा। इतना ही नही तुम्हे सब प्रकार के दुर्व्यसनो से भी दूर रहना होगा, क्योकि व्यसन के नशे मे कर्तव्य–अकर्तव्य का भान नहीं रहता। अतएव सब प्रकार के मादक पदार्थों से तुम्हे बचना होगा। जो पदार्थ बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं, वे सब मादक पदार्थ हैं। कहा भी है–

**बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्य मदकारि तदुच्यते।**

जिन पदार्थों को सूघने से खाने से पीने से बुद्धि भ्रष्ट या नष्ट होती है, वे सब मादक द्रव्य हैं। मादक कहे जाने वाले पदार्थों मे ही मद हो सो बात नहीं है, हृदय की भावना मे भी मद होता है। ग्रन्थो मे रावण को हजार विद्या वाला बतलाया गया है फिर भी वह सीता को देखकर बेभान हो गया। इस प्रकार भान भूल जाना हृदय का मद है। हृदय के इस मद से बचना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है पर तुम्हे इस मद से भी हमेशा बचते रहना होगा।

आजकल के युवको मे कितने ही ऐसे निकलेगे जो परस्त्री को देखकर भान भूल जाते हैं। यही नहीं राजा और महन्त कहलवाने वाले भी बेभान हो रहे हैं। कथन का समर्थन करने के लिए उदाहरणो की कमी नही है।

मघा ने युवको को कर्तव्यबोध कराते हुए कहा–जिन पदार्थों के सेवन से कृत्याकृत्य का भान नष्ट हो जाता हो ऐसे पदार्थों का सेवन न करना यह मेरा गुरु–मत्र है। यह मत्र उगुलियो के पेरो पर गिनने या जाप करने के लिए नहीं है। इसे अच्छी तरह याद रखकर कार्यरूप म परिणत करना होगा। मैंने यह निवृत्ति का मत्र समझाया है। इसके साथ ही प्रवृति का मत्र भी तुम्हे सीखना है। वह मत्र यह है–

'तुम्हे स्वामी बनकर नही वरन् सेवक बनकर जन–समाज की सेवा करनी चाहिए। सेवा करते–करते अगर प्राणो का उत्सर्ग करना पड जाये तो उसे भी प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

मघा ने जो शिक्षा बताई है उसमे किसी भी धर्म या दर्शन का विरोध नही हो सकता। जो व्यक्ति अपना जीवन–व्यवहार इस शिक्षा के अनुसार चलाता है वह निस्सन्देह स्व–पर कल्याण कर सकता है।

मघा की इन तात्त्विक बातो को सुनकर युवक कहने लगे–'ईश्वर कहा है यह सोचते–सोचते हम थक गये पर अब जान पडता है, वह आपके भीतर विराजमान है। आपके निर्मल अन्त करण मे जिन उदार भावो का वास है उन भावो मे ईश्वर का दिव्य दर्शन हो रहा है।

तुम भ्रमण के लिये भले ही मक्का मदीना काशी या शत्रुजय जाओ पर अगर हृदय के शुद्ध भावो की ओर दृष्टि फेरोगे तो वहा जाना निरर्थक जान पडेगा। हृदय मे शुद्ध भावना को स्थान देना और सेवा को अपने जीवन का आदर्श बनाना किसी भी तीर्थ से कम पवित्र नही है। जैसे सूर्यमुखी फूल द्वारा सूर्य के उदय–अस्त का पता चल जाता है उसी प्रकार हृदय की भावनाओ से यह मालूम हो जाता है कि अपने हृदय मे ईश्वर बसता है या नही। कदाचित तुम्हे अपनी आत्मा की और परमात्मा की प्रतीति न होती हो तो विशुद्ध भावनाओ के रग मे रगे हुए शृगार से सर्वथा हीन किसी शरीर पिजर को (किसी कृशकाय महात्मा को) देखो। तुम्हे ज्ञात हो जायेगा कि विशुद्ध भावनाओ मे ही ईश्वर का निवास है।

कि मैं जैसा व्यवहार करूगा, मेरे शिष्य भी मेरा अनुकरण करके वैसा ही व्यवहार करेगे। ऐसा विचार कर वह आदर्श कार्य करता था। वह बहुत बार सोचा करता–'हे प्रभो! इन युवको के अन्त करण मे किसने प्रकाश की किरणे भरी हैं कि ये मेरे साथी बन गये हैं? दयाघन! जान पडता है, यह तुम्हारे असीम अनुग्रह का ही परिणाम है।'

कुछ दिनों बाद पहले वाले दो युवकों की तरह तीस युवक और मघा के शिष्य बन गये। अब कुल बत्तीस शिष्य और एक स्वय, इस प्रकार तेतीस जने हो गये। मघा सुबह मे तडके ही उठ बैठता। अपने शिष्यो के साथ पहले परमात्मा की प्रार्थना करता है और फिर दिन–भर के काम का बटवारा कर देता। वह किसी को कहता–तुम शराबियो से अनुनय–विनय करके, शराब पीने की हानिया समझा कर, उन्हे शराब पीने से रोकना। किसी को गाव के दीन–दु खियो और रोगियो की सार–समाल का काम सौंपता, किसी को गाव के रास्ते साफ करने का और किसी को जनता का हित करने वाली शिक्षा देने का काम सौंपता था।

मघा कौन कार्य, किस प्रकार करता था, यह सब बाते व्याख्यान मे नही कही जा सकती। वाणी मे इतना सामर्थ्य ही नही है कि उसका सहारा लेकर सब बाते भलीभाति समझाई जा सके। केवलज्ञानी अपने ज्ञान से जितना जानते हैं, उसका अनन्तवा भाग ही भाषा द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। तब सामान्य जन का कहना की क्या है? निष्काम भाव और हृदय की सच्ची लगन से किये जाने वाले कार्य का प्रभाव बिना पडे नही रहता। मघा की निष्काम भावना के कारण गाव–भर मे एक भी शराबी वेश्यागामी और चोर न रहा।

उस समय चाय–बीडी का प्रचार नही था अतएव मघा को इस सबध मे सुधार करने की आवश्यकता ही न पडी। पर आजकल चाय–बीडी का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। पहले के श्रीमान् मे और आधुनिक श्रीमान् मे बहुत अन्तर पड गया है। पहले की श्रीमन्ताई कुछ और थी और आज की श्रीमन्ताई कुछ निराले ही ढंग की है। प्राचीन काल के श्रीमान् अपने घर पर गाये–भैंसे पालते थे। वे स्वय उनका दूध–घी खाते थे और दूसरो को भी उससे लाभ पहुचता था। दूसरो को कदाचित् दूध–दही न मिलता तो भी छाछ तो चाहे जिसे मिल ही जाती थी। पर आज के श्रीमानो क घर चाय के प्याले सजे रहते हैं। इस अवस्था मे दूसरे लोग उनसे क्या लाभ उठा सकते हैं? चाय के प्याले दूसरो को लाभ नही पहुचाते सो न सही पर वे स्वय पीने वाला को

भी तो लाभ नही पहुचाते उल्टे शारीरिक हानि उत्पन्न करते हैं। इसका परिणाम होता है डाक्टर की शरण लेना। आज के श्रीमान् दूसरो की सेवा करना भूल गये हैं। वे लोग बगले मे रहने और मोटरो पर सवार होकर चलने-फिरने मे ही अपनी श्रीमन्ताई समझते हैं। गाय-भैस पालने से मच्छर बढते हैं अतएव बाजारू दूध खरीद लेने मे ही अपना बडप्पन मानते है। पर उन्हे यह नहीं सूझता कि अगर गाय-भैस पालने से ही मच्छर होते हैं तो उनके बगले मे गाय न रखने पर भी मच्छर कहा से आ पहुचते हैं? अगर तुम सच्चे श्रीमन्त हो तो अपनी श्रीमन्ताई का दूसरे की सेवा करने मे उपयोग करो। यह नही हो सकता तो तुम्हारी श्रीमन्ताई घोडे की पूछ के समान किस मतलब की है? बडे-बडे शानदार बगले बनवाने मे, दो-चार कुत्ते पालने मे, या मोटर गाडी रखने मे ओर उसे चारो और फिरा कर लोगो पर धूल उडाने मे भले ही आज तुम्हे श्रीमन्ताई दिखती हो, पर ज्ञानियो की दृष्टि मे वह सच्ची श्रीमन्ताई नही है। जो जन-समाज की अधिक से अधिक सेवा करते हैं वही सच्चे श्रीमत हैं और उनकी सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिए हितकारक है।

मघा के सतत प्रयास से उस गाव मे से मदिरा, परस्त्रीगमन और चोरी आदि के भूत भाग गये। मघा ने उस गाव के निवासियो को यह भी सिखाया-तुम इतना अधिक खर्च मत रखो जिससे तुम्हे कर्ज लेना पडे। आय के परिमाण मे व्यय करो। अनिवार्य आवश्यकता के समय कर्ज लेना पडे तो उसे नियत समय से पहले ही चुका डालो। अगर कर्ज सिर पर चढा लोगे और समय पर चुका न सकोगे तो लेनदार तुम पर दावा करेगा। इसमे तुम्हारा पतन है। इस प्रकार लोगो के घर-घर जाकर मघा ने यथासमय कर्ज चुका देने के लाभ और न चुकाने के नुकसान उन्हे समझाये। इससे वहा के लोग अपने [illegible] भर प्रथम तो ऋण लेते ही न थे कदाचित् लेना भी पडता तो नियत समय से पहले ही चुका देते थे। इससे किसी को किसी पर दावा करने का अवसर ही नही मिल पाता था। इसके अतिरिक्त लोगो मे आपस मे कभी कोई [illegible] हो जाता तो मघा या उसके शिष्य बीच-बचाव कर देते थे। [illegible] पर लोगो की आस्था बढ चली थी और लोग उसका कहना मानने [illegible]।

बहुत कष्ट देते थे पर मघा के उपदेश से स्त्रियों ने भी शान्ति का श्वास लिया। जो स्त्रिया पहले मघा के काम मे रोडा अटकाती थीं, वही अब मघा को आशिष देने लगीं और अपने किये पर पछताने लगी। वे कहती–'हम तो मघा की साफ की हुई जगह मे कचरा बिखेर देती थीं, पर वह चुपचाप उसे उठा ले जाता था। मघा ने बाहर का ही कचरा साफ नही किया है किन्तु हमारे हृदय का कचरा भी साफ कर दिया है। परमात्मा इस पुण्यजीवी मघा को चिरायु करे।'

इस प्रकार मघा के लिए लोग परमात्मा से प्रार्थना करते और प्रभात मे उनके दर्शन करने आते थे। पर मघा अपनी कीर्ति से फूल जाने वाला व्यक्ति न था। वह तो सदा की भाति अपने काम मे लीन रहता था। उसके पास इतना समय ही न था कि लोगो को दर्शन देने के लिए कहीं एक जगह बैठा रहता। लोग जब उसके दर्शन करने आते तो वह यही कहता–आप लोग अपने घर–द्वार को और हृदय को साफ–स्वच्छ रखिए यही मेरा सच्चा दर्शन है।

यह तो मुझे भी कहना पडेगा कि यहा की जनता मालवा मेवाड और मारवाड की जनता की अपेक्षा घर और अन्य वस्तुओ को अधिक साफ–सुथरा रखती है। पर साथ ही यह भी कहना होगा कि तुम घर की तरह गलियो को साफ नहीं रखते। गलियो मे बेहद गदगी रहती है। जूता पहनने के कारण सभव है तुम्हे गलियो की गदगी का पूरा खयाल न आता हो, पर हम जूते नही पहनते इस कारण हमे गदगी की अधिकता का खूब अनुभव होता है। शास्त्र मे कहा है–अशुचि मे चलने से हिसा होती है। दूसरे लोग भी अशुचि को अस्पृश्य ही मानते हैं। अगर तुम श्रावक होकर भी अपने घर का कचरा गली के नाके पर बिखेर देते हो और गदगी को बढाते हो तो कहना चाहिए कि तुमने अब तक यह नहीं समझ पाया है कि गुरु की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए।

मघा की सत्यवृत्ति से लोगो मे अपूर्व शान्ति फैल गई। इस कारण मघा सबका प्रेम पात्रबन गया। पर उस गाव मे तीन प्रकार के पुरुष ऐसे थे जिन्हे मघा अप्रिय ही नहीं, वरन् कड़ुआ जहर–सा लगता था। वे यह थे–शराब बेचने वाले वेश्याए और कचहरी के राजकर्मचारी। ये लोग मघा की सत्यवृत्ति से बहुत नाराज रहते थे। शराब की बिक्री एकदम बद हो जाने के कारण शराब बेचने वाले की आमदनी मारी गई थी। वेश्यागामिया का अभाव हो जाने से वेश्याए नाराज रहती थी और झगडा–फसाद न होन के कारण

मघा पर दात पीसते रहते थे और किसी उपाय से मघा यहा से भाग जाय तो बला टले और हमारा धधा फिर से चमक उठे, इसी उधेड–बुन मे लगे रहते थे। मघा को गाव से हटाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे।

अच्छा काम करने वाले का भी विरोध करने के लिए कोई–न–कोई खडा हो जाता है। जैसे दिन की थकावट दूर करने के लिए रात की जरूरत है उसी प्रकार सत्कार्य का विरोध करने वालो की भी आवश्यकता है। ज्ञानीजन इस प्रकार के विरोध से या निन्दा से रच मात्र भी नही घबराते, बल्कि विरोध को अपने कार्य का सहायक मानकर दुगने उत्साह से उसे सफल बनाने मे जुट पडते हैं। वे सकटो को परमात्मा की प्रार्थना करने का प्रेरक मानकर प्रसन्न होते हैं।

जो महाभाग सकट उपस्थित होने पर परमात्मा की प्रार्थना का आश्रय लेते है, उनके लिए सकट भी सहायक बन जाते हैं। तुम भी शुद्ध चित्त से परमात्मा की प्रार्थना करो तो तुम्हारा कल्याण ही कल्याण होगा।

# जन–सेवा

## (3)

✻✻✻✻

## प्रार्थना

**मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी, कुभ पिता 'परमावति' मैया**
**तिन की कुमारी, मल्लि जिन बाल–ब्रह्मचारी।।टेक।।**

श्री मल्लिनाथ भगवान् की इस प्रार्थना मे भगवान् मल्लिनाथ का चरित्र इस प्रकार बताया गया है कि साधारण से साधारण मनुष्य भी सरलतापूर्वक हृदय मे उतार कर जीवन–सुधार और आत्म–कल्याण कर सकता है।

इस प्रार्थना द्वारा मेरी भावना को इतना अधिक पोषण मिला है कि इस प्रार्थना के आधार पर ही अगर मैं अपने जीवन की अपूर्णता दूर करलू तो फिर मुझे कुछ भी करना शेष न रहे। इस प्रार्थना से मेरी भावना को किस प्रकार पोषण मिलता है, इस सबध मे मैं थोडा–सा ही कहना चाहता हू। एक सिद्ध होता है, एक साधक होता है ओर एक साधन होता है। आत्म–कल्याण करने के लिए साधक को अनेक साधनो का उपयोग करना पडता है ओर उनके द्वारा वह सिद्धि–लाभ करके सिद्ध बन जाता है। यह बात भगवान् मल्लिनाथ के चरित्र से स्पष्ट ज्ञात हो जाती है।

भगवान् मल्लिनाथ के रूप–सोन्दर्य की प्रशसा चारो ओर फेली हुई थी। बहुत–से राजाओ ने सुना था कि राजा कुभ के घर एक सुन्दरी ने जन्म लिया है। अनेक राजा इस रूप–सुन्दरी के साथ विवाह करने के लिए लालायित थे। पर उनमे से भान भूले हुए छह राजा तो यहा तक तेयार थे कि यदि राजा कुभ अपनी कन्या हमे न देगे तो हम युद्ध करने से भी न चूकगे।

अन्त मे जब छहो राजाओं ने एक साथ चढाई कर दी तो अपने पिता पर आई हुई विपदा को हटाने और राजाओ को प्रतिबोध देने के लिए भगवान

मल्लिनाथ ने जो रचना रची वह इतनी अधिक आकर्षक और विचित्र थी कि उसका सम्पूर्ण महत्त्व समझ सकना भी सभव नहीं है। भगवान् ने एक पुतली बनवाई। देखने मे वह हूबहू उन्ही जैसी थी। पर उसमे एक विशेषता थी। पुतली का मुकुट अगर उतार दिया जाता तो उसमे से भयानक दुर्गन्ध फूट पड़ती थी। उस दुर्गन्ध को सहन करना अत्यन्त कठिन था। मुकुट उतारने से पहले उसमे दुर्गन्ध का लेश भी प्रतीत नही होता था और उसका सौन्दर्य ठीक मल्लिनाथ जैसा ही दिखाई देता था।

यह रचना रचकर भगवान् मल्लिनाथ ने कहला दिया– आप एकदम निश्चिन्त रहिए। राजाओ का इलाज मुझ पर छोड दीजिए। छहो राजाओ को मुझे देखने के लिए बुलावा भेजिए।

छहो राजा अत्यन्त कौतूहल और उत्सुकता के साथ 'मल्लिकुमारी को देखने आये। दीपक को देखकर जैसे पतग मोहित हो जाता हे उसी प्रकार परन्तु पुतली देखते ही छहो राजा मुग्ध हो गये।

भगवान पुतली का भीतरी रूप बताकर उनकी मस्ती को कपूर की तरह उड़ा देना चाहते थे। अतएव उन्होने पुतली का मुकुट खोल दिया और तत्काल ही चारो ओर घोर दुर्गन्ध फैल गई। राजाओ के होशहवास गुम हो गये। दुर्गन्ध से घबरा कर और पुतली की ओर घृणा की नजर से देखते हुए वे बाहर खिसकने लगे। भगवान् ने सोचा इन्हे प्रतिबोध देने के लिए बस यही उपयुक्त अवसर है।

महा असार उदारिक देही, पुतली इम प्यारी।
सग किये पटकै भव–दु ख मे, नारि नरक–बारी।।

तुम ऊपरी रूप देखते हो तब बेभान बन जाते हो, पर जब जरा अन्दर गोता लगाते हो, तो जिस पर मुग्ध हो रहे थे उस से भी घृणा करने लगे हो।

कल शिलालेख देखते हुए यहा का अजायबघर देखा था। उसमे एक जगह मनुष्य का अस्थि–पिञ्जर रखा हुआ है। उसे देखने से मनुष्यो की हड्डियो की रचना का खयाल आ जाता है। पर क्या हाडो का पिंजरा देखकर किसी के मन मे विकार उत्पन्न होता है? किसी मे कामभावना जाग्रत होती है? पर जब वह हाडो का पिंजरा चमडी से ढका होता है तब विकार क्यों जाग उठता है?

ससार के पदार्थ अलग–अलग दृष्टियो से देखे जाने पर अलग–अलग प्रकार के दिखाई देने लगते हैं। हाड–पिंजरे को देखकर कोई अपना भोजन समझता है तो कोई उसे अपनी खोज का साधन मानता है। किसी कुत्ते के सामने अस्थि–पिञ्जर रख दिया जाय तो वह अपना भोजन समझ कर खाने लगता है। और वही अस्थि–पिञ्जर किसी डाक्टर के सामने रख दिया जाय तो वह शरीर रचना सबधी किसी खोज के लिए उसका उपयोग करता है। ज्ञानी और अज्ञानी के बीच भी इसी प्रकार का अन्तर है। अज्ञानी लोग हाड–पिजर का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते हैं और ज्ञानीजन, बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है, इस बात का विचार करके वैराग्यलाभ करते है।

छहो राजा भगवान से कहने लगे–हम लोगो ने उस पुतली को पुतली नही समझा था, हम उसे साक्षात् मल्लिकुमारी समझ रहे थे। वह सुवर्ण की पुतली थी, यह तो पीछे पता चल पाया है। आपने हमे बोध देने के लिए ऐसी रचना रची है, यह बात जानकर हमे अपने अज्ञान पर तरस आता है।

अपनी मूर्खता पर राजा लोग जी–भर पछताये। भगवान् ने आश्वासन देते हुए उनसे कहा–'घबराओ मत। अगर तुम्हारी भाति मैंने भी बाहरी रूप पर ही दृष्टि रक्खी होती और भीतर की खबर न रखी होती तो गजब हो जाता। मैंने केवल बाह्य रूप को ही न देखकर आभ्यन्तर रूप का भी ध्यान रखा है। इसी कारण मुझे आप पर मोह उत्पन्न नहीं हुआ। जो हुआ सो हुआ। अब आप लोग अपनी आत्मा को जाग्रत करके आत्मकल्याण की साधना कीजिए।

देभान न बन जाया करे पर यह देखा करे कि इसके भीतर क्या रचना भरी है? भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना करो तो तुम्हारे मिथ्या मोह का भूत भाग जायेगा और तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा।

आज प्रातःकालीन भावना भाते समय मुझे विचार आया कि हम जिनसे सहायता प्राप्त करते हैं उन्हे भूल जाना कैसी गभीर भूल है। मै अन्न के अतिरिक्त दूध आदि पदार्थ ही लेता हू। जिन पदार्थो की सहायता से यह शरीर टिक रहा है और जिनके आधार से मैं आत्मकल्याण कर सकता हू, उन प्राणियो के ऋण से मैं कब और कैसे मुक्त हो सकूगा? जैसे मुझे अन्य प्राणियो की सहायता की आवश्यकता पडती है उसी प्रकार क्या तुम्हे सहायता की आवश्यकता नही होती? आवश्यकता होने पर भी अगर तुम उनके ऋण से मुक्त होने के लिए प्रयत्न नही करते और फर्नीचर पर पॉलिस लगाने के समान ऊपरी लोकदिखाऊ काम करते हो तो क्या यह उचित है? तुम अपना बगला साफ रखना चाहते हो पर अगर तुम्हारा शरीर साफ न हुआ तो बगले की सफाई से क्या होगा? तुम अलमारी मेज आदि फर्नीचर को साफ रक्खो पर शरीर-सुधार की ओर तनिक भी ध्यान न दो तो वह सुधार है या बिगाड? इस प्रश्न पर जरा विचार करो। तुम जीवन की वास्तविक आवश्यकताओ पर तो ध्यान नही देते और बाहरी कृत्रिमताओ को बढाने मे जीवन खर्च डालते हो। जो अपनी गृहिणी को भूलकर सिनेमा की अभिनेत्री के पीछे सारी शक्ति व्यय करता है उसकी क्या दशा होती है सो जानते हो? ठीक वही दशा वास्तविकता को भूल कर कृत्रिमता के पीछे पडकर अपनी शक्ति बर्बाद कर देनेवालो की होती है। जैसे वे छह राजा पुतली के बाहरी रूप के पीछे पागल हो गये थे उसी प्रकार तुम भी ऊपर के मिथ्या आडम्बरो को बढाने मे

# मघा का वृत्तान्त

मघा की जो कथा कही जा रही है वह आज की नही लगभग दो हजार वर्ष पहले की है। यह बात जुदी है कि कथा मे आये हुए तत्त्वो का वर्णन आधुनिक आवश्यकता के अनुसार किया जाय पर वह वर्णन वस्तुत उस मूल कथा का ही होता है। इस कथा से यह मालूम हो जाता है कि प्राचीन काल मे भारतवर्ष मे कैसे–कैसे तत्त्व, किस प्रकार समझाये जाते थे। मै यह कथा वर्तमान परिस्थिति के अनुसार विस्तृत करके कह रहा हू, मगर है यह प्राचीन कथा ही। जब लोग बाह्य वस्तुओ पर अधिक मुग्ध बन जाते हैं तब महापुरुष उन बाह्य वस्तुओ के अन्तरग मे छिपे रहने वाले तत्त्वो को जगत् के समक्ष उपस्थित करते हैं। जगत् को कल्याण–पथ दिखाना कोई सहज काम नहीं है। वह साधारण मनुष्य के बूते का भी काम नही है। जिन महापुरुषो ने अहकार के ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त करली है वही जगत् को कल्याण का मार्ग बता सकते हैं और जगत् को सुधार सकते हैं।

मघा ने अहकार को जीत लिया था। वह निदा या घृणा से घबराता नहीं था। 'क्यो तुम मेरी निन्दा करते हो? ऐसा कहकर वह किसी से झगडने भी नही बैठता था। वह लोक–निन्दा को जीतने का ही सतत प्रयास करता था। जब उससे कोई कहता–'तू बहुत बुरा कार्य कर रहा है तू जनता को धोखा दे रहा है' –तो वह सोचने लगता, परमात्मा की प्रार्थना को सफल बनाने का समय नजदीक आता जाता है। सच्चा भक्त परमात्मा की प्रार्थना करता हुआ कहता है–

**मो सम कौन कुटिल खल कामी**
**तुमसे काह छिपाऊ कृपानिधि, तुम उर अन्तर्यामी।**

इस प्रकार प्रभु की प्रार्थना करने वाला भक्त यद्यपि ससार के अन्यान्य पापियो के समान बडा पापी नही होता तव भी वह अपने तिल रो पाप को ताड का रूप देकर उसे भी दूर करने की भावना रखता हे। बडे पापी मे तो इस प्रकार की प्रार्थना करने का सामर्थ्य ही नही होता। जिसमे थोडा पाप होता है वही ऐसी प्रार्थना कर सकता हे। जेसे काले कपडे पर पडा हुआ धब्बा दिखाई नही देता और सफेद कपडे पर पडा हुआ धब्बा अनायारा ही दिख जाता है, इसी प्रकार जिनका अन्त करण पाप की कालिमा रो मलीमरा होता है उन्हे अपना पाप नजर नही आता। इसके विपरीत जा अल्प पापी होता है वह अपने अल्प पाप को भी वहुत अधिक मानकर उस परमात्मा क सामने पेश करता है और उसे धो डालने का प्रयत्न करता है।

वैज्ञानिको के कथनानुसार किसी कमरे की हवा यदि खराब हो गई हो तो उसे बाहर निकाल देने से तत्काल ताजा हवा आ जाती है। उसके लिए कुछ प्रयत्न नही करना पडता। इसी प्रकार यदि हृदय की गदगी बाहर निकाल दी जाय तो अवश्य पवित्रता का प्रवेश होगा। तब पवित्रता लाने के लिए प्रयास नही करना होगा। लोगो की यह आदत–सी हो गई है कि अपने हृदय की गदगी दूर तो करते नहीं हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि मेरे दिल की गदगी को आप दूर कर दीजिए। पर जब उनसे कोई यही बात कहता है कि तुम्हारे हृदय मे गदगी है तो लाल आखे निकालने लगते हैं। यह पद्धति अच्छी नही है। इसका परित्याग करके सच्चे हृदय से परमात्मा के सामने अपने दोष उपस्थित करो और फिर हृदय–शुद्धि का प्रयास करो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा।

गधा ने अपने बत्तीस शिष्यो को अपना आचार धर्म समझा कर अपने समान बना लिया। आचार्य मानतुग ने भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा है–

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किवा,
भूत्याऽऽश्रित य इह नात्मसम करोति। –भक्तामर स्तोत्र।

जिस वृक्ष का जल सीचकर पालन–पोषण किया जाता है वह क्या फल फूल नही देता? अवश्य देता है। इसी प्रकार जो पुरुष लक्ष्मीवान् की सेवा करता है वह स्वय लक्ष्मीवान बन जाता है। सच्चा श्रीमान वही है जो अपने सेवक को श्रीमान बना देता है। भक्तजन कहते है–जब सच्चे श्रीमान् भी सेवक को अपने समान बना लेते है तो क्या परमात्मा अपने सेवक को अपने समान न बनाएगा? परमात्मा अपने सेवक को अगर सेवक सच्चा हो तो अवश्य अपने समान बना लेता है।

इसी प्रकार ज्ञानी और विवेकशील लोग सकट के समय जरा भी विचलित या भयभीत नहीं होते। सकटो को अपनी जीवन–साधना की कसौटी समझकर, परीक्षा मानकर सकटो का स्वागत करते हैं और उनके आने पर प्रसन्न होते हैं। वे समझते हैं, यदि इस सकट की परीक्षा मे हम उत्तीर्ण हो गये तो हमे परमात्मा की भक्ति का प्रमाणप्रत्र प्राप्त हो सकेगा।

मघा की सत्यप्रवृत्ति से ग्रामीण जनता को अत्यन्त लाभ पहुचता था। न तो उससे राजा को ही कोई हानि हुई थी और न प्रजा को ही। मघा के शुभ प्रयत्न से लोगो ने वेश्यागमन, मदिरापान, चोरी आदि पाप प्रवृत्तियो का परित्याग कर दिया था। उस समय होटल नहीं थे अतएव होटलो के सबध मे उसे कुछ कहना ही न था। हा, मघा जैसा कोई सुधारक आज हो तो वह होटल का व्यसन जरूर छुडा देता। आज होटलों के कारण कैसी–कैसी पाप–प्रवृत्तिया बढ गई हैं और लोग इन पाप–प्रवृत्तियो में पडकर किस प्रकार पतन की ओर प्रयाण कर रहे हैं, यह सबके सामने है। जिस जाति मे या जिस घर मे मास–मदिरा का सेवन तो दूर रहा उनका नाम तक लेना पाप माना जाता है, उन्हीं लोगो की सन्तान होटलो मे जाना सीख लेती है और धीरे–धीरे मास–मदिरा के खान–पान की पापमय प्रवृत्ति मे पड जाती है, ऐसा सुना जाता है। जो लोग मास का स्वाद चखने के लिए अथवा दूसरो का मास खाकर हृष्ट–पुष्ट बनने की आशा से मास का सेवन करते हैं उन्हे यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मास के सेवन से मनोवृत्ति तामसिक बन जाती है और अन्त मे अपने ही हाथो अनेक अनर्थ भुगतने पडते हैं। इसके अतिरिक्त मास–भोजी को यह भी समझ रखना चाहिए कि जैसे हम दूसरो का मास उपयोग मे ला रहे हैं उसी प्रकार कहीं दूसरे हमारे मास का भी उपयोग न करने लगे।

मदिरा–पान करने वालो को अपने शरीर की दुर्दशा का भी भान नहीं रहता। वे तो केवल यही समझते हैं कि जब हमारे पास पैसा है तो क्यो न हम मौज–शौक मे उसका उपयोग करें? अगर पैसा मौज–शौक मे काम न आया तो जिन्दगी का मजा ही क्या? इस प्रकार की दुर्भावना के शिकार हुए लोग मदिरा जैसे मादक पदार्थों के लिए अपने पैसो का और अपने बहुमूल्य जीवन का भी सर्वनाश कर डालते हैं। कहते हैं–अगर छत्रपति शिवाजी का पुत्र शभाजी सुरा और सुन्दरी के फन्दे मे न पडा होता तो वह 'बाप से बेटा सवाया'– इस लोकोक्ति को सार्थक करने मे समर्थ होता। पर वह सुरा और सुन्दरी के मोह मे अन्धा हो गया और अन्त मे उसकी बडी बुरी दशा हुई।

मघा के शुभ प्रयत्न से सबको शान्ति मिली, पर मदिरा बेचने वालो, वेश्याओ और राज–कर्मचारियो के लिए वह अशान्तिकर्ता हो गया। मघा इन सबकी आखो मे काटे के समान चुभने लगा। उन्होने मघा को ही अपने रोजगार के मटियामेट होने का कारण समझा। लोगो पर उसका बहुत अधिक प्रभाव है और उसके कहने से ही लोग हमारे पास फटकते तक नही है यह सोचकर उन्हे मघा बुरी तरह खटकने लगा। उन्होने सोचा–किसी भी उपाय से मघा को हटाना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होने एक मडल बनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे। अन्त मे राजा की शरण लेना निश्चित हुआ। पर उसका और उसके शिष्यो का कोई अपराध भी तो होना चाहिए? राजा से निर्वासन के लिए कहा जायेगा तब वे कहेगे–'मघा साधु पुरुष है उसे गाव बाहर क्यो निकाला जाय? तब राजा के सामने यह कहना ठीक होगा–मघा और उसके सब चेले उचक्के और लुटेरे हैं और उनके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है। उनके त्रास के आगे राजसत्ता भी झख मारती है। यह सुनकर राजा, मघा के ऊपर कुपित होगे और हमारी योजना सफल हो जायेगी क्योकि राजा हमारे ऊपर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार निश्चय करके राजकर्मचारियो ने अपना सगठन और सुदृढ करने का निश्चय किया। सगठन–शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य मे रोडा अटकाने के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है क्योकि शक्ति वह दुधारी तलवार है जिससे रक्षण और भक्षण दोनो काम किये जा सकते है। राजकर्मचारियो के स्थापित किए हुए मडल मे पाप प्रवृत्तियो द्वारा धन उपार्जन करने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सबने मिलकर मघा और उसके शिष्यो के विरुद्ध एक आवेदन–पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये।

मघा और उसके साथियो के विरुद्ध जो आवेदन–पत्र राजकर्मचारियों ने तैयार किया था, वह राजा के समक्ष पेश किया गया। इसके अतिरिक्त झूठी–सच्ची अनेक बाते, जो उनके मन मे आई, राजा को कह सुनाई।

आजकल भी राजकर्मचारी राजा को वास्तविक बात न कह कर 'मन–गमती' बाते बनाकर राजा के कान भर देते हैं। लोग बाहर की चोरी को बुरा कहते हैं पर आखो मे धूल झोक कर की जाने वाली इस प्रकार की सफेद चोरी की ओर नजर भी नहीं फेरते। चोर को चोरी करते देखकर वैराग्य–लाभ करने वाले समुद्रपाल जैसे विचारक तो विरले ही होते हैं।

मगध नरेश मदिरा के नशे मे चूर तो थे ही न कुछ सोचा न विचारा और राजकर्मचारियो की बातो पर सहसा विश्वास करके तत्काल हुक्म सुना दिया। उन्हे जाच–पडताल करने की आवश्यकता प्रतीत ही नही हुई। राजा ने कहा–'सेना की एक टुकडी ले आओ और राज–विद्रोहियो को पकड मगवाओ।' राजा का यह नादिरशाही हुक्म सुनकर राजकर्मचारियो के हर्ष का पार न रहा और सभी 'मेरी युक्ति काम कर गई' इत्यादि कहते हुए अपनी–अपनी बडाई करने लगे।

प्रसन्नता मे पगे, बेभान हुए और अपने आप मिया मिटठू बनते हुए राजकर्मचारी सेना की टुकडी के साथ अपने गाव लौटे।

रास्ते मे कर्मचारियो ने सेना–नायक को सूचित कर दिया था कि–'देखिए, दूसरे किसी भी आदमी की न तो आप बात सुने और न किसी से कुछ पूछने के लिए रुके। अगर आप ऐसा न करेगे तो बदमाशो को पकडना असभव हो जायेगा। हम जिसकी ओर सकेत करे बस उसी को गिरफ्तार कर लीजिए। अगर हम प्रगट रूप से उन बदमाशो के नाम आपको बताएगे तो हमारी जान की खैर नही। ये बदमाश बहुत चालाक हैं। इन्होने गाव वालो को भी विद्रोही बना दिया है। राज–मर्यादा की उन्हे रचमात्र परवाह नही है। अतएव किसी के कहने पर कान न देकर जिसकी ओर इशारा किया जाय उसी को आप गिरफ्तार करते जाइये। इस प्रकार सैनिको को पहले से ही बहका दिया गया। यो सैनिक स्वय कितने उद्धत होते हैं यह किसी से छिपा हुआ नही है।

सैनिक कहने लगे–हमे महाराज ने आपके आदेश का पालन करन की आज्ञा दी है। अतएव जो आपकी आज्ञा होगी वह हमे स्वीकार है। हम दूसरो की न सुनेगे और न मानेगे। जिस किसी को भी गिरफ्तार करने की आपकी आज्ञा होगी उसे फोरन बिना विलम्ब गिरफ्तार किया जायगा। राजकर्मचारियो ने सन्तोष की सास ली।

इस प्रकार पूरी तैयारी करके सेना के साथ राजकर्मचारी गाव मे दाखिल हुए। गाव के लोगो का पता चला कि महाराज, मघा और उनके शिष्यो पर खफा हो गये हैं और उन सबको पकडने के लिए सशस्त्र सेना आई है। कच्चे दिल का कोई आदमी सशस्त्र सेना के आगमन की बात सुनते ही घबरा उठता है पर मघा कच्चे दिल का आदमी नहीं था। वह जो सत्कार्य कर रहा था उसमे उसका अटूट विश्वास था। वह किसी के डिगाये डिगने वाला नही था। जब उसने अपने पकडने के लिए सशस्त्र सेना के आने का समाचार सुना तो वह सोचने लगा–'मेरी परीक्षा का समय आ पहुचा है। उसने अपने साथियो को बुलाकर कहा–आज हम सबकी परीक्षा का समय आ गया है। अब छोटे–छोटे काम छोडो। अब हमे एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। छोटे–छोटे कार्य करते बहुत दिन बीत गये हैं। अब एक बडे कार्य मे हाथ डालना होगा।

इस प्रकार अपने साथियो को सावधान करके मघा राज–कचहरी के आगे जा बैठा। उसने अपने शिष्यो से फिर कहा– हम लोगो को पकडने के लिए हथियारो से लेस सेना आ रही है। अब तुम क्या करोगे?

शिष्यो ने कहा– आप गुरु हैं। हम आपके शिष्य है। जहा गुरु–शिष्य का पवित्र नाता होता है वहा तर्क–वितर्क को स्थान ही नही रहता। तर्क–वितर्क करना पंडितो का काम है हमारा नही। आपने हमारी सम्पूर्ण शिक्षा दी है। अतएव आप जो–कुछ करने को कहे वही हम करने को तैयार है।

मौनान्मूक प्रवचन पटुश्चाटुको जल्पको वा
धृष्ट पार्श्वे वसति च यदा दूरतश्चापगल्म
क्षान्त्या मीरु यदि न सहते प्रायशोनाभि जात
सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य । 58

सेवाधर्म इतना कठोर है कि योगियो के लिए भी वह अगम्य है। वास्तव मे सेवाधर्म की साधना के लिए वीरता की आवश्यकता होती है। बातों से यह साधना साध्य नहीं है।

मघा के बत्तीसो शिष्य सच्चे सेवक थे और मघा ने उन्हे सेवा की शिक्षा देकर अपने समान ही सेवक बना लिया था।

मघा अपने शिष्यो के साथ न्यायालय के सामने बैठा ही था कि सेना आ पहुची। राजकर्मचारियो ने सेनानायक से कहा–'देखिये, सब बदमाश इकट्ठे होकर वहा बैठे हुए हैं। ये इतने लापरवाह हैं कि सेना से भी नही डरते। वे बहुत बहादुर और निडर हैं, अतएव उन्हे पकडते समय सावधानी रखने की आवश्यकता है।'

सेनानायक ने कहा–'यह बहुत अच्छा हुआ, जो उन्हें खोजने के लिए हमे भटकना नही पडा।'

राजकर्मचारी बोले–'हमे भय है ये लोग कही आपके ऊपर हमला न कर बैठे।'

सेनानायक ने उत्तर दिया–'हम लोग इतने कायर नहीं कि उनके हमले से भाग खडे हो। हम लोग शूरवीर हैं। इसके अतिरिक्त महाराज ने हमे अधिकार दे रक्खा है कि हमला होने की हालत मे हम गोली चला सकते हैं।'

एक ओर जहा ऐसी शूरवीरता बघारी जा रही थी वहा दूसरी ओर मघा अपने शिष्यो को समझा रहा था–'तुम्हे पूर्ण शान्ति रखनी चाहिए। जरा भी शान्ति भग न होने देना और जैसा मैं कहू, वैसा ही करना।

सैनिक मघा और उसके साथियो के सन्निकट आ पहुचे। उन्हे देखते ही सैनिक आपस मे कहने लगे–'ये तो विद्राही से नही जचते। इनकी मुख–मुद्रा पर विद्रोह की रेखा तक दिखाई नहीं देती। जो कुछ हो हमे आज्ञापालन करना है। इनके विद्रोही होने–न–होने का उत्तरदायित्व हम पर नही है। यह उत्तरदायित्व तो इन राजकर्मचारियो पर है।

सेनानायक ने मघा और उसके शिष्यो से कहा–'तुम लोगो ने गाव मे बडा जुल्म ढाया है। अब विलम्ब किये विना फौरन ही हथकडी–बेडी पहनलो और हमारे साथ चलो। महाराज ने तुम्हें गिरफ्तार कर लाने का आदेश दिया है।

सेनानायक की बात सुनते ही मघा और उसके साथियो ने अपने–अपने हाथ लम्बे कर दिये। सैनिको ने उन्हे हथकडी पहना दी। इसके बाद बेडी पहनने का कहा गया तो सब ने पैर लम्बे कर दिये। उनके पैर बेडियो से जकड दिये गये। हथकडिया और बेडिया पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो बडा जग जीत लिया हो। इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी अत्याचार या अन्याय करके हथकडी–बेडी पहनना बुरी बात है पर चोरी अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य मे हथकडी–बेडी पहननी पडे तो सच्चे सेवक को इन्हे 'सेवा के आभूषण' समझ कर प्रसन्न होना चाहिए। हथकडी–बेडी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

सैनिको ने जब मघा और उसके शिष्यो को गिरफ्तार करके हथकडी–बेडी पहनाई तब तक गाव–भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर एक इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले सेना कदाचित् हमे मारने दौडेगी तो भी कितनो को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये। उसने भडकी हुई भीड से कहा– अगर आप लोग हमारा हित चाहते है तो जरा भी अशान्ति न होने दे। हम आपसे यही सहायता चाहते है कि आप सब लोग एकदम शान्त रहे। अगर आपने शान्ति–भग की तो इतने दिनो के किये पर पानी फिर जायेगा और हमारे साथ आपका भी अहित होगा। अतएव सबकी भलाई के खातिर आप सब लोग पूर्ण रूप से शान्त रहे।

सैनिक यह अद्भुत और अपूर्व दृश्य देखकर आश्चर्य मे पड गये। यह सब है क्या मामला? सो उनकी समझ मे कुछ न आया। इतना अधिक [illegible] गुणो को विद्रोही कैसे करार दिया गया है? [illegible] उन्होने सोचा–हमारा [illegible] आज्ञापालन है।

जब सैनिक मघा के दल को लेकर रवाना हुए तो गाव वालो मे से कितनेक रोने लगे, कितने चीख मारने लगे और कुछ समझदार लोग दूसरो को समझाने लगे—'हमे घबडाना नहीं चाहिए। आज रात्रि का अन्धकार है तो कल सत्यरूपी सूर्य का आलोक होगा और आपत्तिरूपी अन्धकार हट जायेगा। सत्य—सूर्य का उदय होने पर सबका कल्याण होगा। अतएव हमे रोना—चीखना नही चाहिए। धीरज रखना उचित है। अगर हम मघा का सचमुच सम्मान करते हैं तो हमे मघा ने जिस मार्ग का प्रदर्शन किया है उसी मार्ग पर और अधिक दृढता से अग्रसर होना चाहिए।'

मघा दल को लेकर सैनिक राजगृह आ पहुचे। कर्मचारी पहले ही राजा के पास जा पहुचे थे। उन्हे भय था, कहीं कोई राजा के कान न भर दे। अतएव राजा के पास आकर वे बोले—'महाराज! आपकी विजय हुई है। विद्रोही सब पकडे गये हैं। भला, आपके प्रबल प्रताप के सामने उनकी क्या चल सकती है? आपकी सेना भी बहुत योग्य है। उसकी बदौलत वे लोग इतनी जल्दी पकड मे आ सके है। यो उन्हे काबू मे लाना कोई सरल काम न था।'

सघ—बल का इस प्रकार दुरुपयोग भी किया जाता है। पर सघ—बल को ऐसे कुत्सित कार्य मे बर्बाद न कर किसी सत्कार्य मे लगाना चाहिए। किसी कुत्सित कार्य मे फिर भले ही उस ओर कितना ही आकर्षण या बहुमत हो, सम्मिलित नहीं होना चाहिए। याद रखना—

**सत्यमेव जयते नानृतम्।**

अन्तिम विजय सत्य की ही होती है, असत्य की नही। सत्य की विजय किस प्रकार होती है यह मघा के सत्यमय जीवन से स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा। मघा और उसके साथी मिलकर तेतीस ही थे। पर वे तेतीस तेतीस करोड के बराबर थे, यह कहना क्या अनुचित है? तेतीस की सख्या का बहुत महत्व है। शास्त्र मे इन्द्र के गुरु—स्थानीय देवता तेतीस कहे गये हैं। लोकोक्ति के अनुसार देवता भी तेतीस करोड माने जाते हैं। किस प्रकार इन तेतीस पुरुषो को विजयप्राप्ति होती है, यह फिर देखेगे।

हे प्रभो! मैं अनादिकाल का अपराधी हू। मैंने बहुत–बहुत पाप किये हैं, इत्यादि। इस प्रकार मैं परमात्मा के प्रति विनयपूर्वक प्रार्थना करता हू।

मेरी ऐसी प्रार्थना सुनकर कदाचित् तुम कहोगे कि अनेक पाप करने वाला तो कोई हत्यारा या चोर ही हो सकता है, साधु या श्रावक ऐसा अपराधी नही हो सकता और जब ऐसा अपराधी नहीं हो सकता, तो परमात्मा से यह कहना कि 'मैंने अनेक पाप किये हैं, मैं घोर अपराधी हू'– कहा तक उचित है? पर मैं कैसा और कितना अपराधी हू, इस बात पर मैं शास्त्र की दृष्टि से विचार कर सकता हू। अपने सबध मे जैसा निश्चयात्मक विचार किया जा सकता है, वैसा दूसरो के सबध मे नहीं किया जा सकता। शास्त्र कहते हैं–बाहर के पापो को समझना सहज है, पर पाप के सूक्ष्म मार्ग को शोध निकालना बहुत कठिन है। बाहर से हिसा आदि पाप न करना और इसी कारण अपने को विशुद्ध निरपराध मान बैठना भूल है। क्योकि–

**अह पचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्भई।**
**थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सेण य।।** उत्त॰ 11/3

श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे बताया गया है कि गर्व, क्रोध, प्रमाद रोग और आलस्य– इन पाच कारणो से परमात्मा की भक्ति और प्रार्थना की शिक्षा नही मिल पाती। इन पाच कारणो को दूर कर परमात्मा की शिक्षा के पात्र बनो। जैसे सिहनी का दूध सोने के पात्र मे ही टिकता है, अन्य पात्र मे नहीं उसी प्रकार परमात्मा की शिक्षा भी योग्य पात्र मे ही टिक सकती है। वह अयोग्य पात्र या अपात्र मे नहीं ठहर सकती। अतएव परमात्मा की शिक्षा के सुपात्र बनने के लिए क्रोध, प्रमाद आदि दोषों का त्याग कर आत्मा को जाग्रत बनाना चाहिए। परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए मैंने तो घरबार छोडकर दीक्षा धारण की है, इसलिए मुझे पहले शिक्षा का पात्र बनना चाहिए। परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए पहले यह देखना चाहिए कि आत्मा क्रोध आदि दोषो से मुक्त हुआ है या नही?

तुमने व्यावहारिक शिक्षा ली है, इसलिए तुम थोडे मे ही समझ सकोगे। मैं तुमसे यही कहना चाहता हू कि तुम अपनी शिक्षा का दुरुपयोग न करो। उसे उलटे मार्ग पर न ले जाओ। आत्म–कल्याण के लिए उसका उपयोग करो।

परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए और परमात्मा की प्रार्थना की योग्यता प्राप्त करने के लिए यह देखना सर्वप्रथम आवश्यक है कि अन्त करण मे क्रोध अभिमान आदि पाप कितनी मात्रा मे मौजूद हैं?

आत्मा भले ही ऊपर से हिंसा न करता हो किन्तु अगर उसे यह अभिमान है कि 'मैं हिंसा करता ही नहीं हू तो यह अभिमान हिंसा है। इसी प्रकार ऊपर से झूठ न बोलने वाले का झूठ न बोलने का अभिमान भी झूठ है और वह भी हिंसा है। किसी सद्गुणी के सद्गुण को देखकर प्रमोद पाने के बदले उस पर द्वेष भाव होना और उसे किसी प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करना भी हिंसा है। ये सब आत्मा के अपराध हैं। सूत्र मे आठ प्रकार के मदो का वर्णन किया है—जातिमद कुलमद, बलमद, रूपमद लाभमद, तपमद, सूत्रमद और सत्तामद। इन आठो प्रकार के मदो से पाप की प्रवृत्ति होती है। अतएव परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए और प्रार्थना का सामर्थ्य-लाभ करने के लिए इन आठो मे से कोई भी मद नही होना चाहिए।

इस दृष्टि से जब मै अपनी आत्मा के अपराधो की खोज करता हू तो जान पडता है कि अभी मुझ मे बहुतेरी त्रुटिया मौजूद हैं। इसलिए अगर मैं परमात्मा के प्रति—

'हु अपराधी अनादिनो जनम—जनम गुना किया भरपूर के।

इस प्रकार प्रार्थना करता हू—आत्म—निवेदन के रूप मे अपना दैन्य परमात्मा के समक्ष प्रस्तुत करता हू तो मैं क्या बुरा करता हू? बडे—बडे विद्वानो ने बहुत—कुछ विचार करके भी यही बात कही है—

हू सरूप निज छोडी रम्यो पर—पुद्गले
झील्यो उलट आणी विषय—तृष्णा जले।
आश्रव बध विभाव करू रुचि आपणी
भूल्यो मिथ्या वास दोष द्यू परभणी।
अवगुण ढाकण आज करू जिनमत—क्रिया
न तजु अवगुणनी चाल अनादि ते जे प्रिया।

—श्री देवचन्द चौबीसी

पावन क्रियाए, दुर्गुणो को छिपाने के लिए नहीं, वरन् उनका समूल विनाश करने के लिए कर। इसी मे तेरी भलाई है।

लोग जब बीमार होते हैं तो अपने कर्मों को कोसते हैं। पर ज्ञानीजन जानते हैं—कर्म को कोसने से ही रोग नही चला जायेगा। रोग का नाश करने के लिए उसके मूल—पाप से छुटकारा पाना होगा।

पाप का उदय होने पर सकट आ पडता है और सकट से बचने के लिए लोग फिर पाप का सहारा लेते हैं। मनुष्य की यह कैसी भयकर भूल है। ऐसा करने से तो पापो की परम्परा और बढती चलती है। पूर्वकृत पाप के कारण सकट उपस्थित होने पर धीरज धारण करके परमात्मा के साथ प्रेम—सबध जोडना चाहिए। जब लोग रोगी होते हैं तब उन्हे डाक्टर प्यारा लगता है। विद्या की कमी होती है तो विद्वान प्यारा लगता है। धन की आवश्यकता होने पर धनवान् प्यारा लगता है। ठीक इसी तरह, जब अपने अन्त करण मे पाप की प्रबलता हो, तो परमात्मा प्रिय लगना चाहिए। अपने पापो के प्रति सवेदना प्रकट होगी तो परमात्मा के प्रति प्रेम भी प्रबल रूप से प्रदीप्त होगा। पर दुनिया पापो को छिपाना चाहती है, दूर नहीं करना चाहती। लोग पाप करते झिझकते नहीं, केवल पापी कहलाने से डरते हैं। उन्हे पता नही कि पाप छिपाने से घटता नही, बढता है। इसलिए पाप का निरीक्षण करके उसके लिए जितना अधिक पश्चाताप करोगे, उतने ही अधिक परमात्मा के समीप पहुच सकोगे।

बहिनो से भी मैं यही कहना चाहता हू। पाप को छिपाओ मत ढको मत। पापो का प्रायश्चित्त करो और उन्हे दूर करने का प्रयत्न करो। ऐसा करने से परमात्मा के पाद—पद्मो मे तुम्हारे प्रेम का प्रादुर्भाव होगा। ऊपर—ऊपर से पतिव्रता होने का ढोग करो और भीतर अनीति और अधर्म से भरी भावना बनाये रखो, ऐसा कदापि न करना। इसके लिए यह आवश्यक है कि अपने पापो का निरन्तर निरीक्षण करते हुए उन्हे दूर करने के लिए सक्रिय प्रयत्न करते रहो।

सुबह—साझ प्रतिक्रमण करने का उद्देश्य यही हे कि दिन—भर म या रात—भर मे किये हुए पापो से निवृत्त हुआ जाये। प्रतिक्रमण का शब्दार्थ है—वापिस लौटना। पर इससे यह आशय नही लेना चाहिए कि शुभ कार्य से पीछे फिरना लौटना। अशुभ काम (पाप) से पीछे लौटना ही प्रतिक्रमण का उद्देश्य है और यही इसका अर्थ है। भगवान् महावीर ने हमार लिए प्रतिक्रमण धर्म बताया है। भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य कभी प्रतिक्रमण करते थे कभी

नही भी करते थे। जब उन्हे यह मालूम होता कि हमसे कोई पाप–प्रवृत्ति हुई है तब वे उसका प्रतिक्रमण कर लेते थे अन्यथा नही। पर भगवान् महावीर ने प्रतिक्रमण करना आवश्यक प्रतिदिन का अवश्य कर्तव्य बतलाया है। उन्होने नियमित रूप से प्रतिदिन सुबह–साझ प्रतिक्रमण करने का आदेश दिया है। अतएव पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए प्रतिक्रमण करो और पाप को हटाओ। ऐसा करके जब निष्पाप बनोगे तब परमात्मा की शिक्षा के पात्र और परमात्मा की पार्थना करने के योग्य बन सकोगे।

मन वचन और काय के योग अर्थात् व्यापार से पापो की उत्पत्ति होती है। मन से पाप होता है वचन से पाप होता है और काया से पाप होता है और इन तीनो के योग से भी पाप होता है।

वचन के पाप तो प्राय प्रकट हो जाते हैं पर मन के पापो का किसे पता चलता है? और जब तक मन से पाप नही निकल जाते–मन निर्मल और निष्पाप नही बन जाता तब तक कौन दावा कर सकता है कि मैं अपराधी नही हूँ? अतएव मन की मलीनता–पाप–को सर्वथा दूर करना चाहिए और इसके लिए आत्मा को निरन्तर जाग्रत रखना चाहिए। आत्मा जब मन वचन और काय के पापो से मुक्त होकर निष्पाप बन जाता है तब वह परमात्मा की शिक्षा और प्रार्थना का पात्र बनता है। आत्मा को निष्पाप बनाने के लिए सदैव एक भावना का चिन्तन करना चाहिए। इस भावना को कवियो ने बहुत सरल रूप से प्रकट किया है। इस भावना को तुम जहा ले जाना चाहो वही ले जा सकते हो। जैन दृष्टि से इस भावना मे क्या तत्त्व छिपा हुआ है यह मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। वह भावना कौनसी है? कवियो ने कहा है–

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरू सतन की आडे सवारे काम।
जब लग गज बल अपनो बरत्यो नेक सर्यो नहि काम।
निर्बल हो बल–राम पुकारे आये आधे नाम।। सुने री ।।

अर्थात्–योगी जिसमे रमण करते हैं वह राम है। इस व्युत्पत्ति–अर्थ द्वारा दशरथ के पुत्र राम का निषेध नहीं किया गया है। इसमे तो यह बतलाया गया है कि जो राग–द्वेष से सर्वथा मुक्त है, वही सच्चा राम है।

तुम लोग इसी प्रकार का राम–बल प्रगटाओ। पर इस राम–बल को प्रगटाने के लिए तुम्हे आत्मा के विकार दूर करने पडेगे। आत्मा के विकार ज्यो–ज्यो हटते चले जाएगे त्यो–त्यो तुम्हारी आत्म–शक्ति का आविर्भाव होता चलेगा। तुम्हे अपनी आत्म–शक्ति मे निश्चल श्रद्धा है तो वह तुम्हारे पास ही है। वास्तव मे वह शक्ति तुम्हारी अपनी आत्मा में ही विद्यमान है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए दूसरे की साक्षी की आवश्यकता नहीं है। जहा सदेह होता है वहा साक्षी की आवश्यकता होती है। जहा शका पास नहीं फटकती, वहा साक्षी को कौन पूछता है? हा, कदाचित् तुम्हे उस शक्ति की अनुभूति न होती हो और उसे प्राप्त करने की इच्छा एव तैयारी हो, तो दूसरे की साक्षी लेना भी उचित हो सकता है। दावा करना हो तो साक्षी की आवश्यकता है। अगर दावा ही न करना हो, तो साक्षी किस काम की?

सो अगर आत्मशक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना हो तो एक क्या, हजारों महापुरुषो की साक्षिया तुम्हारे सामने प्रस्तुत की जा सकती हैं। विदाई की वेला मे मैं तुम्हे अधिक क्या कहू? मैं यही कहता हू कि आत्मिक शक्ति को प्रगट करो तो दूसरी समस्त शक्तिया तुम्हारे भीतर आप ही आप प्रगट हो जाएगी।

अगर तुम यह जानना चाहते हो कि आत्मिक शक्ति तुम्हारे भीतर कहा रहती है, तो यह जानने से पहले अपनी आत्मा की खोज करो। यह शरीर आत्मा के सहारे टिका हुआ है। शरीर मे जो–कुछ होता है वह सब आत्मा की शक्ति की बदौलत ही होता है। और तो और आख के पलक भी आत्मा की शक्ति से गिरते–उठते हैं। तुम चर्म–चक्षुओं से आत्मा को नहीं देख सकते। हा, इस सबध मे गहरा विचार करोगे तो जान पडेगा कि समस्त शारीरिक क्रियाओ का आधार आत्मा ही है। जिस आत्मा की शक्ति से शरीर के सब व्यापार होते है उन आत्मा को माया–मृषा आदि के द्वारा तुमने अत्यन्त मलीमस बना दिया है। पर यह स्मरण रखना एक म्यान म दो तलवार नही समा सकती। इसी प्रकार जब तक आत्मा मे माया–मृषा की मलीनता घुरी हे तब तक उसमे राम–बल या आत्मिक सामर्थ्य किस प्रकार प्रकट हो सकता है? तुम किसी भलेमानुष को अपने घर आने का आमत्रण तो दे दा परन्तु घर

के सब दरवाजे और खिडकिया बन्द कर लो तो वह आमन्त्रित व्यक्ति तुम्हारे घर मे कैसे घुस सकेगा? इसी प्रकार तुम राम–बल, परमात्म–बल को चाहते तो हो पर आत्मा के विकारो को दूर नही करते। ऐसी दशा मे राम–बल कैसे पा सकते हो? अतएव अगर तुम आत्मा मे से विकार–शक्ति को हटा दो तो मघा की भाति तुम्हारे भीतर भी अक्षय राम–बल या आध्यात्मिक सामर्थ्य प्रकट हो सकता है।

मघा और उसके साथियो को भयकर अपराधियो की भाति राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा कर्मचारियो की बातो मे आ गया और अपराध की जाच–पडताल किये बिना ही जोश मे आकर कहने लगा–'प्रजा को त्रास पहुचाने वाले तुम्हारे जैसे लुटेरे एक क्षण–भर भी मेरे राज्य मे नही रह सकते। इन्हे ऐसी सख्त सजा मिलनी चाहिए कि इन्हे देखकर फिर कोई ऐसा अपराध करने की हिम्मत ही न कर सके। इन्हे राजमहल के सामने वाले मैदान मे ले जाकर लिटा दो। मै महल के झरोखे मे जाकर बैठता हू। नागरिक लोगो के सामने इन तेतीसो लुटेरो को हाथियो के पैरो के नीचे दबोच कर कुचलवा डालो।

इन लोगो का अपराध क्या है? इस सबध मे जरा भी विचार न करके राजा ने सत्ता के मद मे उन्मत्त होकर कर्मचारियो के कहने मात्र से तेतीसो जनो को हाथियो के पैरो तले कुचलवा डालने का हुक्म दे दिया।

राज्य कर्मचारियो ने राजा की आज्ञा के अनुसार सारी व्यवस्था कर ली। नगर के नर-नारियो की भीड राजमहल के मैदान मे राजा का नया [illegible] देखने के लिए जमा हो गई। मघा और उसके साथी यथासमय मैदान मे लाये गये। उनसे कहा गया- अपने इष्टदेव का अन्तिम समय मे स्मरण कर लो। अब तुम्हे तुम्हारे कृत्यो का फल मिलने ही वाला है।

कविता का भाव मघा के उपदेश से अत्यन्त साम्य रखता है। अतएव यहा भी उसे कहना उचित है। इस कविता की भावना को तुम अपने हृदय मे उतारोगे तो तुम्हारा कल्याण ही होगा।

मघा अपने शिष्यो से कहता है –

शाति–समर मे कभी भूलकर, धैर्य नही खोना होगा।
वज्र प्रहार भले सिर पर हो, किन्तु नही रोना होगा।।
अरि से बदला लेने का मन, बीज नही बोना होगा।
घर मे कान तूल लेकर फिर, तुझे नही सोना होगा।।
देश–दाग को रुधिर–वारि से, हर्षित हो धोना होगा।
देश–कार्य की भारी गठरी, सिर पर रख ढोना होगा।।
आखे लाल भवे टेढी कर, क्रोध नही करना होगा।
बलि–देवी पर तुझे हर्ष से, चढकर कट मरना होगा।।
नश्वर है नर–देह मौत से, कभी नही डरना होगा।
सत्य–मार्ग को छोड स्वार्थ–पथ पर पैर नही धरना होगा।।
होगी निश्चित जीत धर्म की यही भाव भरना होगा।
मातृभूमि के लिए हर्ष से, जीना या मरना होगा।।

खरी कसौटी के समय ऐसी शिक्षा किस प्रकार समझाई जाती होगी और उसका कैसा असर पडता होगा यह कौन कह सकता है? हम लोग तो उस शिक्षा की नकल करते हैं। आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति के साथ अन्त करण–पूर्वक जब यह शिक्षा दी जाती होगी, तब उसके समर्थ प्रभाव के विषय मे कहना ही क्या?

अगर हम अपने आत्मा को सकट मे पडा हुआ मानकर इस प्रकार की उच्च और स्वच्छ भावना भावे तो इसके महत्त्व को कदाचित् समझ सकेगे। कोई कह सकता है– हमारी आत्मा पर ऐसा कौनसा सकट आकर पडा जो हम ऐसी भावना भाते फिरे? उत्तर यह है–आत्मा के ऊपर पाप का घोर सकट आ पडा है। पाप के सकट, भय से ही साधु या श्रावक बनते हैं। हम भी शान्ति के युद्ध मे जूझने के लिये साधु बने हैं, खाने–पीने के लिए नही। अतएव प्रत्येक आत्म–कल्याण के अभिलाषी को इस प्रकार की उच्च भावना भानी चाहिए। मघा ने अपने शिष्यो से कहा–

भावना तश्चित्त प्रसादनम् ।–योगसूत्र

मेरे प्यारे शिष्यो! इस प्रसग पर उच्च भावनाओ द्वारा अपना चित खूब प्रसन्न रखना। उच्च भावनाए चित्त की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त

जब कोयल मार खाने पर भी मीठा स्वर सुनाती है, तब विवेक–बुद्धि धारण करने वाले तुम्हारे जैसे मनुष्य, गाली–गलौज का बदला गालियो मे चुकाओ, यह कहा तक उचित है? मार के बदले मारना क्या विवेकशीलो को शोभा देता है?

तुम कह सकते हो–'चुपचाप गालिया सहन कर लेना और मारने वाले अत्याचारी के सामने भोली–भाली गो बन जाना उसका मुकाविला न करना, एक प्रकार की कायरता है। क्या हमे कायर बन जाना चाहिए? कायर बन जाने से तो अत्याचारी का हौंसला बढेगा और जगत् मे अत्याचार का नगा नाच होने लगेगा। इस प्रकार परोक्ष रूप से हम चुप्पी साधकर अत्याचार की उत्तेजना मे सहायक हो जाएगे।'

यह कथन वास्तव मे भूलभरा है। सहिष्णुता कायरता का चिह्न नही, वरन् वीरता का फल है। उत्तेजना का प्रसग उपस्थित होने पर अन्त करण की निर्बल वृत्तियो पर विजय प्राप्त करके स्वाभाविक शाति को सुरक्षित रख सकना साधारण व्यक्ति का काम नही है। अपने ऊपर सयम का अकुश रखना विजेताओ का धर्म है। बाढ आने पर नदी के प्रवाह मे सभी वह सकते हैं, पर अचल–अटल रहने वाले विरले ही होगे। इसी प्रकार उत्तेजना की आग मे जल मरने वाले ससार मे बहुत हैं और उस आग पर शान्ति का शीतल नीर छिडकने वाले इने–गिने ही निकलेगे। ये इने–गिने सत्त्वशाली पुरुष ही जगत्त् के पथ–प्रदर्शक होते हैं। इन्ही पुरुषो के सहारे ससार को स्वर्ग बनाने वाले सद्गुण टिके हैं।

यह कहना कि चुपचाप अत्याचार सहने से अत्याचारी को उत्तेजना मिलती है और अत्याचार बढते हैं– सर्वथा विपरीत धारणा है। अत्याचार से अत्याचार का सामना करने से अत्याचारो की परम्परा चल पडती है। जेसे रुधिर से रुधिर की शुद्धि नही होती उसी प्रकार अत्याचार से अत्याचार का शमन नहीं हो सकता। आग को ईंधन न मिले तो वह जल्दी बुझ जाती है। इसी प्रकार अत्याचार को अत्याचार का ईंधन न मिलने से शान्त हो जाता है।

मघा ने प्रकृति की शिक्षा समझाते हुए कहा–'देखो कोई कुछ भी करे पर प्रकृति अपना स्वभाव नही त्यागती। तुम भी अपना स्वभाव छोडकर विभाव के चगुल मे मत पडना। यह देखो मदोन्मत्त हाथी हम कुचलन के लिए सामने दौडा चला आ रहा है। वह हमे कुचल डाले ता भी तुम राजा राजकर्मचारी हाथी या महावत पर तनिक भी क्रोध या द्वेष न करना। इ

अन्यायियो के नाश होने की भावना अपने अन्तःकरण मे न आने देना। इसी मे सत्य-धर्म की विजय है। इन अन्याय मे ग्रसे हुए लोगो पर दया-भाव रखना इनके कल्याण की कामना करना, इनका बुरा न विचारना। हा कही तुम्हारी भूल हुई हो तो उसे खोजना और दूर करना। अगर तुमने कही भी भूल नही की है तो निश्चित समझना कि तुम्हारा बाल भी बाका नही हो सकता।'

श्री आचाराग सूत्र (प्रथम श्रुत स्कन्ध) मे एक भावना बताई गई है। इसे जीवन मे स्थान देने से पाप का प्रादुर्भाव ही नही हो सकता। वहा कहा गया है -

एस खलु नरीयए एस खलु मोहे, एस खलु मारे

अर्थात्-हिसा रूप पातक ही नरक है यही मोह है और यही मार मृत्यु है। इस पाप को आत्मा मे छिपाये रखना नरक को आमत्रण देना है। शास्त्र कहता है-पाप को पाप ही न समझो वरन नरक समझो। जब आत्मा मे पाप हो तो आत्मा मे ही नरक मानना चाहिए। अनाथी मुनि ने कहा है -

अप्पा नई वेयरणी

-उत्तरा. 20-36

जब कोयल मार खाने पर भी मीठा स्वर सुनाती है तब विवेक–बुद्धि धारण करने वाले तुम्हारे जैसे मनुष्य, गाली–गलौज का बदला गालियो मे चुकाओ, यह कहा तक उचित है? मार के बदले मारना क्या विवेकशीलो को शोभा देता है?

तुम कह सकते हो–'चुपचाप गालिया सहन कर लेना और मारने वाले अत्याचारी के सामने भोली–भाली गौ बन जाना, उसका मुकाबिला न करना, एक प्रकार की कायरता है। क्या हमें कायर बन जाना चाहिए? कायर बन जाने से तो अत्याचारी का हौंसला बढेगा और जगत् में अत्याचार का नगा नाच होने लगेगा। इस प्रकार परोक्ष रूप से हम चुप्पी साधकर अत्याचार की उत्तेजना मे सहायक हो जाएगे।'

यह कथन वास्तव मे भूलभरा है। सहिष्णुता कायरता का चिह्न नही, वरन् वीरता का फल है। उत्तेजना का प्रसग उपस्थित होने पर अन्त करण की निर्बल वृत्तियो पर विजय प्राप्त करके स्वाभाविक शाति को सुरक्षित रख सकना साधारण व्यक्ति का काम नही है। अपने ऊपर सयम का अकुश रखना विजेताओ का धर्म है। बाढ आने पर नदी के प्रवाह मे सभी वह सकते हैं, पर अचल–अटल रहने वाले विरले ही होगे। इसी प्रकार उत्तेजना की आग मे जल मरने वाले ससार मे बहुत हैं और उस आग पर शान्ति का शीतल नीर छिडकने वाले इने–गिने ही निकलेगे। ये इने–गिने सत्त्वशाली पुरुष ही जगत् के पथ–प्रदर्शक होते हैं। इन्ही पुरुषो के सहारे ससार को स्वर्ग बनाने वाले सद्गुण टिके हैं।

यह कहना कि चुपचाप अत्याचार सहने से अत्याचारी को उत्तेजना मिलती है और अत्याचार बढते हैं– सर्वथा विपरीत धारणा है। अत्याचार से अत्याचार का सामना करने से अत्याचारो की परम्परा चल पडती है। जैसे रुधिर से रुधिर की शुद्धि नही होती उसी प्रकार अत्याचार से अत्याचार का शमन नही हो सकता। आग को ईंधन न मिले तो वह जल्दी बुझ जाती है। इसी प्रकार अत्याचार को अत्याचार का ईंधन न मिलने से शान्त हो जाता है।

मघा ने प्रकृति की शिक्षा समझाते हुए कहा–'देखो कोई कुछ भी करे, पर प्रकृति अपना स्वभाव नही त्यागती। तुम भी अपना स्वभाव छोडकर विभाव के चगुल मे मत पडना। यह देखो मदोन्मत्त हाथी हमे कुचलने के लिए सामने दौडा चला आ रहा है। वह हमे कुचल डाले तो भी तुम राजा राजकर्मचारी हाथी या महावत पर तनिक भी क्रोध या द्वेष न करना। इन

अन्यायियो के नाश होने की भावना अपने अन्त करण मे न आने देना। इसी मे सत्य–धर्म की विजय है। इन अन्याय मे ग्रसे हुए लोगो पर दया–भाव रखना इनके कल्याण की कामना करना, इनका बुरा न विचारना। हा, कही तुम्हारी भूल हुई हो तो उसे खोजना और दूर करना। अगर तुमने कहीं भी भूल नहीं की है तो निश्चित समझना कि तुम्हारा बाल भी बाका नही हो सकता।

श्री आचाराग सूत्र (प्रथम श्रुत स्कन्ध) मे एक भावना बताई गई है। उसे जीवन मे स्थान देने से पाप का प्रादुर्भाव ही नही हो सकता। वहा कहा गया है –

**एस खलु नरीयए एस खलु मोहे, एस खलु मारे**

अर्थात्–हिसा रूप पातक ही नरक है, यही मोह है और यही मार–मृत्यु है। इस पाप को आत्मा मे छिपाये रखना, नरक को आमत्रण देना है। शास्त्र कहता है–पाप को पाप ही न समझो, वरन् नरक समझो। जब आत्मा में पाप हो तो आत्मा मे ही नरक मानना चाहिए। अनाथी मुनि ने कहा है –

**अप्पा नई वेयरणी,**

–उत्तरा॰ 20–36

अर्थात् वैतरणी नदी आत्मा मे ही है।

इस प्रकार की उच्च भावना को जीवन मे स्थान देने से तुम्हारे भीतर पाप को अवकाश नहीं मिल सकेगा।

आज धर्म की जो निन्दा की जाती है वह वास्तव मे धर्म की नही, धर्म के पालने वालो की निदा है। धर्म के पालने वाले, धर्म का पालन यदि विवेक के साथ करे तो उनके आदर्श धर्ममय जीवन देखकर धर्म की निदा करने वालो को भी अपनी मान्यता बदलनी पडे। श्री आचाराग सूत्र मे बताई हुई भावना को आत्मा मे स्थान दिया जाये तो पापो की गुजाइश ही न रहे, और आत्मा निष्पाप बन जाय तो दूसरो पर उसका प्रभाव पडे बिना न रहे।

मघा ने अपने शिष्यो को धर्म की महत्ता समझाते हुए कहा–'भाइयो! हर्गिज यह न समझना कि इस सकट काल मे हमारा कोई सहायक या रक्षक नही है अथवा सभी पाप रूपी राजा के अनुचर हैं। यहा पाप का ही राज्य है और उससे डर कर हमारी कोई सहायता नहीं कर रहा है। विश्वास रखना हमारा कोई सहायक और सरक्षक है और वह है–सत्य–धर्म।

तुम भी धर्म की महत्ता पर दृढ विश्वास रक्खो और भली–भाति धर्माचरण करते जाओ। फिर चाहे जितने युवक धर्म का उच्छेद करने को तैयार हो जाए फिर भी वे धर्म का उच्छेद नही कर सकते। गीता मे भी कहा

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत ।।

—गीता2/23

आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता अग्नि जला नहीं सकती, जल बहा नही सकता, और हवा सुखा नही सकती। यह आत्मा तेतीस सागरोपम तक नरक की अवस्था भुगत आई है, फिर भी आज उसका अस्तित्व बना हुआ है। धर्म आत्मा का स्वभाव है जब आत्मा का ऐसा स्वभाव है तो फिर धर्म का विनाश कैसे हो सकता है?

मघा ने अपने शिष्यो को भावना द्वारा आत्मिक शक्ति का परिचय दिया। मघा के हृदय मे तो यह भावना साकार रम रही थी। वह दूसरो को उपदेश देने मे विश्वास नहीं करता था। वह उपदेश को अपने जीवन मे मूर्त रूप देता था। मघा ने जब मदोन्मत्त हाथी को सामने दौडते आते देखा तो सबसे पहले मेरे ऊपर पैर रखे—इस विचार से वह सबके आगे लेट गया। उसने शिष्यो से अपनी पीछे लेट जाने को कहा। यह हाल देखकर उपस्थित जनता मे कोलाहल मच गया। लोग आपस मे कहने लगे—'क्या ये चोर—लुटेरे—से जान पडते हैं? इनके चेहरे शान्ति से सुशोभित हो रहे हैं—कैसी अनूठी शान्ति और उज्ज्वलता है? पापियों के मुख पर क्या ऐसी अनुपम आभा दृष्टिगोचर हो सकती है?' लोगो की सहानुभूति मघा दल की ओर उत्पन्न हुई और वे उस दल के सत्य के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर चिल्लाने लगे। उनमे से कितनेक लोग करुणापूर्ण रुदन करने लगे। जान पडता था—मघा ने अपनी भव्य भावना से सबका हृदय जीत लिया है।

मदिरा के नशे मे उन्मत्त और सत्ता के मद मे मस्त राजा अभिमान—पूर्वक कहने लगा—'देरी न करो इन बदमाशो पर हाथी पेल दो और इनका कचरधान कर डालो।

राजा के आदेश से महावतो ने हाथी छूटा छोड दिया। मदमस्त हाथी दौडता—दौडता मघा दल के पास आया। उसने मघा को सूघा। जैसे नाग—दमनी को सूघते ही भाग जाता है, उसी प्रकार वह मघा को सूघते ही पीछे लौट पडा। यह अदभुत दृश्य देखकर दर्शको की प्रसन्नता का पार न रहा। पर मघा के विरोधी कर्मचारी कहने लगे— अन्नदाता! देखी आप ने बदमाशो की बदमाशी! ये लोग तो जादू भी जानते हैं।

राजा ने कहा—'तुम ठीक कहते हो। सुनते हैं जादू मे बडा प्रभाव होता है। सभव है इन लोगा के जादू के प्रभाव से ही हाथी वापस लौट आया

हो। पर कोई मुजायका नही। दूसरा हाथी लाओ और उससे इनका पतग काट डालो।

राजा के हुक्म से दूसरा हाथी लाया गया, पर वह भी पहले हाथी की तरह मघा को सूघ कर वापस भाग गया।

इस पकार तीसरा, चौथा, पाचवा छठा और अन्त मे सातवा हाथी लाया गया। किन्तु तब आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वे सब पहले हाथी की ही तरह मघा को सूघ-सूघ कर वापस लौट भागे।

चकित कर देने वाली यह अभूतपूर्व घटना घटते देख राजा सोच-विचार मे पड गया। उसने मन ही मन कहा-'यह जादू का प्रभाव नही हो सकता। इस घटना का कारण कुछ और ही होना चाहिए। इस प्रकार विचार कर राजा ने मघा को अपने पास बुलाया।

राजा की आज्ञा पाते ही एक सिपाही मघा के पास गया और उससे कहने लगा-'उठो उठो, महाराज तुम्हे बुला रहे है।

मघा-'हमे बुलाकर महाराज क्या कहना चाहते हैं? हमे तो यह देखना है कि वास्तव मे हमारे भीतर पाप है या नहीं? अगर हम पापी है, तो हाथी के पैरो तले कुचल जाना ही योग्य है।'

सिपाही-'तुम्हे जो कहना हो, महाराज से ही कहना।'

मघा-'ठीक चलिए। तैयार हू।'

मघा उठा, उसने अपने शिष्यो से कहा-'मैं अभी लौट कर आता हू। तुम लोग इसी प्रकार लेटे रहना, रचमात्र भी डरना नही। यह न समझना कि मैं तुम्हे छोड कर जा रहा हू। मैं अभी लौट आता हू।

मघा राजा के पास आया। राजा ने मघा से पूछा-'तुम कोई मत्र जानते हो?

मघा-'जी हा।

राजा-'कौनसा मत्र जानते हो?'

मघा- जो काम अपने-आप को अच्छा लगता हो वही काम दूसरो के लिए करना। यही मेरा मत्र है।

राजा-और क्या जानते हो?

मघा-इसके सिवाय तो मत्र के साधन जानता हू।

राजा-साधन कौनसे हैं? बताओ तो सही।

मघा-किसी की हिसा न करना असत्य भाषण न करना, किसी की चोरी न करना व्यभिचार न करना और मदिरापान न करना। इस मत्र के यह साधन है।

राजा—क्या केवल यही मत्र जानते हो?

मघा—जी हा मैं तो यही एक मत्र जानता हू। इसे जान लेने पर किसी अन्य मत्र की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

राजा ने मघा का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा—'मत्र तो तुम्हारा बडा उत्तम है। क्या तुम इसी मत्र का प्रचार करते थे?

मघा—'जी हा, मैं इसी मत्र का प्रचार करता था।

राजा—'तब तो तुम राज्य की सहायता करते थे। इसमें तुमने बुरा क्या किया है?

मघा के साथ बातचीत करके उसके विरुद्ध शिकायत करने वाले गाव के कर्मचारियो को बुलवा कर, राजा ने उनसे पूछा—इन लोगो ने क्या अपराध किया था? इन्होने गाव वालो को क्या हानि पहुचाई थी?

कर्मचारी लोग राजा का प्रश्न सुनते ही हडबडा गये। उन्हे यही न सूझ पडा कि क्या उत्तर दे?

इस प्रकार घबराहट मे पडा देख राजा ने समझ लिया कि वास्तव मे ये कर्मचारी झूठे हैं। इन लोगो ने इस पर मिथ्या आरोप किया है। गाव वालो से पूछकर पता लगाना होगा।

राजा ने गाव वालो को बुलाया। उनसे पूछा—सच—सच बताना इन तेतीस अभियुक्तो ने कभी तुम्हे हानि पहुचाई है? या दूसरो को हानि पहुचाते तुमने इन्हे कभी देखा है?

गाव वाले एक स्वर से कहने लगे— अन्नदाता! इन लोगो ने हमे मदिरापान से वेश्यागमन से, जुआ खेलने से ओर झगडा—टटा करने से रोका है। यह हमारी हानि हो तो इन्होने हमे हानि पहुचाई है। इसके अतिरिक्त और कोई हानि नहीं पहुचाई।

राजा, ग्रामवासियो की बात सुनकर चकित रह गया। उसने कर्मचारियो से कहा—'इन लोगो ने क्या अपराध किया है साफ—साफ बयान करो। ग्रामवासियो का कथन तुमने सुना है। मैंने तुम्हारा विश्वास करके बेचारे निर्दोष लोगो को सताया है। इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। भविष्य मे इस प्रकार की झूठी फरियाद करने का साहस कोई कर्मचारी न करे इसलिए यह आवश्यक है कि तुम लोगो को हाथी के पैरो तले कुचलवा डाला जाय।

यह कथन सुनकर मघा ने राजा से निवेदन किया—महाराज! य॰ आप क्या गजब कर रहे हैं?

राजा—ऐसे अपराधियो को ऐसी ही सख्त सजा मिलनी चाहिए।

मघा—राजन्! ये लोग अपराधी क्या, हमारे महान् उपकारी हैं। जिन लोगो ने आपके साथ मेरा साक्षात्कार कराया है, उन उपकारक पुरुषो को ऐसी सख्त सजा नही मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सत्य की पभावना मे भी ये निमित्त बने है।

राजा—भाई तुम्हारी नीति अलग है और हमारी राजनीति अलग है। ऐसे अपराधियो को दण्ड न देकर साफ छोड दिया जाय, तो राज्य मे अत्याचारो की धूम मच जायेगी। इसे रोकने के लिए ऐसे शैतानो को दण्ड मिलना ही चाहिए।

मघा—आपका कथन सत्य है। पर नम्रतापूर्वक मैं यह कहना चाहता हू कि अगर ये लोग वास्तव मे शैतान ही हैं तो यह शैतानियत आई कहा से? आपने राज्य के कायदे—कानून बनाये हैं और आपने ही इन्हे कर्मचारी बनाया है। इस दृष्टि से तो सर्वपथम अपराधी आप ही ठहरते हैं।

राजा सच्चा क्षत्रिय था। उसने मघा के वाक्यो की सचाई स्वीकार की और अपने को अपराधी मान लिया। कहा मैं भी दण्ड लेने को तैयार हू और इन सबसे पहले मैं हाथी के पैरो से कुचले जाने को तैयार हू।

मघा—आप किसलिए हाथी के पैर के नीचे रुदने को तैयार होते हैं?

राजा—मैने पाप किया। उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए।

मघा—महाराज! हाथी के पैर के नीचे आकर आत्म—हत्या करने से पाप का पायश्चित्त नही होता। पाप के लिए पश्चात्ताप करने से पाप का विनाश होता है। अज्ञान के कारण आपने पाप किया था। अब आपका अज्ञान हट गया है और उसकी जगह ज्ञान प्रगट हो गया है। अगर आप ज्ञान—पूर्वक पश्चात्ताप करेगे तो निस्सदेह पाप का नाश हो जायेगा। फिर हाथी के पैर के नीचे कुचल कर प्राण—त्याग करने की क्या आवश्यकता है?

हमे भी अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। हमे परमात्मा से यह पार्थना करनी चाहिए कि—

हू अपराधी अनादिनो
जनम—जनम गुना किया भरपूर के।

इस प्रकार अपने—आप को अपराधी अनुभव करके अपने पाप को धोने के लिए पश्चात्ताप करोगे तो तुम भी निष्पाप और पवित्र बन सकोगे।

मघा ने राजा से कहा—अज्ञान के कारण ऐसे—ऐसे अनेक जुल्म बन गये होगे पर अब अज्ञान के बदले ज्ञान का प्रकाश हो गया है। अब तमाम

जुल्मो को दूर कर आप स्वय पवित्र बनिये और फिर दूसरो को भी अपने समान पवित्र बनाइए।

राजा–तुम यथार्थ मे सत्पुरुष हो। जान पडता है मानो साक्षात् ईश्वर सामने आ खडा हो। जव तुम्हे देखता हू तव ऐसा लगता है जैसे ईश्वर को देखता होऊ। सचमुच तुमने सच्चा आत्मबल पा लिया है।

राजा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने सिहासन से उठकर मघा का हाथ पकडा और कहने लगा 'यह राजसिहासन तुम्हारे योग्य है। तुम्हारे सामने मुझे तो जमीन पर बैठना चाहिए।'

मघा ने नम्रतापूर्वक कहा–'राज्य का भार मुझ पर न लादिये। राज्य का भार सिर पर लादने से मै जो सेवा कार्य कर रहा हू, वह न कर सकूगा। आप सब निष्पाप बन गये हैं। आप ही सुख से राज्य कीजिए और प्रजा को सुखी बनाइये।'

राजा ने कहा–'हे सत्पुरुष! आपके दर्शन से मुझे परमात्मा की जैसी प्रतीति हुई है, वैसी प्रतीति लाखो पुस्तके पढने से और लाखो विचार करने से भी नही हुई थी। वास्तव मे आपके भीतर ईश्वरीय बल है। अब मै अच्छी तरह समझ रहा हू कि 'सुने री मैंने! निर्बल के बल राम'। आप स्वय जान–बूझकर निर्बल बन गये और किसी के प्रति वैरभाव न रखा तो आप मे राम–बल प्रकट हुआ। आपने यह भी न सोचा कि अमुक मेरा अहित करता है, तो मैं भी उसका अहित करू। आपने अहित करने वाले का भी हित चाहा। अब मैं भी समझ पाया हू कि दूसरे किसी को अहितकारक समझना अज्ञान है। वास्तव मे अपना पाप ही अपना अहित करता है। दूसरे मे अहित करने का सामर्थ्य होता तो आपको सूघ कर हाथी क्यो लौट कर भाग जाता?

तुम कह सकते हो–दूसरे भी दूसरे का अहित कर सकते हैं। राजसत्ता तो साप की तरह दूसरे को डसने मे जरा भी विलम्ब या विचार नही करती। पर यह कथन सही नही है। इस कथन से पहले जरा अपनी पवित्रता–अपवित्रता पर तो एक नजर डाल लो। अगर तुम स्वय पवित्र नही हो तो दूसरे को दोषी ठहराने का तुम्हे क्या अधिकार है? सिद्धान्त तो यह है–**सत्य शिव सुन्दरम्।**

जो सत्य है वह शिव–कल्याणकारी है और जो कल्याणकारी है वही सुन्दर है। जिसमे विकृति को स्थान नही वही सुन्दर एव शिव है। इसलिए दूसरे के छिद्र न देखो। अपने जीवन मे सत्य की प्रतिष्ठा करो। जितने अशो मे सत्य की प्रतिष्ठा होगी उतने अशा म अवश्य कल्याण होगा।

राजा ने मघा से कहा—राज्य—शासन अपने हाथ मे लीजिए और मुझे बताइये कि राज्य—शासन किस पकार करना चाहिये?

मघा ने कहा—राज्य—शासनकिस पकार चलाना चाहिए? आप यही जानना चाहते है न? ठीक है। मै यह बताऊगा।

मघा के समान सच्चे प्रजासेवक कर्मचारी आज खोजने पर भी नही मिलते। आजकल के कर्मचारी सर्वपथम अपना बगला सजाते है। ये लोग राज्य की सेवा करते है या अपने पेट की सेवा करते हैं— यह कहना कठिन है। पर इतना तो कहना ही चाहिये कि अपने परिश्रम से उपार्जन करके खाने वाले और पजा की सेवा करने वाले कर्मचारियो की रीति—नीति कुछ और ही पकार की होती है।

ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजा ने मघा को अपना पधानमत्री बनाया और उसके साथियो को महत्त्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया।

मघा ने अपने शिष्यो से कहा—देखो हम लोग निष्पाप थे, इसीलिए हाथी भी हमे न कुचल सका। जब हाथी जैसा पशु भी पाप और पुण्य का भेद समझता है तो हमे कम से कम इतना अवश्य समझना चाहिए कि परिश्रम किये बिना खाना हराम है और पाप—प्रवृत्ति से सर्वथा बचने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना चाहिए।

मघा ने प्रधान का पद स्वीकार कर मगध देश को खूब सुखी और सम्पन्न बना दिया। मगध देश की प्रजा सुख से रहने लगी।

ग्रथ के कथनानुसार यह कथा भगवान् महावीर और राजा श्रेणिक के समय से पहले की है। इनसे पहले मघा के शासन—प्रबध से मगध देश इतना धर्मपधान बन गया था कि इन्द्र भी इस प्रदेश को हाथ जोडकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करता था।

तुम लोग भी अपने हृदय मे धर्म को स्थापित करो। इसके साथ ही यह निश्चय करलो कि—'जो बात तुम्हे अच्छी लगे वही दूसरे के लिए करनी चाहिए और जो तुम्हे अच्छी न लगे वह दूसरे के प्रति भी नही करनी चाहिए।' तुम जो दृढ निश्चय करो उसे कठोरता से पालन करना। जिन व्रतो या पत्याख्यानो को स्वीकार करो उन्हे आत्मासाक्षी से बराबर पालना। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

अन्त मे मैं अपनी भूलो के लिए तुम सबसे क्षमायाचना करता हू। मेरी हार्दिक भावना है कि तुम सबका कल्याण हो और तुम मेरे शरीर से नही वरन मेरे सदविचारो से प्रेम करो।

# खादी और जैन दृष्टि

गाधीजी कहते हैं–'मैं नहीं जानता, मेरी जयन्ती कब आती है। मुझे तो दो चीजे प्यारी हैं। भारत यदि अहिसावादी बना रहना चाहता है तो मैं भारत के सामने दो विचार प्रस्तुत करता हू–एक तो यह कि खादी पहनो और दूसरा यह कि चर्खा चलाओ।' यह गाधीजी का कथन है। गाधीजी के इस कथन पर जैन दृष्टि से विचार करना आवश्यक है अतएव आज इसी विषय पर विचार किया जाता है।

कुछ लोग कहते हैं–हम खादी कैसे पहने? खादी मे जू पडते हैं और खादी धोने मे पानी अधिक खर्च होता है। अतएव खादी पहनने मे हिसा अधिक होती है। इसके अतरिक्त जैन धर्म राग–द्वेष करने का निषेध करता है और खादी पहनना तथा विलायती वस्त्र न पहनना यह क्या राग–द्वेष नही है?

'जिसने राग–द्वेष को जीत लिया है वह चाहे तो खादी पहनता हे चाहे तो विलायती वस्त्र पहनता है– उसके मन मे किसी प्रकार का भेदभाव नही रहता। जैन दृष्टि के अनुसार खादी ओर विदेशी वस्त्र मे किसी पर राग और किसी पर द्वेष रखना उचित नही है। गाधीजी खादी पहनने के सबध मे जो–कुछ कहते हैं, उसके विरुद्ध जैन दृष्टि से यह तर्क किया जा सकता है–किया जाता है। हमे गाधीजी के कथन पर ओर उसके विरुद्ध उपस्थित किये जाने वाले तर्क पर तटस्थ रहकर विचार करना हे।

कहा जाता हे कि खादी मे जू पड जाते हे ओर उसे धोने मे अधिक पानी काम मे लाना पडता है। परन्तु इस प्रकार आरभ–समारभ देखने बैठेगे तब तो अनेक अनीतिमय कार्य करने पडेगे। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक आदमी कहता हे– में ब्रह्मचर्य पाल नही सकता और विवाह करता हू तो आरम्भ–समारम्भ होता हे। इसके अतिरिक्त विवाह करने मे

सतान उत्पन्न होगी और झझटे बेहद बढ जाएगी। अत इस आरम्भ से बचने के लिए उत्तम अपाय यह है कि रुपया—दो रुपया देकर वेश्यागमन करके काम—वासना को तृप्त कर लिया जाय। अगर कोई मनुष्य ऐसा कहे तो तुम उसे क्या कहोगे? निस्सदेह तुम्हे कहना पडेगा कि ऐसा करना महापाप है। इस प्रकार दिखाऊ आरम्भ को पकड लिया जाय और परोक्ष रूप से महाआरम्भ आदि घोर पापो पर नजर न डाली जाय, तो नैतिक जीवन से हाथ धो लेने पडेगे और जीवन मे अनीति का राज्य हो जायेगा। ससार मे जितने भी कृत्य हैं उन सबके साथ पाप और पुण्य दोनो लगे रहते है। ऐसी अवस्था मे हमे पाप—पुण्य की न्यूनता और अधिकता का ही विचार करना चाहिए।

जिस कृत्य से पाप अधिक होता हो, उसका त्याग पहले करना चाहिए। वेश्यागमन और विवाह के विषय को ही लीजिए। यदि वेश्यागमन भयकर पाप है और नैतिक विवाह करना भयकर पाप नही है, तो पहले वेश्यागमन का त्याग करना श्रयेस्कर है। यही बात वस्त्र के विषय मे भी समझनी चाहिए। कपडे के विषय मे यदि गहरा विचार करोगे तो मालूम होगा कि वेश्यागमन से देश को और धर्म को जितनी हानि पहुची है उससे कही अधिक हानि चर्बी लगे हुए वस्त्रो के उपयोग से हुई है। जैसे परम्परा की अपेक्षा वेश्यागमन से अधिक पाप लगता है, उसी प्रकार परम्परा से चर्बी के वस्त्रो का उपयोग करने से अधिक पाप होता है। ऐसी स्थिति मे आरम्भ का बहाना करके जैसे विवाह की अपेक्षा वेश्यागमन को अल्पारभी नही माना जा सकता उसी प्रकार आरम्भ के बहाने खादी के विरुद्ध भी नही कहा जा सकता।

सभव है चर्बी के वस्त्र धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती हो, पर जरा इस बात पर भी तो विचार करो कि परम्परा से उसमे कितना पाप समाया हुआ है। खादी धोने मे अपेक्षाकृत अधिक पानी का उपयोग करना पडता होगा पर चर्बी के वस्त्रो की अपेक्षा खादी के पाप का परम्परा से विचार करोगे तो दोनो का भेद साफ मालूम हो जायेगा।

भारतवर्ष पर राग और विलायत पर द्वेष क्यो किया जाय? इसके समाधान मे मै कहना चाहता हू कि जैन धर्म राग—द्वेष का विधान कदापि नहीं करता। पर जब तुम सासारिक उत्तरदायित्व के बोझ से लदे हुए हो तो नैतिक राग—द्वेष से बच नही सकते। उदाहरणार्थ तुम अपने पुत्र को अपना मानते हो पडौसी के पुत्र को अपना पुत्र नही समझते। पडौसी के पुत्र पर दया और स्नेह तो तुम रखते हो पर उसे अपना ही पुत्र तो नही मानते। इसी प्रकार भारत

तुम्हारा देश है, तुम भारत मे रहते हो, भारत मे ही तुम्हारा पालन–पोषण हुआ है, अतएव भारत पर अगर तुम्हारा राग है, तो वह स्वाभाविक है।

भारतवर्ष पर प्रेम रखने का अर्थ यह नही है कि तुम इग्लैंड पर द्वेष रखते हो। जहा तुम भारत से प्रेम करते हो, वहा इग्लैंड पर भी तुम्हे दया–भाव रखना चाहिए। आज वह देश भी खराब हो रहा है। तुम उस देश के कपडे का व्यवहार करते हो, इस कारण वह देश दूसरे देश का खून चूसना सीख गया है और विलासी बन गया है। अगर तुम चर्बी लगे वस्त्रो को पहनना छोड दो, तो उस देश मे चर्बी के लिए होने वाली हिसा रुक सकती है। इसके साथ ही उस देश के निवासियो मे जो बुराइया घुस गई हैं वे दूर हो सकती हैं और उनकी दूसरो का रक्त चूसने की आदत भी मिटाई जा सकती है। इन सब बातो को भली भाति समझलो। फिर करोगे तो वही जो तुम्हे रुचिकर होगा। अलबत्ता, इस तथ्य को समझकर प्रवृत्ति करोगे तो महा–आरम्भ से बच सकोगे। शास्त्रो मे श्रावक को अल्पारम्भी, अल्प परिग्रही कहा है और यह भी कहा है कि श्रावक धर्ममार्ग के अनुसार अपनी आजीविका चलाता है। श्रावको के वर्णन मे कहा गया है कि श्रावको ने आरम्भ का सर्वथा त्याग नहीं किया था, फिर भी वे महा–आरम्भ से मुक्त थे। जो महा–आरम्भ से मुक्त रहे हैं उन्हे अल्पारम्भी होने पर भी शास्त्र धर्मी' बतलाते हैं– पापी नहीं कहते। अतएव चर्बी के वस्त्रो और खादी के वस्त्रो की तुलना करो। देखो – किससे अल्प आरम्भ होता है और किससे महा–आरम्भ होता है? फिर विवेक के साथ जो वस्तु महा–आरम्भजनक जान पडे, उसका त्याग करो।

खादी के कपडे धोने मे अधिक पानी लगता है इसी कारण खादी की निन्दा करना उचित नही है। साथ ही चर्बी लगे कपडो को धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती है, इतने मात्र से उन्हे खादी की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझना भी ठीक नहीं है। इनके पीछे कितनी महा–आरम्भ की परम्परा विद्यमान है, इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए। खादी के उपयोग से कदाचित् अधिक पानी की हिसा होती हो किन्तु चर्बी लगे कपडो से तो मनुष्यो तक की हिसा होती है।

मैं यह नही कहता कि तुम खादी पहनो मैं तो यह कहना चाहता हू कि महा–आरम्भ और अल्प–आरम्भ को समझो और महा–आरम्भ से बचो। अल्पारम्भ से भी छूटने की भावना रक्खो। कदाचित् अल्प–आरम्भ से न बच सको तो महा–आरम्भ से तो अवश्य ही बचो। कपडो का तुम सर्वथा त्याग करके नग्न रह सको तब तो ठीक है अगर ऐसा न कर सको और कपडे

पहनना अनिवार्य समझो तो महा–आरम्भ का तो त्याग करो। जिस कपडे मे चर्बी लगी हो, वह आरम्भ की दृष्टि से त्याज्य है।

खादी पहनने का विधान करना जैन साधु की भाषा की दृष्टि से उचित नही है। जैन साधु पवृत्ति का उपदेश नही देते। उनका उपदेश निवृत्ति रूप होता है। साधारण मनुष्य कह सकता है कि 'पानी छान कर पीओ। पर हम ऐसा नही कह सकते। हम तो यही कह सकते हैं कि अनछाना पानी मत पीओ। हम साधुओ को भाषा का विवेक रखना भी चाहिए। लडकी का वर कहो या दामाद (जमाई) कहो, दोनो का अर्थ एक ही है। किन्तु एक कथन विवेकयुक्त है जबकि दूसरा अविवेकपूर्ण है। इस पकार तात्पर्य एकसा होने पर भी भाषा की दृष्टि से उसमे अन्तर हो जाता है। अतएव मै यह कहता हू कि चर्बी वाला कपडा त्याज्य है।

गाधीजी कहते हैं – खादी पहनो और चर्खा चलाओ। उनके कथन का आशय यह है कि जब मैं खादी पहनने को कहता हू, तब खादी आसमान से तो टपक नही पडेगी। खादी उत्पन्न करने के लिए रचनात्मक कार्य करना पडता है। तभी खादी तैयार होती है। चर्खा चलाने से खादी बनती है और कपडे के निमित देश का जो पैसा परदेश मे जा रहा है वह भी बच सकता है। इस प्रकार चर्बी लगे कपडे के लिए होने वाली हिसा से भी बच जाओगे और साथ ही विदेश मे जाने वाला पैसा – जो पाप के कामो मे सहायक होता है – देश मे रहेगा और उससे गरीबो का पालन होगा। चर्खा के विषय मे गाधीजी का यह कथन है। इस कथन को जरा जैन दृष्टि से देखिए।

कहा जाता है कि गाधीजी ने जैनो के महाव्रत धारण नही किये हैं। गाधीजी स्वय भी नहीं कहते कि वे महाव्रतधारी हैं। पर मेरे विषय मे यह कहा जा सकता है कि आप महाव्रतधारी हैं अत जैन दृष्टि से आपको चर्खे का निषेध करना चाहिए। क्योकि चर्खा गुजार करता हुआ घूमता है और उससे जीव हिसा होती है। अतएव आपको चर्खा न कातने का ही उपदेश देना चाहिए।

अगर तुम लोग बिल्कुल कपडे पहनते न होते तो यह उपदेश देकर मै अपने–आप को धन्य मानता। मगर तुम कपडो का व्यवहार करना नही छोड सकते। ऐसी दशा मे चर्खा न चलाने का उपेदश देना तुम्हे एक महान् पातक मे पटकना होगा। मान लीजिए एक बाई चक्की चलाकर आटा पीसकर खाती है। मै उसे चक्की न चलाने का उपदेश देकर उसे चक्की चलाने से रोक देता हू। पर उस बाई को खुराक के लिये आटे की आवश्यकता पडती है। ऐसी

अवस्था मे वह मशीन से चलने वाली चक्की का सहारा लेगी और मेरे उपदेश के कारण अल्पारम्भ के बदले महा–आरम्भ के पाप मे पड जायेगी। इसके बदले यदि मैं यह उपदेश दू कि तुम मशीन का पीसा हुआ आटा खाना छोड दो, तो वह कह सकती है कि इस अवस्था मे मुझे हाथो चक्की चलानी पडेगी। पर क्या चक्की चलाने का पाप मुझे लगेगा? नहीं। जब मुझे मशीन के आटे का त्याग का उपदेश देना पडेगा तो मुझे यह बताना पडेगा कि मशीन और चक्की से होने वाले पाप मे कितना अन्तर है? मुझे यह भी कहना पडेगा कि मशीन से पिसे और चक्की से पिसे आटे मे नैतिक दृष्टि से इतना ही अन्तर है जितना अन्तर मक्खन निकले दूध मे और बिना मक्खन निकले दूध मे है। दिखने मे तो दोनो प्रकार के दूध एक से रग के दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव मे दोनो मे बहुत भेद है। इसी प्रकार मशीन–चक्की और हाथ–चक्की से होने वाले आरम्भ मे भी महान् और अल्प का अन्तर है। मशीन चक्की में महा–आरम्भ है और हाथ–चक्की मे अल्प–आरम्भ है। इस प्रकार नैतिक और पारमार्थिक दृष्टि से मशीन–चक्की का आटा खाना त्याज्य है। चर्बी से बना हुआ घी और बाजारू दूध–दही आदि त्याग दोगे तो अहिसा की अपूर्व ज्योति से तुम्हारा हृदय जगमगा जायेगा। इस प्रकार जब महा–आरम्भ से बचना होता है (और सम्पूर्ण आरम्भ का त्याग करना शक्य नही होता) तब अल्प–आरम्भ के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नही रहता। आरम्भ मात्र से तो उसी अवस्था मे बचा जा सकता है जब आरम्भजनक कृत्यो और उनके फल को सर्वथा त्याग दिया जाये। इसलिये गाधीजी कहते हैं – अगर खादी पहनना है तो चर्खा चलाने के सिवाय और कोई रास्ता नही है। चर्खा नही चलाओगे तो मील का आसरा खोजना पडेगा। अतएव यह विचारना आवश्यक है कि अधिक आरम्भ मील मे होता है या चर्खे मे? मील मे अधिक आरम्भ होता है इस सत्य को कौन अस्वीकार कर सकता है? वह मील जिसमे आरम्भ होता है चर्खा चलाये बिना बन्द नही हो सकती और मील बन्द हुए बिना महाआरम्भ रुक नहीं सकता।

गाधीजी वैश्य हैं व्यापारी जाति मे जन्मे है। वे ऐसी बात बताते है जिसमे खर्च थोडा हो और लाभ अधिक हो। इसी कारण वे तुमसे महा–आरम्भ से बचने के लिए कहते हैं। तुम व्यापार कैसा पसन्द करते हो? जिसमे खर्च थोडा ओर लाभ अधिक हो या जिसमे लाभ थोडा हो और खर्च अधिक हो? हा, तुम व्यापार मात्र को त्याग दो तो बात दूसरी है। पर तुम गृहस्थ हो और आजीविका के साधन का त्याग नही कर सकते। और हम भी तुम्हे भीख

मागकर खाने को नही कह सकते। यदि कोई साधु ऐसा आदेश देने लगे तो वह अविवेकी ही कहा जायेगा। इस प्रकार जब भीख माग कर खाना ईष्ट नहीं है तो व्यापार के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या है? कृषि, व्यापार आदि नीतिपूर्ण उपायो से ही जीवन–निर्वाह हो सकता है। अतएव इन सबको छोड–छाडकर भीख मागने का उपदेश तुम्हे नही देता, पर मैं यह अवश्य कह सकता हू कि पन्द्रह कर्मादानो का त्याग करो। इस प्रकार गाधीजी के कथनानुसार चर्खे का आश्रय लेने से, मील द्वारा होने वाले पाप से छुटकारा मिल सकता है। महा–आरम्भ से बचकर अल्पा–आरम्भ से आजीविका उपार्जन करने या जीवन–निर्वाह करने मे बुराई क्या है? जैन दृष्टि से ऐसे कृत्य को किस पकार बुरा कहा जा सकता है?

यह आशका की जा सकती है कि शास्त्रो मे क्या कोई ऐसा उदाहरण मिलता है जिससे यह जाना जाय कि पहले भी किसी ने चर्खा चलाया था? इस सबध मे यही कहना है कि खोज करोगे तो शास्त्रो मे ऐसे उदाहरण मिल सकेगे।

शकरभाष्य मे जो कुछ कहा गया है उस दृष्टि को सन्मुख रखते हुए जैन शास्त्रो पर दृष्टि–निपात करोगे तो जैन शास्त्रो का महत्त्व समझ सकोगे। शकरभाष्य मे अर्थवाद के तीन भेद बताये गये हैं–(1) अनुवाद, (2) गुणवाद और (3) सद्भूत अर्थवाद। किसी दूसरे प्रमाण से सिद्ध वस्तु के गुण–दोष कहना अनुवाद है। जैसे–अग्नि शीतलता मिटाती है पानी प्यास बुझाता है, इत्यादि कथन अनुवाद हैं क्योकि ये दोनो बाते अनादि काल से प्रसिद्ध हैं और पत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हैं। दूसरा भेद गुणवाद है। जैसे अमुक स्त्री चन्द्रमुखी है। यद्यपि स्त्री का मुख चन्द्रमा नहीं होता परन्तु उसके मुख पर शीतलता और सौम्यपन होने के कारण – जो चन्द्रमा के विशेष धर्म हैं – उसे चन्द्रमुखी कहा जाता है। अतएव ऐसा कथन गुणानुवाद है। तीसरा भेद सद्भुत अर्थवाद है। जैसे–स्वर्ग और नरक नही है इस प्रकार कहना। ऐसा कहने वाले से अगर कोई पूछे कि तुम्हारा कथन किस प्रमाण से सिद्ध है? तो वह कहेगा – क्या किसी ने स्वर्ग–नरक को देखा है? इसके उत्तर मे कोई यह कहे कि क्या तुम यह देख आये हो कि स्वर्ग–नरक नही है? अगर तुम देख नहीं आये तो निषेध कैसे करते हो? इस प्रश्न के उत्तर मे पूछने वाला कहेगा कि स्वर्ग–नरक का अस्तित्व सिद्ध करने वाला सद्भूत पमाण है। किसी भी अन्य प्रमाण के विषय मे सन्देह हो सकता है परन्तु शास्त्र के विषय मे किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। और जब तुम स्वर्ग–नरक नही है ऐसा देख नहीं आये हो

तो तुम किस प्रमाण से उनका खडन करते हो? जो वीतराग–प्रणीत शास्त्र हैं, वह सद्भूत प्रमाण है। इस प्रकार जिस बात के विना, दूसरे प्रमाण का खडन नही किया जा सकता, उसका प्रतिपादन वीतराग भाषित शास्त्रो मे है यह बात सद्भूत अर्थवाद है। इस प्रकार देखना चाहिए कि शास्त्र में कही चर्खा चलाने का प्रमाण मिलता है या नहीं?

गाधीजी चर्खा चलाने को कहते हैं इसलिए मैं उस कार्य को आरम्भ–हीन नहीं कहता। किन्तु जो वात जिस स्वरूप में है, उसे उसी प्रकार कहना चाहिए। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज जब काठियावाड मे विराजते थे तब नानालाल कवि और हरिशकर पडया उनसे मिले। उन्होने गाधीजी के विचार पूज्यश्री को बतलाये। इससे पहले पूज्यश्री ने गाधीजी के विचार नहीं सुने थे। जब उन्होने गाधीजी के विचार सुने तो कहा – 'यह विचार तो मेरे हृदय के विचार हैं। गाधीजी बुरा क्या कहते हैं? इस प्रकार जो बात सगत थी, पूज्यश्री ने भी वह स्वीकार की थी। इस प्रकार जो सत्य होगा उसे मैं सत्य ही कहूगा, जो असत्य होगा उसे असत्य कहूगा और ऐसा कहने से मैं रुक नहीं सकता।

सूयगडाग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध के उपोद्घातकार के निर्युक्तिकार ने जो वर्णन किया है और उसके टीकाकार ने जो स्पष्टीकरण किया है उसमे आर्द्रकुमार की कथा आती है। उस कथा मे बतलाया गया है – आर्द्रकुमार मुनि हो गये थे और किसी स्थान पर ध्यानमग्न खडे थे। वही पास मे कुछ बालाए क्रीडा कर रहीं थी। उनमे श्रीमती नामक एक धनाढ्य की पुत्री भी थी। वे बालाए दौड–दौड कर खभा पकडती थी और जिस खभे को पकडती थी उसी को अपना पति कह देती थी। श्रीमती को यह न मालूम पडा कि यह मनुष्य है। आर्द्रकुमार अधेरे मे खडे थे। श्रीमती ने दौडकर आर्द्रकुमार को खभा समझ कर पकड लिया और कहने लगी – 'यह मेरा पति है।' उसकी सखियो ने कहा– 'अरी तू धोखा खा रही है वह खभा नही पुरुष है। कथा मे यह भी लिखा है कि श्रीमती आर्द्रकुमार की पूर्वभव मे पत्नी थी। पूर्वभव के सस्कार वर्तमान मे भी प्राय विद्यमान रहते हैं इस कारण श्रीमती हठ पकड कर वहीं बैठी रही। श्रीमती के पिता को जब यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वह उसे समझाने के लिए वहा आया और उसने उसको समझाने का भरसक प्रयत्न किया। कहा – 'यह मुनि तेरे योग्य पति नहीं है। यह मेरे घर के योग्य जमाई भी नही है।' पर श्रीमती अपने हठ से टस से मस न हुई। लाचार हो पिता ने सोचा – जब श्रीमती विवाह करेगी ही तो मैं क्या वृथा हठ करू?

मैं क्यो उसे रोकू? इस प्रकार सोचकर और अनेक तरह से श्रीमती की परीक्षा करके उसने श्रीमती को उसकी इच्छानुसार चलने की स्वतन्त्रता दे दी। उस समय वहा सुवर्ण–मोहरो की वृष्टि हुई। वहा का राजा सुवर्ण–मोहरे देखकर ललचाया और उन्हे लेने को उतारू हो गया परन्तु दैवी कोप के कारण उसे अपना विचार बदलना पडा। यह सब विचित्र घटना देखकर आर्द्रकुमार सोचने लगे – 'देवता जिसकी सहायता करते हैं और जो मुझे हृदय से चाहती है, उसे किस पकार अस्वीकार किया जाय? इस प्रकार विचार कर आर्द्रकुमार ने श्रीमती से कहा -- अप्सराओ मे भी मुझे मोहित करने की शक्ति नही है, पर तुम्हारी सरलता ओर प्रेम ने मुझे मुग्ध कर लिया है। तुम्हारे निश्चल निश्चय ने मुझे चचल बना दिया है। पर पहले एक बात तुम्हे स्पष्ट बतलानी होगी। यह बताओ कि तुम्हारे साथ मुझे कितने दिन रहना होगा? मेरे हृदय मे वैराग्य है और विषय–वासना उसे दबा नहीं सकती। फिर भी तुम्हारे स्नेह की खातिर ही मैं तुम्हारा साथे देना चाहता हू।' श्रीमती ने बारह वर्ष तक आर्द्रकुमार के साथ रहने की पार्थना की। आर्द्रकुमार वचन–बद्ध होकर श्रीमती के साथ रहने लगे। आर्द्रकुमार से श्रीमती को पुत्र की प्राप्ति हुई। श्रीमती अपने पति के बिछुडने के दिन गिनती रहती थी। जब उनके जाने का दिन सन्निकट आया, तो उसे चिता होने लगी। वह सोचती – 'पति तो मुझे छोडकर चले जाएगे, पर उनके जाने के बाद मैं अपना जीवन कैसे व्यतीत करूगी?' देवो ने स्वर्ण–वृष्टि द्वारा बारह करोड मोहरे श्रीमती को दी थीं ओर उसके धनवान पिता ने भी धन दिया होगा। पर वह विचारती थी – 'यह सब धन और वैभव मेरे आमोद पमोद के लिए नही है। अगर मैं इस धन के आधार पर रही तो मेरा षील सुरक्षित न रह सकेगा। इस सारे धन पर पुत्र का अधिकार है। फिर भी जीवन–निर्वाह के लिए कोई–न–कोई आधार तो चाहिए। मगर किसका आधार लू, किस सहारे जीऊ? पुत्र अभी बालक है अन्यथा सयम धारण करना श्रेयस्कर था। तब जीवन–निर्वाह के लिए चर्खा चलाना ही एकमात्र उत्तम उपाय है। यद्यपि पति के वियोग से मैं अनाथ बन रही हू, मगर चर्खा मुझे सनाथ बनाये रक्खेगा।

मुनि आर्द्रकुमार यद्यपि गृहस्थ हो गये थे फिर भी उनके हृदयपटल से धर्म के सस्कार धुल नही गये थे। ऐसा होता तो वह दोबारा मुनि न बनते। चर्खा चलाने मे आरम्भ–समारम्भ होता है यह बात आर्द्रकुमार की पत्नी नही जानती थी ऐसी कल्पना करना असगत है। फिर भी वह चर्खा चलाती और सोचती थी – 'जब पति मुझे त्याग कर चले जायेगे तो मैं अपना धर्म किस

प्रकार निभा सकूगी? मेरे पास धन है, पर उसका आश्रय लेने से मैं विकार का शिकार बन जाऊगी। अत चर्खा कातना और उसकी सहायता से जीवन बिताना ही मेरे लिए कल्याणकर है। चर्खे की सहायता लेने से मेरे शील की भी रक्षा होगी और मेरा धर्म भी बचा रहेगा। इसके अतिरिक्त इससे मेरी आजीविका भी चल जायेगी। जब दूसरे काम मे अधिक फस जाऊगी तब चर्खा कम चला सकूगी और इससे खाने को भी कम मिलेगा। अगर मैं अधिक खाना चाहूगी, तो मुझे अधिक समय तक चर्खा चलाना पडेगा। इससे लाभ यह होगा कि मैं अपना समय व्यर्थ बर्बाद न कर सकूगी और निठल्लपन से आने वाले विकारो से भी बच पाऊगी।'

मैं जो शब्द बोल रहा हू, कथा मे लिखे नही है। जिस प्रकार बीज से वृक्ष का विस्तार होता है उसी प्रकार मूल वस्तु का विस्तार है। श्रीमती ने विकारो से बचने के लिए चर्खे का आश्रय लिया था। आज विधवा स्त्रिया चाहे जितना खाएगी, पीएगी, पर कोई उनकी ओर उगली नहीं उठाएगा। पर अगर वह चर्खा चलाना आरम्भ करेगी तो निन्दा का बाजार गर्म हो उठेगा। तात्पर्य यह है कि श्रीमती ने सादगी से जीवन–यापन करने के लिए चर्खे का सहारा लिया था। आज गाधीजी भी सादा जीवन बिताने के लिए चर्खा चलाने की बात कहते हैं। इस कथन मे जैन दृष्टि से बाधा क्या है? जिससे अहिसा का पालन होता हो और महाआरम्भ से छुटकारा मिलता हो, उस वस्तु को स्वीकार करना जैन दृष्टि से विरुद्ध नहीं है और कदाचित् कोई अहिसा के विरुद्ध कुछ कहे तो उसे अस्वीकार कर देना चाहिए। कहने वाला चाहे कोई भी क्यो न हो, उसकी बात अगर अनुचित है तो उसका विरोध किया जाना चाहिए। वास्तविक बातो को मान्य करना चाहिए और अवास्तविक बातों का विरोध करना चाहिए।

खादी पहनो और चर्खा कातने का उपदेश देने वाले गाधीजी से अब तक मेरी मुलाकात नहीं हुई है। जौहरीजी ने दिल्ली मे मुलाकात का प्रबन्ध किया था, परन्तु अचानक उन्हे कोई विशेष कार्य आ पडा और उनके सरक्षक पुरुषो ने कहा – 'गाधीजी की महाराज से मिलने की तीव्र इच्छा है पर इस समय अगर वे मिलने आते हैं तो दूसरे कार्य रुक जाते हैं। ऐसी दशा मे आप जो कहे किया जाय? जौहरी को कहना पडा – 'देश के कार्य मे हम क्षति पहुचाना नहीं चाहते। इस प्रकार गाधीजी से मैं साक्षात नहीं मिल सका। परन्तु उनके सिद्धान्त मैंने देखे हैं समझे हैं। भगवान महावीर को भी साक्षात् न देखने पर भी उनके सिद्धान्तो को हम देखते और मानते हैं। [illegible]

मे जो पुरुष अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर अहिसा के प्रचार मे लग जाता है वही महापुरुष के रूप मे पहचाना जाता है।

गाधीजी ने अपने सासारिक सुख को छोड दिया, जबरदस्त कमाई वाला बैरिस्टरी का धन्धा भी छोड दिया और अहिसा के प्रचार मे तथा प्रजा के कल्याण मे अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया है। ऐसा पुरुष कोई अनुचित बात कहता है यह कैसे कहा जा सकता है? उसके कथन का विरोध किस प्रकार किया जा सकता है।? आज गाधीजी को ससार महापुरुष मानता है। अमेरिका के उच्च पादरी ने भी कहा है कि इस समय ससार मे सबसे महान् पुरुष मोहनदास करमचन्द गाधी है।

अमेरिका निवासी जनता ईसाई धर्म का पालन करती है, फिर भी वह गाधीजी को महापुरुष मानती है। फिर भारत मे तो उन्होने अहिसा का प्रचार किया है और काठियावाड मे उनका जन्म हुआ है, अतएव भारतवर्ष और काठियावाड मे उन्हे विशेष रूप से माननीय माना जाय तो इसमे अस्वाभाविक क्या है? भारतवर्ष और विशेषत काठियावाड के लिए तो यह गौरव की बात है कि तुम्हारे यहा जन्मा हुआ एक पुरुष भारतवर्ष को उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है और समस्त ससार मे एक नया प्रकाश फैला रहा है।

जिसमे जो गुण हो, हमे उस गुण को ग्रहण करना चाहिए। जो लोग नाम से बडे हैं पर दुर्गुणो का प्रचार करने मे ही अपने बडप्पन का प्रयोग करते हैं उनके साथ हमारा कोई लेन–देन नहीं है।

मतलब यह है कि गाधीजी अहिसा के लिए जो–कुछ कहते हैं वह कथन जैन धर्म का पोषक है। तुम्हे अहिसा की बात अगीकार करना चाहिए और हिसा का त्याग करना चाहिए। जहा तक तुम गृहस्थ हो वहा तक महा–आरम्भ का त्याग करने के लिए अल्प–आरम्भ का आश्रय लिये बिना काम नही चल सकता। किसी मासाहारी को मास–भक्षण का उपदेश दिया जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि तुम भूखे मर जाओ। उसे तो यही कहना होगा कि तुम्हारा जीवन अगर शुद्ध और सात्त्विक आहार से टिक सकता है तो अशुद्ध मास–भक्षण का त्याग करो। मास का त्याग करने वाले को आखिर अन्न का तो आधार चाहिए। इस प्रकार जब महा–आरम्भ का त्याग करना हो तो अल्प–आरम्भ का आश्रय लेने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है।

गाधीजी महा–आरम्भ का त्याग कराते हैं। जो स्वय महा–आरम्भ का त्याग करता है और दूसरो से त्याग कराता है वह अहिसक है। इस प्रकार

हिसा के त्याग की बात स्वीकार करना जैन दृष्टि से न बुरा है और न पापमय ही। इस बात को भलीभाति समझ कर, खादी के और चर्बी लगे कपडो मे से जिसमे महा–आरम्भ हो, उनका विवेक के साथ त्याग कर देना चाहिए। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

## महात्माजी का मिलन

मैं तुम्हे एक बात कहना चाहता हू। यह बात यद्यपि देर से याद आई है, फिर भी कहने योग्य है। इसलिए थोडे मे कहता हू।

गाधीजी कल सबेरे आये और सन्ध्या को लौट गये। उन्हे देखने के लिए हजारो आदमी गये होगे। पर जो लोग गये थे उनसे मैं यह पूछना चाहता हू कि उन्होने गाधीजी मे क्या देखा? उनका स्थूल शरीर देखा या उनका कार्य?

गाधीजी इस समय के सुधारक या महापुरुष गिने जाते हैं सो क्या स्थूल शरीर की बदौलत या कार्य की बदौलत?

कल गाधीजी यहा मेरे पास भी आये थे। मैंने उनकी सादगी देखी। एक छोटा–सा पचा पहना हुआ था और एक छोटा–सा कपडे का टुकडा शरीर पर ओढा हुआ था। उनकी यह कितनी सादगी! इस सादगी के कारण लोग उन्हे देखने जाते हैं और बुरी तरह घेर लेते हैं। वह कहते थे – मैं आपके व्याख्यान मे नहीं आ सका क्योकि लोग मुझे आराम से बैठने ही नही देते। इस प्रकार गाधीजी दो विभागो मे बट गये हैं – एक उनका स्थूल – भौतिक शरीर, दूसरा उनका कार्य। जो लोग उन्हे देखने गये उन्होने क्या देखा यह सोचते–सोचते मुझे एक चौभगी याद आती है।

ससार मे चार प्रकार के आदमी होते हैं– (1) पहले प्रकार के लोग गुण ही देखते हैं रूप नहीं देखते। (2) दूसरे प्रकार के रूप ही देखते हैं गुण नही देखते। (3) तीसरे प्रकार के लोग रूप भी देखते हैं और गुण भी देखते हैं, और (4) चौथे प्रकार के वे लोग हैं जो न गुण देखते हैं न रूप ही देखते हैं। इस चौभगी के आधार से जो लोग गाधीजी को देखने गये थे वे यह निर्णय कर सकते हैं कि उनका उद्देश्य क्या देखना था?

'हम गाधीजी के आगे भले दिखलाई पडे'– इस विचार से कुछ लोग खादी पहनकर भी गाधीजी को देखने गये होगे। इस प्रकार जिन्होने भले दिखलाई पडने की गरज से ही खादी पहनी होगी उनके सबध मे यह कहा जा सकता है कि उन्होने रूप ही देखा है गुण नहीं देखा। कुछ लोग ऐसे भी

होगे जो सोचते हैं – गाधीजी के भौतिक शरीर को देखकर क्या करना है? उन्होने जो कर्तव्य बताया है उसी का पालन करना चाहिए। अहिसा और सत्य के पथ पर चलने के लिए उन्होने मास–मदिरा और चरबी लगे कपडो का त्याग बतलाया है अतएव हमे तो उनके द्वारा प्रदर्शित कर्तव्य को ही अपनाना चाहिए। इस प्रकार कहने और सोचने वालो ने रूप नहीं वरन् गुण देखा है यह कहा जा सकता है।

मैंने गाधीजी की आत्मकथा मे पढा है कि जब वे पहली बार विलायत जा रहे थे तब उन्होने अपने सम्प्रदाय के मुनि श्री बेचरदासजी स्वामी के समक्ष मास–मदिरा और परस्त्री–सेवन का त्याग किया था। इस प्रतिज्ञा की बदौलत गाधीजी आज गाधीजी बन पाये हैं। नहीं तो कौन जाने वे क्या होते? बेचरजी स्वामी को मैंने देखा नही, केवल उनका नाम सुना है। परन्तु तुम मे से कोई ऐसा होगा जिसने उनकी सेवा की होगी? इस महात्मा ने इस त्याग से खरी वस्तु को ऐसी सुदृढ तिजोरी मे सुरक्षित कर दी कि उस त्याग से वे जगत्प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार त्याग करके वे विलायत गये। वहा जाने पर अनेक ऐसे प्रसग आये जिन पर किए हुए त्याग से च्युत होना सभव था पर गाधीजी ने दृढता से यही कहा – जिन महात्मा के समक्ष मैंने त्याग किया है उन महात्मा को और जिनकी प्रेरणा से मैंने त्याग किया है उन अपनी माता को मैं हर्गिज धोखा नही दे सकता। इस प्रकार गाधीजी ने मास–मदिरा और परस्त्री–सेवन का त्याग किया, और इसी त्याग के प्रताप से ही आज गाधीजी जगद्वद्य बन सके हैं और जनता उन्हे देखने के लिए टूट पडती है।

जो मनुष्य गाधीजी को देखने जाता है पर गाधीजी ने जिन मास–मदिरा और परस्त्री–सेवन रूप दुर्गुणो का त्याग किया था, उन दुर्गुणो का त्याग नहीं करता वह भी क्या गाधीजी को समझ सका है? वह क्या उन्हे सम्यक प्रकार से देख सका है?

कहने का तात्पर्य यह है कि एक ऐसे प्रकार के लोग होते हैं जो रूप देखते है गुण नहीं देखते। दूसरे प्रकार के लोग रूप देखने की उत्कठा नही रखते सिर्फ उनके बताये मार्ग पर चलते हैं। वे उनके गुण देखते हैं और उच्च गुणो को ग्रहण करते है। तीसरे प्रकार के लोग ऐसे होते है, जो शरीर को भी देखते है और कार्य का भी अनुसरण करते है। वे सोचते हैं – जिस कार्य से देश जाति और आत्मा का कल्याण होता है और अहिसा का पालन होता है ऐसी वस्तु गाधीजी से हमे मिली है अतएव गाधीजी के दर्शन करना और

उनके कार्य को अपनाना चाहिए, यही हमारे लिए कल्याणकर है। तीन प्रकार के लोग तो ऐसे होते हैं। चौथे प्रकार के लोग इन सबसे निराले हैं। वे न तो गाधीजी के शरीर को देखते हैं और न उनके कार्यो का अनुसरण करते हैं। यही नहीं, वे गाधीजी की निन्दा करते हैं और छाती ठोक कर यह कहने मे भी नही हिचकते कि गाधीजी ने ही हमारा अहित किया है।

ससार मे चार प्रकार के मनुष्य होते हैं, यह तो भगवान् ही बता गये हैं, परन्तु तुम उनमे से किस श्रेणी मे रहना चाहते हो? अपने अन्त करण मे इसका विचार करो।

जिनके समक्ष त्याग करने मात्र से गाधीजी मास–मदिरा परस्त्री सेवन से बच सके, और इस कारण गाधीजी सदैव उनके प्रति कृतज्ञ रहे। तुम उन्ही महात्मा के शिष्य हो, फिर भी अगर तुम केवल रूप को ही देखो और गुण को न देखो, तो इससे क्या होना–जाना है? तुम जिन्हे अपना गुरु मानते हो, उनके समक्ष त्याग धारण करके गाधीजी अपनी रक्षा कर सके और एक बार धारण किये त्याग को दृढतापूर्वक पालन कर सके, और तुम केवल उपदेश सुनकर बैठे रहो और उसे कार्यरूप मे परिणत न करो तो यही कहना पडेगा कि तुम रूपदर्शी हो, गुणदर्शी नही हो। स्वय गाधीजी जिन महात्मा का उपकार स्वीकार करते हैं, उन महात्मा के शिष्य होते हुए भी अगर तुम अहिसा की वृद्धि करने वाली बातो को जीवन मे न अपनाओ तो तुम्हे क्या कहना चाहिए? तुम दिन और रात उपदेश सुनते हो उपदेश सुनने के लिए दूर देश से आते हो फिर भी तुम्हारे हृदय मे अहिसावर्द्धक बाते नही उतरती इसका कारण क्या है? इसके विपरीत गाधीजी ने एक ही बार के उपदेश को सदा के लिए हृदय मे स्थान दिया और नाजुक से नाजुक मौको पर भी उस उपदेश और त्याग के विरुद्ध कार्य नहीं किया इसका क्या कारण है? इसके कारण पर अगर गहरा विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि उनके हृदय मे सच्ची साधुता के प्रति सच्ची श्रद्धा और प्रगाढ प्रेम है। वे कल यहा आये थे और कहते थे – 'यद्यपि मेरे पास समय न था पर जब मैं यहा आया हू तो आपसे मिले बिना जा भी कैसे सकता हू? उनके इस कथन से मालूम होता है कि सच्चे साधु–सतो के लिए उनके हृदय मे कैसा और कितना स्थान है? तुम्हारे हृदय मे श्रद्धा की कमी है। यही कारण है कि तुम्हारे हृदय मे अहिसा को स्थान नहीं मिलता और जिन्हे तुम अपना गुरु मानते हो उनका अहिसा विषयक उपदेश प्राय निरर्थक जाता है।

साधु–सतो की यह विशेष जिम्मेवारी है कि वे तुमसे चर्बी के वस्त्रो का त्याग करावे। साधु–सन्त अपनी जिम्मेवारी को समझे, तो अहिसा पालन हो सकता है और तुमसे चर्बी के वस्त्रो का त्याग भी कराया जा सकता है। किन्तु जब तक वे स्वय चर्बी के वस्त्रो का त्याग नही करते, तब तक दूसरो से कैसे त्याग करा सकते हैं। अगर त्याग कराने का उपदेश भी दे, तो उसका प्रभाव ही क्या पड सकता है? गाधीजी स्वय तो चर्बी के वस्त्र पहने और दूसरो से त्याग करने को कहे तो उनके कथन का जनता पर असर पडेगा? नही। इसी प्रकार साधु–वर्ग जब तक स्वय चर्बी के वस्त्रो का त्याग नही करता, तब तक उसके उपदेश का रचमात्र भी प्रभाव नही पड सकता।

कोई यह कह सकता है कि साधु, गृहस्थ के घर से वस्त्र लाते हैं। इस अवस्था मे उन्हे जैसे मिल जाते हैं वैसे ही पहनने पडते हैं। पर इस कथन मे कोई जान नही है। जब चर्बी के वस्त्र उन्हे मिल जाते हैं, तो तलाश करने पर क्या बिना चर्बी के, खादी के वस्त्र नही मिल सकते? अतएव सर्वप्रथम साधुओ को चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना चाहिए और बाद मे दूसरो को उनके त्याग का उपदेश देना चाहिए। जिन चर्बी के वस्त्रो के लिए घोर हिसा की जाती है उन वस्त्रो का त्याग करना ही तुम्हारे लिए उचित है। अगर तुमने अहिसा को समझा है अगर तुम भगवान महावीर को समझ पाये हो, तो चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना ही चाहिए। चर्बी के वस्त्रो का त्याग करने से स्वार्थ के साथ परमार्थ भी सधता है। इससे जीवन मे सादगी आती है और अहिसा की आराधना होती है। चर्बी के वस्त्रो के लिए कैसे–कैसे भयकर हत्याकाड होते हैं यह सब जानते–बूझते हुए भी उन वस्त्रो का उपयोग करना, अहिसा की अवहेलना करना है।

कुछ लोग कहा करते हैं – हमारे पास पहले खरीदे हुए मील के कपडे पडे हैं उन्हे पहन डाले तो क्या हानि है? पर मैं कहता हू – अहिसा की आराधना के लिए क्या वस्त्रो का त्याग भी महगा है? इस पवित्र आराधना के खातिर क्या वस्त्रो का त्याग भी बडी चीज है? अगर सभी ऐसा कहने लगे कि पहले पहन फाडे फिर खादी की सोचेगे, तो बहुतो के पास तो कपडो का इतना सग्रह होता है कि उनकी सारी जिन्दगी के लिए वह पर्याप्त हो सकता है। ऐसी अवस्था मे वे लोग इन कपडो के निमित्त होने वाली हिसा से जीवन पर्यन्त मुक्त ही नही हो सकेगे। अतएव अहिसा की रक्षा के लिए हिसाजनक चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना चाहिए। अहिसा की रक्षा के लिए जैसे चर्बी के वस्त्र त्याज्य है उसी प्रकार रेशमी वस्त्र भी त्याज्य हैं।

सुना है एक गज रेशमी कपडे के लिए हजारो जीवित कीडे उबलते हुए पानी मे उबालकर मार दिये जाते हैं। तुम भगवान् महावीर के शिष्य हो। अहिसा के उपासक हो। ऐसी पापमय वस्तुओ के त्याग मे ही तुम्हारा कल्याण है और इसी मे भगवान् महावीर की उपासना और अहिसा की आराधना है।

## प्रवचन

{सरदार पटेल के आगमन पर}

**ऐसी मति हो जाय दयामय ऐसी मति हो जाय।**
**त्रिभुवन की कल्याण कामना, दिन–दिन बढती जाय।।दया.।।**
**दूजो के सुख को सुख समझू, सुख का करू उपाय।**
**अपने सारे दु ख सहूं पर, पर–दु ख सहा न जाय।।दया.।।**

*आज व्याख्यान देने का कोई खास विषय नहीं है।* पटेल साहब आये हैं, अतएव कुछ शब्द कहने हैं। *तुम लोग यहा आये हो पर क्या चीज लेने के लिए? मेरे पास धरा ही क्या है? अब जब* तुम आये हो तो इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारा आना खाली न जाय। अगर तुम पटेल साहब की खातिर आये हो तो ध्यान रखना कि पटेल साहब का साथ देने के लिए आने वालो का क्या कर्तव्य हो जाता है? मैंने सुना है, कल गाधी जयन्ती का सन्देश सुनाते हुए पटेल साहब ने कहा था – 'राजकोट को जो गौरव प्राप्त हुआ है उसे देखकर मुझे आनन्द होता है। पर राजकोट की दशा देखकर मुझे खेद भी होता हे।' इसी राजकोट मे गाधीजी ने अपना बाल्यकाल बिताया है। आज भी उसका स्मारक विद्यमान हे। इस राजकोट मे बाल्यकाल बिताने वाले गाधीजी आज कैसा सादा जीवन बिता रहे हें? उन्होने अपने जीवन की सादगी से यह बता दिया है कि ससार आडम्बर का भूखा नही है। उसे सादगी और सदाचार की आवश्यकता है। सदाचार का पालन करते हुए सादगी धारण करके जगत् के समक्ष खडा रहना सबसे उत्तम बात है। ऐसी उन्नत वृत्ति वाला पुरुष बोले तो ठीक ही हे, कदाचित् न बोले तो भी उसके द्वारा जगत का कल्याण होता हे। गाधीजी जेसे जगत् प्रसिद्ध पुरुष के जो राजकोट मे बाल्यावस्था मे रहे ओर जो आज उच्चतर सदाचार का पालन कर रहे हैं कथन का प्रभाव अगर राजकोट–निवासियो पर नहीं होता तो पटेल साहब के कथनानुसार वास्तव मे ही यह खेद की बात है। नारायणदास भाई कहते थे – आप आरम्भ–समारम्भ का विचार करके खादी और मिल के [illegible]

का अन्तर बतलाते हैं उसे सुनकर सब लोग वाह–वाह करने लगते हैं पर उसका क्रियात्मक प्रभाव कुछ नजर नही आता। खादी की अच्छाई स्वीकार कर लेने मात्र से क्या लाभ हो सकता है?' सचमुच कोरी वाहवाही से क्या लाभ हो सकता है? लोगो ने अपने बचाव के लिए 'वाह–वाह' शब्द गढ लिया है। खादी और मील के कपडो का अन्तर जानकर खादी की प्रशसा के पुल बाध देने और वाह–वाह कह देने से गरीबो का क्या लाभ हो सकता है? जिसके त्याग से पैसे की बचत होती है और गरीबो का पालन होता है, साथ ही अहिसा का भी पालन होता है उस मील के कपडे को अगर तुम छोड नही सकते और शरीर के ऊपर एक भी वह कपडा रहता है तो, सच्ची गाधी जयन्ती नही मनाई जा सकती, वरन् उसकी अवगणना होती है। एक आदमी बोझ का मारा हैरान–परेशान हो रहा है। उसे देखकर तुम वाह–वाह, धन्य–धन्य चिल्लाते हो, पर उसका बोझ हलका करने मे जरा भी सहायता नही पहुचाते। यह कैसी प्रशसा है? यह तो एक प्रकार की विडम्बना है। राजकोट के निवासियो पर अगर गाधीजी के जीवन का प्रभाव पडा हो और गाधीजी की बदौलत उन्होने राजकोट को पावन माना हो, तो उनके द्वारा गाधीजी के महान् आदर्श की क्या इस प्रकार अवगणना होनी चाहिये? मासिक पत्र 'कल्याण' मे एक चित्र आया है। चित्र देखना किसे नहीं सुहाता? पर चित्र क्या चीज है? वह किसी कुशल कारीगर के कौशल का प्रतिबिम्ब है। उसने अपनी कल्पना से चित्र अकित किया है। वास्तव मे चित्रकार ने न सूरदास को देखा है न श्रीकृष्ण को देखा है। उसने तो केवल कल्पना की है। इसी प्रकार कोई कलाकार एक ऐसा चित्र बनावे जिसमे एक और गाधीजी अकित हो और दूसरी ओर उनका कार्य चित्रित हो। एक ओर गाधीजी का वृद्ध और दुर्बल शरीर हो और दूसरी ओर उनका महान् कार्य हो। इन दोनो मे से तुम किसे पसन्द करोगे? 'कल्याण' मासिक मे सूरदास और कृष्ण का चित्र है। तुम उस चित्र को देखकर मुग्ध होओगे या जिसका चित्र है उसके कार्य का स्मरण करके मुग्ध बनोगे? कदाचित् तुमने किसी व्यक्ति का शरीर या उसका चित्र देखा हो और उस पर मुग्ध होकर उसके कार्य की प्रशसा करने लगो, मगर उसके कार्य को अपनाओ नही तो क्या तुम उस पुरुष की अवगणना नही करते?

गाधीजी के लिये वाह–वाह कर देने से भारत का कल्याण नही हो सकता। देश–हित के कार्यो का जितना भार वे उठाते हैं, उसमे हिस्सा बटाने से ही भारत का हित हो सकता है। सुना है कल पटेल साहब ने कहा था

'वर्षा ऋतु मे अनगिनत मेढक उत्पन्न होकर टर्र–टर्र करने लगते हैं, परन्तु जब ताप पडने लगता है, तब वे अदृश्य हो जाते हैं। इसी प्रकार जब आन्दोलन का दोर–दौरा होता है, तो बहुतेरे मनुष्य अपने को देश–भक्त कहने लगते हैं परन्तु जब रचनात्मक कार्य करने का समय आता है, तब वे देश–भक्त न जाने कहा विलीन हो जाते है। उस समय वे नजर नही आते।'

इस प्रकार गाधीजी की वाह–वाह करने के लिये तो बहुत लोग तैयार हो जाते हैं, परन्तु उनके उपदेश के अनुसार काम करने के लिए बहुत थोडे लोग तैयार होते हैं। राजकोट निवासियो से मैं कहता हू कि तुम अगर कोरी वाह–वाह करने मे रह गये, तो तुम्हारे लिए और साथ ही मेरे लिये भी शर्म की बात होगी, क्योकि मै भी भारत मे ही जन्मा हू। मैं नही जानता था कि कभी मुझे राजकोट आना होगा और पटेल साहब से मेरी मुलाकात होगी। पर कौन जाने प्रकृति की लीला को? इस समय मैं भी राजकोट मे हू और इसलिए मेरे लिए भी यह लज्जाजनक बात होगी। अगर तुम चर्बी लगे मील के वस्त्रो का त्याग करो तो तुम्हारी क्या हानि होगी? ऐसा करने मे सरकारी रुकावट है? सरकार की ओर से ऐसी कोई रोक–टोक नहीं है, फिर भी अगर कोई सरकार के डर से चर्बी के कपडे नही छोडता तो वह देवादिक का उपसर्ग उपस्थित होने पर किस प्रकार निर्भय और निश्चल बना रह सकेगा। राजा अगर सच्चा राजा है तो चर्बी के कपडे त्याग कर खादी पहनने के कारण तुमसे कदापि अप्रसन्न न होगा। कदाचित् कोई राजा नाराज हो भी जाय तो अन्त मे उसे ठिकाने पर आना ही पडेगा। तुम खादी पहनने से डरते क्यो हो? अगर तमाम स्त्रिया और पुरुष खादी पहनने का निश्चय करले तो क्या हानि होने की सभावना है? ऐसा करने से तुम्हारा कौनसा कार्य रुक जाता है। अगर यह बात तुम्हारी समझ मे आ गई हो तो मील के वस्त्रो का त्याग करने की प्रतिज्ञा कर सकते हो। पर त्याग केवल देखादेखी नही होना चाहिए। तत्त्व को भलीभाति समझ–बूझकर त्याग करना चाहिए। तुम जिस देश मे जन्मे हो जहा के अन्न जल ओर वायु से तुम्हारे शरीर का पोषण हुआ है। उसी देश मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का तुम्हे त्याग कर देना चाहिए। उस वस्तु से तुम्हारा जीवन–निर्वाह सरलता से हो सकेगा और साथ ही तुम महा–आरम्भ से भी बच जाओगे। अल्पारम्भ से ही तुम्हारा कार्य चल जायेगा।

यह सभा आस्तिको की है। यहा बैठे हुए सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि 'हम परलोक से आये हे और परलोक मे जाने वाले हैं। [illegible]

तो हो पर साथ ही यह भी विचार करो कि तुम्हारा कर्तव्य क्या है? और इस ससार मे आकर तुमने क्या किया है? जब तुम परलोक से आगमन और परलोक–गमन मानते हो, तो तुम्हे जितना हो सके उतना महारम्भ से बचना चाहिए। इसी मे तुम्हारा कल्याण है।

## सरदार वल्लभभाई पटेल का भाषण

आप सबके दर्शन करके मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। साधु–सतो के सामने खडे होकर उपदेश देने की मुझे आदत नहीं है, और अधिकार भी नही है। मै ससार मे रहने वाला हू और ससार पाप से भरा हुआ है। भारत मे एक महापुरुष जन्मा है। मैं उसका सिपाही हू और उसका सदेश पहुचाने के लिए गाव–गाव फिरता हू। इस समय तो मैं तीर्थस्थान मे आया हू। यह राजकोट शहर उसका निवास स्थान है। मुझे नहीं मालूम था कि मुझे यहा आना होगा और सतो के मुख से उपदेश सुनने का सुअवसर मिलेगा। पर आपका उपदेश श्रवण ऐसा नहीं होना चाहिए कि **कथा सुनकर फूटे कान, तब भी न आया हिये मे ज्ञान।** इस प्रकार का उपदेश आप प्रतिदिन सुनते हैं, पर 'मुख मे राम बगल मे छुरी' – इस कहावत के अनुसार अगर वर्ताव नही है, तो इन तमाम बहिनो के शरीर पर विदेशी वस्त्र क्यो दिखाई देते हैं? पापो को धोने के लिए गगा–स्नान करना या केसरियानाथजी की यात्रा कर आना भारत की पद्धति है। इतना करके पापो का धुल जाना मान बैठना भ्रमपूर्ण है। जो कर्म किये जाएगे उन्हे भोगना ही पडेगा। अतएव केवल उपदेश सुनकर ही सन्तोष न मानो पर इस बात का भी विचार करो कि इस उपदेश का आपके ऊपर क्या प्रभाव पडा है?

आप सब अहिसा को मानने वाले और पालने वाले हैं। आपकी रग–रग मे अहिसा भरी है। पर आप अपग बन गये हैं, और आप मे अहिसा पालने की शक्ति नहीं रही है। एक तपस्वी जन्मा है जो बडे से बडा जैन है। जिसने आत्मा को पहचाना है वही जैन है। मैंने उस तपस्वी सरीखा दूसरा जैन नहीं देखा है। अहिसा–पालन और दूसरो की रक्षा करना जैनो का कर्तव्य है। वह तपस्वी ऐसा करता है और न केवल भारत मे ही, वरन् विदेशो मे भी उसने अहिसा का प्रचार किया है। कूपमण्डूक कूप के सिवाय और कुछ नही जानता परन्तु समुद्र मे रहने वाला जानता है कि मगरमच्छ, जहाज, आगबोट आदि कैसे होते हैं? इसी प्रकार दूसरो को तो पता नही है, पर वर्तमानकालीन इतिहास जानने वाले लोग जानते हैं कि यूरोप मे कैसी यादव–स्थली चल रही

है? कुशल समझे जाने वाले लोगो ने ऐसे उपाय खोज निकाले हैं जिनसे अधिक से अधिक मनुष्यो की हिसा हो। परन्तु भारतवर्ष के सच्चे जैन तपस्वी ने अहिसा की रक्षा के लिये, अधिक से अधिक मनुष्यो की रक्षा के उपाय खोज निकाले हैं। नरसहार का उपाय ढूढने वालो ने बम, गोला आदि का आविष्कार किया परन्तु इस महापुरुष ने चर्खे को ईजाद किया है, जिससे गरीब और विधवाए भी प्रतिदिन चार पैसे कमा सकती हैं और राबडी बनाकर उसे पीकर जीवन निर्वाह कर सकती हैं। आप लोग अहिसा के पालक हैं, इसलिए गाय कुत्ता और पक्षी के लिए खुराक का थोडा भाग निकाल देते हैं और मान लेते हैं कि अहिसा का पालन हो गया। परन्तु जहा करोडो मनुष्य भूखे मरते हैं वहा गाय आदि के नाम से थोडा–बहुत निकाल देने मात्र से अहिसा का पालन कैसे हो सकता है? ऐसी दशा मे आप अहिसा के पालक कैसे रह सकते हैं? सच्चे अहिसक मनुष्यो ने चर्खे को जीवित करके ऐसा प्रबन्ध किया है जिससे भूखे मरने वाले बहुत से लोगो को रोटी मिल सके।

जिस देश मे यादव–स्थली चल रही है उस देश के लोग भारत के इस तपस्वी के लिए कहते हैं – वह कैसा शूरवीर है कि बिना तलवार–बन्दूक के ही सल्तनत को कपा रहा है। वह ससार से प्रेम करने की शिक्षा देता है और कहता है कि ऐसा किये बिना कल्याण नही। वे लोग यह भी मानते हैं कि नरसहार को रोकने के लिए भारत मे एक ही महापुरुष है और जब तक हम उसके बताये मार्ग पर नही चलेगे तब तक हमारा कल्याण नही हो सकता। अहिसा का पालन करने के लिए शास्त्र हमे अनेक आदर्श बतलाता है परन्तु वे प्रत्यक्ष नही हैं। अहिसा का ऐसा प्रत्यक्ष आदर्श जो तुम्हारे सामने रखता है उनकी बात नहीं मानोगे तो किस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा? यह बात तुम समझ नहीं सके हो। सिर्फ एक या दो आदमियो ने खादी पहनने की प्रतिज्ञा की तो स्पष्ट है कि तुम्हे सतो के प्रति और धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं है या तुममे आसक्ति नहीं है। तुम्हारे भीतर अगर इतनी आसक्ति है तो तुम धर्म को – जो सिर का बलिदान देकर पाला जाता है – कैसे पाल सकोगे? तुम जो उपदेश सुनते हो उसे पालने का अभ्यास करोगे तो ही उपदेश सुनना सार्थक होगा। इस प्रकार साधु–सतो का आगमन और उपदेश देना तभी सफल हो सकता है जब तुम उस उपदेश का पालन करो। इसलिए उपदेश के पालन का अभ्यास करो।

भारत की रक्षा सदा स्त्रिया ने ही की है। अगर स्त्रिया भारत की रक्षा नही करेगी तो कौन करेगा? पर आज स्त्रिया ऐसी [illegible]

हैं कि अपने कर्तव्य को भी नही देखती। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो पर अधिक उत्तरदायित्व है अतएव स्त्रियो को विचारना चाहिए कि अगर हम खादी पहनेगे तो खादी मे खर्चा हुआ पैसा गरीबो को मिलेगा और उससे उनका पेट पलेगा। खादी न पहनने से थोडे–से व्यक्ति करोडपति हो जाएगे करोडपति होकर मोटर खरीदेगे और ऐसे कार्य करेगे जिनसे महान पाप होते हैं। हजारो भेडो मे दो–चार सिहो के बसने के समान सामान्य वर्ग की प्रजा मे दो–चार करोडपितयो को बसना होगा। हजारो भेडो मे रहने वाले दो–चार सिहो की क्या शोभा है? बहादुरी तो तब है जब हजारो वीरो के बीच सिह का वास हो। भेडो के समूह मे रहना बहादुरी नही है। साथ ही भेडो को भी उससे कुछ लाभ नही है। यही नही, बल्कि हजारो भेडो के बीच रहने वाला सिह पतिदिन दो–चार भेडो का शिकार करेगा। इस प्रकार करोडो भुखमरो मे दो–चार करोडपतियो के होने से कुछ भी लाभ नही है।

जैन धर्म किसी एक जाति का नही है। सभी मनुष्यो को जैन होने का अधिकार है। उसमे स्पृश्य–अस्पृश्य का भेद नही है। जो आत्मा को पहचानता है वही जैन है। इसी कारण इस धर्म के निकट राजा–रक, छोटे–मोटे सभी समान हैं। इसमे जाति–पाति का भी कोई बखेडा नहीं है। पर आज तो जैन मन्दिरो या जैन उपाश्रयो मे अछूत को आने का अधिकार ही नही है। हिन्दू धर्म की इस कुरूढि को जैन धर्म ने भी स्वीकार कर लिया है। आपको यह कुरूढि निकाल फेकना चाहिए। किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य कहना उसका तिरस्कार करना है। इस तिरस्कार से उन्हे तलवार के झटके से भी अधिक दु ख होता है। यह तिरस्कार शरीर का नही शरीर मे रहे हुए आत्मा का है। शरीर मे से जब आत्मा चली जाती है तो सभी अस्पृश्य बन जाते है। तब आत्मा होते हुए किसी का अपमान करना ईश्वरीय अश का अपमान करना है।

हम सब लोग ससार मे रहते हैं। इस समय तो मैं ऐसे तीर्थस्थान मे आया हू, जहा वह महान जैन उत्पन्न हुआ है, जो जैन न होते हुए भी मन–वचन–कार्य से जैन धर्म का पालन कर रहा है। इस महापुरुष के जीवन का अनुकरण करके आपको कुछ–न–कुछ प्रतिज्ञा करनी चाहिए। ऐसा करने से आपका साधु–दर्शन और उपदेश–श्रवण सफल होगा। इतना कहने के पश्चात मैं इस भावना के साथ अपना स्थान ग्रहण करता हू कि आपको और मुझे ऐसी दृढता प्राप्त हो।

# गांधी जयन्ती

## प्रार्थना

श्री सुबुधि जिनेश्वर वन्दिये रे।
त्यागी प्रभुता राजनी हो, लीधो सयम भार।
निज आतम अनुभव थी हो, प्रभु पाम्या पद अविकार।।श्री.।।

भगवान सुबुद्धिनाथ की यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बताया गया है कि सुबुद्धिनाथ, भगवान सुबुद्धिनाथ किस प्रकार बने। भगवान सुबुद्धिनाथ को परमात्मपद पाने मे जो विघ्न या अन्तराय बाधक हो रहे थे उन पर उन्होने विजय लाभ किया था। इस विजय के महान् व्यापार मे भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्म–धर्म प्रगट हुआ था। प्रार्थना मे कही हुई बात को सुनकर यह विचार उद्भूत होता था कि – हे प्रभो! आपके और मेरे बीच जरासा अन्तर है, थोडी–सी दूरी है। आपने अपने विघ्नो को हटा दिया है और मै उन्हे अब तक हटा नही सका हू। बस यही मुझमे और आप मे फासला है, यही पर्दा है। इस पर्दे के कारण में आपसे दूर पडा हू।

आप यह तो जान चुके कि हम मे और भगवान् मे केवल विघ्नो का पर्दा है और इतना–सा ही अन्तर हे। मगर प्रश्न तो यह है कि यह जा[illegible] के पश्चात् हमारा कर्तव्य क्या है? इसका सीधा–साधा समाधान है और वह यह कि उस पर्दे को हटा देना चाहिए। जब तक विघ्न–रूप पर्दे को हटाया नहीं जायेगा तब तक परमात्मा से भेंट नही हो सकती। अगर आप इस पर्दे को नहीं हटाना चाहते तो यही कहा जायेगा कि आप परमात्मा से भेंट नहीं करना चाहते।

सारा ससार एक भ्रम मे पडा हुआ है। परमात्मपद की प्राप्ति [illegible] पदार्थ विघ्न–रूप हैं उन्हीं को वह कल्याणकारी मान रहा है। [illegible]

परमात्मा बनना चाहता है, पर ठीक विपरीत दिशा मे प्रयाण करता है। फल यह होता है कि समीपता के बदले दूरी बढती जाती है। अतएव इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से हमारा प्रत्येक कदम अनुकूल ही पडे प्रतिकूल नही। जिन वस्तुओ का ससर्ग इस ध्येय मे बाधक हो उसका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार करने से परमात्मा के साथ भेट हो सकती है।

भगवान सुबुद्धिनाथ का 'सुबुद्धिनाथ' नाम केवलीपद प्राप्त करने के पहले का है। केवल–पद पाने के बाद तो उनके अनन्त नाम हो गये हैं। भगवान् सद्बुद्धि के स्वामी थे और हम लोग सुबुद्धि की परवाह न कर कुमति के फदे मे फसे हैं। हम लोग बुद्धि से तर्क–वितर्क करते हैं और तर्क–वितर्क द्वारा भगवतप्राप्ति के मार्ग मे काटे बिखेर लेते है। जिस समय हम भगवान् सुबुद्धिनाथ के पावन चरणो मे सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ बुद्धि को समर्पित कर देगे तभी श्रद्धा के साहचर्य से बुद्धि सन्मार्गगामिनी बनेगी और वह दुर्बुद्धि मिट कर सद्बुद्धि हो जायेगी। अतएव भव्य जीवो! बुद्धि का भरोसा छोडकर श्रद्धा का शरण ग्रहण करो। श्रद्धा का शरण ग्रहण करने से तुम बुद्धि के दास न रहकर सद्बुद्धि के नाथ बन सकोगे।

कोई यह आशका कर सकता है कि ससार का प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि हमारी दुर्बुद्धि का विनाश हो और सद्बुद्धि का प्रकाश हो। पर ऐसा होता क्यो नहीं है? इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि जैसे आकाश से बरसने वाला पानी समान होता है लेकिन भिन्न–भिन्न पात्र उसे विभिन्न रूपो मे ग्रहण करते है, इसी प्रकार भगवान् सुबुद्धिनाथ अपन सब मे मूलत समान बुद्धि देखते है फिर भी विभिन्न व्यक्तियो के औपाधिक सबध के कारण उसमे विचित्रता हो रही है। इसी वैचित्र्य को विनष्ट करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ के शरण मे जाने की आवश्यकता है। बुद्धि मे विचित्रता किस प्रकार आ रही है, इसके लिए एक प्रमाण लीजिए –

**'परस्परविवदमानाना धर्मशास्त्राणामहिसा परमो धर्म इत्पत्र एकवाक्यता।**

अर्थात–धर्मशास्त्रो मे अन्यान्य बातो सम्बन्धी मतभेद भले ही हो, पर अहिसा को परम धर्म मानने मे किसी का मतभेद नही है। अहिसा धर्म सभी को मान्य है। ऐसा होते हुए भी धर्म के नाम पर कितनी खून–खराबी हुई है? जहा धर्म के नाम पर इतनी खून–खराबी हो वहा यही समझना चाहिए कि

धर्म के नाम पर ढोग प्रचलित है। सच्चा धर्म अहिसा और सत्य आदि है। अहिसा के कारण कही खून–खच्चर नही होता। इसके पालन मे भी कहीं किसी का मतभेद नही है। सच तो यह है कि लोगो के हृदय विकार से भरे हुए हैं और जब उन्हे कोई दूसरा आधार नहीं मिलता तब वे धर्म के नाम पर सिर–फुटौवल मचाने लगते हैं। वास्तव मे कोई भी धर्म परस्पर लडने–झगडने या दूसरे को दु ख देने की आज्ञा नही देता। ऐसा होते हुए भी दूसरो को दु ख देना धर्म सबधी अज्ञानता को प्रगट करता है। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता आ रही है। इस विचित्रता को मिटाने के लिए परमात्मा की शरण मे जाओ। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि की यह विचित्रता नष्ट हो जायगी।

मैं अहिसा धर्म का प्रचारक समझा जाता हू, पर मैं अपनी दृष्टि मे तो अहिसा धर्म का क्षुद्र सेवक हू। आप चाहे जो समझे पर मैं अहिसा धर्म के प्रचार की योग्यता अपने मे अभी नही पाता। दूसरे मेरी निर्बलता को न जाने, मेरे विचारो से परिचित न हो, लेकिन आत्म–निरीक्षण द्वारा मैं यह जानता हू कि मुझ मे अनेक निर्बलताए हैं और मैं विकारो पर सम्पूर्ण विजय नही प्राप्त कर सका हू।

आप कह सकते हैं – अगर मुझ मे विकारो का अस्तित्व है तो मैं अहिसा धर्म का उपदेश क्यो करता हू? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ऐसा करने मे भी मैं अपने आत्मा का कल्याण देखता हू। इतने आदमियो के सामने मे जो–कुछ कहता हू, उसका स्वय पालन करने की प्रेरणा मेरे अन्त करण मे स्वत उत्पन्न हो जाती है। मेरे उपदेश का दूसरे अनुसरण करे या न करे पर स्वय मुझे अनुसरण करने की दृढता प्राप्त होती है। दूसरे के समक्ष मैं अहिसा आदि के सबध मे जो आदर्श वाचनिक रूप मे व्यक्त करता हू, यदि क्रिया–रूप मे मैं स्वय उनका अनुसरण न करू तो यह विपरीत मार्ग पर चलना होगा। अतएव मैं भगवान् की शरण मे जाकर भगवान् से प्रार्थना करता हू कि मेरी बुद्धि के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो और दूसरा के सामने मैं जैसा कहता हू उसी के अनुसार अपना व्यवहार बना सकू।

जब कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि की निरन्तर चौकसी करता रहता है उसमे विकारो का लेशमात्र भी प्रवेश नही होने देता वरन् भगवान् [illegible] की शरण ग्रहण करके अपनी बुद्धि को निर्मल बनाये रखता है [illegible] कल्याण का भाजन बनता है। ऐसा करने मे कितने ही संकट [illegible]

अपने पथ से विचलित नही होना चाहिए। प्राचीन काल के अनेक उदाहरण ऐसे मौजूद हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल के धर्मात्माओ ने मारणान्तिक कष्ट उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धि में विकारो का प्रवेश नहीं होने दिया था। उन उदाहरणो को सुनकर यह सदेह हो सकता है कि यह कल्पनामात्र है या घटित घटना है? मगर जब वर्तमान मे भी किसी को ऐसा करते देखा जाता है तो प्राचीन कथानको की प्रामाणिकता मुक्तकठ से स्वीकार करनी पडती है। हमे यह विश्वास हो जाता है कि पूर्ववर्ती पुरुषो के सबध मे जो कुछ–कहा जाता है वह सर्वांश मे सत्य है। उदाहरणार्थ अहिसा, क्षमा आदि के सबध मे जो अतीत के वृत्तान्त उपस्थित किये जाते हैं, उन्हे सत्य मानने के लिए आज गाधीजी प्रमाण रूप हो जाते हैं।

गाधीजी का जन्म पोरबदर मे हुआ था। मैंने पोरबदर देखा है और वहा के महाराज मेरा उपदेश सुनने भी आये हैं। पोरबदर महाराज के परिचय मे आने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि उन पर गाधीजी के विचारो का प्रभाव पडा है। वे गाधीजी के विचारो के अनुसार सुधार करने को उत्सुक रहते हैं। देश का हित करने वाले विचारो का प्रचार करने वालो को वहा अवसर दिया जाता है। जब मै पोरबदर मे था तभी वहा डाक्टर पट्टाभी सीतारामैया भी आये थे। वह मेरे व्याख्यान मे आये और उन्होने अपने कुछ राष्ट्रीय विचार भी प्रगट किये। उन्हे दूसरी रियासतो मे, सभा मे अपने विचार प्रगट करने मे किसी प्रकार की कठिनाई हुई होगी किन्तु पोरबदर मे कोई कठिनाई नहीं हुई। वे पोरबदर मे अग्रेजो ओर देशी नरेशो की राजनीति के विरुद्ध खूब खुलकर बोले फिर भी राज्य की ओर से किसी प्रकार की रोक–टोक नहीं की गई। इस प्रकार गाधीजी के जन्मस्थान मे उनके विचारों का प्रभाव देखकर प्रसन्नता होती है। सारे काठियावाड के लिए तो कह नहीं सकता पर जहा तक पोरबदर का सबध है, यह कहा जा सकता है कि गाधीजी के विचारो ने वहा अच्छा स्थान बना लिया है।

आज इन्ही गाधीजी की जन्मतिथि है। हम साधु लोग तो किसी की जन्मतिथि नहीं मानते किन्तु गाधीजी ने अहिसा का जो प्रभाव प्रकट किया है उसके सबध मे मुझे कहना होगा। पजाबकेशरी लाला लाजपतराय जैन परिवार मे जन्मे थे। उनके दादा ने साधु–मार्गी जैन समाज मे दीक्षा ली थी। लेकिन लालाजी का दृष्टिकोण बदल गया। उन्हे जैन धर्म की वास्तविकता

समझाने वाला कोई योग्य विद्वान नहीं मिला। वे जैन धर्म के अनुयायी न रह कर आर्यसमाजी बन गये। पर आर्यसमाज मे भी उन्हे शान्ति नहीं मिली। वे कहने लगे – तलवार का प्रयोग किये बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता। जैनो ओर बौद्धो की अहिसा ने देश को कायर बना दिया है। जब तक इस कायरता का अन्त नहीं हो जाता तब तक भारत की भलाई नही हो सकती।

लाला लाजपतराय इस प्रकार अहिसा के विरोधी बन गये। गाधीजी जब राष्ट्रीय रगमच पर आये और अहिसा के पक्ष मे उन्होने अपने विचार प्रकट किये, तो लालाजी ने उन्हे लिखा – 'देश पहले से ही कायर है। तिस पर आप उसे अहिसा का उपदेश देकर गजब ढा रहे हैं। सौभाग्य से अभी–अभी देश मे कुछ जागृति आई है सो आप अहिसा का प्रचार कर उसे दबा देना चाहते हैं।'

गाधीजी ने लालाजी को यथेष्ट उत्तर दिया। कहा जाता है, बीस वर्ष तक गाधी–लाला पत्र–व्यवहार होता रहा। अन्त मे गाधीजी के विचारो से लालाजी सन्तुष्ट और प्रभावित हुए। उन्होने मुम्बई मे गाधीजी और डाक्टर एनीबीसेन्ट आदि के सामने हृदय खोल कर कहा कि इतने लम्बे समय के पत्र–व्यवहार के पश्चात् मैं स्वीकार करता हू कि सत्य और अहिसा की शक्ति महान् है, अजेय है और मैं उस शक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाता हू।

लाला लाजपतराय बहुत विचारशील पुरुष थे। किसी जमाने मे भारत के, लाल, बाल और पाल की त्रिपुटी प्रसिद्ध थी। ऐसे विचारशील व्यक्ति को हिसा से विमुख कर अहिसा का भक्त बना लेना गाधीजी का काम था। वास्तव मे अहिसा का परिणाम तत्काल अनुभव नही किया जा सकता और हिसा का परिणाम तत्काल ही देखा जाता है। इस कारण राजनीति मे हिसा का ही बोल–बाला है। मगर गाधीजी ने अहिसा की परिधि बढाकर उसे राजनीति मे भी स्थान दिया है और एक प्रकार से एक नये युग की सृष्टि की है। यही गाधीजी की महत्ता और महापुरुषता है।

बगाल के श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर कविसम्राट कहलाते हैं। संसार प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार उन्हे गीताञ्जलि काव्य पर मिला है। उन्होने भगवान महावीर के विषय मे जो उद्गार प्रकट किये है उनके सबध मे यहा कुछ नही कहना है। यहा तो मैं एक और ही बात कहना चाहता हू। रवीन्द्रनाथ और गाधीजी मे कुछ विचार–विभिन्नता है। फिर भी वे गाधीजी के अहिसा [illegible]

को मस्तक झुकाते है। इससे आपको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि आप मे अगर किसी विषय को लेकर मतभेद हो जाय तो भी अहिसा के सबध मे कोई मतभेद नही होना चाहिए।

रविन्द्रनाथ एक बार अमेरिका गये। अमेरिकावासियो ने उनसे कहा – भारत मे गाधीजी की हम बहुत प्रशसा सुनते है। आपके साथ उनका सन्निकट परिचय होगा। कृपया गाधीजी के सबध मे आप अपने विचार प्रकट कीजिए। रवीन्द्रनाथ ने कहा – गाधीजी को मैंने देखा क्यो नही है? मेरा उनके साथ घनिष्ठ परिचय भी है। पर कठिनाई यह है कि जिस रूप मे मैंने गाधीजी को देखा है उसका वर्णन नही किया जा सकता। गाधीजी की महत्ता उनके शरीर के कारण नही है। शारीरिक दृष्टि से वे बहुत ह्रस्व हैं, फिर भी वे महान् हैं। भूतवादियो के मत से सारी करामात भूतो की है। इस दृष्टि से जिसका भारी–भरकम शरीर हो वही महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो वह तुच्छ होना चाहिए। मगर गाधीजी इस भूतवाद के सशरीर साक्षात् खडन हैं। शरीर से दुबले–पतले होने पर भी उनमे तीन बाते ऐसी हैं, जिनके कारण उनकी महत्ता है। पहली बात, उनमे निर्भयता है। मैं कविसम्राट् कहलाता हू। पर कोई छुरा लेकर मुझे मारने आवे तो अपने बचाव के लिए मैं प्रयत्न करूगा और भाग जाऊगा। मेरा हृदय भय से काप उठेगा। मगर गाधीजी को मारने के लिए अगर कोई छुरा लेकर जायगा तो उसे देखकर वे लेश मात्र भी भयभीत न होगे। यही नहीं परन् हसेगे, मुस्करायेगे और पहले से भी अधिक प्रसन्न होगे। उनकी दूसरी महता है – सत्य के प्रति दृढता। अगर सम्पूर्ण अमेरिका का विपुल वैभव उनके चरणो पर चढा दिया जाय और बदले मे सत्य का परित्याग कर असत्य आचरण करने के लिए कहा जाय तो वे उस वैभव का लात मार देगे। वे सत्य का त्याग नहीं करेगे।

गाधीजी अमेरिका की अतुल धनराशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते है पर आप लोगो मे कोई ऐसा तो नहीं है जो आठ आने के लिए साठ बार असत्य का आचरण कर सकता हो? अगर कोई ऐसा है तो उसे अपने इस पतन के लिए पश्चात्ताप नही होना चाहिए? पश्चात्ताप की ज्वाला मे उसे अपने पापो को भस्म करके भविष्य को निष्कलक बनना चाहिए। भीलो के विषय मे कहा जाता है कि शपथ दिलाने पर वे मरने से बचने के लिए भी झूठ नही बोलते। फिर आप कुलीन और धर्मात्मा कहला कर भी अगर तुच्छ बात के लिए असत्य का आचरण करे तो कितना अनुचित है?

सत्य के प्रति गाधीजी की दृढता से यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्यनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय में पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा हो तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नही किया। सीता अनेक प्रलोभनो के आगे भी सत्य का ही आराधन करती रही। इन सब प्राचीन आख्यानो को गाधीजी की सत्यनिष्ठा देखते हुए कपोल–कल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है? गाधीजी की सत्यनिष्ठा को देखते हुए सहज ही यह विचार आता है कि इस गये–गुजरे जमाने मे भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढता दिखाने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीन काल मे ऐसे सत्य–निष्ठ पुरुष क्यो न रहे होगे?

कविसम्राट ने आगे कहा – गाधीजी मे प्रामाणिकता की भी प्रचुरता हैं। उनके जीवन–व्यवहार मे कही अप्रामाणिकता का प्रवेश नही देखा जाता। आप चाहे जितनी सम्पत्ति उन्हे दीजिए। जिस कार्य के लिए आप देगे उसी मे वे उसे व्यय करेगे। एक पाई भी वे उसमे से अपने लिए व्यय न होने देगे।

एक ओर इस समय भी गाधीजी इस प्रकार की प्रामाणिकता रखते हैं, दूसरी ओर आजकल अप्रामाणिकता की पराकाष्ठा देखी जाती है। कई लोग अपने यहा जमा धर्मादा खाते की रकम मे से थोडा–बहुत देकर नाम कमाते हैं और कुछ तो धर्मादे की सारी रकम ही हडप जाते हैं। ऐसे लोगो को गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा लेनी चाहिए।

गाधीजी की इन विशेषताओ को सुनकर अमेरिका के बडे–बडे पादरियो तक ने उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया। गाधीजी मे उल्लिखित विशेषताओ के अतिरिक्त और भी अनेक असाधारण गुण विद्यमान हैं। उन गुणो के सबध मे वही व्यक्ति ठीक–ठीक बतला सकता है जो गाधीजी के निकट परिचय मे रहता है। फिर भी उनके सार्वजनिक जीवन से फलित होने वाले कुछ गुणो का परिचय मिलता है। उन अनुकरणीय गुणो मे से एक है सेवा–धर्म। गाधीजी के सेवा–धर्म के विषय मे श्रीयुत् श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है – शास्त्रीजी राजनीति मे नरम दली माने जाते हैं। गाधीजी से उनका राजनीतिक मतभेद भी रहता है। शास्त्रीजी ने सन 1914 मे यूरोप मे देखा कि गाधीजी भयकर कोढी या इसी प्रकार के अन्य रोगियो के शरीर पर भी अपने हाथो से पटटी बाधते हैं। सहानुभूति से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। प्रेम की प्राञ्जल ज्योति उनकी आखो मे चमक रही है। [illegible]

श्रीनिवासजी शास्त्री का हृदय गाधीजी के विषय मे सहसा पलट गया। मन ही मन गाधीजी जैसे सच्चे मानव–सेवक की अवज्ञा करने के अपराध के लिए उन्होने पश्चात्ताप किया।

गाधीजी की विशेषता को जान लेना मात्र ही आपके लिए पर्याप्त नही है। उनके जीवन की अपने जीवन के साथ तुलना भी कर देखो। गाधीजी अज्ञात अपरिचित रोगियो की आत्मीय भाव से सेवा करते हैं, तब आप अपने घर के या सहधर्मी की भी सेवा करते है या नही? किसी दीन–दु खी को देखकर आप लापरवाही से यह तो नही सोचते या कहते कि हम क्या करे, इसने जैसा किया है वैसा भोगेगा। इसके कर्मफल–भोग मे हम हस्तक्षेप क्यो करे? अगर आपके मुख से ऐसे शब्द निकलते हैं तो आप अपनी वाणी का दुरुपयोग ही नही करते, बल्कि मानवता के प्रति घोर अपराध करते हैं। अगर हाथी के भव मे मेघकुमार ने यही सोचा होता कि यह खरगोश अपने किये का फल भोग रहा है तो क्या हाथी मेघकुमार का जीवन पा सकता था? भगवान क्या यह कहते कि मेघकुमार! तुम हाथी के भव मे शशक पर अनुकम्पा करने के कारण मेघकुमार बने हो। वास्तव मे दु खी को देखकर जिसके दिल मे दया का स्रोत बहने लगता है, उसके दु ख उसी स्रोत मे बह जाते है। जिसका अन्त करण करुणा की कल्लोलमाला से सकुल है उसने अपना जीवन सार्थक बनाया है। सेवा, मानव–जीवन का बहुमूल्य लाभ है। सेवा की सीमा नही है। वहा स्व–पर का भेद नही है। अपनी सन्तान के समान ही प्रेमपूर्वक दूसरे की सन्तान की सेवा करना मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है। शास्त्र सेवा–भावना की शिक्षा देता है। शास्त्र की इस शिक्षा के होते हुए भी सेवा मे आपको कठिनाई प्रतीत होती है। गाधीजी जैसी महिमा यदि आपको मिले तो आप बडी प्रसन्नता के साथ उसे अपना लेने को तत्पर हो जाएगे, पर गाधीजी जैसी सेवा करने का कार्य किसी और को सौंप देने का प्रयत्न करेगे? गाधीजी की सेवा–भावना ने उनके विरोधियो को भी अपना प्रशसक बना लिया है। आज उनके विरोधी भी मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करते हैं।

जैन शास्त्र मे क्षमा की बडी प्रशसा की गई है। साधु के दस धर्मो मे क्षमा को पहला स्थान दिया गया है। साथ ही क्षमा का असली रूप क्या है और उसकी सीमा क्या है– यह बताने के लिए गजसुकुमार मुनि का आदर्श दृष्टात शास्त्रो मे वर्णित है। गजसुकुमार की क्षमा चरम सीमा की क्षमा है।

सत्य के प्रति गाधीजी की दृढता से यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्यनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय मे पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा हो तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नही किया। सीता अनेक प्रलोभनो के आगे भी सत्य का ही आराधन करती रही। इन सब प्राचीन आख्यानो को गाधीजी की सत्यनिष्ठा देखते हुए कपोल–कल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है? गाधीजी की सत्यनिष्ठा को देखते हुए सहज ही यह विचार आता है कि इस गये–गुजरे जमाने में भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढता दिखाने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीन काल मे ऐसे सत्य–निष्ठ पुरुष क्यो न रहे होगे?

कविसम्राट ने आगे कहा – गाधीजी मे प्रामाणिकता की भी प्रचुरता हैं। उनके जीवन–व्यवहार मे कहीं अप्रामाणिकता का प्रवेश नहीं देखा जाता। आप चाहे जितनी सम्पत्ति उन्हे दीजिए। जिस कार्य के लिए आप देगे उसी मे वे उसे व्यय करेगे। एक पाई भी वे उसमे से अपने लिए व्यय न होने देगे।

एक ओर इस समय भी गाधीजी इस प्रकार की प्रामाणिकता रखते हैं, दूसरी ओर आजकल अप्रामाणिकता की पराकाष्ठा देखी जाती है। कई लोग अपने यहा जमा धर्मादा खाते की रकम मे से थोडा–बहुत देकर नाम कमाते हैं और कुछ तो धर्मादे की सारी रकम ही हडप जाते हैं। ऐसे लोगो को गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा लेनी चाहिए।

गाधीजी की इन विशेषताओ को सुनकर अमेरिका के बडे–बडे पादरियो तक ने उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया। गाधीजी मे उल्लिखित विशेषताओ के अतिरिक्त और भी अनेक असाधारण गुण विद्यमान हैं। उन गुणो के सबध मे वही व्यक्ति ठीक–ठीक बतला सकता है जो गाधीजी के निकट परिचय मे रहता है। फिर भी उनके सार्वजनिक जीवन से फलित होने वाले कुछ गुणो का परिचय मिलता है। उन अनुकरणीय गुणो मे से एक है सेवा–धर्म। गाधीजी के सेवा–धर्म के विषय मे श्रीयुत् श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है – शास्त्रीजी राजनीति मे नरम दली माने जाते हैं। गाधीजी से उनका राजनीतिक मतभेद भी रहता है। शास्त्रीजी ने सन् 1914 मे यूरोप मे देखा कि गाधीजी भयकर कोढी या इसी प्रकार के अन्य रोगियो के शरीर पर भी अपने हाथो से पटटी बाधते हैं। सहानुभूति से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। प्रेम की प्राञजल ज्योति उनकी आखो मे चमक रही है। यह सब [illegible]

श्रीनिवासजी शास्त्री का हृदय गाधीजी के विषय मे सहसा पलट गया। मन ही मन गाधीजी जैसे सच्चे मानव–सेवक की अवज्ञा करने के अपराध के लिए उन्होने पश्चात्ताप किया।

गाधीजी की विशेषता को जान लेना मात्र ही आपके लिए पर्याप्त नहीं है। उनके जीवन की अपने जीवन के साथ तुलना भी कर देखो। गाधीजी अज्ञात अपरिचित रोगियो की आत्मीय भाव से सेवा करते हैं तब आप अपने घर के या सहधर्मी की भी सेवा करते है या नहीं? किसी दीन–दु खी को देखकर आप लापरवाही से यह तो नही सोचते या कहते कि हम क्या करे, इसने जैसा किया है वैसा भोगेगा! इसके कर्मफल–भोग मे हम हस्तक्षेप क्यो करे? अगर आपके मुख से ऐसे शब्द निकलते हैं तो आप अपनी वाणी का दुरुपयोग ही नही करते, बल्कि मानवता के प्रति घोर अपराध करते हैं। अगर हाथी के भव मे मेघकुमार ने यही सोचा होता कि यह खरगोश अपने किये का फल भोग रहा है, तो क्या हाथी मेघकुमार का जीवन पा सकता था? भगवान क्या यह कहते कि मेघकुमार! तुम हाथी के भव मे शशक पर अनुकम्पा करने के कारण मेघकुमार बने हो। वास्तव मे दु खी को देखकर जिसके दिल मे दया का स्रोत बहने लगता है, उसके दु ख उसी स्रोत मे बह जाते है। जिसका अन्त करण करुणा की कल्लोलमाला से सकुल है उसने अपना जीवन सार्थक बनाया है। सेवा मानव–जीवन का बहुमूल्य लाभ है। सेवा की सीमा नहीं है। वहा स्व–पर का भेद नहीं है। अपनी सन्तान के समान ही प्रेमपूर्वक दूसरे की सन्तान की सेवा करना मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है। शास्त्र सेवा–भावना की शिक्षा देता है। शास्त्र की इस शिक्षा के होते हुए भी सेवा मे आपको कठिनाई प्रतीत होती है। गाधीजी जैसी महिमा यदि आपको मिले तो आप बडी प्रसन्नता के साथ उसे अपना लेने को तत्पर हो जाएगे पर गाधीजी जैसी सेवा करने का कार्य किसी और को सौंप देने का प्रयत्न करेंगे? गाधीजी की सेवा–भावना ने उनके विरोधियो को भी अपना प्रशसक बना लिया है। आज उनके विरोधी भी मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करते हैं।

जैन शास्त्र मे क्षमा की बडी प्रशसा की गई है। साधु के दस धर्मों मे क्षमा को पहला स्थान दिया गया है। साथ ही क्षमा का असली रूप क्या है और उसकी सीमा क्या है– यह बताने के लिए गजसुकुमार मुनि का आदर्श दृष्टात शास्त्रो मे वर्णित है। गजसुकुमार की क्षमा चरम सीमा की क्षमा है।

उसके विषय मे कोई कह सकता है कि हमे तो बिच्छू का दश भी सह्य नहीं होता तो सिर पर पाल बाधकर जलाई हुई अगीठी की घोरतर वेदना गजसुकुमार मुनि कैसे सहन कर सके होगे? इसका उत्तर यह है कि अपनी दुर्बलता को जगत् की दुर्बलता का माप–दण्ड नही बनाना चाहिए। जगत मे इस समय भी हमसे अधिक सहनशील क्षमावान् व्यक्ति देखे–सुने जाते हैं। इससे प्राचीन महापुरुषो की क्षमा और सहिष्णुता के प्रति सदेह नही रखा जा सकता। प्राचीन काल के महाप्राण महापुरुषो ने अगर हमे आश्चर्य मे डाल देने वाली क्षमा का सेवन किया है, तो वह अविश्वसनीय नहीं हो सकती।

गाधीजी की क्षमा के विषय मे एक बात सुनी जाती है। दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी ने सत्याग्रह सग्राम छेडा था। उस समय एक पठान को न मालूम क्यो यह सदेह हो गया कि उन्होने हमे तो सत्याग्रह मे झोक रक्खा है और आप स्वय सरकार से मिल गये हैं। पठान इस सदेह के कारण गाधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हे मार डालने के लिए सकल्प कर बैठा।

एक दिन पठान को गाधीजी मिल गये। पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हे उठाकर गटर मे पटक दिया। गाधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये। उनके मित्रो ने पता लगाकर उन्हे अस्पताल पहुचाया। गाधीजी होश मे आये। उनके मित्रो ने कहा – आपको उस दुष्ट पठान ने बहुत कष्ट पहुचाया है। आपके ठीक होते ही उस पर मुकदमा चलाया जायेगा। गाधीजी की महत्ता उस समय देखने योग्य थी। उन्होने कहा – अपने भाई पर मुकदमा मैं नही चला सकता। उसे मुझ पर सदेह हुआ और इसी कारण उसने मेरे साथ यह व्यवहार किया हे। ऐसे प्रसग तो मेरी क्षमा की कसोटी हैं। मुझमे कितनी क्षमा है, यह अब मालूम हो सकेगा। गन्ना खेत मे भी मीठा रहता है घानी मे पेला जाता है तब भी मीठा रहता हे भट्टी पर चढाने पर भी मीठा रहता है। वह अपनी मिठास कभी नहीं त्यागता है। मैं क्या गन्ने से भी बदतर हूं, जो अपनी प्रकृति का परित्याग कर अपने ही भाई पर दावा दायर करूं? चलो उसके पास चले और इस तरह कसोटी करने के कारण उसका आभार मानें।

गाधीजी उसके यहा गये। गाधीजी की वात सुनकर [illegible] पलट गया। वह अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने लोगों के कहने–सुनने से व्यर्थ ही एक सत्पुरुष को पीडा पहुचाई। पठान ने [illegible] गाधीजी के पैरो पडकर क्षमायाचना की। गाधीजी ने अगर [illegible]

दायर किया होता तो वे उसे कारागार मे भले ही भिजवा देते, पर उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते थे। उस अवस्था मे दोनो को वह रस कैसे मिलता?

गाधीजी ने गटर मे फेक देने वाले पठान पर मुकदमा नही चलाया। फिर क्या आप अपने सगे भाई पर मुकदमा चलाएगे? नही, तो भाई पर मुकदमा चलाने का नियमानुसार त्याग क्यो नही कर लेते? जिन हाकिमो के सामने भाई–भाई के मुकदमे आते हैं वे इस प्रकार की घटना से और भी उपदेश ले सकते है। उन्हे मालूम हो सकता है कि ससार मे स्वार्थ की कैसी भीषण आग धधक रही है। भाई, भाई का अधिकार हडपना चाहता है। इस पकार की घटनाए वास्तव मे प्रत्यक्ष उपदेश है।

गाधीजी की क्षमा–भावना पर विचार करने से यह भी प्रतीत होता है कि ऐसी उत्तम क्षमा धारण करने वाले पुरुष आज भी मौजूद हैं, तो भगवान् नेमिनाथ के समय गजसुकुमार जैसे क्षमाशील श्रमण हो, इसमे आश्चर्य क्या है?

गाधीजी की दया के विषय मे भी एक घटना सुनी जाती है। जगत् के दूसरे लोग जिसे दुत्कारते हैं सच्चा दयालु उसे अपनी दया का प्रथम पात्र समझता है। आज ससार मे बहुतेरे लोग हैं जो मुह से दया–दया चिल्लाते हैं पर दया के लिये करते कुछ भी नही हैं। परन्तु गाधीजी ने दया के लिए क्या किया है यह ध्यान देने योग्य है। गाधीजी गन्तूर गये थे। वहा वेश्याओ की एक सभा थी। वेश्याओ ने गाधीजी से मिलने का विचार किया। गाधीजी ने कहा – वे मेरी बहिने हैं प्रसन्नता के साथ मुझसे मिल सकती हैं। आखिर वे गाधीजी से मिली। गाधीजी ने उनके वस्त्र देखकर कहा – बहिनो! तुम इस प्रकार के गदे वस्त्र न पहना करो। तब वेश्याओ ने कहा – आप इन वस्त्रो को गदा कहते हैं पर हमारे पास दूसरे वस्त्र ही नहीं हैं।

वेश्याओ का यह कथन सुनकर गाधीजी ने कहा – नीच धन्धा करने पर भी अगर इन्हे पूरे और साफ–सुथरे वस्त्र नसीब नहीं होते तो मेरे दूसरे गरीब भाइयो की क्या स्थिति होगी? यह सोचकर उन्होने अपने सब कपडे त्याग दिये। वे चादर लगोटी लगाकर रहने लगे। दया का यह कैसा आदर्श उदाहरण है। आप तो दया की खातिर चर्बी के वस्त्र भी नहीं त्याग सकते। अगर आप सच्चे अहिसा–धर्म का पालन करे तो आपका भी कल्याण हो और दूसरो का भी। चर्बी लगे हुए वस्त्र की अपेक्षा खादी मे अधिक पैसे लगते जान

पडेगे, लेकिन यह देखना चाहिए कि खादी मे खर्च हुआ प्रत्येक पैसा हमारे देश के गरीब भाइयो के पास पहुचता है और मैनचेस्टर की मलमल मे व्यय हुआ रुपया विदेश चला जाता है। अग्रेज लोग अपने देश का कितना खयाल रखते हैं? कहते हैं, बम्बई मे एक अग्रेज ने अपने नौकर से बूट की जोडी मगवाई। नौकर बाजार गया। उसने देखा देशी बूट और विलायती बूट बनावट और मजबूती मे समान है। फिर भी देशी बूट कीमत मे सस्ते और विलायती महगे हैं। यह सोचकर वह देशी बूट ले आया। अग्रेज ने कहा – अरे! यह इन्डियन बूट तू क्यो ले आया है? नौकर ने जब देशी बूट लाने का कारण उसे समझाया तब वह अग्रेज कहने लगा – विलायती बूट महगा है तो भी मुझे वही खरीदना है। वह पैसा मेरे देश मे रहेगा। अगर हम लोग इस प्रकार दूसरे देश को अपना पैसा देने लगेगे, तो हम अपनी मातृभूमि के द्रोही हो जाएगे। इसी प्रकार खादी मे अगर आपके कुछ अधिक पैसे लगेगे तो भी वे सब पैसे गरीब स्वदेशवासियो के काम मे आवेगे और इससे देश का कल्याण होगा। इसके विपरीत चर्बी लगे हुए मिल के वस्त्र खरीदने पर पैसे प्राय विदेशी पूजीपतियो की तिजोरियो मे जाएगे।

मालूम हुआ है कि मद्रास के श्री राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला है। उस कारखाने के जरिये 158 गावो के लोगो का दुर्भिक्ष के समय गुजारा चला। छोटे–छोटे कामो से भी गरीबो की कितनी सहायता की जा सकती है, इसका विचार करो और साथ ही खादी एव चर्बी वाले मिल के वस्त्र के आरम्भ के विषय मे तुलनात्मक विचार करो। सोचो कि किसमे अल्पारम्भ है और किसमे महारम्भ है? यह विचारने से मालूम हो जायगा कि दोनो प्रकार के वस्त्रो मे क्या और कितना अन्तर है? खादी पहनने वाले को आजकल कोई बुरा नही कहता। कदाचित् कोई बुरा कहने भी लगे तब भी किसी के कहने मात्र से कोई बुरा नही हो जाता। इसके अतिरिक्त परमात्मा के समीप तो आप अल्पारम्भी ही समझे जाएगे। अब तो खादी भी बढिया बनने लगी है। पहले इस देश मे कैसा अच्छा कपडा बनता था। सुना हैं ढाका का मलमल सात सौ रुपये की कीमत तक का होता था। ढाका की मलमल पहनने के लिए यूरोप की ललनाए भी ललचाती थी। इतिहास के अनुसार ढाके के वस्त्र–व्यवसाय का अत्यन्त अनीतिमय उपायो से नष्ट किया गया है। मलमल बनाने वाले कारीगरो के अगूठे तक कटवा डाले। यह सब अत्याचार मिल के चर्बी लगे वस्त्रो के लिए ही हुआ था।

तात्पर्य यह है कि गाधीजी ने दया से आर्द्रित होकर वेश्याओ के कपडे देखकर अपने वस्त्र सीमित कर लिये। गाधीजी तो एक खद्दर के टुकडे और लगोटी पर निर्वाह करने लगे पर आप क्या चर्बी वाले मिल के कपडे भी नहीं छोड सकते?

इस विषय मे अव्रत की क्रिया की दृष्टि से भी विचार करो। मैनचेस्टर का चर्बी लगा हुआ वस्त्र पहनने से अव्रत की कैसी क्रिया लगती है? वहा के वस्त्र का एक टुकडा पहनने से भी आपको सारे मैनचेस्टर की अव्रत की क्रिया लगती है। यही बात अन्य चर्बी वाले वस्त्रो के सबध मे कही जा सकती है। ऐसा होने पर भी क्या आप चर्बी वाले मिल के वस्त्र नही त्याग सकते?

गाधीजी की दया का एक और उदाहरण सुनिये। सुना है, राजकोट के ठाकुर साहब लाखाजीराज गाधीजी के प्रति बहुत सद्भाव रखते थे। गाधीजी जब राजकोट आये तो लाखाजीराज ने उन्हे मान–पत्र देने का विचार किया। मान–पत्र रखने के लिए उन्होने पेरिस से एक बढिया सन्दूक बनवा कर मगवाया। सन्दूक अत्यन्त सुन्दर था। पर जिसके हृदय मे पाप के प्रति गर्हा होती है वह दूसरो के पाप को भी अपना पाप मानता है। बेटे की बीमारी के लिए बाप अपने अभाग्य को कोसता है। बाप अपने बेटे को ही बेटा समझता है पर जिसका हृदय अत्यन्त उदार होता है जो **वसुधैव कुटुम्बकम्** की विशाल भावना का प्रतीक बन जाता है वह इस बात का भलीभाति विचार करने लगता है कि मेरे असयम से किस–किस को किस–किस प्रकार का कष्ट होता है?

गाधीजी ने राजकोट मे ही शिक्षा पाई थी और वही पर साधुमार्गी जैन महात्मा बेचरदासजी स्वामी से मदिरा, मास और परस्त्री सेवन का त्याग किया था। उन्होने जिन चीजो का त्याग किया अनेक कष्ट उठाने पर भी फिर कभी उनका सेवन नही किया।

आज मेरे विषय मे कहा जाता है कि 'मैं त्याग करने–कराने की बात कम करता हू। वनस्पति और जमीकद आदि के त्याग का उपदेश कम देता हू। पूर्ववर्ती आचार्य पूज्य श्रीलालजी महाराज तो इसके लिये बहुत उपदेश देते थे। मेरे विषय मे यह कहा जाता है। पर मैं कहता हू – वनस्पति जमीकन्द आदि के त्याग का उपदेश देना मेरे लिए आनन्द की बात है। परन्तु उसके लिए पात्र भी तो चाहिए। आज मानव–समाज मे बहुत बडे–बडे पाप

फूट निकले हैं। ऐसे बडे-बडे पाप पहले नही थे। तब, छोटे पापो का त्याग कराने से पहले बडे पापो का त्याग कराना आवश्यक है या नही? जब बडे पापो की प्रचुरता न थी, तब छोटे पापो का त्याग कराना उचित था और जब बडे पापो का प्राचुर्य हो गया है तो पहले उन्ही का त्याग कराना उचित है। इस समय जमीकन्द और रात्रि-भोजन के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाय, या पचेन्द्रिय जीवो की घोर हिसा करके प्राप्त की जाने वाली चर्बी लगे हुए वस्त्रो के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाय? मैं जिन बडे पापो का उल्लेख अपने उपदेश मे करता हू, उन्हे आप आज ही त्याग दीजिए। फिर छोटे पापो के त्याग का उपदेश देने मे मुझे असीम प्रसन्नता होगी। बडे-बडे पापो की ओर ध्यान न देकर अपेक्षाकृत छोटे पापो को पहले दूर करने के लिए कैसे कहा जाय?

लाखाजीराज पेरिस से बनकर आये हुए सन्दूक मे मान-पत्र देने लगे। उस समय गाधीजी ने कहा – हमारे लाखो भाई रोटी के लिए तरस रहे हैं। इस अवस्था मे मुझे ऐसे सन्दूक मे मान-पत्र देना क्या मेरा उपहास नहीं है? ऐसी कीमती सन्दूक रखने की जगह भी मेरे घर मे नही है। गाधीजी मे यह कैसा अपुरस्कार भाव है।

गाधीजी मे अनेक उत्तमोत्तम सद्गुण हैं। उनकी प्रामाणिकता की प्रशसा उनके विरोधी भी करते हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। हृदय मे सच्ची दया तभी अकुरित होती है, जब श्रीमन्ताई का ढोग त्याग कर सादगी अपनाई जाती है। इसीलिए उन्होने श्रीमन्ताई त्याग कर फकीरी बाना धारण किया हे। वे अगर चाहते तो श्रीमान् बनकर ससार के सभी भोग-विलास भोग सकते थे। कहते हैं – गाधीजी के लडके ने उन्हे पत्र लिखा था कि अब आप बडे आदमी गिने जाते हैं आप बेरिस्टर भी हैं ओर बुद्धिमान भी हैं। इसलिए अब आप ऐसा कोई व्यवसाय सोचिये जिससे हम लोग श्रीमान् बन सकें। उसका अत्यन्त भावमय और मार्मिक उत्तर गाधीजी ने दिया था। [illegible] लिखा था – मैं सुदामा और नरसी मेहता से भी ज्यादा गरीब बनने की भावना रखता हू। तुम बहुत धनवान बनना चाहते हो और मैं बहुत गरीब [illegible] हू। ऐसी दशा मे तुम्हारा ओर मेरा मेल कैसे बैठेगा?

आजकल बहुत-से लोग श्रीमन्ताई के ढोग मे पडकर गरीबो [illegible] से आखे बद कर लेते हे। उनके दिल मे दीन-दुखियो की [illegible] करने का विचार तक नहीं आता है। मगर उन्हे यह ध्यान [illegible] समाज की यह विषमता एक दिन असह्य हो जायगी और [illegible]

होगी। उस क्राति मे गरीब–अमीर का भेदभाव विनष्ट हो जायेगा और एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा। बनेडा (मेवाड) मे पूज्य श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा न करो। नहीं तो बॉलशेविज्म आ जायेगा। उस समय आप श्रीमन्त लोगो को कष्ट मे पडना पडेगा। उस समय गरीब लोग अमीरो से कहेगे – 'बताओ, तुम्हारे पास यह धन कहा से आया है? हम गरीबो की रोटियो को पैसे के रूप मे जमा करके हमे तुमने भूखे मारा है। अब तुम अमीर और हम गरीब नही रह सकते। तुम्हे भी हमारे समान बनना पडेगा। हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा। अब दूसरे के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उडा सकते। बिना पर्याप्त परिश्रम किये किसी को भर–पेट खाने का क्या अधिकार है?' इस प्रकार जिन गरीबो की आज उपेक्षा की जाती है वही गरीब आपकी श्रीमन्ताई नष्ट कर डालेगे। अगर आप चाहते है कि बॉलशेविज्म न आवे – क्योकि वह सिद्धान्त भी अनेक दोषो और त्रुटियो से भरा हुआ है– तो आपको गरीबो की सुधि लेनी चाहिए। अगर आप गरीबो की रक्षा करेगे, तो गरीब आपकी रक्षा मे अपने प्राण तक निछावर कर देगे। अतएव गरीबो की सहायता के लिए और अपनी रक्षा के लिए खादी को अपनाओ। गरीबो की रक्षा किए बिना आपकी रक्षा होना कठिन है। चर्बी के वस्त्र त्यागने पर आपकी आत्मा को शाति मिलेगी, गरीबो की सहायता होगी, और आप पाप से बचे रहेगे। इससे मुझे भी प्रसन्नता होगी। मेरी यह प्रबल कामना है कि आपको सुबुद्धि प्राप्त हो और इसके लिए आप परमात्मा की शरण ग्रहण करे जिससे आपकी आत्मा का कल्याण हो।

# जन्माष्टमी

य शैवा समुपासते शिव इति, ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध ईति प्रमाणपटव, कर्त्तेति नैयायिका।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमासका,
सोऽय नो विदधातु वाछितफल त्रैलोक्यनाथो हरि ।।

यह परमात्मा की प्रार्थना है। सभी सम्प्रदायो मे परमात्मा की प्रार्थना करने की परिपाटी है। संसार का प्रत्येक आस्तिक सम्प्रदाय किसी-न-किसी रूप मे परमात्मा की प्रार्थना करता है, पर साम्प्रदायिकता के मोह मे पड़कर प्रत्येक यही मान बैठा है कि परमात्मा हमारा केवल हमारा ही है।

इसके विरुद्ध जिन्होंने परमात्मा के स्वरूप को भलीभाति समझ लिया है वे ज्ञानी पुरुष यह मानते हैं कि परमात्मा सभी का है – सभी के लिए है। परमात्मा किसी एक का नही है और जो किसी एक का है वह परमात्मा नही है। सूर्य किसका है? सूर्य क्या किसी एक का होकर रहता है? वह सबको समान प्रकाश देता है। जो सबको समान रूप से प्रकाश नही देता वह सूर्य ही नही है।

परमात्मा की प्रार्थना करने वाले भक्त अगर यह मानते हैं कि परमात्मा त्रिलोकीनाथ है और वह अपने गुणो के द्वारा सर्वव्यापक है तो उन्हें यह भी मानना चाहिए कि वह सबका है। पुरातन महात्माओं [illegible] अनुभूति के आधार पर परमात्मा सबका है इस प्रकार की भावना [illegible] की है।

परिधि मे आ जाती है और लोग अभिमान के साथ कहते हैं – परमात्मा हमारा है, वह किसी और का नही है। पर किसी का कोई भी प्रयत्न जैसे आकाश को सार्वजनिक होने से नही रोक सकता, उसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के तग दायरे मे बद नही कर सकता। अतएव हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा सबका है अर्थात् उसकी भक्ति से सब अपना कल्याण कर सकते हैं। परमात्मा के विषय मे भेदभाव को कोई स्थान नहीं है।

प्राचीन काल के महात्माओ की कृतियो मे, यदि उन्हे बारीक दृष्टि से देखा जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि धर्म क्लेश–कलह का कारण न होने पाए। धर्म, मगलकारक ही नही है, साक्षात मगल है। और जो स्वय मगल है वह क्लेश–कलह रूप अमगल का जनक कैसे हो सकता है? ऊपर कहे गये श्लोक मे यही उज्ज्वल भावना दृष्टिगोचर होती है। आज धार्मिक उदारता का वायु बहने लगा है, इसलिए मैं परमात्मा की एकता का प्रतिपादन नही करता, वरन् प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो से यह पता चलता है कि अनेक पूर्ववर्ती महात्माओ ने अभेद दशा का अनुभव किया था और परमात्मा की अभेद–रूप मे प्रार्थना की थी।

अनुभूतिशून्य लोग परमात्मा को पाते नहीं, परमात्मा का नाम मात्र पाते हैं। परमात्मा परम प्रकर्ष को प्राप्त अनत गुणो का अखण्ड समूह है। वह एक भावमय सत्ता है पर बहिर्दृष्टि लोग उसे शब्दमय मान बैठते हैं। अनत गुणमय होने के कारण परमात्मा के अनत नाम हैं। उन सब नामो के वाच्य रूप मे जो एकता है, उसे न समझ पाने के कारण लोग परमात्मा के खण्ड–खण्ड करने पर उतारू हो जाते हैं। उनके लिए परमात्मा से बढकर परमात्मा का नाम है। अतएव वे नाम को पकड बैठते हैं। नाम के आवरण मे छिपी हुई विराट और व्यापक सत्ता को वे नही पहचानते। जिन्हे अन्तर्दृष्टि का लाभ हो गया है और जो शब्दो के व्यूह को चीरकर भीतरी मर्म तक पहुचने का सामर्थ्य रखते हैं वे नाम को गौण और वस्तु को प्रधान मानने लगते हैं। अतएव हमारे भीतर यह दिव्य भावना आनी चाहिए कि परमात्मा सबका है। उसे क्लेश–कदाग्रह का आधार बनाकर आपस मे लड–मरना नही चाहिए।

एक प्राचीन महात्मा कहते हैं – शैव जिसे शिव कहकर पूजते हैं बौद्ध जिसे बुद्ध कहते है वेदान्ती जिसे ब्रह्म कहते हैं नैयायिक जिसे कर्ता कहते है जैन जिसे अर्हन कहते हैं और मीमासक जिसे कर्म कह कर अपनी

भावना व्यक्त करते हैं, वह – जो भी कोई परम मगल मूर्ति है – हमे सिद्धि प्रदान करे। कौन समस्त प्रयोजनो को सिद्ध करे इस सबध मे कहा गया है–

**त्रैलोक्यनाथो हरि ।**

'हरि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है–

**हरति पापानि इति हरि ।**

'हर' शब्द की भी ऐसी ही व्युत्पत्ति है। अर्थात् जो पापो का हरण विनाश करता है, वह हरि या हर कहलाता है। शिव किसे कहते हैं इस सबध मे कहा गया है–**सत्य शिव सुन्दरम्** अर्थात् जो सत्य है शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है। त्रिलोकीनाथ हरि से पाप हरण करने की प्रार्थना की गई है और पापो को हरने मे हरि और हर समान अर्थ रखते हैं। फिर इन दोनो के अर्थ मे – जिसके ये दो नाम हैं उस परमात्मा मे – अन्तर क्या है? जिससे नाम की आड लेकर सिर–फुटौवल किया जाय? बौद्ध लोग भले ही परमात्मा को बुद्ध नाम देकर उनकी प्रार्थना करते हैं पर वस्तु तो वही है। उनकी प्रार्थना भी पाप का नाश करने के लिए ही है। फिर हरि हर या बुद्ध मे भेद क्या रहा? मीमासक उस परमतत्त्व को कर्म रूप मानते हैं। पर वे कर्म पापनाश करने के लिए करते हैं या पाप बढाना उनका उद्देश्य है? जैन लोग परमात्मा को अर्हन् कहते हैं। लेकिन अर्हन् कह कर पाप बढाने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते है या पाप नष्ट करने के लिए? जब पापो का नाश करने के लिए इन सब नामो से परमात्मा की प्रार्थना की जाती है तो क्लेश और कलह का कारण क्या है? जल सलिल और पानी जब एक ही वस्तु के अलग अलग नाम हैं तो क्या जल से ही प्यास बुझेगी? पानी से नही बुझेगी? तात्पर्य यह है कि प्यास शान्त करने के लिए चाहे जल पीया जाय चाहे सलिल पीया जाय और चाहे पानी पीया जाय सब एक ही बात है। इसी प्रकार पाप नाश करने के लिये चाहे किसी भी नाम से परमात्मा की प्रार्थना की जाय उसमे भेद नही है। क्योकि नाम–भेद से [illegible] भेद नही होता। वस्तु की विभिन्नता गुण–मूलक है। अतएव परमात्मा की प्रार्थना [illegible] मे उदारभाव से काम लेना चाहिए। जैन स्तोत्रो मे जैनाचार्यो ने इसी प्रकार की उदार भावना से काम लिया है। जैन स्तोत्रो मे [illegible] प्रसिद्ध और प्रिय है। उसमे श्वेताम्बर दिगम्बर आदि [illegible] भेद नहीं है। उसमे कहा है –

त्वामव्यय विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्य,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वर विदितयोगमनेकमेक,
ज्ञानस्वरूपममल प्रवदन्ति सत ।।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
त्व शकरोऽसि भुवनत्रय शटरत्वात्।
धाताऽसि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्त त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

इन श्लोको मे परमात्मा की प्रार्थना, ब्रह्मा विष्णु शिव और पुरुषोत्तम आदि नामो से की गई है। यहा इन सबमे किसी प्रकार का भेद–भाव नही रक्खा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है–

तत्र यत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोष कलुष स चेद्भवान्, एक एव भगवन्। नमोऽस्तुते।।

अर्थात्–चाहे जिस सम्प्रदाय मे, चाहे जिस रूप मे, चाहे जिस नाम से आप चाहे जो हो समस्त दोषो से रहित आप एक ही हैं। ऐसे हे एक–रूप भगवान्! आपको नमस्कार हो।

इस श्लोक मे स्पष्ट रूप से परमात्मा के विभिन्न नामो मे एकता का प्रतिपादन किया गया है। वास्तव मे प्रार्थना करने से पहले हमे प्रार्थना के उद्देश्य का निश्चय कर लेना चाहिए। हम पाप बढाने के लिये प्रार्थना करते है या पाप नष्ट करने के लिये? यदि प्रार्थना का उद्देश्य पाप नष्ट करना है तो परस्पर की भिन्नता और द्वेष भावना से पाप नष्ट नही होते। पाप नष्ट करने का उपाय क्या है? यह मैं आपको बतलाना चाहता हू। आप ध्यान लगा कर सुने और उदारता के साथ उस पर विचार करे।

आज जिस महापुरुष का जन्मदिन है, उस महापुरुष ने भारत मे जिस शान्ति की प्रतिष्ठा की थी और जिस उदारता का आदर्श उपस्थित किया था और इसके लिए उन्होने महान् कार्य किये थे, उन्हे भूलकर हम अपना ही अकल्याण करते हैं और देश का भी अकल्याण करते है। आज की जनता उस महापुरुष के कार्य को भूलकर दु खी हो रही है। जन्माष्टमी का यह दिन भारत के कोने–कोने मे मनाया जाता है। यद्यपि साम्प्रदायिक या प्रातीय भेद के कारण आज के दिन को कोई श्रावण बदी 8 कहते हैं कोई भादो बदी 8 कहते हैं लेकिन इस दिन को जन्माष्टमी सभी कहते है। श्रीकृष्ण के उज्ज्वल चरित्र के कारण सभी लोग उन्हे मानते हैं। सभी के हृदय मे उनके

प्रति आदर और श्रद्धा का भाव है। केवल सम्प्रदाय-भेद के कारण उन्हे भिन्न-भिन्न रूप मे माना जाता है।

कोई यह कह सकता है कि यदि श्रीकृष्ण एक ही थे तो इस प्रकार की साम्प्रदायिक भिन्नता का कारण क्या है? इसका उत्तर यह है कि दृष्टि भेद के कारण एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न रूप मे दिखाई देती है। उदाहरण के लिए रामायण को लीजिए। वाल्मीकीय रामायण, तुलसीदास की रामायण और गिरिधर की रामायण इन सबमे एक ही राम-चरित्र का वर्णन किया गया है, फिर भी तीनो मे राम के चरित्र मे बहुत अन्तर पाया जाता है। रामचन्द्र तो एक ही थे, पर उनका वर्णन करने वालो की दृष्टि भिन्न-भिन्न थी। यथा **दृष्टिस्तथा सृष्टि** । इसी प्रकार कृष्ण का चरित्र महाभारत गीता भागवत और गीतगोविन्द से अलग-अलग प्रतिबिम्बित होता है। यह तो प्राचीन काल की बात है, मगर वर्तमान मे भी ऐसा ही देखा जाता है। लोकमान्य तिलक और गाधीजी से कौन अपरिचित हैं? ये दोनो ही भारतवर्ष के विख्यात पुरुष हैं और दोनो ने ही गीता के विषय मे अपना-अपना मन्तव्य प्रकट किया है। मगर तुलनात्मक अध्ययन करने वाले को यह स्पष्ट जान पडेगा कि तिलक के कृष्ण ओर गाधीजी के कृष्ण मे पर्याप्त अन्तर है। इस प्रकार दृष्टि भेद से एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न रूप मे दिखाई पडती है और प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी मूल दृष्टि के अनुसार ही कृष्ण को चित्रित किया है। जो [illegible] साहित्य ने भी कृष्ण को अगर अपनी मूल परम्परा के अनुकूल अपनाया है तो यह स्वाभाविक ही हे। प्रत्येक महापुरुष का जीवन सम्प्रदाय की सीमा से आगे बढ जाता है। वह धर्म के उस विशाल आर वृहद् क्षेत्र मे विस्तीर्ण हो जाता है, जहा सम्प्रदाय अस्त हो जाते हे या सब सम्प्रदाय मिलकर [illegible] हो जाते हे। ऐसे पुरुष का जीवन-व्यवहार किसी भी सम्प्रदाय के मूल आचार से विरोधी नहीं रह जाता। अत सभी सम्प्रदाय उस सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और अपने सम्प्रदाय से अभिन्नता पाकर उसे अपने सम्प्रदाय [illegible] देते हैं। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है। कोइ परमात्मा या [illegible] किसी भी दृष्टि स अपनावे तत्त्व सबका एक होना चाहिए। व्यवहार [illegible] नही होनी चाहिए। चाहे कचहरी हो

उनसे सभी को पेरणा प्राप्त हो सकती है। दृष्टि–भिन्नता के कारण किसी महापुरुष या परमात्मा के नाम पर आपस मे द्वेष उत्पन्न करना या ध्येय से विपरीत आचरण करना उचित नही है।

यह सभी जानते हैं कि कृष्ण का जन्म कस के कारागार मे हुआ था। ऐसा होने पर भी कृष्ण का महत्त्व पाचीन काल से अब तक बना हुआ है कि सभी लोग उनका जन्मदिन मनाकर लाभ उठाते हैं। कृष्ण जैसे सत्त्वशाली महापुरुष का जन्म कारागार मे क्यो हुआ था यह प्रश्न ही इस बात की सूचना देता है कि माया का चश्मा उतार देने पर और उदारता से काम लेने पर कृष्ण के जीवन से बहुत–कुछ लाभप्रद शिक्षा ली जा सकती है।

कृष्ण का जन्म आज की काली निशा मे अर्धरात्रि के समय कस के काले कैदखाने मे हुआ था। मगर कैदखाने मे जन्मे हुए कृष्ण हमारा कल्याण नही कर सकते हमारा कल्याण हमारे हृदय मे जन्मे हुए कृष्ण ही कर सकेगे। अगर आप कृष्ण को आदर्श पुरुष मानते हैं, अगर आपके हृदय मे कृष्ण के पति श्रद्धा का भाव है, तो कृष्ण को अपने अन्त करण मे जन्माओ। कृष्ण के जीवन का अनुकरण करने के लिए उनके जीवन से फूट पडने वाली सादगी को अपनाओ। ऐसा करने से कृष्ण–जन्माष्टमी का मनाना वास्तविक कहा जा सकता है। भूतकाल मे आपके इसी जीवन मे अनेक जन्माष्टमिया आईं और चली गईं? उनके द्वारा आपका क्या कल्याण हुआ है? इसी भाति यह जन्माष्टमी भी अगर आपने मनाली और हृदय की कालिमा को नष्ट करने के लिए कृष्ण को हृदय मे न जन्माया तो आपका कल्याण न होगा। अतएव यह न समझो कि कृष्ण का जन्म हजारो वर्ष पूर्व हुआ था बल्कि यह मानो कि कृष्ण अभी–अभी हमारे हृदय मे जन्मे हैं। ऐसा अनुभव करोगे तो आपका कल्याण होगा। जो हजारो वर्ष पहले कृष्ण का जन्म लेना मानता है, उसने कृष्ण को ठीक तरह नही समझा है। कृष्ण के स्थूल शरीर को कृष्ण नहीं कहा जा सकता। कृष्ण का अर्थ है सादगी कृष्ण का अर्थ है सत्य, कृष्ण का अर्थ है निरभिमानता और कृष्ण का अर्थ है सरलता। जिसने कृष्ण का यह भावमय अर्थ समझा उसी ने कृष्ण को समझा है और वही कृष्ण के सहारे आत्म–कल्याण कर सकता है।

अगर आप हजारो वर्ष पूर्व कृष्ण का जन्म मानेगे तो आपको ऐसा मानना पडेगा कि कृष्ण आज अतीत के उदर मे समा चुके हैं। अब उनकी कोई सत्ता नही है। और जिसकी सत्ता नहीं है वह हमारे कल्याण मे निमित कैसे हो सकता है? अतएव ऐसा सोचकर आप कृष्ण से कोई लाभ न उठा सकेगे।

आपको उनका विरह प्रतीत होगा और विरह मे तादात्म्य की अनुभूति नहीं हो सकेगी। अतएव कृष्ण को आप सत्य, सरलता निरहकारता आदि गुणो के रूप मे मौजूद समझे अपने साथ उनके तादात्म्य का अनुभव करे और इस अनुभव के द्वारा आत्मा का कल्याण करे।

यह बात कृष्ण के लिये कही गई है। लेकिन पहले कहा जा चुका है कि वास्तव मे परमात्मा के नाम ही जुदे–जुदे हैं परमात्मा नही। अतएव जो बात कृष्ण के विषय मे कही जाय, वह उन सबके लिए समझनी चाहिए जिनका नाम लेकर परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

कृष्ण पुराने हैं या नये? इस प्रश्न का उत्तर मैं यह दूगा कि कृष्ण नवीन हैं, पुराने नही। सूर्य अनादि से प्रतिदिन उदित होता है फिर जब सूर्य प्रभात मे उदित होता है तब कमल विकसित होते हैं या नही? कमल यह नही सोचते कि सूर्य पुराना है तो हम क्यो प्रफुल्लित हो? हा जो कमल मर गये हैं, जिनकी जड उखड गई है, वे सूर्य से सूखते हैं। जीवित कमल तो सूर्य का उदय होने पर विकसित होते ही हैं। इसी प्रकार अगर आपके अन्दर जीवन है, जागृति है, तो आप कृष्ण को नूतन ही मानेगे ओर नूतन मानकर अपने हृदय को विकसित करेगे। अगर आपने कृष्ण को भूत माना पुराना समझा और उनके चरित्र से आपके हृदय मे परिवर्तन नही हुआ तो फिर आपको यही मानना चाहिए कि हमारा हृदय मरा हुआ है अर्थात् उत्साह की भावना मर गई है।

मगर आप गृहस्थ क्या करते हैं? आप पहर–भर दिन चढे तक तो नहीं सोये पडे रहते?

सूर्य निकलने पर भी जो लोग सुस्त पडे रहते हैं, जिनमे जागृति का कोई चिह्न नजर नही आता, उनके लिए जिस प्रकार सूर्य का निकलना और न निकलना बराबर है उसी प्रकार सूर्य से भी अधिक तेजस्वी महापुरुष का जन्मदिन होने पर भी जो सुस्त और निरुत्साही बना हुआ है, उसके लिए महापुरुष का जन्म होना निरर्थक है।

आप यह कह सकते है कि हम अत्यन्त उल्लास के साथ आज कृष्ण का जन्मदिवस मनाएगे। फिर हमारे लिए कृष्ण–जन्म निरर्थक क्यो है? मगर मैं पूछता हू – जन्मदिन मनाने का आपका तरीका क्या है? अच्छा खाना–पीना और पहनना–ओढना ही क्या जन्माष्टमी मनाना है? ऐसा करना एक प्रकार की विडबना है ढोग है। जब कृष्ण स्वय ढोग से परे थे, तब उनके जन्मदिन के नाम पर ढोग रचने वाले क्या जन्माष्टमी के उपासक कहला सकते हैं? अगर आप सचमुच जन्माष्टमी मनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हृदय को जाग्रत करो हृदय मे कृष्ण को जन्माओ और कृष्ण के जीवन–व्यवहार का गहरा विचार कर सत्य एव शील को अपनाओ। ऐसा करोगे तभी सच्ची जन्माष्टमी मनाई जा सकेगी।

अब सक्षेप मे मैं यह बताऊगा कि कृष्ण कैसी परिस्थिति मे जन्मे थे और उनके जन्मकाल मे भारतवर्ष की क्या दशा थी?

जब कृष्ण का जन्म हुआ था तब भारत धर्म से शून्य–सा हो रहा था। चहु और अधर्म का प्रचण्ड प्रताप फैला हुआ था। उस समय राजा पापी थे– यह कहना पर्याप्त नही है क्योकि पाप कोई स्थूल वस्तु नही है। वह किसी के हृदय मे ही जन्मता है और जिसके हृदय मे जन्मता है उसके द्वारा जगत् मे त्राहि–त्राहि मच जाती है। जब कृष्ण जन्मे थे तब भी ऐसा ही हो रहा था। अधर्म और अत्याचार के कारण सर्वत्र हाहाकार मच रहा था। एक और कस कहता था – मैं राजा हू, राजा – परमात्मा का प्रतिनिधि। मेरा वाक्य परमात्मा का अमिट आदेश है। मेरी कृति परमात्मा की कृति है। दूसरी और मदाध जरासघ हुकारता था और तीसरी ओर दिल्लीपति दुर्योधन गरजता था। वह कहता था मै ईश्वर का अश हू, विश्व के ऐश्वर्य पर मेरा एकाधिपत्य है। ऐश्वर्य मेरे लिए है। जगत् की मूल्यवान वस्तुए मेरे लिए हैं। ससार की समस्त सम्पत्ति मेरे उपयोग के लिए है। इसी प्रकार शिशुपाल रुक्मकुमार कालीकुमार और कालीनाग भी अहकार के पुतले बने बैठे थे। उनके उच्छृखल

अत्याचारो का पृथ्वी पर नगा नाच हो रहा था। ससार मे धर्म की कोई चीज है? न्याय की भी यहा सत्ता है? यह बात उन्हे समझ ही नहीं पडती थी। अगर कोई धर्म का नाम उनके सामने लेता था तो कहते थे – 'धर्म क्या है? हम जो कहते हैं, जो करते हैं, वही धर्म है, क्योकि हम ईश्वर के अश हैं। धर्म निर्बलो का सहारा है अनाथो का नाथ है। हम न निर्बल हैं न अनाथ हैं। हम से और धर्म से क्या वास्ता? हमारे राजदड को देखते ही धर्म और न्याय नौ–दो–ग्यारह हो जाते है। अतएव यहा न धर्म की दुहाई कारगर हो सकती है और न नीति की।' उस समय के नीतिज्ञ विद्वानो ने इन अभिमानी राजाओ को समझाने का यथाशक्ति उचित प्रयत्न किया था परन्तु सबको यही उत्तर मिलता था कि हम धर्म के गुलाम नहीं हैं, शास्त्र के दास नही हैं। हमे जो रुचिकर है, वही शास्त्र है। हमे केवल अर्थशास्त्र से जानकारी है और वह भी इस रूप मे कि किस प्रकार पराया धन अपना बना लिया जाय? हम धनोपार्जन के लिए कहा जाए? दुनिया कमावे और हम उसका उपयोग करे बस यही अर्थशास्त्र का मर्म है।

उस समय ऐसा अन्याय फैला हुआ था। न्याय बेचारा मारा–मारा फिरता था। धर्म का नाम लेना मानो मुसीबत को निमत्रण देना था। जैसे घोर अन्धकार मे डूबा हुआ मनुष्य सूर्य के उदय की व्याकुलतापूर्वक प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार उस समय के लोग किसी महापुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे जो भूतल पर प्रकट होकर पाप का नाश करे और धर्म–नीति की प्रतिष्ठा करे।

हुआ तो याद रखना – कृष्ण, कस का ध्वस करने के लिए ही जन्मे थे। **मुंह मे राम बगल मे छुरी** का पाखड नही चल सकता।

श्रीकृष्ण के जन्मकाल की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिये सबके अत्याचारो का वर्णन न करके केवल कस के अत्याचारो का ही उल्लेख करूगा। कस एक प्रबल अत्याचारी था। उसके अत्याचारो का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने पिता को कारागार के सीखचो मे बद करके स्वय राजा बन बैठा था। कस के इस कार्य से प्रसन्न होकर और उसे वीर समझकर जरासघ ने अपनी कन्या उसे ब्याह दी। जरासघ का दामाद बन जाने के कारण उसका साहस और अधिक बढ गया। अब वह समझने लगा कि जगत् मे मैं ही मैं हू – मेरा मुकाबिला करने वाला ससार मे और कोई नही है।

जैन – शास्त्र कहता है–कस का अन्याय देखकर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया – 'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है, उसके आश्रय मे रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकडे खाना आत्मा का हनन करना है। जगल मे रहना और निरवद्य एव नीरस आहार कर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर हैं। कस के पास रहकर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नही है। ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा धारण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कस की राजचर्या जानने के लिए कस के महल मे गये। वहा कस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दो का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली – 'वाह वाह! यह देखो राजघराने मे पैदा हुए हैं! कुल को कलक लगाते हुए इन्हें लाज नही आती? हाथ से कमाकर नही खाया जाता, इसलिए भीख मागने के लिए दर–दर भटकते फिरते हैं। इन्हे लज्जित होना चाहिए सो तो होते नहीं उल्टे हमे लज्जित होना पडता है।

जीवयशा की कठोर वाणी सुनकर मुनि ने उत्तर दिया – 'मेरी भर्त्सना करने के बदले अगर तुमने अपने पापो को देखा होता तो तुम्हारा कल्याण होता। जीवयशा! अपने दोष देखने की निर्मल दृष्टि विरले ही पाते हैं और जिन्हे यह दृष्टि प्राप्त है वे निस्सदेह भाग्यशाली है। दूसरो के दोषो को देखने और गुणो को दोष समझ लेने से अन्त करण मलीन बनता है पर स्वदोष–दर्शन से निर्मलता आती है। फिर भी अगर तुम्हे दूसरे के दोष ही

देखने हैं, तो अपने पति को क्यो नहीं देखती? जो पिता को कारागार मे बद करके राजा बन बैठा है और जिसने अपनी सतान के सामने एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है। इस दुराचार का विचार आते ही लज्जा से मस्तक झुक जाना चाहिए। मैं तो केवल पेट को भाडा देने के लिए ही खाता हू और इसीलिए भिक्षा मागता हू। मेरी भिक्षा सर्वसम्पत्कारी भिक्षा है। मैं धर्म की आराधना के लिए ही आहार करता हू। पर तुम भी तो सोचो कि तुम किसलिए खाती हो? तुम खा–पीकर जो शक्ति प्राप्त करती हो वह शक्ति अन्याय मे व्यय होती है और जिस अन्याय मे आज तुम और तुम्हारे स्वामी आनन्द मान रहे हैं वही अन्याय तुम्हारे विनाश का कारण होगा। तुम अपनी जिस ननद देवकी का सिर गूथ रही हो उसके पुत्र द्वारा ही तुम्हारा पति मारा जायेगा और तुम्हे वैधव्य की व्यथा भोगनी पडेगी। अन्याय का फल उसी समय तुम्हारी समझ मे आयेगा।'

अतिमुक्त मुनि की खरी बात सुनकर जीवयशा घबरायी और सोचने लगी – मैने वृथा ही इन मुनि को छेडा। देवकी के पुत्र द्वारा अपने पति का हनन होगा, यह सुनकर उसके रोगटे खडे हो गये। चेहरे पर उदासी छा गई। जीवयशा अपना मुह लटकाए उदास बैठी थी कि उसी समय अहकार मे चूर कस भी उसके समीप उसी महल मे आ पहुचा। रानी को उदास देखकर कस ने कहा – 'प्रिये! इस असामयिक उदासी का कारण क्या है? सदा प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे चेहरे पर उदासीनता क्यो झलक रही है? जब तुम उदासीन रहोगी तो ससार मे प्रसन्नता किसके हिस्से आएगी? बताओ उदासी का कारण क्या है?

जीवयशा ने कहा – नाथ मेरी उदासीनता का गहरा कारण है। पर कारण इतना भयकर है कि मुह से कहते भी नही बनता।

कस – आखिर कहे बिना कैसे चलेगा? उसका प्रतिकार करना होगा। बिना कहे कैसे प्रतिकार होगा?

'बस इसी बात से इतनी चिन्ता हो गई। भला इन बाबा–जोगियो की बात का क्या ठिकाना? वे तो इसी तरह की ऊलजलूल बाते गढकर दूसरो के मन मे भ्रम घुसेड देते है। बेचारे देवकी के लडके की क्या मजाल कि वह मुझे मार सके। कदाचित् मारने का प्रयत्न भी करता, तो यह और भी अच्छा हुआ कि हमे पहिले से मालूम हो गया। यह तो उदासी के बदले प्रसन्नता की बात है। देवकी का पुत्र मुझे नष्ट करे उससे पहले मैं देवकी का ही काम तमाम कर देता हू। **न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी।** इसमे चिन्ता की बात ही क्या है?

जीवयशा को सान्त्वना देकर कस राजसभा मे आया। उस समय राजसभा मे एक विद्वान आये थे। कस के पूछने पर उन्होने बतलाया – मै ज्योतिषशास्त्र मे पारगत हू। कस ने कहा – मुझे ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास नही है पर ज्योतिषी ने कहा – 'किसी शास्त्र की प्रामाणिकता, किसी के विश्वास पर अवलम्बित नहीं है। ज्योतिषशास्त्र अगर प्रमाण है, तो आपके अविश्वास के कारण उसकी पामाणिकता नष्ट नही हो सकती। कस ज्योतिर्विद की निखालिसता के कुछ आकृष्ट–सा हुआ। उसने कहा – 'अगर आप ज्योतिषशास्त्र को पमाण मानते हैं तो यह बताइए कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी।

आज ज्योतिषशास्त्र के सबध मे अनेक प्रकार की भ्रातिया फैली हैं। मेरे खयाल से इसके दो कारण हैं – प्रथम तो ज्योतिष का अविकल ज्ञान नही रहा है और दूसरे ज्योतिषी लोग लोभ के चगुल मे पडे हुए हैं। साठ वर्ष के बूढे के साथ बारह वर्ष की लडकी का लग्न जोडने वाला कोई ज्योतिषी ही तो होगा? इस प्रकार लोभ ने इस विद्या को नष्ट–भ्रष्ट–सा कर डाला है। आर्थिक लोभ से प्रेरित होकर किसी भी शास्त्र का दुरुपयोग करना उसका अपमान करने के समान है। गणित विद्या सच्ची है, यह शास्त्र भी मानता है और जो लोग निस्पृह हैं उनका गणित आज भी सही उतरता है। लेकिन लोभी लोगो ने गणित को बदनाम कर दिया है।

कस की सभा मे आया हुआ ज्योतिषी लोभी नही था। लोभी मे निर्भयता नही होती। निर्लोभी व्यक्ति सत्य कहने से भय नही खाता। अतएव ज्योतिषी ने कस से साफ–साफ कह दिया – आपके घर मे एक ऐसा महापुरुष जन्मेगा जो आपको नष्ट करेगा।

कस – 'उसका लक्षण क्या होगा?

ज्योतिषी – 'वह गोकुल मे रह कर बडा होगा। गायो से प्रेम करेगा और जगल मे जाकर गाये चराएगा। वह अपने हाथ मे बासुरी रखकर जनता

को उसकी मधुर ध्वनि से मोहित कर लेगा। तुम उसे मार डालने का प्रयत्न भी करोगे, पर ज्यो–ज्यो तुम प्रयत्न करोगे, त्यो–त्यो उसका बल बढता जायेगा। उसे नष्ट करने मे कोई समर्थ न हो सकेगा और वह तुम्हारा नाश करने मे समर्थ होगा।'

ज्योतिषी ओर मुनि की मिलती हुई भविष्यवाणी सुनकर कस का कलेजा एक बार काप उठा। उसके सामने मृत्यु नाचने–सी लगी। पर दूसरे ही क्षण उसकी नास्तिकता ने उसके विचारो को ढक लिया। अविश्वास का त्राण उसे प्राप्त हो गया। वह सोचने लगा – ये लोग बडे ठग और धूर्त हैं। मेरा लडका ही क्या मुझे मार सकता है?

भविष्यवाणी सुनकर कस को सावधान हो जाना चाहिए था। उसे अन्याय और अधर्म के मार्ग से विमुख होकर न्याय और धर्म के प्रशस्त पथ की ओर उन्मुख होना चाहिए था। पर कहा है – **विनाशकाले विपरीत बुद्धि**। कस के सबध मे यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अन्त मे कस ने ज्योतिषी से कहा – तुम्हारी धूर्तता की यहा दाल न गलेगी। मै तुम्हे कैद करता हू। मेरा काल जन्मेगा और मुझे मार डालेगा तब वही तुम्हे कारागार से मुक्त भी कर देगा। अन्यथा मैं तो तुम्हारा काल होता ही हू।

राजा लोग कारागार को अपनी रक्षा का सफल साधन समझते हैं। उन्हे न्याय–अन्याय की परवाह नही होती। जिस पर उनका कोप हुआ उसी को जेल के सींखचो मे बन्द कर देते हैं और अपने–आप को सुरक्षित मान लेते हैं। मगर सत्ता का यह दुरुपयोग कब तक उनकी रक्षा कर सकता है?

कस का कथन सुनकर ज्योतिषी ने कहा – आपके निर्णय मे मीन–मेख हो ही कैसे सकती है? मुझे अपनी विद्या पर पूर्ण श्रद्धा है। अगर मेरी विद्या सच्ची ठहरे तो ही मुझे जीवित रहना चाहिए नही तो जेल मे सडकर मर जाना ही अच्छा है। कस ने उस ज्योतिषी को जेल के हवाले कर दिया।

ही मिल जाना निस्सदेह सौभाग्य ही समझना चाहिए। ऐसा होने से, पहले ही उसके निवारण की व्यवस्था की जा सकती है। मैं इस बात से जरा भी भयभीत नही हू कि देवकी का पुत्र मुझे मारेगा। मैं शूरवीर क्षत्रिय हू। मौत मेरे लिए खेल है। दूसरे के पाण ले लेना मेरे बाए हाथ का काम है। आपने मुझे सावधान कर दिया, इसलिए आपका कृतज्ञ हू। मै देवकी को ही देवलोक भेज दूगा तब किसका पुत्र मुझे मारने के लिए जन्मेगा? चोर की मा को मार दिया जायगा तो चोर कहा से आएगा?

इस पकार कहकर वह नारद के सामने क्रोध के मारे भडक उठा। नारद ने उसे फिर समझाया – शान्त होओ। इस प्रकार क्रुद्ध होने से कोई नतीजा नही निकलेगा। तुम जो सोचते हो वह सफल नही हो सकता। म्हापुरुष धर्मात्मा होते हैं। धर्म जिसकी रक्षा करता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। **धर्मो रक्षति रक्षित ।**

कस को सबने समझाया, पर वह न माना, न माना। वह नहीं समझा। पर आप तो समझो और मानो कि पाप की जाहोजलाली न कभी रही है, न रहेगी। दो दिन के लिए कोई भले ही मौज मनाले पर अन्त मे पाप के प्रभाव से पतन अवश्य होता है।

नारद के समझाने पर भी कस न समझा। उसने कहा – महाराज! अब आप पधारिये। अब आपकी यहा आवश्यकता नही रही है। मुझे पहले खबर लग गई है तो मैं सारा प्रबन्ध कर लूगा। भावी आपत्ति की सूचना देने के लिए मैं आपका कृतज्ञ हू। यह मेरा सौभागय है कि मुझे पहले ही सब सूचना पाप्त हो गई।

नारदजी चले गये। कस ने देवकी को मार डालने का निश्चय किया। पर किसी ने उसे समझाया – कुमारी कन्या को मार डालना अत्यन्त भीषण कृत्य है। ऐसा करने से घोर पाप लगता है पुण्य क्षीण होता है और जगत् मे अपकीर्ति होती है। यद्यपि कस पाप–पुण्य को नही मानता था, पर जगत मे अपकीर्ति फैल जाने का उसे भय था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि ऐसा करने से लोग मुझे डरपोक समझेगे। अतएव उसने देवकी को मार डालने का विचार त्याग दिया। इसके बदले उसने दूसरा उपाय सोचा – देवकी का विवाह कर दिया जाय और उसके गर्भ से जब जो सतान उत्पन्न हो उसे उसी समय तलवार के घाट उतार दिया जाय। ऐसा करने से मैं अपने काल का भी नाश कर सकूगा मेरा अपयश भी न होगा और डरपोक भी नही कहलाऊगा।

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव से साथ देवकी का विवाह कर दिया। यद्यपि कस के हृदय मे दूसरी बात थी उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था, लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूब कपट–स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की। वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया – आप जो चाहे वही मैं आपको दूगा। कस जानता था – वसुदेव क्षत्रिय हैं और जो बात मुह से निकालेगे उसका अवश्य पालन करेगे। अतएव कस ने कहा – 'यदि आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो मैं आपसे यह चाहता हू कि मेरी बहन देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो, वे सब मुझे सौंप दिय जाये और मैं अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकू। वसुदेव के हृदय मे लेशमात्र भी यह आशका नहीं थी कि कस अपनी बहन के बालको को मार डालेगा। अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी। कस यह स्वीकृति पाकर मानो निहाल हो गया। उसमे नई जान–सी आ गई।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ बालक मारे जावे, यह नही हो सकता। इस सबध मे शास्त्र मे कहा है – सुलसा के मृत पुत्र होते थे। उसने हरिणगमेषी देव की उपासना की। देव ने कहा – 'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मे मैं ऐसे बालक ला दूगा जिनकी समानता कोई बालक न कर सकेगा। इस प्रकार जब देवकी के बालक होता तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहा रखकर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुचा देता था। इस तरह देवकी क छ बालक सुलसा के यहा पहुच गये। सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे वे कस के सामने ले आये जाते थे। कस उन्हे मरा हुआ दखकर ओर यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये हैं अभिमान से फूल उठता था। फिर भी उसे सताप न होता और [illegible] मरे बालको को ही पछाड डालता था।

पर अत्यधिक सख्त पहरे का पबन्ध किया गया था। उस मुसीबत मे पडे हुए वसुदेव देवकी से कहने लगे – यह सब मेरे वचनबद्ध होने का परिणाम है। ससार मे पतिव्रता महिलाए तो और भी होगी लेकिन देवकी, तुम जैसी पतिव्रता का होना दुर्लभ है। तुमने अपने पति के वचन की रक्षा के लिए अपने लाडले लाल भी मरने के लिए कस के हाथ मे सौंप दिये। तुमने अपना सर्वस्व निछावर कर मेरे धर्म की रक्षा की है। सचमुच तुम इस ससार की सारभूत विभूति हो। आर्यललनाए तुम्हारा अनुकरण कर ससार मे पतिव्रत धर्म की रक्षा करेगी।

देवकी ने नम्रतापूर्वक मधुर स्वर मे कहा – नाथ, इसमे मेरा क्या है? यह शरीर भी आपका है। बालक तो जैसे आपके, वैसे ही मेरे हैं। मैं बालको को जितना प्यार करती हू, उतने ही आपको भी वे प्यारे हैं। बल्कि माता की अपेक्षा पिता को पुत्र से अधिक स्नेह होता है। दुर्योधन की माता गाधारी ने दुर्योधन का मोह त्याग दिया था लेकिन धृतराष्ट्र पुत्र मोह न छोड सके थे। इस पकार पिता को पुत्र से अधिक प्रेम होता है। जब अधिक प्रेमपरायण आपने ही उन बालको को दे दिया तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? इसके अतिरिक्त आपके कार्य मे किसी प्रकार का विसवाद खडा करना मेरे लिए उचित भी नही है।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के हाथ मे सौंप दिये उस महान सत्य को आप भी अपनाइए और 'त सच्च भगवओ' –इस शास्त्र वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिए। स्मरण रखिए बुद्धि एक पकार की रचना है। उसकी दौड बहुत थोडी है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि मे नही समा सकता। पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित सुई तुल सकती है पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नही तुल सकता। बुद्धि से तर्क–वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क–विर्तक सत्य की परछाई भी नही पा सकता। पगाढ श्रद्धा के कटकाकीर्ण पथ पर चलने से सत्य के सन्निकट पहुचना पडता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वस्त्र न पहनाओ। विचार करो – सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नही त्याग सकते? अगर ससार मे सर्वत्र सत्य की प्रतिष्ठा हो जाये और प्रत्येक के प्रत्येक व्यवहार मे सत्य भगवान के दर्शन होने लगे तो ससार का यह नारकीय रूप नष्ट हो सकता है। वकीलो को घर बैठकर और कोई दूसरी आजीविका खोजनी पडे और कचहरी कच–हरी (सिर के बाल तक

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव से साथ देवकी का विवाह कर दिया। यद्यपि कस के हृदय मे दूसरी बात थी, उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था, लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूब कपट–स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की। वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया – आप जो चाहे वही मैं आपको दूगा। कस जानता था – वसुदेव क्षत्रिय हैं और जो बात मुह से निकालेगे उसका अवश्य पालन करेगे। अतएव कस ने कहा – यदि आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो मैं आपसे यह चाहता हू कि मेरी बहन देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो, वे सब मुझे सौंप दिय जाये और मैं अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकू।' वसुदेव के हृदय मे लेशमात्र भी यह आशका नहीं थी कि कस अपनी बहन के बालको को मार डालेगा। अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी। कस यह स्वीकृति पाकर मानो निहाल हो गया। उसमे नई जान–सी आ गई।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ बालक मारे जावे यह नही हो सकता। इस सबध मे शास्त्र मे कहा है – सुलसा के मृत पुत्र होते थे। उसने हरिणगमेषी देव की उपासना की। देव ने कहा – 'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मे मैं ऐसे बालक ला दूगा, जिनकी समानता कोई बालक न कर सकेगा।' इस प्रकार जब देवकी के बालक होता तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहा रखकर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुचा देता था। इस तरह देवकी के छ बालक सुलसा के यहा पहुच गये। सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे वे कस के सामने ले जाये जाते थे। कस उन्हे मरा हुआ देखकर ओर यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये हैं, अभिमान से फूल उठता था। फिर भी उसे सतोष न होता ओर वह उन मरे बालको को ही पछाड डालता था।

सातवी बार वह महापुरुष आया जिसका आज जन्मदिन है। ऐसा बालक देवकी के गर्भ मे आने के कारण ऐसे शुभसूचक स्वप्न आय। देवकी का शरीर इस प्रकार चमकने लगा जेसे काच की हडी मे दीपक रखने रा वह चमकने लगती है। देवकी ओर वसुदेव चकित थे। उन्हे लक्षणा रो यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ म आया है। देवकी को इरा प्रकार तजपूर्ण देखकर कस भी समझ गया कि अव मेरा काल वताया जान वाला बालक गर्भ मे आया हे। कई ग्रन्थकारो ने लिखा हे कि कस ने देवकी ओर वसुदेव को वेडी आर हथकडी से जकड दिया था ओर कारागृह म डाल दिया था। दोनो

पर अत्यधिक सख्त पहरे का प्रबन्ध किया गया था। उस मुसीबत मे पडे हुए वसुदेव देवकी से कहने लगे – यह सब मेरे वचनबद्ध होने का परिणाम है। ससार मे पतिव्रता महिलाए तो और भी होगी, लेकिन देवकी, तुम जैसी पतिव्रता का होना दुर्लभ है। तुमने अपने पति के वचन की रक्षा के लिए अपने लाडले लाल भी मरने के लिए कस के हाथ मे सौंप दिये। तुमने अपना सर्वस्व निछावर कर मेरे धर्म की रक्षा की है। सचमुच तुम इस ससार की सारभूत विभूति हो। आर्यललनाए तुम्हारा अनुकरण कर ससार मे पतिव्रत धर्म की रक्षा करेगी।

देवकी ने नम्रतापूर्वक मधुर स्वर मे कहा – नाथ, इसमे मेरा क्या है? यह शरीर भी आपका है। बालक तो जैसे आपके, वैसे ही मेरे हैं। मैं बालको को जितना प्यार करती हू, उतने ही आपको भी वे प्यारे हैं। बल्कि माता की अपेक्षा पिता को पुत्र से अधिक स्नेह होता है। दुर्योधन की माता गाधारी ने दुर्योधन का मोह त्याग दिया था, लेकिन धृतराष्ट्र पुत्र मोह न छोड सके थे। इस प्रकार पिता को पुत्र से अधिक प्रेम होता है। जब अधिक प्रेमपरायण आपने ही उन बालको को दे दिया तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? इसके अतिरिक्त आपके कार्य मे किसी प्रकार का विसवाद खडा करना मेरे लिए उचित भी नही है।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के हाथ मे सौंप दिये उस महान सत्य को आप भी अपनाइए और 'त सच्च भगवओ' –इस शास्त्र वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिए। स्मरण रखिए, बुद्धि एक प्रकार की वचना है। उसकी दौड बहुत थोडी है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि मे नही समा सकता। पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित् सुई तुल सकती है पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नही तुल सकता। बुद्धि से तर्क–वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क–विर्तक सत्य की परछाई भी नही पा सकता। प्रगाढ श्रद्धा के कटकाकीर्ण पथ पर चलने से सत्य के सन्निकट पहुचना पडता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वस्त्र न पहनाओ। विचार करो – सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नही त्याग सकते? अगर ससार मे सर्वत्र सत्य की प्रतिष्ठा हो जाये और प्रत्येक के प्रत्येक व्यवहार मे सत्य भगवान के दर्शन होने लगे तो ससार का यह नारकीय रूप नष्ट हो सकता है। वकीलो को घर बैठकर और कोई उन्नतर आजीविका खोजनी पडे और कचहरी कच–हरी (सिर के बाल तक

हरने वाली) न रह जाये। वकीलो और अदालतो के आधिपत्य से ससार मे शाति के बदले अशाति का ही प्रसार हुआ है। यह सब सत्य से विमुख होने का परिणाम है। जब हृदय रूपी कुसुम मे सत्य के सौरभ का सचार होगा, तभी हृदय मे कृष्ण का जन्म हो सकेगा।

देवकी ने वसुदेव से कहा – पुत्र जैसे मेरे थे, वैसे आपके भी थे। जैसा दु ख मुझे हुआ है वैसा ही दु ख आपने भी अनुभव किया है। किन्तु आप पुरुष है, आप मे सहनशक्ति अधिक है। मैं स्त्री हू, मुझमे इतनी सहनशीलता और कष्टसहिष्णुता नही है। मैंने अब तक छ बालको का मरण–दु ख झेला है, पर अब कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे इस बार का बालक जीवित बचा रहे।

पुत्र के लिए दु ख होना स्वाभाविक है। मनुष्य की तो बात ही क्या उन पक्षियो को भी सतान के वियोग की वेदना असह्य हो जाती है जिनमे सतान का नाता अत्यन्त अल्पकालीन होता है। यहा एक मैना का बच्चा आया करता था। एक दिन वह उडकर ऊपर बैठा। उसके मा–बाप भी वहा मौजूद थे। इतने मे ही एक चील ने झपट्टा मारा और बच्चे को उडा ले गई। उस समय उस बच्चे के माता–पिता को इतना दु ख हुआ और वे ऐसे चिल्लाये कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

देवकी के कथन के उत्तर मे वसुदेव ने कहा – तुम्हारी बात है तो ठीक, पर अब क्या सत्य का परित्याग करना पडेगा? जिस सत्य धर्म का पालन करने के लिए छह बालक त्याग दिये, अब क्या उसी सत्य को त्यागना उचित होगा?

देवकी ने कहा – छह बालक हम लोगो ने सत्य भगवान् की सेवा मे समर्पित किये हैं। तब सत्य से विमुख होने की प्रेरणा मैं नही करती। मैं ऐसा कोई यत्न करने के लिए कह रही हू जिससे धर्म की भी रक्षा हो और पुत्र की भी रक्षा हो। पुत्र की रक्षा की चिन्ता भी इसी कारण है कि वह महापुरुष होगा और महापुरुष की रक्षा करना ससार की रक्षा करना है। पुत्र–प्रेम से प्रेरित होकर नहीं वरन् ससार के कल्याण की कामना से हम इस पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। ससार मे उत्सर्ग और अपवाद – ये दो विधिया हैं। ऐसा जान पडता है कि यह गर्भस्थ महापुरुष ससार के अपवाद सुनकर भी जगत का कल्याण करेगा। इसलिए इसकी रक्षा करने के लिए हमे भी अपवाद–मार्ग का अवलम्बन करना पडे तो अनुचित नही है।

तुम्हारी बात मेरी समझ मे आ रही है। पर यह अत्यन्त कठोर साधना है। महापुरुष की रक्षा करते समय अगर हमारे हृदय मे लेशमात्र भी पुत्र–मोह उत्पन्न हो गया तो हम अपनी साधना से भष्ट हो जाएगे। यह निष्काम कर्म कठिनतम व्यवहार है। बडे–बडे योगी भी इसमे अकृतकार्य हो जाते है। हमे अपना हृदय विश्व–हित की कामना से लबालब भर लेना होगा जिससे व्यक्तिगत हित या सुख की अभिलाषा को उसमे तिल–भर भी स्थान न मिल सके। हमे आत्मोत्सर्ग की परकाष्ठा पर पहुचना चाहिए। ऐसा किये बिना हम सत्य की सेवा से विमुख हो जाएगे। पर यह तो समझ मे नही आ रहा है कि क्या यत्न किया जाय?

देवकी ने कहा – गर्भस्थ महापुरुष का महत्त्व मैंने मुनि महाराज से जान लिया है। यह महापुरुष जगत् मे सुख एव शान्ति की सृष्टि करेगा। इसकी रक्षा करने के उद्देश्य से मैंने गोकुल मे रहने वाले राजा नन्द की रानी यशोदा को अपनी सखी बनाया है। वह मेरी ऐसी सखी है कि मेरी खातिर वह अपनी सतान का त्याग कर सकती है। वह पूर्ण विश्वासपात्र है। साथ ही मुझे यह भी विश्वस्तसूत्र से ज्ञात हो गया है कि जिस दिन मेरे गर्भ से बालक का जन्म होगा उसी दिन वह भी सतान प्रसव करेगी। अतएव इस महापुरुष को यशोदा के यहा ले जाना चाहिए और यशोदा की सतान यहा ले आना चाहिए।

वसुदेव ने कहा – उपाय तो अच्छा है पर देखना तो यह है कि हम इस समय किस हालत मे हैं? हथकडी–बेडी पडी हुई है। द्वार जडा है। पहरा लग रहा है। ऐसी दशा मे कैसे बाहर निकलना होगा?

देवकी – यह सब तो आखो दिखाई दे रहा है। इतना होते हुए भी अगर हमारी भावना मे सत्य है और इस महापुरुष की रक्षा होती है तो यह सब कठिनाइया दूर हो जाएगी। आप बाहर निकल भी सकेगे और मार्ग भी मिल जायेगा। बस आप तो तैयार हो जाइए।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि पुरुषार्थ बडा है या दैव बडा है। इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण के चरित्र से यह फलित होता है कि दोनो ही समान हैं और सिद्धि–लाभ के लिए दोनो की समान आवश्यकता है। जैसे दोनो चक्रो से रथ चलता है उसी पकार दोनो के सद्भाव से कार्य सिद्ध होता है। किन्तु इन दोनो मे से उद्योग करना मनुष्य के हाथ मे है। अतएव मनुष्य को सतत उद्योगशील रहना चाहिए। भाग्य अनुकूल होगा तो सफलता अवश्य मिलेगी। हा भाग्य की अनुकूलता की पतीक्षा करते हुए निठल्ले बैठे रहना उचित नहीं

है। कौन कह सकता है कि किसका भाग्य किस समय अनुकूल होगा? आज के लोग अपने काम के लिए तो भाग्य के भरोसे नहीं बैठे रहते – उद्योगशील रहते हैं, लेकिन धर्म के काम मे भाग्य का भरोसा ताकने लगते हैं। इसी कारण हानि उठानी पडती है।

वसुदेव ने देवकी का कथन स्वीकार किया। जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार भाद्रप्रद कृष्णा अष्टमी की रात को अर्द्धरात्रि के समय, देवकी ने सुन्दर, स्वस्थ और सर्वांग सम्पन्न बालक को जन्म दिया। बालक का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव की हथकडिया और बेडिया तडाक से टूट कर गिर पडीं। देवकी ने वसुदेव से कहा–नाथ आइए। अब यह महापुरुष आपके उद्योग की परीक्षा करता है।

वसुदेव सोचने लगे – महापुरुष के प्रताप से हथकडी–बेडी टूट गई है, मगर द्वार पर अब भी पहरा मौजूद है। पहरेदारो के सामने बाहर कैसे निकल सकेगे?

वसुदेव सत्य के लिए इस प्रकार के कष्ट उठा रहे थे लेकिन आज के लोगो को सत्य बोलने या सत्य पालने मे किस प्रकार की रुकावट है? फिर क्यो नहीं उनके जीवन मे सत्य की आभा चमकती? सत्य की आराधना करने के कारण अगर आपके पैरो मे बेडी भी पड जायेगी तो वह उसी प्रकार टूट जायेगी जैसे वसुदेव की टूट गई थी। कहावत है – मुर्दे के साथ श्मशान तक जाया जाता है, उसके साथ जला नही जाता। इसी प्रकार हम लोग भी उपदेश दे सकते हैं, इससे अधिक क्या कर सकते हैं? आपके साथ–साथ घूमने से रहे।

वसुदेव देवकी से कहने लगे – 'द्वार पर पहरा लग रहा है। निकलने का क्या उपाय है?' देवकी ने कहा – 'उद्योग करना आपका काम हे फिर सफलता मिले या न मिले? प्रयत्न कर देखिये।

वसुदेव जाने को तैयार हुए। वे ग्रथानुसार सूप मे ओर जैन – कथा के अनुसार अपने हाथ मे बालक कृष्ण को लेकर रवाना हुए। द्वार पर पहुचे तो देखते क्या हैं कि द्वार खुला पडा है और पहरेदार पडे–पडे खर्राटे भर रहे हैं। वसुदेव ने यह भी महापुरुष का प्रताप समझा। दरवाजे से बाहर निकल कर आगे बढे। उस समय मूसलधार पानी बरस रहा था। बादल गडगडा रहे थे मानो कृष्ण–जन्म के उपलक्ष्य मे इन्द्र का नगाडा बज रहा था। बिजली चमक रही थी मानो महापुरुष का जन्मोत्सव मनाने के लिए प्रकृति चपलता पूर्वक नृत्य कर रही थी। झींगुर और मढक खुशी–खुशी बोल रहे थे जैसे

कृष्ण जन्म की खुशी मे सगीत गा रहे हो। ग्रन्थो मे लिखा है – उस समय शेषनाग ने कृष्ण पर छाया की थी और एक देव, वसुदेव के आगे–आगे प्रकाश करता जाता था।

वसुदेव चलते–चलते नगर के द्वार पर आये। देवकी के पुत्र–प्रसव का समय सन्निकट आया जानकर कस ने नगर द्वारो पर भारी–भारी ताले डलवा दिये थे। वसुदेव ने नगर के बन्द द्वार देखे, पर वे एक क्षण–भर के लिये भी रुके नही। उन्होने सोचा – जहा तक जाना सभव है, वहा तक तो मुझे जाना ही चाहिए।

**दीधा छे दरवाजा, ये आरत मोटी राजा।**
**हरि अगूठो अडिया, ताला तो सब झडिया।।**

वसुदेव जाकर नगर के द्वार से टकराये। जैसे ही वे द्वार से टकराये और कृष्ण का अगूठा अडा, वैसे ही ताले राख के ढेर की तरह नीचे गिर पडे। फाटक खुल गये। उस समय और तो सब लोग सो रहे थे, द्वार के ऊपर बने हुए पीजरे मे केवल उग्रसेन जाग रहे थे। ऐसे समय पर शत्रु को नीद आना और मित्रो का जागना स्वाभाविक है। उग्रसेन ने फाटक खुलने की आवाज सुनी।

**उग्रसेन कहे कोई, तुम बन्धन काटे सोई।**
**ये वचन सुने सुखदायी, कहे वेग सिधावो भाई।।**

उस समय उग्रसेन ने पूछा – कौन? वसुदेव ने कहा – वही जो तुम्हे बन्धन से छुडावेगा। यह उत्तर सुनकर उग्रसेन अतीव प्रसन्न हुए और कहा – अच्छा भाई जल्दी पधारो।

वसुदेव आगे चले। उस घोर अधकारमयी काली निशा मे, आधी रात के समय वर्षा और बिजली की विपदा के होते हुए, कौन घर से निकल सकता था? लेकिन वसुदेव कृष्ण को लिये हुए जा रहे थे। जब और आगे बढे, तो यमुना सामने आई। वर्षा के कारण उसमे पूर आ रहा था। वसुदेव ने निश्चय किया – भले ही आज मुझे यमुना मे बह जाना पडे परन्तु जहा तक सभव है मै अवश्य जाऊगा। इस प्रकार दृढ सकल्प करके वे यमुना मे उतर पडे। ग्रन्थो मे लिखा है कि यमुना पहले तो पूर थी पर कृष्ण के पैर का अगूठा लगते ही यमुना ने मार्ग कर दिया अर्थात वह छिछली हो गई।

इतनी सब विघ्न–बाधाओ को पार कर वसुदेव नन्द के घर पहुचे। उसी समय यशोदा के गर्भ से पुत्री उत्पन्न हुई थी। वसुदेव ने पुत्री की जगह कृष्ण को रख दिया और पुत्री को लेकर लौट पडे। उनके लौट आने पर द्वार [illegible]

आदि फिर पहले की ही तरह बन्द हो गये। उनके हाथ–पैरो मे पूर्ववत् हथकडी–बेडी भी पड गई। यह कैसा दैविक चमत्कार था, सो कहा नहीं जा सकता।

उधर 'जय कन्हैयालाल की' होने लगी और इधर पहरेदार जागकर लडकी को लेकर कस के पास गये। कस लडकी जन्मी देख कहने लगा – 'देखो, यह बाबा–जोगी और ज्योतिषी लोग कैसे झूठे होते हैं। और तो और नारद भी अब झूठ बोलने लगे हैं। लडके के बदले यह लडकी उत्पन्न हुई है। कस जब अभिमान–भरी यह बाते कह रहा था तभी वह सद्य प्रसूता बालिका बोली – 'मुझे लडकी कह कर तू क्षणिक सान्तवना भले ही प्राप्त करले और ऋषियो–मुनियो को झूठा बता दे, पर तेरा सहार करने वाला अवतीर्ण हो ही चुका है।'

एक ओर वसुदेव ने उद्योग किया था और दूसरी ओर कस ने। किन्तु वसुदेव का उद्योग प्रशस्त था, वह न्याय और धर्म की प्रतष्ठा के लिए था जबकि कस नीति–धर्म का ध्वस करने की चेष्टा कर रहा था। वसुदेव का हेतु शुभ था, अतएव उन्हे देवो की सहायता प्राप्त हो सकी थी। अगर आप भी इसी प्रकार शुभ हेतु से प्रशस्त प्रयास करेगे तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि दैविक सहायता कहा से और कैसे मिलती है? कदाचित् कोई कह सकता है कि परमार्थ के लिए हमने अमुक उद्योग किया था पर वह असफल रहा। उन्हे अपने हृदय की बारीकी से परीक्षा करनी चाहिए। उन्हे मालूम करना चाहिए कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनो एकरूप थे, या बाहर परमार्थ का और भीतर स्वार्थ था? स्वार्थ से मलीन हृदय लेकर दिव्य सहायता की कामना करना ऐसी ही बात है, जैसा कि कहा है–

**चाहत मुनि मन अगम सुकृत, फल, मनसा अघ न अघाती**

इसके अनुसार बुरी भावना रखकर भी अच्छे फल की आशा रखना दुराशा मात्र है।

कृष्ण धीरे–धीरे नन्द के घर बडे होने लगे। पालने मे पौढे हुए भी उन्होने अनेक महत्त्वपूर्ण और असाधारण काम किये। नन्द के यहा रहते हुए उन्होने जो कुछ किया उसमे एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड होते ही वे कम्बल और लकडी लेकर गाय चराने के लिए जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढिया–बढिया वस्त्र पहनते हैं पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं वह कैसा सादा था यह भूलकर भी नहीं सोचते। भक्त उसके उसी रूप पर मुग्ध हैं और कहत हैं–

मोर मुकुट कटि काछनी, उर गुजन की माल।
सो बालक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल।।

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोरपखो का मुकुट पहना था, चिरमी (घुगची) की माला पहनी थी और कमर मे लगोटी लगा रक्खी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष मे रहते थे। कवि कृष्ण के इसी भेष को अपने हृदय मे बसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण मे इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन निर्वाह करते हैं उन किसानो को इस सादगी के कारण भोजन मे अपने पास तक नही बैठने दिया जाता। गाय को मुसीबत माना जा रहा है। मोटरे रखने का स्थान है पर गाय बाधने को स्थान नहीं मिलता। तब पीने के समय क्या पीते हो? गाय का दूध या मोटर का धुआं? प्राचीन ग्रथो मे गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय 'गो' कहलाती है। "गो" पृथ्वी का नाम है और गाय का भी नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसीलिए कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय का जैसा महत्त्व प्रदर्शित किया है वैसा विश्व के इतिहास मे किसी ने प्रदर्शित नही किया। आज गाय का आदर नही हो रहा है। पर प्राचीन काल के राजा और सेठ अपने-अपने घर मे गायो के झुड के झुड रखते थे। उस समय शायद ही कोई ऐसा घर रहा होगा जहा गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय 'गो-माता' कहलाती थी और 'जय गोपाल की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी, अर्थात् गाय पालने की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालन विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवश के वस का कलक मुसलमानो के मत्थे मढते हैं, पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को मा समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवश का वस न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओ ने गाय की रक्षा नही की इसी से गोवश नष्ट होता जाता है। यही नही मै तो यहा तक कहूगा कि हिन्दू लोग भी किसी-न-किसी रूप मे गोवश के विनाश मे सहायक हो रहे हैं। उदाहरण के लिए वस्त्रो को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक से पहने जाते हैं। क्या गायो की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है? चर्बी के लिए बडी क्रूरता से गायो को कत्ल

किया जाता है और उस चर्बी वाले वस्त्रो को पहन कर लोग कहते हैं – हम गो–भक्त हैं। गाय हमारी माता है। धन्य है ऐसे मातृभक्त सपूतो को।

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायो की ही हानि हुई है। उस पद्धति से जहा गोवश को हानि पहुची है वहा मानव–वश को भी काफी हानि उठानी पडी है और उठानी पड रही है। दूध मर्त्यलोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है। परिणाम यह है कि लोगो मे निर्बलता और निर्बलताजन्य हजारो रोग आ घुसे हैं। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट मे जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है।

सुना है, यहा – जामनगर मे – शराब की ज्यादा खपत है। प्रजा किस प्रकार की बन रही है, इस बात का विचार तो राज्य के अधिपति और अधिकारियो को करना चाहिए। उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उनकी प्रजा सतोगुणी बने। इसके लिए शराब जैसी भ्रष्ट वस्तुओ के स्थान पर सात्त्विक पदार्थों की सुविधा करनी चाहिए। सुना है, अमेरिका मे प्रजा की वृद्धि के साथ गायो की भी वृद्धि हो रही है। वहा के लोग यह समझते हैं कि तामसिक प्रकृति की प्रजा ही उपद्रव करती है और उस उपद्रव को दबाने के लिए बहुमूल्य शक्तिया व्यय करनी पडती है।

कृष्ण के चरित्र से गोरक्षा–विषयक बहूमूल्य और उपयोगी शिक्षाए मिलती है। गाये चराने के वहाने जगल मे रहने से वहा जो शिक्षा प्रकृति से मिलती है, वह आजकल के बडे–बडे कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे भी नही मिलती।

कृष्ण अपनी मुरली की ध्वनि द्वारा जगत् मे नवीन स्फूर्ति नवीन चेतना फूकते रहते थे। उनकी मुरली की ध्वनि अलोकिक सगीत की सृष्टि करती थी। वह ध्वनि कानो को अमृत–सी मधुर लगती थी और उसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे।

कई लोग कृष्ण के चरित्र पर यह अपवाद लगाते हैं कि उन्हाने गोपियो के साथ मर्यादा–विरुद्ध दुराचार किया था। वास्तव मे यदि कृष्ण ने ऐसा किया हो, तो उनका जीवन पतित हो जाता है उसमे पवित्रता नही रह जाती। साथ ही ऐसे व्यक्ति का स्मरण करना भी त्याज्य हो जाता है। इस अवस्था मे वह महापुरुष नही रह जाते। भक्तिसूत्र मे लिखा है–

**सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्, निरोधस्तु लोक वेद–व्यापारन्यास ।**

इसका मतलब यह हे कि विषय–वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय–वासना एक साथ कैसे निभ सकती

हैं? ऐसी अवस्था मे कृष्ण के सबध मे यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होने गोपियो के साथ कोई नीच कृत्य किया था? जिन लोगो के मस्तिष्क मे मलीन भावना भरी हुई है, वे सर्वत्र ही मलीनता की ही कल्पना कर डालते हैं। उन्हे पवित्र भावना से किये जाने वाले कार्य मे भी अपवित्रता की गध आती है।' कृष्ण मर्यादा पुरुषोत्तम थे। किन्तु विषय-वासना से विदूषित व्यक्तियो ने अपनी अपावन भावना के अनुसार कृष्ण की कल्पना कर डाली है। इस कल्पना मे अपना मार्ग प्रशस्त बना लेने की भावना भरी हुई है। इधर कुछ शृगार रस के प्रेमी कवियो ने भी काव्य की मर्यादा का उल्लघन करके कृष्ण का चित्रण किया है और इससे कृष्ण के चरित्र पर आक्षेप करने का अवसर मिल गया है।

परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय-वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिए ऐसे व्यक्ति का ससर्ग भी त्याज्य है, जो विषय-वासना को प्रधानता देता हो। भक्तिसूत्र मे कहा है-

**दु सग सर्वथा त्याज्य ।**

अर्थात् कुसगति से सदा बचना चाहिए। यदि कृष्ण दुराचारी रहे हो तो उनका नाम भी न लेना चाहिए। क्योकि-

**कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रश बुद्धिनाशकारणत्वात् तरगा इता अपि इमे सगात् समुद्रायन्ति।**

तात्पर्य यह है कि दु सग से सर्वनाश तक हो जाता है। ऐसी स्थिति मे कृष्ण स्मरणीय कैसे ठहरते हैं? पर वास्तव मे कृष्ण ऐसे नहीं थे। उनके विषय मे ऐसी कुत्सित कल्पनाओ को हृदय मे स्थान नहीं देना चाहिए। यदि आप कृष्ण के बहाने भी काम-वासनाओ को हृदय मे स्थान देगे, तो तरग जितनी वासना भी समुद्र जैसी विशाल बन जायेगी। अतएव मन मे से पाप निकाल दो और कृष्ण पर अपनी अभव्य भावना का रग न चढाओ।

नन्द के घर पलते हुए कृष्ण तरुणावस्था मे प्रविष्ट हुए। अब उन्होने सोचा - सादगी और गो-पालन का आदर्श मैंने मानव-समाज के सामने उपस्थित कर दिया है। अब ससार मे बढे हुए पाप का विनाश करना चाहिए। ऐसा सोचकर कस का आमत्रण पाकर या कोई अवसर हाथ लगने पर वे कस के यहा गये। कस के पास जाने के लिए लोगो ने उन्हे हटका और कस द्वारा मारे जाने का भय बताया पर कृष्ण असाधारण सत्त्वशाली पुरुष थे। वे कब भय खाने वाले थे। वे निडर होकर कस के यहा गये। कस ने उन्हे मार डालने

के अनेक प्रयत्न किये, पर उसके सब प्रयत्न विफल हुए। हाथी और मल्ल आदि को मार कर कृष्ण, कस के पास पहुचे। कृष्ण को सामने देख कस प्रसन्न हुआ। उसने सोचा – मेरा शत्रु सामने आ पहुचा है, अतएव इसे अभी–अभी समाप्त कर देता हू। वह तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण को मारने दौडा। पर कृष्ण ने कस की चोटी पकडी और उसे घुमा दिया। सिर पर बशी का प्रहार कर उसकी जीवन–लीला का अन्त कर दिया।

उस समय कृष्ण भिन्न–भिन्न लोगो को भिन्न–भिन्न रूपों मे दिखाई दिये। कृष्ण ने कस को मार डालने के पश्चात् वसुदेव और उग्रसेन आदि को कारागार से मुक्त किया। भला राजमुकुट किस अप्रिय लगता है? सभी राजमुकुट से अपने सिर की शोभा बढाना चाहते हैं। मगर कृष्ण ने सोचा – 'मेरा विरोध किसी व्यक्ति से नहीं है, पाप से है। अगर कोई पापी पुरुष अपने पुराने पापो के लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्य मे पापाचरण न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होता है तो उसे मैं क्षमा कर सकता हू। कस ने ऐसा नहीं किया, अतएव उसका प्राणात करना पडा। इसके प्राणान्त से राजसिहासन सूना हो गया है। न्याय के अनुसार राज्य उग्रसेन का है और उन्हीं को यह मिलना चाहिए।' ऐसा विचार कर कृष्ण ने राज्य पर स्वय अधिकार न करके उग्रसेन के सिर पर राजमुकुट स्थापित कर दिया। यह है कृष्ण की महानुभावता।

कस की रानी जीवयशा रोती–पीटती अपने बाप जरासध के पास गई। जरासध मे यदि विवेक की तनिक भी मात्रा होती तो वह कस के सहज ही मारे जाने से समझ लेता कि कृष्ण से लडाई मोल लेना हसी–ठटठा नही है। मगर उसे ऐसे सलाहकार मिले कि उन्होने उसे शात करने के बदले और अधिक भड़काया। उसका जो परिणाम हो सकता था वही हुआ – जरासध भी मारा गया। कृष्ण के आगे कालिया नाग भी नम्र हो गया। दुर्योधन भी मारा गया। इस प्रकार तत्कालीन सब बडे–बडे अपराधी जिन्होने अपना अपराध नही त्यागा था, नष्ट हो गये।

इस सबध मे हमे एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान मे रखनी चाहिए। कृष्ण कहते हैं कि न किसी से मैं वैर रखता हू और न किसी को अपना शत्रु समझता हू। कृष्ण के चरित्र पर अर्जुन के सारथि बनने के कारण अनेक अपराध लगाये जाते हैं। परन्तु महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जब उत्तरा के गर्भ का घात हो गया, तब कृष्ण ने कहा था – मृत्यु असत्य पर आती है। सत्य के सामने मृत्यु थर्राती है। अतएव किसी सत्य–परायण सत्पुरुष के

कहने से यह गर्भ जीवित हो सकता है। लोग कहने लगे – कौन है ऐसा सत्पुरुष? किसके द्वारा मृतक गर्भ पुन जीवित हो सकता है। कृष्ण ने कहा – आप सब सज्जन अपना–अपना सत्य आजमाइए और उसकी शक्ति पदर्शित कीजए। अगर आप सफल न हो सकेगे तो अन्त मे मैं अपनी सत्य–शक्ति उपस्थित करूगा। कृष्ण की इस बात से लोग मन ही मन मुस्कराने लगे – कृष्ण और सत्यपरायण! कृष्ण ने समझ लिया कि यह लोग मुझ पर अविश्वास कर रहे हैं। उन्होने कहा – मैंने अपनी जिदगी मे सत्य की आराधना की है। मेरे सभी कार्य सत्य के लिए हैं। अगर आप मुझे सत्यनिष्ठ न मानते हुए अपने को ही सत्याचारी समझते हैं तो आप कहिए – 'अगर मुझ मे सत्य है तो यह बालक जीवित हो जावे।

कृष्ण की यह चुनौती सुनकर सब लोग कुठित हो गये। कौन ऐसा था जो अपने को सत्यवादी समझता था और अपने भीतर इस प्रकार की दिव्य–शक्ति के अस्तित्व पर भरोसा करता था? सबको चुप्पी साधे देख कृष्ण ने कहा – अच्छा आप इस बालक को जीवित नही कर सकते तो मैं जीवित करता हू। यह कह कर वे तैयार हो गये। भक्त लोग तो कृष्ण का यह कथन सुनकर पसन्न हुए लेकिन विरोधियो ने कहा – अच्छा? देखे आप इस अभिमन्यु के बालक को कैसे जीवित कर सकते हैं। कृष्ण ने कहा–

**अब्रवीच्च विशुद्धात्मा, सर्वं विश्रावयत् जगत्।**
**नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन्।।**

कृष्ण कहने लगे– अगर हसी – मजाक मे भी मैंने कभी असत्य का प्रयोग न किया हो अगर मैं सदा सत्यनिष्ठ रहा होऊ, मैंने क्षात्रधर्म का पालन किया हो पराजित के प्रति किसी प्रकार का द्वेष न रखा हो अपना जीवन धर्म के लिए उत्सर्ग कर दिया हो, सदा धर्म का ही आचरण किया हो किसी भी समय क्षण–भर के लिए भी धर्म न त्यागा हो और धर्मोपासको पर मेरी निश्चल निष्ठा रही हो तो उत्तरा का यह मृत बालक पुनर्जीवित हो जाय।'

कृष्ण के मुख से इन शब्दो के निकलते ही बालक जीवित हो गया। यह कौतुक देखते ही सज्जन जय–जयकार करने लगे और दुर्जनो के चेहरे मुरझा गये।

कृष्ण के जीवन मे अगर असत्य और अधर्म को प्रश्रय मिला होता तो उनकी वाणी मे यह लोकोत्तर सामर्थ्य कहा से आता? कोई पापी किसी मृत बालक को जीवित नही कर सकता। अतएव कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र मे

कलक की कालिमा देखने वाले लोगो को अपनी दृष्टि निर्मल बनानी चाहिए। उन्हे अपने हृदय की मलिनता की परछाई कृष्ण जैसे महापुरुष के जीवन मे नहीं देखनी चाहिए। सतो का समागम करके कृष्ण–जीवन का मर्म समझना चाहिए। किसी पुराण मे तो यहा तक लिखा है कि एक बार रास क्रीडा करते समय गोपियो के मन मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। कृष्ण को जैसे ही यह मालूम हुआ, वे अन्तर्धान हो गये। क्या यह किसी दुराचारी का काम हो सकता है?

द्वारिका मे प्रजा की सुख–सुविधा और शान्ति के लिए मदिरापान न करने, द्यूत न रमने और व्यभिचार न करने के लिए खास तौर पर व्यवस्था की गई थी। यद्यपि इन तीन बातो पर पूरा लक्ष्य दिया जाता था पर स्वय यादव लोग ही इनका आचरण करने लगे। तब कृष्ण ने वसुदेव से कहा – अब अपने घर के सर्वनाश का समय आ गया है। अब घर मे ही फूट पड गई है और यादव तीनो निषिद्ध वस्तुओ का सेवन करने लगे हैं। जैन शास्त्र कहते हैं कि इन तीन बातो के कारण द्वारका नगरी भस्म हो गई। लेकिन ग्रथ कहते हैं कि सब यादव–कुमार प्रभास–पाटन गये थे। वहा उन्होने मदिरापान किया। मदिरा के मद मे मत्त होकर दो कुमार आपस मे लडने लगे। शेष कुमार भी दोनो मे शामिल हो गये और इस प्रकार उनके दो दल बन गये। आपस मे लडाई छिडी। जो जिसके हाथ आया, उसी से वह लडने लगा। यह लडाई देखकर कृष्ण हसने लगे। अपने परिवार को आपस मे लडकर नष्ट होते देख, कृष्ण की हसी का आशय न समझ कर किसी ने उनसे कारण पूछा। कृष्ण ने कहा – अब इन्हे पृथ्वी पर रहने का अधिकार नहीं है। इन्हे नष्ट होना ही चाहिए।

कृष्ण का यह व्यवहार स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि न उन्हे पाण्डवो से प्रेम था, न कौरवो से द्वेष था। उन्हे एकमात्र सत्य से प्रेम था न्याय से अनुराग था और धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा थी। पापो को समूल निर्मूल करना ही उनके जीवन का ध्रुव ध्येय था।

यादव आपस मे लड मरे। महाभारत के अनुसार वे मूसल से लडे थे जिससे मूसल–पर्व का निर्माण हुआ। कृष्ण घर लौटे। यादव कुमारो का अन्त जानकर वसुदेव और देवकी ने खूब विलाप किया। लेकिन कृष्ण घर पर नहीं रुके। वे घर से चल दिये। अन्त मे कौशाम्बी वन मे राजकुमार के बाण से उनकी मृत्यु हुई। जैसे बाजीगर अपनी बाजी समेटता है उसी प्रकार कृष्ण ने अपनी लीला समेट ली।

कृष्ण की जयन्ती मनाते समय आप देखे कि जैसे कृष्ण–जन्म से पहले जगत् मे पाप फैला हुआ था, उसी प्रकार आपके हृदय मे तो पाप नहीं छा रहा है? अगर आप हृदय मे पाप का अनुभव करते हैं तो अपने हृदय मे कृष्ण को जन्म दीजिए। वास्तव मे कस या शिशुपाल बुरे नही थे, काम–क्रोध आदि बुरे हैं। अगर अपने अन्त करण मे आप इन्हे स्थान देगे, तो आप कृष्ण के विरोधी बन जाएगे। कृष्ण की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने हृदय की दुर्भावनाओ पर विजय पाप्त करना ही है। यही विजय कल्याणकारी है।

# जवाहर विचारसार

# आध्यात्मिक विचार

## आत्मा का अस्तित्व

कुछ लोगो का ऐसा विचार है कि आत्मा का शरीर से पृथक् अस्तित्व नही है। शरीर पाच भूतो से बना हुआ है और जब भूत बिखर जाते हैं तब शरीर बेकार हो जाता है। शरीर के स्वामी के रूप मे आत्मा का अस्तित्व नही है। यह कथन एक प्रकार से अज्ञान का परिणाम है। यद्यपि इस प्रकार की विचारधारा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है, तथापि आधुनिक युग मे उसे जितना पोषण और विस्तार प्राप्त हुआ उतना पहले प्राप्त नही था। आज जड विज्ञान असुर की भाति बढता जाता है और इस कारण जड की महिमा व्यापक होती जाती है। सम्यग्ज्ञान का उदय होने पर जैसे रस्सी मे सर्प का भ्रम सहसा नष्ट हो जाता है उसी प्रकार यह अज्ञान भी किसी दिन हटेगा और तब आत्मा को पहचानने का प्रयत्न किया जायेगा।

अधेरे मे रस्सी मे साप का भ्रम तभी हो सकता है जब साप का अस्तित्व है। साप का अस्तित्व न होता तो इस प्रकार का भ्रम सम्भव ही नही था। जिसने जल देखा है वही मृगतृष्णा मे जल की कल्पना कर सकता है। वास्तविक जल का अस्तित्व न होता तो मृगतृष्णा मे जल का आरोप कैसे सम्भव था? इस नियम के अनुसार शरीर मे आत्मा सबधी भ्रम आत्मा के अस्तित्व का ही परिचायक है।

आत्मा नही है– इस प्रकार का कथन भी आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है। अगर आत्मा न हो तो उसका नाम क्यो है? और उसके अस्तित्व से इन्कार करने का आधार क्या है?

आत्मा का अस्तित्व समझने के लिए एक प्रमाण यह है कि ससार मे जितने भी समासहीन और असाकेतिक शब्द हैं उन शब्दो का वाच्य पदार्थ विधिरूप अवश्य होता है। जिन शब्दो मे समास है उनका वाच्य पदार्थ नही

भी हो सकता है। इसी प्रकार साकेतिक 'डित्थ' जैसे शब्दो का अर्थ नहीं भी हो सकता है। 'शशश्रृग' यह सामासिक शब्द है। अगर इन दोनो शब्दो को अलग–अलग कर दिया जाय तो शश अर्थात् खरगोश है और श्रृग अर्थात सीग भी है। इस प्रकार जो शब्द समास रहित होते हैं उनका वाच्य अवश्य होता है। इस नियम के अनुसार आत्मा का अस्तित्व भी स्वीकार करने योग्य है। ससार मे हाथी, घोडा, रथ, घट, पट, आदि असामासिक शब्दो के वाच्य पदार्थ हैं, तब अकेले 'आत्मा' शब्द का वाच्य पदार्थ क्यो नही है?

## बहिर्मुखी बुद्धि से आत्मा ज्ञान नही

आज सर्वसाधारण की बुद्धि बहिर्मुखी हो गई है। बुद्धि दृश्यमान भौतिक पदार्थो को पकडने दौड रही है। मगर बुद्धि की यह दौड आत्मा की परछाई तक नही पा सकती। आत्मा की शोध बुद्धि की सामर्थ्य से परे है। यही नही, बल्कि बुद्धि के द्वारा आत्मा का कल्याण भी होना सम्भव नहीं है।

पाश्चात्य लोगो ने बुद्धि द्वारा बाह्य भौतिक पदार्थों का खूब विकास किया है। रेडियो की बदौलत अमेरिका मे गाया हुआ गीत भारत मे बैठे–बैठे सुन सकना क्या छोटी बात है? इस प्रकार बाह्य पदार्थों की शोध मे और उनका विकास करने मे बुद्धि का उपयोग करने के कारण बुद्धि बहिर्मुखी हो गई है और बहिर्मुखी बुद्धि वाले आत्मा की खोज नही कर सकते। यही नहीं कुछ लोग तो बहिर्मुखी बुद्धि के प्रभाव से प्रभावित होकर यहा तक कहने का साहस करते हैं कि आत्मा कोई चीज ही नहीं? ऐसे लोग बुद्धि के द्वारा भौतिक पदार्थो के सान्निध्य मे इतने अधिक आ गये हैं कि उनकी दृष्टि मे भौतिक पदार्थो के सिवाय कोई वस्तु ही नही है। यह भ्रम इसी कारण उत्पन्न हुआ है कि बुद्धि बहिर्मुखी हो गई। यदि बुद्धि को बुहिर्मुखी न बनाकर अन्तार्मुखी बनाया जाय तो वही बुद्धि आत्मोन्मुख बन सकती है। बुद्धि को अन्तार्मुखी बनाने वाले महात्मा आज भी भारतवर्ष मे मोजूद हैं।

ऐसे महात्मा मौजूद न होते तो जगत् मे प्रलय न मच जाता? प्राचीन काल के महात्माओ ने बुद्धि को भौतिक पदार्थों से विमुख रखकर अन्तर्मुखी बनाया था। उन्होने कहा था – इन दृश्यमान बाह्य पदार्थों मे ही विश्व की परिसमाप्ति नहीं हो जाती। इन भोतिक पदार्थों से परे एक वस्तु और भी विश्व मे विद्यमान है और वह आत्मा है। वह आत्मा शाश्वत है सनातन है। कहा भी है–

**णिच्चो अविणासि सासओ जीवो**

– दश. नि. भा. 42

## अगम्या आत्मा

उदयपुर मे एक वकील महाशय के साथ मेरा वार्तालाप हुआ। वकील महाशय प्रत्यक्षवादी थे। वह आत्मा को प्रत्यक्ष दिखाने के लिए कहते थे।

मैने उनसे पूछा– आप अग्रेजी पढे हैं?

वकील बोले– जी हा।

मैंने कहा– आप अपने मस्तिष्क मे से अग्रेजी निकाल कर दिखाइये तो सही वह कैसी है?

वकील निरुत्तर रहे। मैंने उनसे कहा– जब आप अपने मस्तिष्क मे से अग्रेजी निकालकर नहीं बता सकते तो फिर अमूर्त आत्मा को किस प्रकार बताया जा सकता है?

आत्मा के सबध मे शास्त्र मे कहा है–

**तक्का तत्थ न विज्जई, मई तत्थ ना गाहिया।**

आ॰ चा॰ 5/6

अर्थात् आत्मा इतना सूक्ष्म है कि उसमे तर्क का प्रवेश नही हो सकता और बुद्धि भी वहा तक नहीं पहुच सकती। आत्मा के बुद्धिगम्य न होने के कारण ही उसके विषय मे नेति–नेति कहा जाता है।

वास्तव मे जो वस्तु पूर्ण है उसका वर्णन होना सभव नही है। आत्मा का जो वर्णन हमे उपलब्ध होता है वह भी अपूर्ण ही है। तिजोरी भारी–भरकम चीज है और चाबी उसके सामने नहीं के बराबर छोटी–सी वस्तु है। फिर भी छोटी–सी चाबी से तिजोरी खोली जा सकती है और भीतर रखा हुआ धन निकाला जा सकता है।

इसी प्रकार शास्त्र मे आत्मा रूपी तिजोरी की चाबी के रूप मे थोडा–सा जो वर्णन मिलता है उसी से आत्मा–तिजोरी को खोलो। उससे पता चलेगा कि आत्मा कैसी है और किन–किन अद्‌भुत शक्तियो से सम्पन्न है।

## आत्मा क्या है ?

आत्मा क्या है और कैसा है ? इस विषय मे कहा जाता है कि आत्मा कान का भी कान है आख का भी आख है, रस का भी रस है। इस प्रकार इन्द्रियो को भी शक्ति देने वाला इन्द्रियो का अधिपति आत्मा है। आत्मा अमर है। अमर होने पर भी उसके अस्तित्व पर विश्वास नही किया जाता यही भयकर भूल है। इसी भूल के कारण ज्ञानियो को चिन्ता होती है। अगर कोई

पुरुष हीरे को पत्थर का टुकडा कहे तो जौहरी को चिन्ता होना स्वाभाविक है।

ज्ञानियो ने आत्मा का साक्षात्कार करके कहा है कि आत्मा निर्मल है, नीरज है, अखण्ड है। वह परम उज्ज्वल है और ज्योति रूप है। विश्व की समस्त ज्योतिया आत्मा के सामने धुधली हैं। तुम्हे जो प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब आत्मा के प्रकाश के कारण ही प्रकाशित है। आत्मिक प्रकाश से अन्य प्रकाश देखे जा सकते हैं। ऐसी आत्मा की ज्योति है।

**आत्मा**

दीया लेकर सूर्य को देखने की आवश्यकता नहीं रहती क्योकि सूर्य स्वय प्रकाशमान है। इसी प्रकार आत्मा भी स्वय प्रकाशित है। सूर्य स्वय प्रकाशमान होने के कारण ही सूर्य कहलाता है। अगर वह स्वय प्रकाशमान न हो तो उसे कौन सूर्य कहेगा? पर आत्मा तो सूर्य की अपेक्षा अनन्त गुणा प्रकाश वाला है। सूर्य को सूर्य कहने वाला कौन है? सूर्य अस्त हो गया है उदित हो गया है या मेघो से आच्छादित हो गया है। इस प्रकार जानने वाला कौन है? इस प्रकार सूर्य का मूल्य आकने वाला और सूर्य को सूर्य कहने वाला आत्मा ही है। इस कारण मैं कहता हू – आत्मा सूर्य से अनन्तगुणा प्रकाशमय है। तुम उस आत्मा को पहचानो तो परमात्मा को पहचानने मे विलम्ब नही लगेगा।

**आत्मा की पहचान**

जो मनुष्य घडी को देखकर उसके कारीगर को नही पहचानता वह मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जो शरीर को धारण करके इसम विराजमान आत्मा को नहीं पहचानता ओर न पहचानने का प्रयत्न करता हे उसकी समस्त विद्या अविद्या है। उसके सब काम खटपट–रूप हैं।

**आत्मा का स्वरूप**

जड को जड कहने वाला आत्मा है। आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करने वाला आत्मा है नाना प्रकार की अभिलाषा करने वाला आत्मा हे। यही नही वरन् जो आत्मा का निषेध करते हैं व स्वय ही आत्मा हें पर वे इस तथ्य को जानते नहीं ह। पदार्थों को अपने–आप का ज्ञान नही होता इन सबको जानने वाला आत्मा हे। आत्मा द्रष्टा हे। पदार्थ दृश्य हे। आत्मा ज्ञाता है पदार्थ ज्ञेय है।

ससार के समस्त सुधारा ओर कुधारा का आदि स्रोत आत्मा ही है। आत्मा अज्ञान के कारण अपने सुधार म अपनी शक्ति का सदुपयोग नहीं

करता, वरन् अपने–आप को गिराने मे अपने बल को व्यय करता है। आज जो लडाई–झगडा, क्लेश कदाग्रह और वर्गविगह आदि अवाछनीय प्रवृत्तिया फैली है उनका मूल आत्मिक अज्ञान है। लोग क्रिया से मुह मोडकर पुरुषार्थहीन बन रहे हैं। स्वय परिश्रम न करके दूसरो के परिश्रम पर गुलछर्रे उडाना चाहते है। यही लडाई–झगडे का बीज है। पर यह बीज भी कहा से आया है? आत्मा सबधी अज्ञान से। आत्मा अज्ञान के कारण भूल मे पडा है और इसी से विषमता उत्पन्न होती है। आध्यात्मिकता की भावना के अभाव का यह अवश्यम्भावी परिणाम है।

पर क्या अतीत की भूल को वर्तमान मे दुहराना ही होगा? क्या यह भूल सुधारी नही जा सकती? सुबह का भटका शाम को घर आ जाय तो वह भूला नही कहलाता। आध्यात्मिकता के भाव का उदय होने पर ससार नरक से स्वर्ग बन सकता है। हे ससार के मनुष्यो! इस ओर क्यो तुम्हारा लक्ष्य नही जाता?

आजकल के बहुत–से लोग आध्यात्मिकता उसे समझते हैं जो समझ मे न आवे। अर्थात् जो बात समझी न जा सके वही आध्यात्मिकता है। एक बार किसी विश्वविद्यालय के छात्र ने अपने प्रोफेसर से पूछा – आध्यात्मिकता क्या वस्तु है? पोफेसर साहब ने उत्तर दिया – मोहन और सोहन बातचीत कर रहे हो। उसमे मोहन की बात सोहन न समझे और सोहन की बात मोहन की समझ मे न आवे बस यही आध्यात्मिकता है। इस प्रकार समझ मे न आने वाली बात को अध्यात्मवाद कहा जाता है। पर यह भूल है। अध्यात्मवाद बहुत सरल है। वह सभी की समझ मे आ सकता है। अपने–आप को समझना ही अध्यात्मवाद की सीधी–सादी व्याख्या है। जो अपने को नही समझता, वह दूसरो को क्या खाक समझेगा?

आध्यत्मवाद और भौतिकवाद का पारस्परिक सबध अवश्य है, परन्तु भौतिकवाद ध्येय नही बन जाना चाहिए। भौतिकवाद को ध्येय बनाने से ही यह सब अव्यवस्था जगत मे फैली है। भौतिकवाद को समझने पर ही अध्यात्मवाद को और अध्यात्मवाद को समझ लेने पर भौतिकवाद को पूरी तरह समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ शरीर को लीजिए। शरीर के द्वारा ही आत्मा को समझा जा सकता है। शरीर के बिना आत्मा को समझना सरल नही है। इस प्रकार भौतिकवाद अध्यात्मवाद का परिचायक है फिर भी भौतिकवाद को ही पकड कर बैठ जाना उचित नही है। अध्यात्मवाद के आधार पर भौतिकवाद टिका हुआ है और भौतिकवाद के आधार पर

आध्यात्मिकवाद की दीवाल खडी है। सूक्ष्म के आधार पर स्थूल ओर स्थूल के आधार पर सूक्ष्म है।

जो देखा जा सकता है, जिसमे रूप, रग, परिमाण, गुरुत्व आदि पाये जाते हैं, वह स्थूल कहलाता है। जो दृष्टिगोचर नहीं होता, जिसमे रूप आदि नहीं पाये जाते, वह सूक्ष्म है। ससार इन दोनो मे से किसके आधार पर टिका हुआ है? इसका निर्णय करने के लिये अपने शरीर को ही देखो। शरीर के दो भाग हैं। एक स्थूल भाग है, दूसरा सूक्ष्म भाग है। रक्त, मास आदि दृष्टिगोचर भाग स्थूल हैं और श्वास – जो दृष्टिगत नहीं होता, सूक्ष्म भाग है। अब देखो कि शरीर स्थूल के आधार पर टिका है या सूक्ष्म के आधार पर? श्वास के आधार पर रक्त–मास आदि हैं या रक्त–मास आदि के आधार पर श्वास है? तुम्हे यह भलीभाति ज्ञात है कि–

**जीव ने श्वास तणी सगाई। घर मे घडी न राखे भाई।।**

जब तक शरीर मे श्वास है तभी तक भाई–बध उसे घर मे रहने देते हैं। श्वास बन्द होते ही कुटुम्बीजन उसे जल्दी से जल्दी बाहर निकालने के लिए उद्यत हो जाते हैं और निकाल भी देते हैं। इस प्रकार ससार मे श्वास के साथ ही सब सगाई है – सबध है और श्वास सूक्ष्म है।

शास्त्र श्वास को सूक्ष्म कहकर ही नही रुक जाता परन्तु उसके अनुसार श्वास भी स्वतन्त्र नही है। श्वास प्राण है सो किसी प्राणी का है। अतएव यह देखना आवश्यक है कि श्वास – प्राण को धारण करने वाला प्राणी कौन है? श्वास – प्राण को शक्ति देने वाला प्राणी कौन है? लोग कहते हैं – मैं चाहू तो श्वास जल्दी से जल्दी ले सकता हू, चाहूँ तो धीरे से धीरे ले सकता हू। इस प्रकार श्वास को जल्दी धीरे लेने वाला और किसी हद तक रोकने वाला कौन है? श्वास मे जिसकी शक्ति है जो जल्दी से जल्दी श्वास ले सकता है, जो श्वास को रोक सकता हे वही आत्मा है ओर वह श्वास से भी सूक्ष्म है। वह दृष्टिगोचर नही होता। अगर वह दृष्टिगोचर होता – इन्द्रियग्राह्य होता – तो नाशवान हो जाता। जो दीख पडता हे वह नाशवान होता है। इस स्पष्टीकरण से तुम यह विश्वास करो कि आत्मा की उपस्थिति मे ही यह सब खेल है – सूक्ष्म आत्मा के अस्तित्व पर ही शरीर टिका हुआ है। आत्मा के अभाव मे स्थूल शरीर टिक नही सकता वह नष्ट हो जाता है। आत्मा की मोजूदगी मे तो यह शरीर सो वर्ष टिका रह सकता है पर आत्मा के अभाव मे कुछ दिनो तक भी नही टिकता। यह शरीर जिसका कार्य है उस कारणभूत आत्मा को देखो ओर यह मानो कि सूक्ष्म ओर स्थूल दोनो की

आवश्यकता है, पर हमारा ध्येय स्थूल की नही, वरन् सूक्ष्म की उपलब्धि करना ही है। क्योकि स्थूल के आधार पर सूक्ष्म नही, किन्तु सूक्ष्म के आधार पर स्थूल है। इस प्रकार अध्यात्मवाद को समझना कुछ कठिन नही है।

जिस आत्मा के सहारे ससार का व्यवहार चल रहा है, उस आत्मा को पहचानना ही उत्तम अर्थ है। यह जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। जीवन की चरम सफलता इसी मे है। जो इन्द्रियो के मोह मे पड जाता है वह आत्मा को भूल जाता है। वह उत्तम अर्थ को नष्ट करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए कहा जाता है – गये कमाने और गवा आये मूल पूजी भी। करने गये सीधा और हो गया उल्टा। ऐसा करना विपरीत कृत्य है। विपरीत कृत्य करना उत्तमार्थ को नष्ट करना है।

## आध्यात्मिक शक्ति

आध्यात्मिकता कोई साधारण वस्तु नही है। गीता मे आध्यात्मिकता को सब विद्याओ मे प्रथम स्थान दिया गया है। जहा दूसरे के कल्याण के लिए छोटी–सी वस्तु का भी त्याग नही किया जा सकता वहा भला आध्यात्मिकता कैसे निभ सकती है? जहा लोभ–दशा है, वहा आध्यात्मिकता को स्थान नही मिल सकता। आध्यात्मिकता का स्थान वहीं है, जहा पर कल्याण के लिए प्राणो का उत्सर्ग करने मे भी आनाकानी नहीं होती। राजा मेघरथ ने कबूतर की रक्षा के लिए शरीर त्याग किया था। क्या उसमे आध्यात्मिकता नहीं थी? निस्सदेह मेघरथ मे आध्यात्मिकता थी और इसी कारण उसने पर–कल्याण के लिये शरीर का त्याग किया था। उसे भलीभाति ज्ञात था कि परोपकार के लिए आत्मसमर्पण करना ही सच्ची आध्यात्मिकता है। इससे यह स्पष्ट है कि जो अध्यात्मनिष्ट होता है वह दूसरो के हित मे अपना हित मानता है।

## आत्मा का अनेकत्व

कुछ विचारको का ऐसा मन्तव्य है कि आत्मा एक ही है। एक ही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है। जैसे पानी से भरे हुए हजारो घडो मे एक ही चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है इसी प्रकार विभिन्न शरीरो मे एक ही आत्मा प्रतिबिम्बित होता है सो ठीक है। यह विचार वास्तव मे यथार्थ नही है। उदाहरण मे यह बतलाया गया है कि चन्द्रमा हजारो घडो मे प्रतिबिम्बित होता है सो तो ठीक है किन्तु चन्द्रमा यदि पूर्णिमा का होगा तो सभी घडो मे पूर्णिमा का ही दिखाई देगा। अगर अष्टमी का हुआ तो सभी मे अष्टमी का दृष्टिगोचर होगा। एक ही चन्द्रमा किसी घर मे पूर्णिमा का किसी मे अष्टमी का और किसी मे द्वितीया का दिखाई नही दे सकता। इसी प्रकार अगर एक ही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है

तो सर्वत्र एकरूपता दृष्टिगोचर होनी चाहिए। मगर ऐसा नही होता। हमे सर्वत्र विभिन्नरूपता ही दीख पडती है। कोई बुद्धिमान होता है, कोई निर्बुद्धि, कोई दु खी होता है तो कोई सुखी है। इस प्रकार विचार करने से आत्मा का अनेकत्व प्रमाणित होता है।

## आत्मा के गुण

आत्मा यद्यपि एक देह का परित्याग करके दूसरे देह मे जाता है एक योनि से दूसरी योनि मे गमन करता है, तथापि उसका मूल स्वरूप नहीं बदलता, उसके प्रदेशो की सख्या सदैव समान रहती है। देह बदल जाती है पर आत्मा का स्वरूप नहीं बदलता। आत्मा मे जो गुण वैभाविक हैं, जो उपाधिजन्य हैं, अर्थात् काल, क्षेत्र या पर्याय आदि पर, निमित्त से उत्पन्न हुए हैं जो स्वाभाविक नही हैं, वे गुण बदल जाते हैं, परन्तु आत्मा के स्वाभाविक गुणो मे परिवर्तन नहीं होता।

## आत्मशक्ति

इस आत्मा मे जबरदस्त शक्ति है। वह ससार मे उथल–पुथल कर सकती है। जिस साइस ने आज ससार को कुछ का कुछ बना दिया है उसके मूल मे आत्मा की ही शक्ति है। आत्मा न हो तो ससार का काम एक क्षण भी नही चल सकता है क्योकि वह स्वय जड है।

जड साइस के चकाचौध मे पडकर साइस के निर्माता आत्मा को नही भूल जाना चाहिए। अगर तुम साइन्स के प्रति जिज्ञासा रखते हो तो साइस के निर्माता के प्रति भी अधिक नही तो उतनी ही जिज्ञासा अवश्य रखो। साइन्स को पहचानते हो तो आत्मा को भी पहचानने का प्रयत्न करो।

## सच्चा सुख

आनन्द आत्मा का ही गुण है। उसे पर–पदार्थो के सयोग मे खोजने का प्रयास करना भ्रम है। सत्य तो यह है कि जितने अशो मे पर का सयोग होगा उतने ही अशो मे सुख की न्यूनता होगी। आत्मा जब समस्त सयोगो से पूर्णरूपेण मुक्त हो जाता है तभी उसके स्वाभाविक पूर्ण सुख का आविर्भाव होता है। यह स्वाभाविक सुख ही सच्चा सुख है। पर के निमित्त से होने वाला सुख सुखाभास है। सुख का मिथ्या सवेदन है।

आनन्द जीव का स्वभाव है। ससारी जीव उस स्वाभाविक आनन्द का अनुभव नहीं कर पाते। उसकी ओर उनका बहुत कम ध्यान जाता है। वे विषयजन्य इन्द्रिय सुख में ही मग्न रहते हैं। यह इन्द्रियानन्द स्वाभाविक सुख का विकार है। यह सुख परावलम्बी है। प्रथम तो वह ससार की भोग्य वस्तुओ

पर अवलबित है और दूसरे इन्द्रियो पर आश्रित है। इन दोनो का सयोग मिल जाने पर अगर सुख का उदय होता है तो भी वह क्षणिक है। अल्पकाल तक ही ठहरने वाला सुख भी परिमित है और विघ्न–बाधाओ से व्याप्त है। न जाने कब किस क्षण कोई महान विघ्न उपस्थित हो जाता है और वह सारे सुख को घोर दु ख मे परिणत कर देता है। प्रात काल जहा आनन्द–मगल होता है, बधाइया बटती हैं, वाद्य बजते हैं, सध्या समय वहा हाय–हाय मच जाती है।

कदाचित् तीव्र पुण्य के उदय से कोई विघ्न उपस्थित न हो तो भी विषय–सुख सदा विद्यमान नही रह सकता। क्योकि यह सुख विषयो के सयोग से उत्पन्न होता है और **सयोगा हि वियोगाता** सयोग का फल निश्चित रूप से वियोग ही है।

इस कथन के अनुसार विषय–सामग्री का वियोग हुए बिना नहीं रह सकता और उस समय मे अथवा जीवन के अन्त मे सुख का नाश अवश्यमेव हो जाता है।

इस विषय–सुख मे एक बात और है। बिना आरम्भ–परिग्रह के यह सुख हो ही नही सकता और आरम्भ–परिग्रह पाप के कारण हैं। पाप दु ख का कारण है अतएव यह सुख दु ख का कारण है।

मधु से लिप्त तलवार की धार चाटने से जो सुख होता और उस सुख के फलस्वरूप जितना दु ख होता है उतना ही दु ख विषयजन्य सुख भोगने से होता है। अतएव ज्ञानीजन इस सुख को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनका मन इस ओर कभी आकृष्ट नही होता। वे अन्तरात्मा के अनिर्वचनीय, असीम अनन्त और अव्याबाध सुख की खोज में लगे रहते हैं। वही सुख सच्चा सुख है। उसमे दु ख का स्पर्श भी नहीं होता। यही आत्मा का स्वरूप है और आनन्द शब्द से यहा उसी का ग्रहण किया गया है।

**अपने ही हाथ मे**

अगर तुम्हे गधी को कामधेनु और कामधेनु को गधी बनाने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाय तो तुम क्या करोगे? कामधेनु को गधी बनाओगे या गधी को कामधेनु? निस्सदेह तुम कहोगे कि गधी को कामधेनु बनाने में ही बुद्धिमत्ता है। तब आत्मा के विषय मे भी ऐसा ही क्यो नही सोचते? आत्मा के सुख–दु ख का तन्त्र तुम्हारे ही हाथ मे है। किसी दूसरे के हाथ मे नही है तो आत्मा को सुख–रूप कामधेनु कल्प क्यो नही बनाते?

अनादि काल से जड का चेतन के साथ ससर्ग हो रहा है। जब तक चैतन्य के साथ जड के रहने का सिलसिला जारी है तब तक आत्मा के दु ख

का भी सिलसिला जारी रहेगा। जिस दिन जड–चेतन के ससर्ग का सिलसिला समाप्त हो जायेगा, उसी दिन दु ख भी समाप्त हो जायेगा और एकान्त सुख प्रकट हो जायेगा।

## जीव और कर्म का सबध

जीव और कर्म का सबध अनादिकालीन है, तो वह नष्ट कैसे हो सकता है? जीव किस प्रकार कर्मरहित हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है।

जीव और कर्म का सबध प्रवाह की अपेक्षा अनादि होने पर भी दूसरी अपेक्षा से वह सादि भी है। गगा के किनारे खडे रहने पर चार दिन पहले जो जलधारा दिखाई दी थी वही जलधारा आज चार दिन बाद भी दिखाई देती है, पर वास्तव मे देखा जाय तो आज की जल धाराचार दिन पहले वाली जलधारा नहीं है। पहले वाली जलधारा तो उसी समय बह गई और अब न जाने कहा पहुची होगी? जल की धारा अविछिन्न रूप से निरन्तर आ रही है अतएव उसमे एकता की प्रतीति होती है। इस व्यावहारिक प्रतीति मे प्रवाह की सततता मुख्य कारण है, इसी कारण बोलचाल मे यह कहा जाता है कि यह वही जलधारा है, जो चार दिन पहले देखी थी।

इसी प्रकार प्रतिक्षण आत्मा के साथ नवीन कर्मों का बन्धन होता है और प्रतिक्षण पूर्वबद्ध कर्म भोग लिये जाने पर जीर्ण होते रहते हैं। जैसे प्रतिक्षण नवीन जलबिन्दु आगे बढ जाते हैं फिर भी उनका प्रवाह जैसा का तैसा कायम रहता है, इसी प्रकार कर्मों का प्रवाह भी प्रतिक्षण कायम रहता है। यह प्रवाह अनादिकाल से चला आरहा है। इसी प्रवाह की अपेक्षा जीव और कर्म का सबध अनादि कहा जाता है फिर भी विशेष की अपेक्षा वह सादि है, क्योकि प्रत्येक कर्म–विशेष किसी नियत समय मे ही बद्ध होता है और अपनी नियत स्थिति के पश्चात् झड जाता है। इस प्रकार कर्म का सबध सादि होते हुए भी अनादि है।

जब नवीन कर्म प्रतिक्षण आते रहते हैं तो उनका अन्त कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का समाधान जैन ग्रथो मे खूब विस्तार के साथ किया गया है। जीव मे कर्म के आस्रव की प्रति पक्षभूत भावनाओ का ज्यो–ज्यो उत्कर्ष होता जाता है त्यो–त्यो कर्म के आस्रव का अपकर्ष होता चलता है। आस्रव की प्रतिपक्ष भावनाए अर्थात् सवर की और निर्जरा की भावनाए जब अपने पूर्ण उत्कर्ष की कोटि पर पहुचती हैं तब आस्रव का पूर्ण रूप से निरोध हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे किसी बाध के द्वारा जल का आगमन रोक दिया

से प्रवाह स्वय रुद्ध हो जाता है धारा विच्छिन्न हो जाती है, उसी प्रकार सवर रूप बाध से नवीन कर्म का आगमन रोक दिया जाता है और निर्जरा के द्वारा पूर्वसचित कर्मो का नाश किया जाता है। इस प्रकार कुछ काल के अनन्तर जीव सर्वथा निष्कर्म, निष्कलक, निर्विकार निरजन, निर्मल बन जाता है।

जैसे दूध और घी आपस मे मिले हुए – एकमेक हैं, फिर भी क्रिया द्वारा उन्हे पृथक् कर दिया जाता है, इसी प्रकार आत्मा और कर्म एकमेक–से हो रहे हैं फिर भी तपश्चरण आदि क्रिया के द्वारा दोनो का पृथक् होना सभव है। कर्म पृथक् होने पर आत्मा, परमात्मा बन जाता है। दोनो मे किसी प्रकार का भेद नही रहता।

आप यह जान चुके हैं कि हममे और भगवान मे केवल विघ्नो का पर्दा है और इतना–सा ही अन्तर है मगर प्रश्न तो यह है कि यह जान लेने के पश्चात् हमारा कर्तव्य क्या है? इसका सीधा–सादा समाधान है और वह यह है कि उस पर्दे को हटा देना चाहिए। जब तक विघ्न–रूप पर्दे को हटाया नही जायेगा तब तक परमात्मा से भेट नहीं हो सकती। अगर तुम इस पर्दे को हटाना नही चाहते तो यह कहा जायेगा कि तुम परमात्मा से भेट नही करना चाहते।

## परमात्मा की प्राप्ति

सारा ससार एक भ्रम मे पडा हुआ है। परमात्मपद की प्राप्ति मे जो पदार्थ विघ्न–रूप हैं, उन्हीं को वह कल्याणकारी मान रहा है। आत्मा स्वय परमात्मा बनना चाहता है पर ठीक विपरीत दिशा मे प्रयाण करता है। फल यह होता है कि समीपता के बदले दूरी बढती जाती है। अतएव इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से हमारा प्रत्येक कदम अनुकूल ही पडे प्रतिकूल नहीं। जिन वस्तुओ का ससर्ग इस ध्येय मे बाधक हो उनका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार करने से परमात्मा से भेट हो सकती है।

## आध्यात्मिक बल

मित्र! अपने–अपने शत्रु का नाश करना सभी को अभीष्ट है। सबकी यही आकाक्षा रहती है कि हम अपने शत्रुओ का विनाश करे उन पर विजय प्राप्त करे। लेकिन कोई शस्त्र के बल से शत्रु का सहार करना चाहते हैं कोई राजा के बल से कोई बाहुबल से कोई ईश्वर के बल से शत्रु को नष्ट करना चाहते है। मगर इन बलो मे बडा अन्तर है। अन्यान्य बलो से शत्रु का नाश करने पर अनन्त शत्रुता की वृद्धि होती है और वह शत्रुता भविष्य मे महान दु ख

का कारण होती है। मगर ईश्वर के बल से शत्रु का सहार करने पर न वैरी रह जाता है न वैर ही रह पाता है। अगर आपको ईश्वर के बल का अवलम्बन लेना हो तो उस बल पर विचार करो। अगर आप अपने या राजा आदि के बल पर भरोसा रखते हैं तो फिर ईश्वरीय बल की शरण जाने का आपको अधिकार नहीं है। जब तक आप अपने बल पर विश्वास रखकर अहकार में डूबे रहेगे, तब तक ईश्वरीय बल नसीब न होगा। इसी प्रकार अन्य भौतिक बलो पर भरोसा करने से भी वह आध्यात्मिक ईश्वरीय बल आप न पा सकेगे। अहकार का सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग करके परमात्मा के चरणो मे जाने से उस बल की प्राप्ति होती है।

## आत्मा की शक्ति

आत्म–बल को प्रगटाने के लिए तुम्हे आत्मा के विकार दूर करने पडेंगे। आत्मा के विकार ज्यो–ज्यो हटते जायेगे त्यो–त्यो तुम्हारी आत्म–शक्ति का आविर्भाव होता चलेगा। तुम्हे अपनी आत्म–शक्ति मे निश्चल श्रद्धा है तो वह तुम्हारे पास ही है। वास्तव मे यह शक्ति तुम्हारी अपनी आत्मा मे ही विद्यमान है।

अगर तुम यह जानना चाहते हो कि आत्मिकशक्ति तुम्हारे भीतर कहा रहती है, तो यह जानने से पहले अपनी आत्मा की खोज करो। यह शरीर आत्मा के सहारे टिका हुआ है। शरीर मे जो–कुछ होता है वह सब–कुछ आत्मा की शक्ति के बदौलत ही होता है। और तो और, आख के पलक भी आत्मा की शक्ति से ही गिरते–उठते हैं। तुम चर्म–चक्षुओ से आत्मा को नही देख सकते। हा, इस सबध मे अगर गहरा विचार करोगे तो जान पडेगा कि समस्त शारीरिक क्रियाओ का आधार आत्मा ही है। जिस आत्मा की शक्ति से शरीर के सब व्यापार होते हैं उस आत्मा को माया मृषा आदि द्वारा तुमने अत्यन्त मलीमस बना दिया है। पर यह स्मरण रखना एक म्यान मे दो तलवार नही समा सकती। इसी प्रकार जब आत्मा मे माया–मृषा की मलीनता घुरी है, तब तक उसमे राम–बल या आध्यात्मिक सामर्थ्य किस प्रकार प्रकट हो सकता है? तुम किसी भलेमानुष को अपने घर आने का आमत्रण दे दो परन्तु उस घर के सब दरवाजे और खिडकिया बन्द कर लो तो वह आमन्त्रित व्यक्ति तुम्हारे घर मे कैसे घुस सकेगा? इसी प्रकार तुम राम–बल या परमात्म–बल को चाहते तो हो पर–आत्मा के विकारो को दूर नहीं करते। ऐसी दशा मे राम–बल को कैसे पा सकते हो? अतएव अगर तुम आत्मा मे से

विकार–शक्ति को हटा दो तो तुम्हारे भीतर अक्षय राम–बल या आध्यात्मिक सामर्थ्य प्रकट हो सकता है।

## आत्मा की श्रेष्ठता

आत्म–बल मे अद्भुत शक्ति है। इस बल के सामने ससार का कोई भी बल नही टिक सकता। इसके विपरीत जिसमे आत्म–बल का सर्वथा अभाव है वह अन्यान्य बलो का अवलम्बन करके भी कृत–कार्य नहीं हो सकता। मृत्यु के समय अनेक क्या अधिकाश लोग दु ख का अनुभव करते हैं। मृत्यु का घोर अन्धकार इन्हे विह्वल बना देता है। बडे–बडे शूरवीर योद्धा, जो समुद्र के वक्षस्थल पर क्रीडा करते हैं, विशाल जल–राशि को चीरकर अपना मार्ग बनाते हैं और देवो की भाति आकाश मे विहार करते हैं, जिनके पराक्रम से ससार थर्राता है, वे भी मृत्यु को समीप आता देखकर कातर बन जाते हैं, दीन हो जाते हैं, लेकिन जो महात्मा आत्मबली होते हैं, वे मृत्यु का आलिगन करते समय रचमात्र भी खेद नहीं करते। मृत्यु उनके लिए सघन अन्धकार नही है वरन् स्वर्ग–अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान प्रतीत होती है। इसका क्या कारण है? इसका एकमात्र कारण आत्म–बल है। आत्म–बल सब बलो मे श्रेष्ठ है, यही नही, वरन् यह कहना भी अनुचित नही होगा कि आत्म–बल ही एकमात्र सच्चा बल है। जिसे आत्म–बल की लब्धि हो गई है उसे अन्य बल की आवश्यकता नही रहती। आधुनिक कविता मे आत्म–बल की बहुत प्रशसा की गई है, परन्तु प्राचीन कविता मे उसका दूसरे ही रूप मे वर्णन किया गया है–

**सुने री मैने निर्बल के बल राम।**
**पिछली साख भरू सन्तन की आडे सुधरे काम। सुने री।**
**जब लग गज बल अपनो राख्यो, नेक सर्यो नही काम।**
**निर्बल हो बलराम पुकारे, आये आधे नाम। सुने री.।**

चाहे आत्म–बल कहो चाहे राम–बल कहो, चाहे अर्हन्त–बल कहो चाहे परमेष्ठी–बल कहो बात एक ही है। आत्मा और परमात्मा का अभेद है, यह मै बतला चुका हू। यदि उस बल को तुम प्राप्त करने की तैयारी मे आये हो तो यह सोचो कि उसकी प्राप्ति किस ओर हो सकती है? उसे प्राप्त करने के लिए किन उपायो का अवलम्बन करना चाहिये।

इस बल को प्राप्त करने की क्रिया है तो सीधी–सादी लेकिन क्रिया करने वाले का अन्त करण सच्चा होना चाहिए।

वह क्रिया यह है कि अपने बल को छोड दो। अर्थात् अपने बल का जो अहकार तुम्हारे हृदय मे आसन जमाये बैठा है, उस अहकार को निकाल बाहर करो। परमात्मा की शरण मे चले जाओ। परमात्मा से जो बल प्राप्त होगा वही आत्मबल होगा। जब तक तुम ऐसा न करोगे, अपने बल पर अर्थात अपने शरीर या अन्य भौतिक साधनो के बल पर निर्भर रहोगे तब तक आत्मबल प्राप्त न हो सकेगा।

जिसे तुम अपनी वस्तु कहते हो उस सबका परित्याग कर दो – सबका यज्ञ कर डालो। इस सब ऊपरी बल से जब विमुख हो जाओगे तो तुम्हारी अन्तरात्मा मे एक अपूर्व ओज प्रकाशित होगा, वही ओज आत्मबल होगा।

मनुष्य इधर–उधर भटकता फिरता है भौतिक पदार्थों को जुटाकर बलशाली बनना चाहता है। लेकिन वह किस काम आएगा? अगर आख मे आतरिक शक्ति नहीं है, तो चश्मा लगाना व्यर्थ है। दूरबीन की शक्ति किसी काम की नही। इसी प्रकार आत्मबल के अभाव मे भौतिक बल निरुपयोगी है। अरे बडे–बडे साम्राज्य भौतिक बल के सहारे कायम न रह सके। रावण जैसे पराक्रमी योद्धा को उसके भौतिक बल ने कुछ भी सहायता नहीं पहुचाई। दुर्योधन की कोटि सेना का सारा बल कुण्ठित हो गया। तुम्हारे पास कितना–सा बल है जिसके कारण तुम फूले नहीं समाते।

आत्मबली को प्रकृति स्वय सहायता पहुचाती है। दन्तकथा प्रसिद्ध है कि एक बार बादशाह अबकर महाराणा प्रताप की परीक्षा करने के लिए फकीर का भेष बनाकर आया था। उस समय महाराणा को प्रकृति से सहायता मिली थी।

समुद्र का पानी स्वभाव से स्थिर है पर पवन की प्रेरणा से वह चचल बन जाता है। पानी का स्वभाव स्थिर रहने का है परन्तु पानी का पात्र अग्नि पर रख दिया जाय तो अग्नि की प्रेरणा से पानी उबलने लगता है। इजिन मे अग्नि की प्रेरणा से पानी वाष्प रूप मे परिणत होता है और वह वाष्प ही सारी गाडी को एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। इस प्रकार गाडी का व्यवहार प्रेरणा पर ही निर्भर है।

ठीक इसी तरह कर्म की प्रेरणा से आत्मा अपनी गाडी चोरासी लाख योनियो मे दोडाया करता है। मगर अव आत्मा को भवभ्रमण की दोड-धूप रोक कर अपने को स्थिर करना चाहिए। आत्मा की स्थिरता के लिए कर्म रहित – अक्रिय होना आवश्यक हे।

जैसे पानी अपने स्वभाव से नही, वरन् अग्नि की प्रेरणा से उबलता है और वह पेरणा आगन्तुक–औपाधिक होने से मिटाई जा सकती है इसी पकार आत्मा को भव–भ्रमण करने की तथा अस्थिर रखने की प्रेरणा कराने वाले कर्म हैं। कर्म की यह पेरणा बाह्य एव कृत्रिम होने से अटकाई जा सकती है। इसीलिये भगवान् ने फरमाया है कि पूर्वसचित कर्मो का क्षय करने से जीवात्मा अक्रिय दशा को पाप्त होता है और अन्त मे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर शान्त हो जाता है।

भगवान का यह कथन इतना सरल और सत्य है कि सहज ही सबकी समझ मे आ सकता है। इस कथन मे शका को तनिक भी अवकाश नही है। शास्त्र कहता है – आत्मा मे जो अस्थिरता है वह योग की चपलता–चचलता के ही कारण है। योग का निरोध करने से आत्मा की अस्थिरता मिट जायेगी और तब स्थिर एव शान्त हो जायेगा।

भगवान ने समस्त जीवात्माओ को उद्देश्य करके स्थिर बनने का उपदेश दिया है परन्तु लोगो की आत्मा दौड के घोडे की तरह दौडधूप मचा रही है। ऐसी स्थिति मे उन्हे शाति किस प्रकार मिल सकती है? दौड के घोडे चाहे जितनी दूर और चाहे जितनी तेजी से दौडे फिर भी शाति तो उन्हे तभी मिलती है जब वह दौडना बन्द कर देते हैं। सदा–सर्वदा दौड लगाना न उचित है और न शक्य ही।

आत्मा की वास्तविक शाति स्थिर होने मे ही है। जहा तक आत्मा स्थिर न होगा तहा तक आत्मा को शातिलाभ सभव नही है। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर भी इस बात की पुष्टि होती है। तुम बाजार मे कार्यवश कितनी ही दौडधूप करो मगर घर आने पर स्थिर तथा शान्त हुए बिना व्यावहारिक शाति नही मिल सकती। इसी प्रकार शाश्वत शाति प्राप्त करने के लिए शाश्वत स्थिरता प्राप्त करनी चाहिए।

हे भद्र पुरुषो! तुम जिस प्रकार सासारिक व्यवहार को महत्त्व देते हो उसी पकार आध्यात्मिक और तात्त्विक बात को भी महत्त्व दो। तुम व्यावहारिक कार्यो मे जैसा कौशल पदर्शित करते हो वही आध्यात्मिक कार्यो मे क्यो नही दिखलाते? व्यवहार मे तुम वस्तु के ऊपरी घाट को महत्त्व नही देते वरन मूल द्रव्य की ही कीमत आकते हो। उसी पकार तात्त्विक दृष्टि से भी यह विचार करो कि ससार मे जो चराचार जीव है उनका मूल्य पर्याय से नही है। उनमे [illegible] – आत्मद्रव्य की असली कीमत आकनी चाहिए।

अगूठी का मूल्य उसकी बनावट से नहीं, वरन् सोने से निर्धारित होता है, इसी प्रकार जीव किसी भी योनि मे क्यो न हो, उसका मूल्य अन्य सभी जीवो के बराबर है, क्योकि सब जीव स्वरूप से समान हैं।

## अन्यत्व भाव

जो तुम्हारा है वह कभी तुम से विलग नहीं हो सकता। जो वस्तु तुम से अलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नहीं है। पर–पदार्थों के साथ आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है। इस भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टो से पीडित है। अगर मैं और मेरी की मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन मे एक प्रकार की अलौकिक लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शाति का उदय होगा।

हाथी, घोडा, महल, मकान आदि आपके नही हैं, यह बात अनाथी मुनि और महाराज श्रेणिक के सवाद से भलीभाति समझ मे आ सकती है।

## आत्मा की शक्ति

आजकल लोगो की शक्ति का अधिकाश तो मानसिक चिताओ से नष्ट हो जाता है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है, पर लोग उस शक्ति को विकसित करने का मार्ग भूल गये हैं और इस कारण वह शक्ति दब गई है। इसके अतिरिक्त इस युग मे आराम के जितने साधन प्रस्तुत हुए हैं उनसे उतना ही आत्मिकशक्ति का ह्रस हुआ है। मोटर, वायुयान आदि साधनो ने तुम्हारी शक्ति का अपहरण कर लिया है। तुम रेडियो सुनना पसन्द करते हो पर उसे सुनते–सुनते अपने स्वर को भी भूल गये हो।

## आत्मा

आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूलकर ससार की ऋद्धि के प्रलोभन मे पड जाता है और फिर उन प्रलोभनो के पीछे–पीछे भटकता फिरता है। वह जगत् के एक दु ख को दूर करने के प्रयास मे दूसरे अनेक नये दु खो का शिकार बन जाता है। वह इस मूल तथ्य की ओर नहीं देखता कि मैं जिन कष्टो को दूर करने के लिये व्यग्र हो रहा हू उन कष्टो का उदगम स्थान कहा है? यह कष्ट क्यो और कहा से आये हें? अव वे कष्ट किस प्रकार विनष्ट किये जा सकते है?

पर सयोग–ससार मे सयोग मात्र नश्वर हे और दु खप्रद है। जहा आत्मा किसी भी पर–पदार्थ के साथ अपना सवध जोडती है वहा दु ख का अकुर फूट निकलता है। जितने अशा मे सयोग की वृद्धि हाती जाती हे उतना

अशो मे दु ख की वृद्धि होती जाती है। एक आचार्य ने ठीक ही कहा है–**सयोगमूला जीवेन प्राप्ता दु खपरम्परा** अर्थात् ससारी जीव के दु खो का ताता जो लगा रहता है उसका मूल सयोग है।

### अध्यात्मनिष्ठ

जो आत्मा राम मे रमण करता है, जिसे सच्चिदानन्द पर परिपूर्ण श्रद्धाभाव उत्पन्न हो चुका है, वह मरने से नहीं डरता। क्योकि वह समझता है मेरी मृत्यु असभव है। मैं वह हू, जहा किसी भी भौतिक शक्ति का प्रवेश नही हो सकता। सच्चिदानन्द के स्वरूप का अनुभव कराने वाले को डराने की त्रैलोक्य मे शक्ति नही है। जिसे सच्चिदानन्द पर पूरा विश्वास हो गया है, पाचो भूत उसके सेवक बन जाते है।

### आत्म–ज्ञान का महत्त्व

जिसने शरीर को नाशवान् और आत्मा को अविनाशी समझ लिया, क्या शरीर के नाश होने पर उसे दु ख हो सकता है? आत्मतत्त्व का परिज्ञान हो जाने पर शरीर के टुकडे–टुकडे हो जाए तो भी दु ख का स्पर्श नहीं होता।

### सच्चे दर्शन का फल

जो अपने–आप को द्रष्टा और ससार को नाटक रूप देखता है, सारी शक्तिया उसके चरणो की सेवा करने को तैयार रहती हैं।

### ज्ञानी और अज्ञानी की समझ

अज्ञानी पुरुष को जिन पदार्थो के वियोग से मर्मवेधी पीडा पहुचती है ज्ञानीजन को उनका वियोग साधारणसी घटना प्रतीत होती है। ज्ञानवान् पुरुष सयोग को वियोग का पूर्वरूप मानता है। अतएव वह सयोग के समय हर्ष–विभोर नहीं होता और वियोग के समय विषाद से मलीन नही होता। दोनो अवस्थाओ मे वह मध्यस्थ भाव रखता है। सुख की कुजी उसे हाथ लग गई है इसलिए दु ख उससे दूर ही दूर रहते हैं।

# परमात्मा

## परमात्मा का स्वरूप

प्रत्येक आस्तिक के अन्त करण मे एक जिज्ञासा का समय–समय पर उदय होता है – परमात्मा कहा है? इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिए अभी तक अनेक बाते कही गई हैं और कही जाती हैं। तर्क–वितर्क किया जाता है और तरह–तरह से इस जिज्ञासा के समाधान की चेष्टा की जाती है।

जैन सिद्धान्त इस सबध मे सरल और सीधी बात कहता है। वह बतलाता है कि परमात्मा को खोजने के लिए इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा तुमसे कही दूर नही है। परमात्मा को पहचानना है तो आत्मा की ओर दृष्टि दौडाओ। बाहर कही परमात्मा नही है। वह आत्मा मे ही है, बल्कि आत्मा ही है।

आज तुम्हारा आत्मा कर्म के आवरणो से आच्छादित है और इसी कारण उसका परम रूप–विशुद्ध स्वरूप–परमात्मत्व गुण छिपा हुआ है। आवरण न हो तो तुम्हारे आत्मा मे ओर परमात्मा मे कुछ भी अन्तर नही। जिस क्षण कर्म, आवरण हट जाएगे, उसी क्षण तुम्हे आत्मा मे ही परमात्मा की परम ज्योति अनुभव मे आने लगेगी।

प्रश्न हो सकता हे – कर्मो का आवरण किस उपाय से दूर किया जा सकता है? इसका उत्तर यह हे कि आवरण दूर करने के साधन अनेक हैं और परमात्मा की प्रार्थना करना उनमे से एक उत्तम साधन है। आवरणो को हटाना साध्य हे और परमात्मा उसका साधन हे। अगर इस साधन द्वारा साध्य की पूर्ति न की जा सकती हो – आत्मा स्वय परमात्मा न बन सकता हो तो परमात्मा को एक पृथक सत्ता के रूप म स्वीकार करना होगा और उसे आवरणो से आच्छादित मानना पडगा। यह कल्पना कल्याणकारिणी नहीं है। इसलिए जैन सिद्धान्त क अनुसार आत्मा स्वयमेव परमात्म की स्थिति प्राप्त

कर लेता है और इसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना का आश्रय लिया जाता है।

हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि जो आत्मा आज परमात्मा के रूप मे स्थित है वह एक दिन हमारे आत्मा के ही समान कर्मावरणो से लिप्त था। कर्मावरणो का नाश करके ही उसने परमात्म दशा प्राप्त की है। परमात्मा हमारे समक्ष एक महान् आदर्श है। परमात्मा के आदर्श को समक्ष रखकर उसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने से आत्मा भी वही स्थिति प्राप्त कर लेगा। परमात्मा के स्वरूप का विचार करने से हमारे हृदय मे विश्वास का अकुर उत्पन्न होता है कि परमात्मत्व की प्राप्ति असम्भव नही, सभव है, असाध्य नही साध्य है। कर्मो की स्थिति देखने से प्रतीत होता है कि कर्म परिवर्तनशील हैं। अगर कर्म परिवर्तनशील न होते तो निराशा को अवकाश मिल सकता था, पर यह तो प्रत्यक्ष है कि कर्म सदा परिवर्तित होते रहते हैं और इसी कारण उनका फल सुख–दु ख आदि भी बदलते देखे जाते है। कर्म सदा समान स्थिति मे नहीं रहते। इसलिये निराश होने का कोई कारण नही है। पशुवत् जीवनयापन करने वाले जगली पुरुष को शिक्षा एव सस्कृति द्वारा सुशिक्षित बनाया जा सकता है। इससे यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है कि साधनो द्वारा अथवा प्राकृतिक रीति से ज्ञानावरण आदि कर्मो का क्षयोपशम होता है। जब कर्मो का क्षय होना सम्भव है तो उसके साधनो का प्रयोग करके उन्हे क्षय करना और आत्मा के विशुद्धतम स्वरूप को प्राप्त करना मानव का परम कर्तव्य होना चाहिए। कर्मो से न घबराते हुए सोचना चाहिए कि–

**अनेक जन्मससिद्धिस्ततो याति परा गतिम्।**

6 / 45

अर्थात् अनेक जन्म–जन्मान्तरो के पश्चात् भी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है अतएव पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

एक मुमुक्षु ज्ञानी को सशय उत्पन्न हुआ कि मेरी मुक्ति कब होगी? सशय निवारण के लिए उन्होने दूसरे ज्ञानी से पूछा। उन्होने बतलाया–एक करोड जन्म के पश्चात तुम्हारी मुक्ति होगी। यह उत्तर सुनकर मुमुक्षु को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सोचा अनन्त भवो की अपेक्षा करोड भव किस गिनती मे है? तब दूसरे ज्ञानी ने कहा – अब करोड से पहले ही तुम मुक्ति–लाभ कर सकोगे। क्योकि दृढ विश्वास होने के कारण तुम्हारी स्थिति बहुत ऊची हो गई है।

तात्पर्य यह है कि कर्मो की स्थिति नाशवान है, इस दृढ विश्वास के साथ आगे बढते जाओ तो आत्मा के समस्त आवरण शीघ्र नष्ट हो जायेगे। दृढ विश्वास वाले के प्रगाढ कर्म भी शिथिल पड जाते हैं और तीव्र रस वाले मन्द रस वाले हो जाते हैं। दृढ विश्वास के कारण ऐसा परिवर्तन हो जाता है। अतएव अपनी श्रद्धा को हिमालय के समान अचल बनाओ और कर्मावरणो के समूल उन्मूलन का यत्न करते चलो।

एक दिन परमात्मा स्वय हमारी जैसी स्थिति मे थे। कर्मावरणो से उनकी आत्मा लिप्त थी। उन्होने प्रबल पुरुषार्थ करके अपने आवरणो का अन्त किया और परम पद के अधिकारी हुए। उनमे आठ अलौकिक गुण प्रकट हुए।

**अष्ट गुणा करि ओलख्यो रे ज्योतिरूप भगवन्त।**

हे प्रभो! अपना और तुम्हारा साम्य देखकर ही ज्ञानी पुरुषो ने कहा है कि आत्मा आवरणो से रहित होकर परमात्मा बन सकता है। अतएव निराश होने का कोई कारण नहीं है। तुम्हे आदर्श मानकर आवरणो को नष्ट करने का प्रयत्न करना ही मेरे जीवन की साधना है।

आवरणो का अन्त करने के लिए शास्त्र प्रणेताओ ने जिन गुणो के अभ्यास की आवश्यकता प्रकट की है उनके अभ्यास से तात्कालिक ऐहिक लाभ भी होता है। उदाहरण के लिए क्षमा को लीजिए। आवरणो का नाश करने के लिए शास्त्रकारो ने क्षमा की भी आवश्यकता प्रकट की है। क्षमा का आलम्बन करने से पारलौकिक लाभ होता है पर क्या ऐहिक लाभ उससे नही है? क्रोध भडकने पर नेत्र जलने लगते हैं मस्तक मे पागलपन भर जाता है छाती धडकने लगती है, चेहरे पर विकृति नाचने लगती है। ऐसे समय क्षमा का अवलम्बन लेने से शान्ति नहीं मिलती? क्षमा भाव का यह ऐहिक लाभ क्या उपेक्षणीय है?

कहा जा सकता है– जब क्रोध से सारा शरीर प्रज्वलित हो उठता है तब क्षमा का आविर्भाव कैसे सभव है? इस सबध मे मेरा निवेदन यह है कि इस प्रकार का विचार करना एक प्रकार की निर्बलता है। अगर इस आत्मिक निर्बलता का परित्याग कर दिया जाये तो क्षमाभाव का आर्विभाव कठिन नहीं हो सकता।

इसी प्रकार परमात्मपद प्राप्त करने के लिए जो अन्य सात्विक गुण अपेक्षित हैं उन सभी से इस लोक मे एकान्त लाभ है अत उन गुणो का प्राप्त करके जीवन को सुखमय और अन्तत परमात्ममय बनाना प्रत्यक भव्य पुरुष का परम कर्तव्य है।

## परमात्मा पाप प्रेरक नही

जो ईश्वर को ही पाप का प्रेरक मानते हैं, उन्हे अगर यह पक्का विश्वास है कि पाप हम नही करते वरन् ईश्वर हमसे कराता है तो मैं पूछना चाहता हू कि धर्म कौन कराता है? ईश्वर बुरा कराता है तो भला कौन कराता है? ईश्वर अगर बुराई की ओर घसीट कर ले जाता है तो भलाई की तरफ खीचकर ले जाने वाला कौन है? अगर यह कहा जाय कि भलाई की ओर भी ईश्वर ही ले जाता है, धर्म भी ईश्वर ही कराता है, तब तो ईश्वर एक खिलवाड करने वाला ठहरा? जब भला ईश्वर ही कराता है तब वह बुरा क्यो कराएगा? वह भला ही भला क्यो नही कराता? वह बुरे काम कराता भी है और बुरे काम की निन्दा भी करता है, यह कैसा तमाशा है?

कुरान देखो, चाहे पुराण पढो, वेद को उठाकर देखो, चाहे बाइबिल का पाठ करो, चाहे जिनागम का पारायण करो, चाहे बौद्ध शास्त्र का स्वाध्याय करो सर्वत्र बुरे कामो की निन्दा की गई है।

जगत् के समस्त शास्त्र जिस आचरण की एक स्वर से निन्दा करते हैं जिस आचरण का निषेध करते हैं, वही आचरण ईश्वर कराता है, ऐसा कहना एकदम असगत है। ऐसे कथन पर कोई विचारशील पुरुष विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकता।

राजा अपराधी को दण्ड देता है लेकिन दण्ड देने से पहले वह अपराधो की रोक भी करता है। अगर कोई राजा अपराधो की रुकावट न करे, यही नही वरन् अपराध करने के लिए प्रेरणा करे और फिर अपराध करने वाले को दण्ड देने को तैयार हो जाय तो उस राजा को कौन न्यायी राजा कहेगा? ऐसा राजा हत्यारा कहलावेगा।

पापाचरण मे प्रेरणा के लिए अथवा उसका दण्ड भोगने के लिए यदि ईश्वर को बीच मे लाया जाय तो ईश्वर की स्थिति बडी बेढगी हो जाती है। एक आदमी चोरी करता है और उसे चोरी करने की प्रेरणा ईश्वर करता है तो आप स्वय सोचे कि ईश्वर को चोरी करने का दोष क्यो नहीं लगेगा? अगर ईश्वर स्वय चोर–कर्म का भागी हो तो क्या वह चोर को दण्ड दे सकता है? जो लोग ईश्वर को प्रेरक और दण्डदाता दोनो मानते हैं उन्हे इस उलझन पर विचार करना चाहिए। इस प्रकार ईश्वर को पाप मे डालनेवाला या कर्म का फल देने वाला मानने से बडी गडबड पडती है। ईश्वर निष्कलक निरजन निराकार वीतराग और कृतकृत्य है। उसे इन सब झझटो से कोई वास्ता नही है।

## परमात्मा की विभुता

परमात्मा अनन्त सूर्यो से भी अधिक तेजस्वी है। बडे से बडा पापी परमात्मा को बुलाता है तब भी वह उसके हृदय मे वास करने के लिये आ जाता है। उसका विरुद ही ऐसा है।

सूर्य राजप्रासाद पर प्रकाश फैलाता है और अस्पृश्य की झोपडी पर भी। अगर सूर्य किसी को प्रकाश दे और किसी को नहीं, तो वह सूर्य कहलाने का अधिकारी ही न होगा।

जब सूर्य की ऐसी महिमा है तो सूर्य से अनन्तगुनी महिमा वाला परमात्मा किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नही करता। वह सभी के हृदयमन्दिर मे बसने आ जाता है। बात सिर्फ इतनी है कि परमात्मा को बसाने के लिए काम–वासनाओ को तिलाजलि देनी होगी। दोनो का एक साथ समावेश होना सभव नहीं है।

## परमात्मा सबका है

जिन्होने परमात्मा के स्वरूप को भलीभाति समझ लिया है, वे ज्ञानी पुरुष यह मानते हैं कि परमात्मा सभी का है – सभी के लिये है। परमात्मा किसी एक का नही और जो किसी एक का है वह परमात्मा नहीं है। सूर्य किसका है? सूर्य क्या किसी एक का होकर रहता है? वह सबको समान प्रकाश देता है। जो सबको समान रूप से प्रकाश नही देता वह सूर्य ही नही है।

परमात्मा की प्रार्थना करने वाले भक्त अगर यह मानते हैं कि परमात्मा त्रिलोकीनाथ है और वह अपने गुणो के द्वारा सर्वव्यापक है तो उन्हे यह भी मानना चाहिए कि वह सबका है। पुरातन महात्माओ ने अपनी गहरी अनुभूति के आधार पर 'परमात्मा सबका है'– इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

जिन्होने ज्ञान का मर्म नही पाया है और जिनका अन्त करण राग–द्वेष से मलीन है उनमे अहकार ओर ममत्व की प्रवलता होती है। वह अहकार या ममकार लोकिक वस्तुओ तक सीमित नहीं रहता। जव उसकी अत्यधिक प्रबलता होती है तव परमात्मा जैसी सार्वजनिक वस्तु भी अहकार की परिधि मे आ जाती है ओर लोग अभिमान के साथ कहते हैं – परमात्मा हमारा है वह किसी और का नही है। पर किसी का कोई भी प्रयत्न जेरा आकाश को सार्वजनिक हाने से नही रोक सकता। उसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के दायरे मे वन्द नही कर सकता। अतएव हम यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा सवका है अर्थात उसकी भक्ति से सब अपना कल्याण कर सकते हैं। परमात्मा मे भदभाव को काई स्थान नही है।

प्राचीन काल के महात्माओ की कृतियो मे यदि उन्हे बारीक दृष्टि से देखा जाय तो, स्पष्ट पतीत होता है कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि धर्म क्लेश–कलह का कारण न होने पाए। धर्म मगलकारक ही नही है साक्षात् मगल है। वह क्लेश–कलह रूप अमगल का जनक कैसे हो सकता है? आज धार्मिक उदारता का वायु बहने लगा है, इसीलिए मैं परमात्मा की एकता का पतिपादन नही करता, वरन् पाचीन धार्मिक ग्रथो से यह पता चलता है कि अनेक पूर्ववर्ती महात्माओ ने अभेद दशा का अनुभव किया था और परमात्मा की अभेद रूप मे पार्थना की थी।

अनुभूतिशून्य लोग परमात्मा को तो पाते नही, परमात्मा का नाम–मात्र पाते हैं। परमात्मा परम प्रकर्ष को प्राप्त अनन्त गुणो का अखण्ड समूह है। वह एक भावमय सत्ता है, पर बहिर्दृष्टि लोग उसे शब्दमय मान बैठते हैं। अनन्त गुणमय होने के कारण लोग परमात्मा के खण्ड–खण्ड करने पर उतारू हो जाते हैं। उनके लिये परमात्मा से बढकर परमात्मा का नाम है। अतएव वे नाम को पकड बैठते हैं। नाम के आवरण मे छिपी हुई विराट् और व्यापक सत्ता को वे नही पहचानते। जिन्हे अन्तर्दृष्टि का लाभ हो गया है और जो शब्दो के व्यूह को चीरकर भीतरी मर्म तक पहुचने का सामर्थ्य रखते हैं, वे नाम को गौण और वस्तु को प्रधान मानते हैं। अतएव हमारे हृदय मे यह दिव्य भावना आनी चाहिए कि परमात्मा सबका है। उसे क्लेश–कदाग्रह का साधन बनाकर आपस मे लडना–मरना नही चाहिए।

एक प्राचीन महात्मा कहते हैं – शैव जिसे शिव कहकर पूजते हैं, बौद्ध जिसे बुद्ध कहते हैं वेदान्ती जिसे ब्रह्म कहते हैं, नैयायिक जिसे कर्ता कहते हैं जैन जिसे अर्हम कहते हैं और मीमासक जिसे कर्म कहकर अपनी भावना अभिव्यक्त करते हैं वह – जो भी कोई परम मगलमूर्ति है – हमें सिद्धि प्रदान करे इस सबध मे कहा गया है–

**त्रैलोक्यनाथो हरि ।**

'हरि' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है–

**हरति पापानि इति हरि ।**

'हर' शब्द की भी ऐसी ही व्युत्पत्ति है। अर्थात् जो पापो का हरण – विनाश करता है वह हरि या हर कहलाता है। शिव किसे कहते हैं इस सबध मे कहा गया है– **सत्य शिव सुन्दरम्**, अर्थात् जो सत्य है शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है वह हर या शिव है। त्रिलोकीनाथ हरि से पाप हरण करने की प्रार्थना की गई है और पापो को हरने मे हरि और हर समान

अर्थ रखते हैं। फिर इन दोनो के अर्थ मे, जिसके ये दो नाम हैं उस परमात्मा मे अन्तर क्या है, जिससे नाम की आड लेकर सिर–फुटौवल किया जाय? बौद्ध लोग भले ही परमात्मा को बुद्ध नाम देकर प्रार्थना करते हैं, पर वस्तु तो वही है। उसकी प्रार्थना भी पाप को नाश करने के लिये ही है। फिर हरि, हर या बुद्ध मे भेद क्या रहा? मीमासक उस परम–तत्त्व को कर्म रूप मानते हैं। पर वे कर्म पाप–नाश करने के लिये करते हैं या पाप बढाना उनका उद्देश्य है? जैन लोग परमात्मा को अर्हम् कहते हैं। लेकिन अर्हम् कहकर वे पाप बढाने के लिये परमात्मा की प्रार्थना करते हैं या पाप नष्ट करने के लिये? जब पापो का नाश करने के लिये ही इन सब नामो से परमात्मा की प्रार्थना की जाती है तो क्लेश और कलह का कारण क्या है? जल, सलिल और पानी जब एक ही वस्तु के अलग–अलग नाम हैं तो क्या जल से ही प्यास बुझेगी? पानी से नही बुझेगी? तात्पर्य यह है कि प्यास शात करने के लिये चाहे जल पीया जाये, चाहे सलिल पीया जाये और चाहे पानी पीया जाये सब एक ही बात है। इसी प्रकार पाप–नाश करने के लिये चाहे किसी भी नाम से परमात्मा की प्रार्थना की जाय, उसमे भेद नही है, क्योकि नाम भेद से वस्तु मे भेद नही होता। वस्तु की विभिन्नता गुणमूलक है। अतएव परमात्मा की प्रार्थना करने मे उदारभाव से काम लेना चाहिये।

## भक्तो का आधार

आकाश अनन्त है। वायुयान पर विहार करने वाले भी आकाश का अन्त नहीं पा सकते, तो बेचारे पक्षियो की क्या चलाई? फिर भी पक्षियो का आधार आकाश ही है। पक्षी दाना चुगने पृथ्वी पर आते अवश्य हैं फिर भी उनका मूल आधार आकाश है। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे पक्षियो का आधार आकाश बतलाया गया है। जरा भी भय की आशका होते ही पक्षी आकाश की शरण लेते हैं।

इसी प्रकार भक्तो का आधार परमात्मा है। भक्तजन परमात्मा का ही सहारा लेते हैं। परमात्मा के स्वरूप का पार मिले या न मिले भक्तजन ससार मे रहते हुए भी परमात्मा का ही आश्रय लेते हैं। इसीलिए वे परमात्मा के स्वरूप को जानने का उद्योग करते रहते हैं। स्वरूप का पार न पाने पर उन्हे कभी निराशा नही सताती। असफलता उद्योग की मात्रा मे वृद्धि करने की प्रेरणा करती है। जैसे पक्षी आकाश का आश्रय पाकर अपने को निर्भय समझता है उसी प्रकार भक्तजन परमात्मा के आश्रय मे ही अपनी निर्भयता देखते हैं।

## ईश्वरीय बल

लोग कहते हैं – धार्मिक लोग कायर होते हैं निर्बल होते हैं। मैं कहता हू – अगर धार्मिक लोग सच्ची निर्बलता पाप्त कर सके तो उनमे ईश्वर का बल आ जाय। ईश्वरीय बल की समता क्या है? एक ओर ससार का समस्त बल सगृहीत किया जाय और दूसरी ओर परमात्मा का बल हो तो किसकी शक्ति अधिक होगी? परमात्मा के बल के सामने विश्व का सम्पूर्ण बल किसी गिनती मे नही। अगर तुम इस सत्य पर श्रद्धा कर सको और ससार के बल के सामने ईश्वरीय बल को महान् समझ सको तो तुच्छ बल का त्याग कर महान बल को प्राप्त करने की चेष्टा करो। निश्चय समझो कि ईश्वरीय बल के समक्ष ससार का बल तुच्छ है, त्याज्य है और हीरे के मुकाबिल ककर के समान है। सच्चा वीर पुरुष हीरे के समान बल को प्राप्त करने के लिये ककर के समान बल का त्याग किये बिना नही रह सकता।

## ईश्वरीय बल और अन्य बल

ससार की सर्वश्रेष्ठ शक्तियो ने अपना सम्पूर्ण बल लगाकर युद्ध किया परन्तु फल क्या हुआ? क्या वैर का अन्त हुआ? नहीं। बल्कि वैर की वृद्धि हुई है। भौतिक बल के प्रयोग का परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता। केवल ईश्वर की ही ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा शत्रु भी नही रहता है और शत्रुता का भी नाश हो जाता है।

## परमात्मा का राज्य

यह जीव ससार–अटवी मे भटकता फिरता था। पुण्य के योग से इसे आर्य क्षेत्र और मनुष्यजन्म मिल गया। आर्य क्षेत्र और मनुष्यजन्म ससार–अटवी से निकाल कर परमात्मा के राज्य मे पहुचाने वाले मित्र हैं। इन मित्रो की सहायता लेकर सिद्धान्त के मार्ग पर चलना और परमात्मा के राज्य मे पहुचना अपने हाथ की बात है। परमात्मा के राज्य मे पहुच जाने पर किस बात का भय है? अगर कोई मनुष्य जगल मे से भाग निकलकर किसी सुराज्य मे दाखिल हो जाता है तो अपने को निरापद मान सतोष की सास लेता है, चोरादि के भय से मुक्त समझता है। जब मानवीय राजा के राज्य मे भी भय नही रहता तो परमात्मा के राज्य मे भय की सभावना कैसे की जा सकती है?

## ईश्वर–साक्षात्कार

ससार सबधी विचारो से बचने के लिए और आत्मा को परमात्मा के स्वरूप मे परिणत करने के लिए उपाधि का त्याग करो। निरन्तर चिन्तन मनन ध्यानादि उपायो के द्वारा आत्मा को आगे बढाओ। आत्मा की जो अनन्त

शक्तिया सुप्त अवस्था मे पडी हुई हैं, उन्हे जगाओ। ऐसा करने पर ईश्वर नजर आयेगा।

## परमात्मा के प्रति कृतज्ञता

तू भूल रहा है। तुझे नहीं मालूम कि तुझ पर परमात्मा का कितना उपकार है? ज्ञानियो का समागम कर, तो मालूम होगा कि परमात्मा की ओर से तुझे क्या अनमोल उपहार मिला हे? और तुझे परमात्मा के प्रति कितना कृतज्ञ होना चाहिए?

ससार की वस्तुए अधिक श्रेष्ठ हैं या मनुष्य–शरीर? ससार की समस्त वस्तुए एक ओर हो और मनुष्य–शरीर दूसरी ओर हो तो भी मनुष्य–शरीर का ही मूल्य अधिक होगा। सासारिक पदार्थों मे रत्न श्रेष्ठ माना जाता है परन्तु रत्न की श्रेष्ठता समझने वाला कौन है? मनुष्य ही। बन्दर रत्न की कीमत नही आक सकता। इसी प्रकार समस्त पदार्थ मानव–शरीर से नीचे हैं। फिर भी तू भूल रहा है और परमात्मा के प्रति कृतज्ञ नही होता। परमात्मा की कृपा से मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ है, अत उसका गुण–गान करो। यह शरीर परमात्मा के भजन और भक्ति का अपूर्व साधन है।

## जिनवाणी

जैसे पानी मे किसी प्रकार का भेद नही है वैसे ही जिनवाणी मे भी। जिनवाणी सबके लिए समान है। पानी चाहे कुए का हो या तालाब का मूल मे एक–समान है। परन्तु जब लोग तालाब या कूप से घडे मे जल भर लाते हैं तब अहकार पैदा होता है। एक कहता है – 'पानी मेरा है कोई हाथ न लगावे।' पर पानी मे वास्तव मे किसी प्रकार की भिन्नता नही है। प्रकृति समान भाव से सबके लिए वर्षा करती है। प्रकृति समान भाव से जिस प्रकार सबका पोषण करती है वैसा कोई दूसरा नही कर सकता।

जिस प्रकार सरोवर या कूप मे से घडा भर लाने वाला जल पर अपना एकाधिपत्य मानता है, पर सरोवर या कूप सबके लिए समान हे इसी प्रकार जिनवाणी रूपी सरोवर से अपनी बुद्धि द्वारा सूत्र रूपी घट भर लिया जाय तो हानि नहीं पर वह तो मूलत भगवान की ही हे और उस पर सबका समान अधिकार है।

# भगवद्भक्ति या परमात्माप्रार्थना

## ईश्वर–भक्ति

मानव–जीवन ससार की बडी से बडी सम्पदा है। यह सम्पदा तुम्हे मिली है, पर तुम इसकी कीमत नही समझते। अगर तुम मानव–जीवन का मूल्य समझते तो विचार करते कि मुझे यह अनमोल रत्न मिला है तो ककर के बदले इसे फेक देने की मूर्खता मैं कैसे करू? भाइयो! मनुष्य जन्म का मूल्य समझो और एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देकर परमात्मा की भक्ति मे समय का सदुपयोग करो। ऐसा करने से तुम्हारा जीवन सार्थक होगा और तुम्हारी आत्मा ईश्वरमय बन जायेगी।

## भगवद्–भक्ति

अगर मुझसे कोई प्रश्न करे कि परमात्मा को प्राप्त करने का सरल मार्ग क्या है? तो मैं कहूगा – परमात्मा की प्राप्ति का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। अनन्य भाव से परमात्मा की प्रार्थना या भक्ति करने से परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

यह पूछा जा सकता है कि परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए? वास्तव मे परमात्मा की प्रार्थना की विधि का ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु प्रार्थना–विधि का परिज्ञान भक्तजनो के चरित्र मे निहित है। भक्त अपना चरित्र छोड गये हैं और कह गये है कि हम जिस मार्ग पर चले हैं उसी मार्ग पर तुम भी चले आओ और हमने जो स्थिति प्राप्त की है, तुम भी वही स्थिति प्राप्त करो।

## ईश्वर–मिलन

पतिव्रता स्त्री को अपने पति से मिलने की जैसी तडफ होती है, उससे कही अधिक गहरी तडफ आत्मा को परमात्मा से मिलने की होनी चाहिये। अपने प्रिय से मिलने की लालसा किसे नही होती? परमात्मा से मिलने की तडफ

प्रत्येक मे सनातन काल से विद्यमान है। उसे फलीभूत करने का पुरुषार्थ करना आत्मा का परम कर्तव्य है।

## नमस्कार

नमस्कार करना साधारण कार्य नही है। मस्तक झुकाना एक असाध ारण मूल्यवान व्यापार है। चाहे जिसके आगे मस्तक नही झुकाया जा सकता। मस्तक झुकाने वाला जिसके आगे मस्तक झुकाता है, उसके प्रति सम्पूर्ण भाव से समर्पित हो जाता है। समर्पण की आतरिक क्रिया का बाह्य प्रतीक है – नमस्कार। नमस्कार करने वाला नमस्करणीय के चरणो मे न केवल मस्तिष्क अर्पण करता है वरन् वह अपना हृदय, अपना तन, अपनी बुद्धि अपनी योग्यता, यहा तक कि अपना जीवन भी अर्पण कर देता है। वह पूर्ण रूप से उसी का हो जाता है।

नमस्कार के रूप मे सर्वस्व समर्पण कर देने वाला आराधक पाता क्या है? न वह प्रशसा चाहता है, न कीर्ति चाहता है, न अहकार खरीदता है न गौरव मानता है। वह हृदय, मस्तिष्क बुद्धि और अहकार के भार को अपने आराध्य के आगे विसर्जित कर देता है, सो इसलिए नहीं कि उसके बदले वह कीर्ति, महिमा आदि खरीदे। वह अपना बोझ हल्का करता है, कीर्ति आदि का बोझ नये सिरे से अपने ऊपर लादता नही है। यही निष्काम भक्ति है। यही विशुद्ध आराधना है। जिसके हृदय मे ऐसी भक्ति होती है वही नमस्कार करने का अधिकारी है। उसी का नमस्कार पूर्ण लाभदायक होता है।

## बुद्धि का समर्पण

बुद्धिवाद के इस युग मे बौद्धिक चपलता के कारण आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व मे शका की जाती है। परन्तु बुद्धि जो आत्मा की दासी है, उसे परमात्मा के चरणो मे अर्पित कर दिया जाये तो इस प्रकार की शकाओ के लिए अवकाश ही न रहे।

## प्रार्थना– कल्पवृक्ष

जो लोग परमात्मा की प्रार्थना मे श्रद्धा रखते हैं और जो प्रार्थना की शक्ति को स्वीकार करते हैं उनके लिए प्रार्थना एक अपूर्व वस्तु है। उस पर यदि विश्वास रखा जाये तो उससे अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होती है। यदि प्रार्थना मे विश्वास न रखा जाय तो वही एक प्रकार का ढाग बन जाती है। उससे फिर अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होना सम्भव नही है। कल्पवृक्ष मे कौनसी वस्तु [illegible] रही हुई है? उसमे रहती तो सभी वस्तुए हैं पर नजर एक भी नही आती। फिर भी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जिस वस्तु की कल्पना की जाती है [illegible]

मिल जाती है। इस प्रकार कल्पवृक्ष स्वय कल्पना (चिन्ता) के आधार से वस्तु प्रदान करता है। यदि कल्पना न की जाय तो उस वस्तु की प्राप्ति नही हो सकती। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना मे निहित शक्ति भले ही दृष्टिगोचर न हो पर यदि उस पर विश्वास किया जाय तो उससे समस्त मनोरथ पूरे हो सकते हैं। यही कारण है कि ज्ञानीजन परमात्मा की प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न की भी परवाह नही करते। उनकी दृष्टि मे परमात्मा की प्रार्थना के मुकाबिले उन चिन्तामणि आदि की भी कीमत नहीं है। जब हमारे भीतर परमात्मा की प्रर्थाना पर ऐसा प्रगाढ विश्वास पैदा हो जाएगा और प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी तुच्छ प्रतीत होने लगेगे, तब हमे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि परमात्मा की प्रार्थना मे कैसी अद्भुत शक्ति विद्यमान है। अत परमात्मा की प्रार्थना मे दृढ विश्वास रखो। हा एक बात स्मरण रखनी चाहिए और वह यह कि जब किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा को पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तब वह सच्ची प्रार्थना नही, वरन् ऊपरी ढोग बन जाती है। इस विषय मे भक्त केशवलाल ने ठीक ही कहा है 'परमात्मा की प्रार्थना मे पन्द्रह आना मन लगा हो और केवल एक आना मन सासारिक पदार्थ की पूर्ति मे लगा हो तो वह प्रार्थना भी ढोग रूप ही है।'

किसान को घास और भूसे की भी आवश्यकता पडती है। पर वह घास भूसे के लिए खेती नही करता। उसका उद्देश्य तो धान्य को प्राप्त करना होता है। फिर भी धान्य के साथ घास–भूसा भी आनुषगिक रूप मे उसे मिल ही जाता है। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करते समय ऐसा विचार करना चाहिए कि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मैं प्रार्थना करता हू, क्योकि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने मे ही आत्मा का कल्याण समाया हुआ है। इस प्रकार की उन्नत भावना रखने से अन्न के साथ–साथ जैसे घास–भूसा आप ही मिल जाता है उसी प्रकार सासारिक पदार्थ भी अनायास ही मिल जाते हैं। लेकिन ससार की सब वस्तुए पा लेने की अपेक्षा आत्मा का कल्याण साधन श्रेष्ठतर है। अतएव आत्मिक निर्मलता के लक्ष्य से ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर प्रार्थना द्वारा आत्मा का हित–साधन हो सकता है तो तुच्छ चीजो को पाने के लिए उस प्रार्थना का उपयोग करना चने के बदले रत्न देने के समान मूर्खता है। आत्म–कल्याण की अभिलाषा रखने वालो को ऐसी मूर्खता कदापि नही करनी चाहिए।

परमात्मा की प्रार्थना, किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती है। पर प्रार्थना मे आत्मसमर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य–सा स्थापित कर लेता है। वस्तुत आत्मोत्सर्ग के बिना सच्ची प्रार्थना नही हो सकती। इसलिए भक्तजन कहते है–

**तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने, इन पर वेगि रिझास्या राज।**

अर्थात् परमात्मा की प्रार्थना करने मे तन, धन और प्राण भी अर्पण कर दूगा।

## प्रार्थना सबधी श्रद्धा

यदि तुम्हारे चर्मचक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने मे समर्थ नहीं हैं, तो इससे क्या हुआ? चर्मचक्षु के अतिरिक्त हृदयचक्षु भी है और उस चक्षु पर विश्वास भी किया जा सकता है। परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे ज्ञानीजन यही कहते हैं कि तुम चर्मचक्षुओ पर ही निर्भर न रहो हमारी बात मानो। बचपन मे जब तुमने बहुत–सी वस्तुए नही देखी थी तब माता के कथन पर तुम भरोसा रखते थे। क्या उससे तुम्हे हानि हुई है? बचपन मे तुम साप को भी साप नहीं समझते थे। मगर माता पर विश्वास रखकर ही तुम साप को साप समझ सके हो और साप के दश से अपनी रक्षा कर सके हो। फिर उन ज्ञानियो पर, जिनके हृदय मे माता के समान करुणा और वात्सल्य का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है, श्रद्धा रखने से तुम्हे हानि कैसे हो सकती है? उन पर विश्वास रखने से तुम्हे हानि कदापि न होगी प्रत्युत लाभ ही होगा। अतएव जब ज्ञानीजन कहते हैं कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना–स्तुति करने से शान्ति लाभ होता है तो उनके इस कथन पर विश्वास रखो। स्मरण रखना इस प्रकार के विश्वास से तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

## विषय–वासना और भक्ति

विषय–वासना होने पर भक्ति नहीं रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय–वासना एक साथ कैसे निभ सकती है?

परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय–वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिए ऐसे व्यक्ति का ससर्ग भी त्याज्य है जो विषय–वासना को प्रधानता देता है।

## आत्मौपम्य और प्रार्थना

जो योगी या परमयोगी कहलाने वाला पुरुष ध्यान–मौन मे परायण होकर आत्मा–परमात्मा का ध्यान नहीं करता वह संसार मे भार रूप है।

ससार के जीवो मे साम्य भाव हुए बिना कोई योगी नही कहला सकता। वही सच्चा योगी है जो प्राणी–मात्र को अपने समान समझता है, उन्हे आत्मौपम्य बुद्धि से देखता है। जैसा मैं हू वैसे ही और भी प्राणी हैं– इस प्रकार अनुभव करके जो दूसरे के दु ख–सुख को अपने ही समान समझता है और सबके प्रति समभावपूर्वक व्यवहार करता है अर्थात् जिस बात से मुझे दु ख होता है, उससे अन्य पाणियो को भी दु ख होता है। दु ख जैसे मुझे अप्रिय है वैसे ही औरो को भी अप्रिय है, जैसे मुझे सुख की अभिलाषा है, उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख के ही अभिलाषी है। इस प्रकार आत्मौपम्य बुद्धि से समस्त प्राणियो को देखने वाला और ऐसा ही व्यवहार करने वाला सच्चा योगी है।

यह कथन जैन दर्शन का ही नही है, किन्तु अन्य दार्शनिको का भी यही कथन है। गीता मे कहा है–

**आत्मौपम्येन सर्वत्र, सम पश्यति योऽर्जुन ।**
**सुख वा यदि वा दु ख, स योगी परमो मत ।।**

– अध्याय–6 / 32

## प्रार्थना और समभाव

समभाव वाले और विषम भाव वाले पुरुष के कार्यो मे कितना अन्तर रहता है? यह बात ससार मे सर्वत्र ही देखी जा सकती है। सम्यक् दृष्टि जीव भी खाना–पीना–विवाह आदि कार्य करता है और मिथ्यादृष्टि भी यह सब करता है। लेकिन दोनो के कार्यो की भाव–भूमिका मे महान अन्तर होता है। समभाव से अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। उसका आस्वाद वाणी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। वह सिर्फ अनुभव की वस्तु है और अनुभव करने वाले ही उसे पहचानते हैं। सिर्फ हृदय मे समभाव जाग्रत हो जाता है उसे किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पडती।

मित्रो! ईश्वर की प्रार्थना से समभाव पैदा होता है और समभाव ही मोक्ष का द्वार है। ऐसा समझकर अगर आप अपने अन्त करण मे समभाव धारण करेगे तो आपका परम कल्याण होगा।

## प्रार्थना और लौकिक कामना

जगत् मे आशाए इतनी अधिक हैं कि उनका अन्त नहीं आ सकता। शास्त्र मे कहा है–

**इच्छा हु आगास समा अणन्तिया। उत्त॰**

अर्थात आशा–तृष्णा आकाश के समान अनन्त हैं। तृष्णा का कहीं अन्त नही है। ऐसी स्थिति मे तृष्णा की पूर्ति के लिए उद्योग करना आकाश

को नापने के समान निष्फल चेष्टा है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष आशाओ की पूर्ति करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना नहीं करते वरन् आशा का नाश करने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं।

इसी भाव से परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। मगर तुम आशा को नाश करने के बदले सासारिक पदार्थों – धन, पुत्र, स्त्री आदि के लिए प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ तुम्हे लात मार कर चलते बनेगे और तुम्हारी आशाए ज्यो की त्यो अधूरी ही रह जाऐगी। हा अगर तुम आशा–तृष्णा को नष्ट करने के लिए अन्त करण मे पूर्ण निस्पृहवृत्ति जाग्रत करने के लिए ईश–प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ जिनके तुम अधिकारी हो, तुम्हे मिलेगे ही, साथ ही शाति का परम सुख भी प्राप्त होगा। अतएव आशा को नष्ट करने की एकमात्र आशा से परमात्मा की प्रार्थना करो।

## आत्मा परमात्मा

यह मत सोचो – ईश्वर तो कभी दिखता नही है उससे प्रेम किस प्रकार किया जाय? अगर ईश्वर नहीं दिखता तो ससार के प्राणी तो दिखाई देते हैं न? जगत् का प्रत्येक प्राणी, कीडी से लगाकर कुजर तक समान है। इस तत्त्व पर विचार करोगे तो ईश्वर से प्रेम करने की बात असम्भव न लगेगी। ईश्वर नही दिखता तो न सही, ससार के प्राणियो की ओर देखो और उन्हे आत्मतुल्य समझो। सोचो – जैसा मैं हू, वैसे ही ये हैं। इस प्रकार इतर प्राणियो को अपने समान समझने से शनै–शनै ईश्वर का साक्षात्कार होगा – परमात्मत्व की उपलब्धि होगी – आत्मा स्वय उस शुद्ध स्थिति पर पहुच जायेगा।

तात्पर्य यह है कि ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा स्वय ईश्वर बन जाता है। पर जब तक ईश्वरत्व की अनुभूति नही होती तब तक प्राणियो को ही ईश्वर के स्थान पर आरोपित कर लो। ससार के प्राणियो को आत्मा के समान समझने से दृष्टि ऐसी निर्मल बन जायगी कि ईश्वर को भी देखने लगोगे और अन्त मे स्वय ईश्वर बन जाओगे।

जगत् के इस विषमय वातावरण मे यह उदार भावना किस प्रकार आ सकती है? किस उपाय से भूतल के एक कोने मे रहने वाला मनुष्य दूसरे कोने के निवासी प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई समझ सकता है?

इस प्रश्न का मेरे पास एक – केवल एक ही उत्तर है। वह यह है कि त्रिलोकीनाथ की विजय की भावना मे ही विश्वशाति की भावना निहित है। इस प्रकार की व्यापक विराट भावना त्रिलोकीनाथ परमात्मा की विजय चाहने से ही हो सकती है। त्रिलोकीनाथ परमात्मा की विजय चाहो तो

अन्त करण मे एक प्रकार की विशालता की समभावना आती है। ऐसा चाहने वाला व्यक्ति सोचता है कि मेरा स्वामी त्रिलोकीनाथ है। ससार के समस्त प्राणी उनकी प्रजा हैं। जब मै त्रिलोकीनाथ की विजय चाहता हू तो उसकी प्रजा मे से किसकी पराजय, किसका बुरा सोचू? मैं जब त्रिलोकीनाथ की विजय चाहता हू तो उसे प्रसन्न करने के लिये उसकी समस्त प्रजा का भला चाहू। परमात्मा की विजय चाहने से इस प्रकार के विचार अन्त करण मे उत्पन्न होते है और इन उदार विचारो से राग–द्वेष का भाव क्षीण हो जाता है। जितने अशो मे विचारो की उदारता होगी उतने ही अशो मे राग–द्वेष की क्षीणता होगी और जितने अशो मे राग–द्वेष की क्षीणता होगी और उतने ही अशो मे निराकुलता – शान्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार विश्वशाति का मूल मत्र है – परमात्मा की विजय की कामना करते रहना।

इस विजय–कामना की एक विशेषता यह भी है कि इसकी आराधना से सामूहिक जीवन के साथ ही साथ वैयक्तिक जीवन का भी विकास होता है। इससे सिर्फ राष्ट्र या राष्ट्र–समूह ही लाभ नही उठा सकते, वरन् व्यक्ति भी अपना जीवन उदार समभावपूर्ण और शान्त बना सकते हैं।

## स्वर्ण अवसर

प्रथम तो परमात्मा के भजन करने का अवसर मिलना ही अत्यन्त कठिन है जिस पर अनेक प्रकार की बाधाए सदैव ताकती रहती हैं और मौका मिलते ही उस अवसर को व्यर्थ बना डालती हैं। इस प्रकार मानव–जीवन की ये घडिया अनमोल हैं। ये घडिया परिमित है। ससार मे कोई सदा जीवित नही रहा और न रहेगा ही। अतएव प्राप्त सुअवसर से लाभ उठा लेना प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष का कर्तव्य है। अतएव परम भाव से परमात्मा का स्मरण करो।

यह श्वासोच्छ्वास जो चलता है, समझो कि मेरा नही किन्तु परमात्मा का ही चलता है। इसे खाली मत जाने दो। प्रत्येक श्वास और उच्छ्वास मे परमात्मा का स्मरण चलता रहने दो। इसके लिए सतत जाग्रत भाव की आवश्यकता है – चिर अभ्यास की अपेक्षा है। अगर शीघ्र ऐसा न हो सके, तो भी आदर्श यही अपने सामने रखो। आदर्श सामने रहेगा तो उसी ओर गति होगी भले ही वह मद हो।

जिस प्रकार सूर्य के सामने अधकार नही रहता इसी प्रकार परमात्मा से साक्षात्कार होने पर आत्मा मे कोई भूल शेष नहीं रहती। किन्तु आपको और हमको अभी तक परमात्मा से साक्षात्कार नही हुआ है। हम लोग अभी इस पथ के पथिक हैं। इसलिए प्रार्थना करके हमे परमात्मा से साक्षात्कार करने

का मार्ग तय करना है। प्रार्थना मे अपने दुगुर्णो को छिपाना नहीं चाहिए किन्तु प्रकट करना चाहिए। ऐसा करने से आत्मा एक दिन परमात्मा से साक्षात्कार करने मे समर्थ हो सकेगा।

हे भाइयो! मेरा कहना मानते होओ तो मैं कहता हू कि दूसरे सब काम छोड कर परमात्मा का भजन करो। इसमे तनिक भी विलम्ब न करो। तुम्हारी इच्छा आत्मकल्याण करने की है और यह अवसर भी अनुकूल मिल गया है। कल्याण के साधन भी उपलब्ध हैं। फिर विलम्ब किसलिए करते हो? कौन जानता है यह अनुकूल दशा कब तक रहेगी?

## भजन

परमात्मा से भेट करने का सरल और सुगम मार्ग भजन है। यह मार्ग सभी के लिए उपयोगी है। चाहे कोई ज्ञानी हो या अज्ञानी हो पुरुष हो या स्त्री हो, नीच हो या उच्च हो, धनवान हो या निर्धन हो भजन का मार्ग सबके लिए खुला है। इस मार्ग मे ये सब ऊपरी भेद मिट जाते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा का भजन क्या है? परमात्मा का नाम लेना ही भजन है या कुछ और? इसका उत्तर यह कि भगवान् का नाम लेना ही भजन है अवश्य, लेकिन भजन का खास अर्थ ईश्वरीय तत्त्व की उपासना करना है।

जीवन की कला को विकसित करने के लिए ईश्वर की प्रार्थना का एक सफल साधन है। अगर आठ पहर दिन–रात ईश्वर की प्रार्थना हृदय मे चलती रहे तो ससार दु खप्रद नही हो सकता। यही नही ससार के दु ख आत्म–जागृति के निमित्त बन कर कहेगे – हे आत्मन्! तू अपने घर म क्यो नही चला जाता? इस झझट मे काहे को पडा है? प्रार्थना करने वाले को ससार के दु ख किस प्रकार जाग्रत कर देते हैं यह बात प्रार्थना करने वाला ही जानता है। जो मनुष्य ससार के प्रपचो मे ही रचा–पचा है उसे यह तथ्य मालूम नहीं हो सकता।

## प्रार्थना और तर्क

प्रार्थना का विषय आध्यात्मिक हे। इस आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क–वितर्क का कोई मूल्य नही हे। यह विश्वास का विषय हे। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण–परीक्षण नही किया जा सकता।

## अन्त करण की प्रेरणा

जिस समय आम के वृक्ष म मजरिया लगती हैं और उनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर उन पर मडराते हैं तब कोयल चुप रह सकती? [illegible]

किसी के कहने से नही गाती। आम मे मजरी आने से उस पर जो मतवालापन सवार हो जाता है, उस मतवालेपन मे वह बोले बिना नही रह सकती।

एक कवि कहता है–जिसके हृदय मे भक्ति हो, वही भक्ति की शक्ति को जान सकता है। केतकी और केवडा के फूलने पर भौंरे को गुजार करने से कभी रोका जा सकता है?

भ्रमर हमारे–आपके लिए गुजार नही करता। केतकी और केवडा के फूलने से उसमे एक पकार की मस्ती आ जाती है। उस मस्ती की अवस्था मे गुजार किये बिना वह अपने चित्त को शात कैसे रख सकता है? इसी प्रकार बसन्त ऋतु आने पर जब आम फूलो से सुसज्जित्त हो जाता है, तब कोयल से चुप नही रहा जा सकता। मेघ की गम्भीर गर्जना होने पर मयूर बिना बोले कैसे रह सकता है?

पवन के चलने पर ध्वजा हिले बिना रह सकती है? इसी प्रकार कवि कहता है – किन्तु मुझ से अगर कोई चाहे कि तुम बोलो मत, चुप रहो, तो मेरे अन्त करण मे भक्ति का जो उद्रेक हो रहा है, उस उद्रेक के कारण बिना बोले मुझ से कैसे रहा जा सकता है?

बसन्त ऋतु के आने पर भी अगर कोयल नही बोलती तो उसमे और कौवी मे क्या अन्तर है? केतकी के फूलने पर भी भ्रमर मतवाला होकर गुजार नहीं करता तो भ्रमर मे और दुर्गंध पर जाने वाली मक्खी मे अन्तर ही क्या रहेगा? कोयल बसन्त के आने पर और भ्रमर केतकी के कुसुमित होने पर भी न बोले – अगर उन्होने वह अवसर गवा दिया तो फिर कौनसा अवसर उन्हे मिलेगा? कब अपने कोयल और भ्रमर होने का परिचय देगे? अतएव कोयल मे और भ्रमर मे जब तक चैतन्य है, जब तक जीवन है तब तक वे अवसर आने पर बोले बिना नही रहेगे। इसी प्रकार अगर मयूर मे जीवन है तो मेघ की गर्जना सुनकर उससे चुपचाप बैठा न रहा जायगा। अगर वह चुपचाप रहता है तो उसमे और गीध मे क्या अन्तर है? मेघ की गर्जना सुनते ही मयूर के उर मे जो प्रेम उमडता है वह गिद्ध के हृदय मे नहीं उमडता।

तात्पर्य यह है कि बसन्त आदि अवसरो पर कोयल आदि के बोलने मे निसर्ग की प्रेरणा है। निसर्ग की यह प्रेरणा इतनी बलवती होती है कि उसके आगे किसी की नही चलती। उसी प्रकार भक्त के अन्त करण मे भक्ति की आतरिक प्रेरणा उत्पन्न होती है। उससे प्रेरित भक्त मौन नहीं रह सकता।

जीवन का प्रत्येक क्षण – चौबीसो घटे प्रार्थना करते–करते ही व्यतीत होने चाहिए। एक श्वास भी बिना प्रार्थना का खाली नही जाना

चाहिए। प्रार्थना मे जिनका अखड ध्यान वर्तता है उन्हे बारम्बार श्रद्धापूर्वक नमन है। हम लोगो मे जब तक जीवन है, जब तक जीवन मे उत्साह है जब तक शक्ति है, यही भावना विद्यमान रहनी चाहिए कि हमारा अधिक समय प्रार्थना करते-करते ही बीते।

## भक्ति और अहकार

जब तक अहकार है, अभिमान है, तब तक भक्ति नहीं हो सकती। अहकार की छाया मे प्रेम का अकुर नही उगता। अहकार मे अपने प्रति घना आकर्षण है, आग्रह है और प्रेम मे घना उत्सर्ग चाहिए। दोनो भाव परस्पर विरोधी हैं। एक मे मनुष्य अपने-आप को पकड कर बैठता है, अपना आपा खोना नहीं चाहता और दूसरे मे आपा खोना पडता है। इस स्थिति मे अहकार और प्रेम या भक्ति, दोनो एक जगह कैसे रहेगे?

## प्रार्थना और निर्मलता

काच पर प्रतिबिम्ब पडे बिना नही रहता इसी प्रकार भाव-प्रार्थना करने वाले प्रार्थी के निर्मल हृदय पर परमात्मा का प्रतिबिम्ब पडे बिना नही रहता। जब स्वच्छ काच पर देखने वाले का प्रतिबिम्ब पडता है तब हृदय निर्मल होने पर चिदानन्द परमात्मा का प्रकाश हृदय पर क्यो नही पडेगा? परमात्मा के प्रकाश को अन्त करण मे प्रतिबिम्बित करना ही प्रार्थना का साध्य है। इस साध्य के लिए आवश्यक बल्कि अनिवार्य है – हृदय की निर्मलता। हृदय निर्मल न होगा तो प्रार्थना अपना साध्य कैसे साधन कर सकेगी?

## ईश्वरप्रेम और प्रार्थना

प्रार्थना जीवन और प्राण का आधार है। प्रार्थना ही वह अनुपम साधन है जिसके द्वारा प्राणी आनन्दधाम मे स्वच्छन्द विचरण कर सकता है। जो प्रार्थना प्राणरूप बन जाती है वह भले ही सीधी-सादी भाषा मे कही गई हो ग्राम्य भाषा द्वारा की जाती हो या प्राकृत- सस्कृत भाषा मे की जाती हो प्रार्थना करने वाले को चाहे सगीत से परिचय हो या न हो उसके स्वर मे लालित्य हो अथवा न हो वह प्रार्थना सदैव कल्याणकारिणी होगी।

प्रार्थना का सबध भाषा से या जिह्वा से नही है। जिह्वास्पर्शी भाषा तो शुक भी बोल लेता है। मगर वह भाषा केवल प्रदर्शन की वस्तु है। निर्मल अन्त करण मे भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रीतिभाव जब प्रबल हो [illegible] स्वयमेव जिह्वा स्तवन की भाषा का उच्चारण करने लगती है [illegible] उच्चारण मे हृदय का रस मिला होता है। ऐसा स्तवन ही फलदायी होता है। प्रार्थना के विषय मे जो प्रवचन किया जाता है उसका [illegible]

यही है कि सर्वसाधारण के हृदय मे प्रार्थना के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न हो जाय – प्रार्थना मे अन्त करण का रस मिल जाय।

आत्मा के आवरणो का क्षय करके ईश्वर बनने का यह सीधा रास्ता है। परमात्मा का साक्षात्कार करने के अनेक उपाय बताये हैं, लेकिन सबसे सरल मार्ग यही है कि आत्मा मे परमात्मा के प्रति परिपूर्ण प्रेम जाग्रत हो जाय। यह प्रेम ऐसा होना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति मे ईश्वर का ध्यान खण्डित न होने पावे।

आत्मकल्याण के लिए गहन तत्त्वो का विचार भले ही किया जाय, पर ऐसा करना सबके लिए सम्भव नहीं है। तो क्या आत्मकल्याण का रास्ता सर्वसाधारण के लिए खुला नही है? अवश्य खुला है। सर्वसाधारण के लिए आत्मकल्याण का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। प्रार्थना की इस महिमा से आकृष्ट होकर अनेक वर्षो से मुझे प्रार्थना करने की लगन लगी है। परमात्मा की प्रार्थना मे मुझे अपूर्व आनन्द और अखण्ड शाति का शीतल एव पवित्र झरना बहता जान पडता है।

**प्रभु का स्मरण**

परमात्मा के नाम का स्मरण पाप के फल से बचने के लिए करना चाहिए या पाप से बचने के लिए अथवा फल भोगने मे धैर्य– प्राप्ति के लिए?

**कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि**

कृत कर्मो से उनका फल भोगे बिना छुटकारा नही मिल सकता। अतएव फल से बचने की कामना करना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त कर्म करके उसके फल से बचने की कामना करना एक प्रकार की दीनता और कायरता है अतएव नवीन कर्मो से बचने के लिए और पूर्वकृत कर्मो का समभाव के साथ फल भोगने की क्षमता प्राप्त करने के लिए ही भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

वास्तव मे जो जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे परमात्मा के नाम का आश्रय लेकर दु ख से बचने की इच्छा नहीं करते किन्तु यह चाहते हैं कि हे प्रभो! हम अपने पाप का फल भोगते समय व्याकुल न हो और हमे घबराहट न हो और धैर्य के साथ पाप का फल भोगे।

इस प्रकार कष्टो को सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का नाम स्मरण करोगे तो पाप का फल भोगने के पश्चात् पापमुक्त बन सकोगे और आत्मकल्याण साध सकोगे।

परमात्मा पर प्रतीति लाओ। भगवान की भक्ति मे प्रेम रक्खो और उनकी प्रार्थना करके उन्हे अपने हृदय मे स्थापित करो। अगर तुमने मेरी इस बात पर ध्यान दिया, अगर तुमने अपना हृदय भगवान का मदिर बना लिया तो शीघ्र ही एक दिव्य ज्योति तुम्हारे अन्त करण मे उद्भूत होगी। उस ज्योति के सामने मैं तुच्छ हू। यही नहीं, वरन् मैं भी उसी ज्योति का उपासक हू। तुम भी उसी ज्योति की उपासना करो।

एक लक्ष्य पर पहुचने के साधन या मार्ग अनेक होते हैं पर सर्वसाधारण के लिए जो मार्ग अधिक सुविधाजनक हो वही उत्तम मार्ग है। आत्मशोधन के सबध मे भी यही बात है। आत्मशोधन के अनेक मार्गों मे से भक्ति मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति चल सकता है। इस मार्ग पर जाने मे क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या अशक्त, क्या स्त्री, क्या पुरुष किसी को कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रत्येक प्राणी भक्ति के मार्ग पर चल सकता है और आत्मकल्याण की प्राप्ति कर सकता है।

# प्रभु के प्रति

## मार्मिक अभ्यर्थना

हे प्रभो! मैं ऊर्ध्वगति होना चाहता हू, प्रगति के महान् और अन्तिम लक्ष्य की दिशा मे निरन्तर प्रयाण करने की कामना करता हू। मुझे वह शक्ति दीजिये जिससे अधोगामी न बनू। विश्व के प्रलोभन मुझे किंचित् भी आकृष्ट न कर सके। भगवान्! अगर आप मेरे कवच बन जाए, तो मैं कितना भाग्यशाली होऊगा?

हे प्रभो! मेरे भीतर एक बडी दुर्बलता है। मै आपकी शक्ति को जानते हुए भी आपकी गोद मे रहते हुए भी पाप पर विश्वास करके कभी–कभी पाप की गोद मे चला जाता हू। भगवन् मैं तुझ से धन–सम्पत्ति की याचना नहीं करता। मेरी एकमात्र यही याचना है कि मेरा विश्वास, मेरी श्रद्धा, अन्यत्र न जाकर केवल तेरे ऊपर ही केन्द्रित रहे। मैं तेरी ही आशा करू। अपनी श्रद्धा से कभी विचलित न होऊ। तू दयालु है तू नीतिमान् है। मैं तुझ से दुनियादारी की कोई चीज नही चाहता। अगर मैं ऐसी चीज चाहू तो समझना चाहिए मैं तुझे पहिचान ही नही पाया हू। प्रभो! इतना वरदान दे कि कठिन कर्म के आ जाने से जीवात्मा जहा थक जाय उस समय तू मेरी सहायता करना।

रावण द्वारा हरण करने पर सीता के ऊपर कठिन कर्म आ पडा था। सुदर्शन सेठ पर भी वैसा ही विकट समय आ पडा था। युवती रानी, युवक सेठ और ऊपर से राज्य का प्रलोभन।

ऐसे अवसरो पर सहायता करने के लिए मैं तुझ से प्रार्थना करता हू। इस प्रकार के प्रसग उपस्थित होने पर मेरा मन मलीन न होने पाये। प्रभो! ऐसे मौके आने पर तू मेरे ऊपर ऐसी ही दृष्टि रखना जैसी कछुई अपने अडो का पोषण करने के लिए उन पर रखती है। मुझे पाप से बचाना।

हे प्रभो! मेरे पाप का प्रायश्चित्त इस तरह होगा कि मैं तेरे मार्ग मे यदि फूल न बिखेर सकूगा तो काटे भी नही बिखेरूगा। यही नही तेरे मार्ग मे बिखरे हुए काटे बीनूगा, भले ही वे काटे किसी के ही बिखेरे हुए क्यों न हों?

हे प्रभो! मैं तेरी शरण मे आया हू। मेरे अपराधो की तरफ मत देखो। मुझे अपना–सा बना लो। मैं अपने अपराधो का विचार करु तो तुम्हारे प्रति ऐसी प्रार्थना करने का साहस ही नहीं कर सकता। पर तुम्हारा अधमोद्धारक विरुद सुनकर मुझे आश्वासन मिला है और अपना सरीखा बना लेने की प्रार्थना की है।

हे प्रभो! तेरा सहारा लेकर बडे से बडे पापी भी तिर गये है ऐसा मैंने आगम द्वारा सुना है। आगम को प्रमाण मानकर मैं ऐसी प्रार्थना करता हू – प्रभो! शरणागत की रक्षा कर। शरणागत की रक्षा करने से ही तेरे विरुद की रक्षा होगी।

हे प्रभो! मैं भागकर तेरे चरण–शरण मे आया हू। इन विकार–विषधरो से मुझे बचा। मेरी रक्षा कर। विकार रूप विष उतार कर मेरा उद्धार कर।

हे प्रभो! मुझ मे बहुतेरी अपूर्णताए हैं। मुझ मे असीम अशक्ति है असख्य दुर्गुण हैं। किन्तु तुम्हारे शरण मे आने से अपूर्णता अशक्ति और अवगुण दूर हट जाएगे, इस विश्वास के साथ ही तेरी शरण मे आ पडा हू। सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार नही रह सकता। प्रभो, शरणागत की रक्षा कर।

हे परमात्मा! जब तक मुझ मे अपूर्णता विद्यमान है तब तक मुझे आपके चरण की नोका का आश्रय मिलना चाहिये। आपकी चरण–नोका का आधार पाकर मैं ससार–सागर से पार पहुचना चाहता हू।

हे प्रभो! जब दुष्ट अपने दल–बल के साथ मुझे चहु ओर से घेर ले और अपनी तलवार से मेरे टुकडे–टुकडे कर डालने को उद्यत हो तब भी मेरी भावना यही बनी रहे कि ये दुष्ट लोग नही वरन् परमात्मा की कृपा कराने वाले सहायक मित्र हैं। भगवन! मेरी यह प्रार्थना बनी रहे इसमे शिथिलता न आने पावे, तो वह दुष्ट भी मेरे लिये शत्रु के बदले मित्र बन जाएगा।

अतएव हे प्रभो! मैं ऐसी भावना करता हू कि मेरी प्रार्थना ऐसी आदर्श होनी चाहिए कि शत्रु भले ही मुझे मारने आवे मगर मेरे अन्तःकरण में क्रोध या विद्वेष का लेश भी जाग्रत न हो। मैं उसे अपना मित्र मान सकू।

हे प्रभो! मेरी आशा–अभिलाषा ऐसी है कि तुम्हीं उसे पूर्ण कर सकते हो। तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई उसे पूर्ण नही कर सकता। इसलिये मैंने तुम्हारी शरण ली है। तू ही मेरी आशा पूरी कर सकता है। पुत्र की आशा तो स्त्री भी पूरी कर सकती है। उसके लिए तुम्हारा शरण ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे प्रति ऐसी ही आशा करता हू कि जिसकी पूर्ति किसी और से हो ही नहीं सकती। मैंने तुम्हारा स्वरूप जानकर तुम्हे हृदय मे बसाया है और अपने हृदय को तुम्हारा मन्दिर समझने लगा हू। पर जब मैंने अपने हृदय की परीक्षा की तो अत्यधिक निराशा हुई है। मैंने देखा कि मेरे हृदय मे अनेक चोर घुसे हैं। उन्हे निकाल भगाना बहुत कठिन जान पडता है क्योकि वे न तो मेरी पार्थना ही मानते हैं न आज्ञा ही मानते हैं।

**तम लोभ मोह अहकारा, मद कोह मोह रिपु मारा।**
**अति करहि उपद्रव नाथा, मर्दहि मोहि जान अनाथा।।**

हे पभो! ये चोर मेरे हृदय पर अधिकार करके घुसे हैं। बहुत–बहुत प्रयत्न करने पर भी ये नहीं निकलते। हे प्रभो! मेरे हृदय की ओर नजर करो, जिससे तुम्हारी नजर पडते ही ये चोर भाग जाए।

हे प्रभो! मुझे यह शक्ति प्रदान कर कि अगर मैं सत्य के मार्ग पर होऊ तो भले ही कोई राजा नाराज होकर मुझे कारागार मे बन्द कर दे भले ही मुझ पर कष्टो की वर्षा करे पर मैं अपने पथ से विचलित न होऊ और उसका उपकार मानू। मैं यह समझू कि कष्ट देने वाले ने मुझे शाति प्रदान की है मेरा उपकार किया है। मैंने आत्मदशा का जो अनुभव अब तक नहीं किया था उस अमूल्य अनुभव का उसने सुअवसर दिया है।

हे प्रभो! मैं आप से यह प्रार्थना करता हू कि किसी उपाय से मेरा मन विषयो से बाहर निकले। विषयो का जाल बहुत भयकर है। उसमे फसने वाला अपनी सम्पूर्ण शक्तियो से वचित हो जाता है। इसलिए हे प्रभो! तू ही मुझे इस जाल से बचा सकता है। मुझ पर दया कर। मुझे बचा। मेरी रक्षा कर।

हे प्रभो! अनन्त शक्ति का धनी यह आत्मा डाकिन, शाकिन भूत पिशाच आदि से भयभीत होकर इधर–उधर भटकता है पर मुझे विश्वास है कि आपके शरण मे आने से कल्पना के ये भूत क्षण भी नहीं टिक सकते। अगर कोई देव भयानक पिशाच का रूप धारण करके हाथ मे तलवार लेकर मुझे डराना चाहेगा तो भी मैं डरूगा नही। मैं उसे भी अपना उपकारक समझूगा और मानूगा कि वह मेरी परीक्षा ले रहा है। यह तेरे शरण की ही बलिहारी है।

हे प्रभो! अनादिकाल से मैंने अपरिमित दुःख सहन किये हैं। उन दुःखो का कही पार नहीं है। इसलिए मुझे दुःख सहने का अभ्यास–सा हो गया है। अब मुझे अपनी चिन्ता इतनी अधिक नहीं है। मगर तुम्हारे विरुद की चिन्ता अवश्य है। तुम दीनदयाल, पतितपावन और जगद्बन्धु आदि कहलाते हो। मेरे कष्ट भुगतने से कही तुम्हारी इस विरुदावली को धक्का न लगे। अतएव हे नाथ! मेरे दुःखो का अन्त करो। तुम्हारा तनिक–सा कृपा–कटाक्ष ही मेरे दुःखो का नाश करने के लिए पर्याप्त है।

हे प्रभो! यदि तेरा तेज मेरे हृदय पर प्रतिबिम्बित हो जाय तो मैं अनन्त शक्तिशाली बन सकता हू और मेरी समस्त सासारिक वासना शात हो सकती है। अतः हे भगवन्! अपने अनन्त तेज की कुछ किरणे इधर फेक दो जिससे मोह–ममता के तिमिर से आवृत मेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाए।

हे प्रभो! तीन लोक के समस्त पदार्थों मे मुझे तू ही प्यारा लगता है। तू मुझे प्राणो के समान प्यारा है। ससार मे सबसे सन्निकट वस्तु प्राण है। इसलिये प्राण के समान कोई दूसरी वस्तु प्रिय नहीं है। भले ही किसी को कोई वस्तु बहुत प्यारी लगती हो, पर प्राण उससे भी अधिक प्यारे होते हैं। हे प्रभो! तू मेरे लिए प्राणो का भी प्राण है, इसलिये प्राणो से भी अधिक प्रिय है।

हे प्रभो! मुझ मे समुद्र जितने पाप भरे हुए हैं मेरे इन पापो मे से एक बूद के बराबर पाप भी अगर कोई प्रकट कर देता है तो मैं उससे द्वेष करता हू–झगडता हू, इसके विपरीत दूसरे के सुमेरु समान गुणो को मैं रज–कण के बराबर मानता हू। मैं उनकी निदा करने से भी बाज नही आता। प्रभो! ऐसा मैं पापी हू। ऐसी दशा मे तेरी प्रार्थना करने का अधिकार मुझे है?

हे प्रभो! तेरा रूप तेरी सत्ता और तेरी शक्ति अनन्त है। तेरे अनन्त सामर्थ्य का वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। परन्तु मुझे जो साधन प्राप्त हैं उनका सबका उपयोग करके मैं अपना कर्तव्यपालन करना चाहता हू। हे अनन्त गुणो के धाम! तेरी महिमा का वर्णन करना सम्भव नही है अतएव मैं तुझे भक्तिपूर्वक नमस्कार करके ही सतोष मानता हू।

हे प्रभो! मैं काम के अधीन होकर ससार मे भ्रमण कर रहा हू। मैं स्वरूप से तेरे जैसा होता हुआ भी भिखारी बन रहा हू। यह मेरी भूल है। [illegible] यह भूल दूर हो जाय बस यही तेरे प्रति मेरी अभ्यर्थना है।

हे प्रभो! मै ससार–सागर मे डूब रहा हू। तू मेरा हाथ पकड कर बाहर निकाल। तेरे सिवाय ससार–सागर से बाहर निकालने वाला कौन है? तू ही एकमात्र सहारा है। देव! इसलिये तेरी ही शरण मे आया हू।

हे प्रभो! ससार की कामना मेरा हाथ पकड कर मुझे अपनी ओर खेच रही है। इस कामना से बचने के लिए तेरे शरण मे आना ही एकमात्र उपाय है। प्रभो! अगर तू मुझे अपने शरण मे लेकर मेरी बाह पकड ले तो सासारिक कामना तुझसे डरकर मेरा पल्ला छोड देगी। इसलिये इस कामना के फन्दे से छुडाने के लिए मेरी बाह पकड। मुझे अपने शरण मे ले।

# धर्म–विचार

आज कुछ लोगो को धर्म अनावश्यक एव भाररूप प्रतीत होने लगा है। किन्तु यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि उन्होने धर्म के ठीक–ठीक स्वरूप को समझा नही है। वास्तव मे धर्म के बिना जीवन भी नहीं टिक सकता। आज के युवक सुधार करना चाहते हैं, पर धर्म की सहायता के बिना सुधार होना सभव नही है। प्रत्येक क्षेत्र मे धर्म की आवश्यकता है।

आज धर्म को भाररूप मानने का एक कारण यह भी है कि लोग धर्म का फल रुपये की भाति तत्काल और प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। वे यह दलील देते हैं कि धर्म का फल यदि परलोक मे मिलता है तो उससे हमे क्या लाभ? यहा जैसे एक रुपये का सवा रुपया किया जा सकता है और उससे आनन्दोपभोग किया जा सकता है, इसी प्रकार का लाभ यदि धर्म से भी मिले तो उसे लाभ कहना चाहिये, अन्यथा वह निरा भार ही है। इस प्रकार धर्म को लोग भारस्वरूप समझते हैं किन्तु यह विचारने का कष्ट नही उठाते कि जीवन मे धर्म का उपक्रम किए बिना तो मनुष्य का जीवन ही सस्कारहीन बन जायेगा। किसी मनुष्य से शरीर पर कपास लपेटने के लिए कहा जाय तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगा किन्तु उसी कपास से रूई ओट कर सूत बनाकर कपडा बना दिया जाय ओर उसे सुन्दर रूप मे सिला दिया जाय तो वही कपास शरीर पर धारण किया जा सकता है। इसी प्रकार बालक का जन्म होने पर सस्कार–उपक्रम न किया जाय तो उसका जीवन कच्चे कपास की तरह असस्कारी ही बना रहेगा। ज्ञानीजन कहते है कि राग के समान कोई जुल्मी नहीं है। कितनेक लोग माता–पिता कहलाकर फूले नही समाते किन्तु राग के वश होकर अपने बालको को एसा सस्कारहीन कर देते हैं कि आगे चलकर वे ही बालक भारस्वरूप जान पडते हैं। कच्चे कपास की तो भी बहुत कीमत उपजती है किन्तु सस्कारहीन सतान का ससार मे कोई [illegible]

भी नही पूछता। इस प्रकार धर्म का उपक्रम किए बिना जीवन का सुधार नही हो सकता। धर्म मानव–जीवन का सार है।

## धर्म के नाम पर

जहा धर्म के नाम पर खून–खराबी हो वहा यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोग प्रचलित है। सच्चा धर्म अहिसा और सत्य आदि हैं। अहिसा के कारण कहीं खून–खच्चर नहीं हो सकता। इसके पालन मे भी कहीं किसी का मतभेद नही है। सच तो यही है कि लोगो के हृदय विकार से भरे हुए हैं और जब उन्हे कोई दूसरा आधार नही मिलता तब वे धर्म के नाम पर सिर–फुटौवल मचाने लगते हैं। वास्तव मे कोई भी धर्म परस्पर लडने–झगडने या दूसरे को दु ख देने की आज्ञा नही देता। ऐसा होते हुए भी दूसरो को दु ख देना धर्म सबधी अज्ञानता को प्रकट करना है। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता को मिटाने के लिए परमात्मा की शरण मे आओ। भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि की यह विचित्रता नष्ट हो जायेगी।

## धर्म एक ध्येय

धर्म के सबध मे अनेक महात्माओ ने धर्मग्रन्थो द्वारा अपना–अपना मन्तव्य प्रकट किया है। यही नहीं जगत् मे जो–जो महान पुरुष हो गये हैं, उन्होने भी धर्म का ही उपदेश दिया है और धर्म का ही समर्थन किया है। ये लोकोत्तर पुरुष धर्म के कारण ही लोकोत्तर पुरुष के रूप मे प्रसिद्ध हैं।

इस अवसर्पिणी काल मे उत्पन्न हुए तीर्थंकरो को हम लोग इसलिए पूजते हैं कि उन्होने धर्मजागृति की थी। धर्म का पथ निष्कटक बनाने के लिये उन्होने अपना मूल्यमय जीवन समर्पित कर दिया था। धर्मजागृति के लिये ही उन्होने राजपाट और कुटुम्ब–परिवार का त्याग किया था। धर्मजागृति के लिये ही उन्होने परीषह–उपसर्ग सहे थे और काम–शत्रु पर विजय प्राप्त की थी। तात्पर्य यह है कि जगत् के इतिहास मे जितने लोकोत्तर महापुरुष हो गये है उन्होने धर्मस्थापना धर्मप्रचार एव धर्मजागृति के लिये ही अपना जीवन उत्सर्ग किया है।

## धर्मश्रद्धा का कारण

जब मिथ्यात्व का अन्त होता है तभी दर्शन की आराधना हो सकती है। मिथ्यात्व की मौजूदगी मे सम्यग्दर्शन की आराधना असभव है। रोगी को रोग की मौजूदगी मे दिया हुआ पौष्टिक भोजन भी लाभदायक सिद्ध नही होता। यही नही प्रत्युत अपथ्य होने के कारण अहितकर होता है। अतएव भोजन को पथ्य एव हितकर बनाने के लिये सर्वप्रथम शरीर मे से रोग का

हटाना आवश्यक है। इसी प्रकार जब आत्मा मे मिथ्यात्व रूपी रोग विद्यमान है तब तक दर्शन की आराधना शक्य नहीं है। जब मिथ्यात्व का कारण मिट जायेगा तभी सम्यग्दर्शन की आराधना हो सकेगी। मिथ्यात्व को हटाना और सम्यग्दर्शन की आराधना करना अपने हाथ की बात है। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया तथा लोभ न रहने से मिथ्यात्व भी नही रह सकता। इस प्रकार इस कषाय को दूर करने से मिथ्यात्व दूर हो जायेगा। विशुद्ध दर्शन की आराधना करने वाले को शक्र भी धर्म से विचलित नहीं कर सकता। यही नहीं जैसे अग्नि मे घी की आहुति देने से अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार धर्मश्रद्धा से विचलित करने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न धर्मदृढता के कारण बन जाते हैं।

## धर्म पर दृढता

सच्चा धर्म–श्रद्धालु पुरुष किस प्रकार धर्म पर दृढ रहता है यह जानना हो तो कामदेव श्रावक का चरित्र देखो। कामदेव श्रावक पर पिशाच रूपधारी देव कुपित हुआ। उसने कामदेव को बहुत–से कटुक वचन कहे। पिशाच ने कहा – हे अप्रार्थितप्रार्थी! तू अपना धर्म त्याग, अन्यथा अभी तुझे तलवार के घाट उतार दूगा। यह सुनकर कामदेव सोचने लगा – पिशाच मुझे अप्रार्थितप्रार्थी अर्थात् अनिष्ट को इष्ट मानने वाला कहकर सम्बोधित करता है, सो वह अपनी समझ के अनुसार ठीक कह रहा है। यह पिशाच है। धर्म इसे अनिष्ट जान पडता है, इसलिए वह ऐसा कहता है। पर मैं धर्म को इच्छनीय, आदरणीय और अनुकरणीय मानता हू। मुझे क्यो बुरा मानना चाहिए? धर्म इसे अवाछनीय प्रतीत होता है इसी कारण इसने ऐसा भयकर रूप बनाया है। धर्म के अभाव मे इसकी दशा कितनी दयनीय है?

कामदेव श्रावक अठारह करोड स्वर्ण–मोहरो का और अस्सी हजार गायो का स्वामी था। फिर भी उसमे ऐसी दृढता एव सहनशीलता थी। कामदेव अपनी दृढता के कारण पिशाच से जरा भी भयभीत न हुआ। आखिर उसने पिशाच को भी देव रूप बनाकर छोडा।

जब तुम्हारे अन्त करण मे ऐसी दृढता उत्पन्न हो तो समझना कि अनन्तानुबधी क्रोध मान माया लाभ का तुमने नाश कर दिया है और शम [illegible] सवेग तुम्हारे भीतर जीते–जागते विद्यमान हैं। तुम्हें जीवन मे धर्म को मूर्त रूप देने का अवसर मिला है ता उसे सफल कर डालो। कल्याण करने का यही अपूर्व अवसर है।

## धर्मज्ञान की न्यूनता

आज धर्ममार्ग मे ज्ञान की न्यूनता देखी जाती है। तुम्हारे बालक श्रावककुल मे जन्मे और उन्होने व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु धार्मिक ज्ञान प्राप्त नही किया अर्थात् जीव–अजीव का भेद भी नहीं समझा, तो ज्ञान सबधी यह कितनी बडी कमी है? अगर तुम प्रयत्न करो तो उनका व्यावहारिक ज्ञान ही आध्यात्मिक ज्ञान मे परिणत हो सकता है।

कोरे व्यावहारिक ज्ञान से आत्मा का कल्याण नही हो सकता। आत्मा के कल्याण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अपेक्षित है। अतएव अगर तुम अपने बालको को शाति पहुचाना चाहते हो तो, उनके भावी जीवन को शात, सुखी सतोषमय और समग्र बनाना चाहते हो तो उनके लिए यथोचित अध्यात्मज्ञान का आयोजन करो। आध्यात्मिक ज्ञान से ही आत्मा अपना कल्याण–साधन कर सकता है, किया है और कर सकेगा। अतएव अपने बालको के लिये धार्मिक ज्ञान की व्यवस्था करना माता–पिता का परम कर्तव्य है। धार्मिक ज्ञान जीवन की अनिवार्य खुराक बनना चाहिए।

## वीरो का धर्म

आज आपको चाहे यह कल्पना न आती हो मगर सत्य यही है कि यह धर्म वीर क्षत्रियो का है। यह कायरो का धर्म नही है। वीर क्षत्रिय मस्तक न झुकाने के लिये बडे–बडे सग्राम कर बैठे हैं। उनकी तलवारे म्यान मे से बाहर निकल आती हैं। मस्तक न झुकाने के लिये महाराणा प्रताप अठारह वर्ष तक राजधानी छोड जगल–जगल घूमते फिरे। उनकी महारानी पद्मावती को सामा का आटा तैयार करने के लिये अपने हाथ से चक्की चलानी पडी।

धर्म वीरता से निभता है। हमारे पूर्वज इस धर्म को मानते आये हैं या वश–परम्परा से वन्दना–नमस्कार करते आये हैं इसलिये हमे भी वन्दना नमस्कार करना पडेगा इस प्रकार की लाचारी से अगर आप धर्म को मानते हैं तो इस भावना को मैं निर्बल भावना कहूगा। निर्बल भावना एक प्रकार की दीनता है लाचारी है और अशक्ति का चिह्न है। निर्बल भावना वाला पुरुष धर्म का पालन नहीं कर सकता। धर्म हृदय के प्रेम से पाला जाता है। सच्चा धर्म वही है जो अन्तरतम से उद्भूत होता है। जिस बाह्य क्रिया के साथ मन का मेल नही है जो सिर्फ परम्परा का पालन करने के लिये की जाती है या प्रतिष्ठा के मोह से की जाती है वह ठीक फल नही दे सकती।

## अत्याचार सहना कायरता नही

तुम कह सकते हो – चुपचाप गालिया सहन कर लेना और मारने वाले अत्याचारी के सामने भोली–भाली गौ बन जाना, उसका मुकाबिला न करना, एक प्रकार की कायरता है। क्या हमे कायर बन जाना चाहिए? कायर बन जाने से तो अत्याचारी का हौसला बढेगा और जगत मे अत्याचार का नगा नाच होने लगेगा। इस प्रकार परोक्ष रूप से हम चुप्पी साधकर अत्याचार की उत्तेजना मे सहायक हो जाएगे।

यह कथन वास्तव मे भूल भरा है। सहिष्णुता कायरता का चिह्न नहीं वरन् वीरता का फल है। उत्तेजना का प्रसग उपस्थित होने पर अन्त करण की निर्बल वृत्तियो पर विजय प्राप्त करके स्वाभाविक शाति को सुरक्षित रख सकना साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। अपने ऊपर सयम का अकुश रखना विजेताओ का धर्म है। बाढ आने पर नदी के प्रवाह मे सभी बह सकते हैं पर अचल–अटल रहने वाले बिरले ही होगे। इसी प्रकार उत्तेजना की आग मे जल मरने वाले ससार मे बहुत हैं और उस आग पर शाति का शीतल नीर छिडकने वाले इने–गिने ही निकलेगे। ये इने–गिने सत्त्वशाली पुरुष ही जगत के पथ–प्रदर्शक होते हैं। इन्ही पुरुषो के सहारे ससार को स्वर्ग बनाने वाले सद्गुण टिके है।

यह कहना कि चुपचाप अत्याचार सहने से अत्याचारी को उत्तेजना मिलती है और अत्याचार बढते हैं– सर्वथा विपरीत धारणा है। अत्याचार रो अत्याचार का सामना करने से अत्याचारो की परम्परा चल पडती है। जेरो रुधिर की शुद्धि रुधिर से नही हो सकती उसी प्रकार अत्याचार रो अत्याचार का शमन नहीं हो सकता। आग को ईंधन न मिले तो वह जल्दी बुझ जाती है। इसी प्रकार अत्याचार को अत्याचार का ईंधन न मिलने से वह शात हो जाता है।

## साम्प्रदायिक भेदभाव

लोगो मे साम्प्रदायिक भेदभाव इतना अधिक घुसा हुआ है कि उसने कदागृह का रूप धारण कर लिया है। इससे भक्ति का ह्रास हो रहा है। बहुत–से लोग सम्प्रदाय या पन्थ के नाम पर लडकर खून–खराबी करने मे आनन्द मानते ह। ससार का कोई भी पन्थ इस प्रकार के आचरण का [illegible] नही करता। यही नही वरन एक या दूसरे रूप मे सभी पन्थ [illegible] करते हैं। अगर लोग अपने–अपने सम्प्रदाय की सुविधाओ पर [illegible] भी उन्हे विदित हो जायगा कि वे अपने सम्प्रदाय की रक्षा के लिए [illegible]

दुरभिनिवेश के वश होकर करते हैं, उससे सम्प्रदाय की रक्षा नही होती, किन्तु उसका पतन होता है, उसकी जड खोखली बनती है। इस प्रकार वे अपने ही सम्पदाय के शत्रु बन जाते हैं। ऐसे लोग अपने पन्थ की प्रतिष्ठा को कलकित करते हैं।

## धर्म के लिए त्याग

प्रत्येक धर्मसेवक का कर्तव्य होता है और उसे यह बात सदा ध्यान मे रखनी चाहिए कि जिस धर्म को उसने गले का हार बनाया है, अपने आत्मा का आभूषण समझा है, जिस धर्म से अनन्त सुख और अक्षय शाति प्राप्त होने का उसे विश्वास है, उस धर्म के लिये किसी भी प्रिय से प्रिय वस्तु को न्योछावर करने से वह पीछे न हटे। जो धर्म को विशेष और सर्वाधिक कहता है मगर धर्म के लिये किसी वस्तु का त्याग करने मे सकोच करता है, समझना चाहिये कि उसने धर्म का महत्त्व नही समझा है।

## धर्म प्रचार

कई लोग तलवार से धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। यही क्यो, बल्कि इतिहास से पता चलता है कि ऐसे अनेक प्रयत्न किये भी गये है। कोई–कोई लोभ के जाल मे फास कर गरीब लोगो को उनका धर्म छुडाकर अपने धर्म मे दीक्षित करना चाहते हैं। आज भी इस प्रकार के प्रयत्न चालू हैं और बहुत–से भारतीय लोभ के चगुल मे फसकर विधर्मी बनते जा रहे हैं। लेकिन श्रावक कभी भूलकर भी इस प्रकार के कुत्सित प्रयास नही करता। वह न तो तलवार के जोर से किसी को अपने धर्म मे सम्मिलित करता है, न प्रलोभन देकर ही। वह अधर्मी के प्रति करुणाशील बनकर, वत्सलता द्वारा अपने धर्म को प्रकाशित करता है। वह सेवा, दान, परोपकार आदि प्रशस्त आचरण के द्वारा अपने धर्म का उद्योत करता है।

हिसा अगर अधर्म है तो हिसक उपायो से किसी को धार्मिक कैसे बनाया जा सकता है? इसी प्रकार लोभ पाप है तो लोभ मे फसाकर दूसरे को धार्मिक नही वरन पापी बनाया जा सकता है। अतएव श्रावक ऐसे तरीको को व्यवहार मे नही लाता।

## धर्मनिष्ठ

धार्मिक व्यक्ति सदैव अपनी त्रुटियो पर निगाह रखता है और आत्मा मे तनिक–सी त्रुटि नजर आने पर यही कहता है कि मैं अधम हू। अगर मैंने पहले बुरे काम न किये होते अगर मैने परमात्मा से पूरी लौ लगाई होती तो मुझे तुच्छ पदार्थो के लिए दु ख की अनुभूति क्यो होती? निस्सार एव जड

पदार्थो के लिए क्यो मैं दु ख सहता? उनका वियोग होने पर शोक से सतप्त क्यो होता? इन पदार्थों के चले जाने पर मेरा क्या जाता है? मैं इनके लिए दु खी क्यो बनू? मैं अपने आत्मिक साम्राज्य को भूलकर बाहरी विनश्वर और विपत्तिजनक राज्य की अभिलाषा क्यो करता? मुझ मे ये सब निर्बलताए विद्यमान हैं। अतएव प्रकट है कि मैं अधम हू।

## धर्म और धर्मभ्रम

आप धर्म को जीवो का कल्याण करने वाला प्रकट करके उसकी प्रशसा करते हैं, मगर यदि धर्म का इतिहास देखा जाय तो प्रतीत होगा कि धर्म के कारण जो अत्याचार और जुल्म किये गये हैं, वैसे शायद ही अन्य किसी कारण किये हो। इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि धर्म के कारण बडे से बडे अत्याचार और घोर से घोर अन्याय किये गये हैं। ऐसी स्थिति मे जिस धर्म के कारण ऐसे अन्याय और अत्याचार किये जाते हैं, उस धर्म की जगत् को क्या आवश्यकता है? कितनेक लोग दो कदम आगे बढकर इन्ही युक्तियो के आधार से यहा तक कहते नही हिचकते कि धर्म और ईश्वर का बहिष्कार कर देना चाहिये। उनका यह भी कथन है कि ससार मे यदि ईश्वर और धर्म न होता तो अधिक आनन्द–मगल होता। मगर ईश्वर और धर्म ने तो इतने जुल्म ढाये हैं कि इतिहास के पन्ने के पन्ने रक्त से रगे हुए हैं। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध जैन वैष्णव आदि के बीच धर्म के नाम पर बडे–बडे युद्ध लडे गये हैं और खून–खच्चर हुए हैं। धर्म के नाम पर ऐसे–ऐसे अनर्थ हुए सुने जाते हैं कि न पूछिये बात। इग्लैण्ड मे मेरी नाम की एक रानी हो गई है। उसमे धर्म का इतना अभिनिवेश था कि कदाचित् कोई इसाई धर्म के विरुद्ध जीभ खोलता तो वह उसे जिन्दा ही आग मे होम देने मे भी सकोच नही करती थी। औरगजेब ने भी धर्म के नाम पर अमानुषिक अत्याचार किया था। इस प्रकार धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के अत्याचार अन्याय सितम जुल्म किये गये हैं। धर्म के कारण ही रामचन्द्रजी को अयोध्या का राज्य त्याग करके वन मे भटकना पडा था। धर्म के नाम पर ही रामचन्द्रजी ने सीता की अग्नि परीक्षा की थी। धर्म के कारण ही द्रोपदी को वनवास स्वीकार करना पडा था। धर्म की बदोलत ही पाण्डवो को तरह–तरह की तकलीफ झेलनी पडी थी। धर्म के कारण ही नल–दमयन्ती को भी असह्य कष्ट सहन करने पडे थे। इस प्रकार धर्म के कारण सब को कष्ट सहन पडे हैं।

इस प्रकार धर्म की निन्दा करते हुए लोग कहते हैं कि धर्म से दुनिया को बहुत कष्ट हैं। कुछ लोग इतने से ही सतोष न मानकर धर्म और ईश्वर के बहिष्कार का बीडा बडे जोश के साथ उठा रहे हैं।

जो लोग धर्म और ईश्वर को इस प्रकार त्याज्य समझते हैं, उनसे जरा पूछा जाय कि ससार मे जो अन्याय, अत्याचार और जुल्म किया गया है उसका वास्तविक कारण क्या है – धर्म, धर्मभ्रम या धर्मान्धता? अगर इस प्रश्न पर शाति के साथ तटस्थभाव से विचार किया जाये तो धर्म और धर्मभ्रम का अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। धर्म के नाम पर प्रकट किये जाने वाले भूतकालीन और वर्तमानकालीन अत्याचार और जुल्म धर्मभ्रम या धर्मान्धता के कारण ही हुए और हो रहे हैं। धर्म तो सदा–सर्वदा सर्वतोभद्र ही हैं। जहा धर्म है वहा अन्याय एव अत्याचार पास ही नही फटक सकते। साथ ही जिस धर्म के नाम पर अन्याय एव अत्याचार होता है वह धर्म ही नही है। वह या तो धर्मभ्रम है या धर्मान्धता है। शास्त्र स्पष्ट शब्दो मे कहता है –

**धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिसा सजमो तवो।**

दश॰ 1/1

अर्थात् अहिंसा, सयम और तप रूप धर्म सदा मगलमय है, कल्याणकारी है। जो लोग जीवन मे धर्म की अनावश्यकता महसूस करते हैं, उन्होने या तो धर्म का स्वरूप नही समझा है या धर्मभ्रम को ही धर्म समझ लिया है।

धर्म और धर्मभ्रम मे आकाश–पाताल जितना अन्तर है। गधे को सिह की चमडी पहना दी जाय तो गधा कोई सिह नही बन जायेगा। भले ही सिह–वेषधारी गधा थोडे समय के लिये अपने–आप को सिह के रूप मे प्रकट करके खुश हो ले पर अन्त मे तो गधा, गधा सिद्ध हुए बिना रहने का नही। इसी प्रकार धर्मभ्रम और धर्मान्धता को भले ही धर्म का चोगा पहना दिया जाय, लेकिन अन्त मे धर्मभ्रम का क्षय और धर्म की जय हुए बिना नहीं रह सकती।

धर्म को धर्मभ्रम और धर्मभ्रम को धर्म मान लेने के कारण बडी गडबडी मची है। सुवर्णकार मिट्टी मे मिले स्वर्ण को ताप कष और छेद के द्वारा मिट्टी से अलग निकालता है इसी प्रकार विवेकीजनो को चाहिए कि वे धर्मभ्रम की मिट्टी मे मिले हुए धर्म–स्वर्ण को ताप कष और छेद के द्वारा अलग कर डाले। यह कहने की आवश्यकता ही नही कि मिट्टी मिट्टी है और सोना सोना है। लेकिन मिट्टी मे मिले सोने को सच्चा सुवर्णकार ही अलग कर सकता है। इसी प्रकार धर्म धर्म है और धर्मभम धर्मभ्रम है। मगर धर्मभ्रम मे मिले धर्म को शोधने का कार्य सच्चे धर्मसशोधक का है। धर्म जब धर्मभ्रम से पृथक कर दिया जायेगा तभी वह अपने उज्ज्वल रूप मे दिखलाई देगा और तभी उसकी सच्ची कीमत आकी जा सकेगी।

जीवन मे धर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, यहा तक कि धर्म के बिना जीवन–व्यवहार भी नहीं चल सकता। जो लोग धर्म की आवश्यकता स्वीकार नही करते उन्हे भी जीवन मे धर्म का आश्रय लेना ही पडता है क्योकि धर्म का आश्रय लिये बिना जीवन–व्यवहार निभ भी नही सकता है। उदाहरणार्थ पाच और पाच दस होते हैं, यह सत्य है और सत्य धर्म है। जिन्हे धर्म आवश्यक मालूम नही होता उन्हे यह सत्य भी अस्वीकार करना होगा। मगर क्या इसे स्वीकार किये बिना काम चल सकता है? मान लीजिये, आपको कडाके की भूख लगी है। आपकी माता ने भोजन करने के लिए कहा। आप धर्म–विरोधी होने के कारण कहेगे – नही, मुझे भूख नहीं लगी है। तो कब तक जीवन निभ सकेगा? धर्म के अभाव मे एक श्वास लेना भी कठिन है। ऐसा होने पर भी धर्म की निन्दा की जाती है उसका एक कारण है – धर्म के नाम पर ठगाई।

बहुत–से लोग धर्म के नाम पर दूसरो को ठगते है। इसी कारण धर्मनिन्दको को धर्म की निन्दा करने का मौका मिलता है। अतएव हम साधु–आर्याओ को सदैव इस बात का खयाल रखना चाहिए कि हमारे किसी भी व्यवहार के कारण धर्म की निन्दा न होने पावे। साधु–साध्वियो के साथ ही आप श्रावकों को भी अपने कर्तव्य का विचार करना चाहिए। धार्मिक कहलाते हुए भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे पर–धन या पर–नारी का अपहरण करना धर्म की निन्दा कराने के समान हे।

अगर आप धर्म की निन्दा नही कराना चाहते तो एक ही कार्य ऐसा मत करो जिससे धर्म की निन्दा होती हो। धर्म की निन्दा या प्रशसा धर्मपालको के धर्मपालन पर निर्भर करती हे। हम ओर तुम अर्थात् साधु ओर श्रावक अगर दृढ़तापर्वूक अपने–अपने धर्म का पालन करे तो धर्मनिंदको पर भी उसका असर हुए बिना नही रह सकता। एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब वह भी धर्म का महात्म्य समझेगे और धर्म की निन्दा करने के बदले प्रशसा करने लगेगे।

पहले यह दलील दी गई हे कि धर्म की बदौलत सिर पर [illegible] हैं। इसका सक्षेप म यही उत्तर दिया जा सकता है कि [illegible] कसोटी ह। हम म वास्तव म धर्म है या नही– इस बात की [illegible] पर ही होती हैं। धर्म क कारण जिन्हाने कष्ट उठाये हैं [illegible] के विषय म वे क्या कहते हैं? कदाचित सीता से पूछा जा [illegible] ने तुम्हे अग्नि म प्रवेश करने क लिए विवश [illegible]

प्रिय हैं या नहीं? तो सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती? सीता कहती – रामचन्द्रजी ने मेरी अग्निपरीक्षा करके मेरे धर्म की कसौटी की है। धर्म के प्रताप से मैं अग्नि को शात करू, धर्म की निन्दा दूर करके धर्म की महिमा का विस्तार करू– यही तो मेरे धर्म की सच्ची कसौटी है?

कहा जाता है कि धर्म के कारण ही रामचन्द्रजी को राज्य त्याग कर वनवास करना पडा था। मगर जिस धर्म के पालन के लिए रामचन्द्रजी को राज्य छोडना पडा था, वह धर्म उन्हे प्रिय लगा था या अप्रिय? अगर रामचन्द्रजी को धर्म प्रिय लगा था तो दूसरो को राम के नाम पर धर्म की निन्दा करने का क्या अधिकार है।

नल–दमयन्ती और पाण्डवो वगैरह के विषय मे भी यही बात कही जा सकती है। नल–दमयन्ती और पाण्डव आदि, जिन्होने कष्ट भोगे थे, जब धर्म को बुरा नही कहते तो फिर उनका नाम लेकर धर्म की निदा करने का किसी गैर को क्या अधिकार है? नल–दमयन्ती और पाण्डव वगैरह कष्टो को जब धर्म की कसौटी समझते थे, तो फिर इन्ही का नाम लेकर धर्म को बदनाम करना कहा तक उचित है? सत्य तो यह है कि धर्म किसी भी समय निन्दनीय नहीं गिना गया है। धर्म सदा सर्वदा सर्वतोभद्र है। अतएव धर्मभ्रम या धर्मान्धता को आगे लाकर धर्म की निन्दा करना किसी भी प्रकार समुचित नहीं है।

धर्म का सबध सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के साथ है। जहा इनमे से एक भी नही है, वहा धर्मतत्त्व भी नहीं है। जहा यह रत्नत्रय है वही सच्चा धर्म है। धर्मभ्रम या धर्मान्धता तो स्पष्टत धर्माभास है – अधर्म है। प्रजा को हैरान करना, पर–धन और पर–स्त्री का अपहरण करना तो साफ अधर्म है फिर भले ही वह धर्म के नाम पर ही क्यो न प्रसिद्ध किया जाय।

धर्म तो इस विचार मे है कि मैं स्वय तो असत्य बोलूगा ही नही, अगर कोई दूसरा मुझसे असत्य बोलेगा तो भी मैं असत्य नही बोलूगा। मैं स्वय तो किसी की चीज का अपहरण करूगा ही नही अगर मेरी वस्तु का कोई अपहरण करेगा तो भी मैं यह विचार तक नही करूगा कि मैं उसकी किसी वस्तु का अपहरण करू उसका कुछ बिगाड करू। मैं किसी पर क्रोध भी नही करूगा। मैं थप्पड का जवाब थप्पड से नहीं प्रेम से दूगा। जिसके अन्त करण मे धर्म का वास होगा वह इस प्रकार का विचार करेगा। जो लोग धर्म के नाम पर थप्पड का बदला थप्पड से देते है अथवा पर–धन और पर–स्त्री के अपहरण की चिन्ता मे दिन–रात डूबे रहते है वे ही लोग धर्म की निन्दा कराते है।

दूसरो की बात जाने दीजिये, सिर्फ आप अपनी आत्मा से प्रश्न कीजिए – आत्मन्! तू धर्म की प्रशसा करवाती है या निन्दा? अगर आप धर्म की प्रशसा कराना चाहते हैं तो विचार कीजिए कि आपको कैसा व्यवहार करना चाहिए? आप भूलकर भी कभी ऐसा व्यवहार मत कीजिए जिससे धर्म की निन्दा हो। इस प्रकार धर्मोदय का विचार करके सद्व्यवहार कीजिए। धर्म पर दृढ श्रद्धा रखने का परिणाम यह होता है कि साता वेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त होने वाले सुख के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है और हृदय मे यह भावना प्रबल होने लगती है कि मैं अपने सुख के लिए किसी और को दु ख नही पहुचा सकता। मेरा धर्म ही दूसरो को सुख पहुचाना है इस तरह विचार करके धर्मश्रद्धालु व्यक्ति भोगो से विरक्त रहेगा और दूसरो के सुख के लिए आप कष्ट सहन करेगा।

भर्तृहरि ने कहा है कि दृढधर्मी सत्पुरुष पराये हित के लिए स्वय कष्ट सहन करते है। लोग धर्म–धर्म चिल्लाते हैं मगर धर्म के इस मौखिक उच्चार से धर्म नही आ जाता। जीवन मे धर्म मूर्तस्वरूप तभी धारण करता है जब अपने सुख का बलिदान करके दूसरो को सुख दिया जाता है और दूसरो को दु ख से बचाने के लिए सातावेदनीय के उदय से प्राप्त होने वाले सुखो का भी परित्याग कर दिया जाता है।

धार्मिक दृष्टि से दूसरो से पैसा लेना अच्छा है या दूसरो को पैसा देना अच्छा है? यद्यपि इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहा जायेगा कि पैसा देना अच्छा है, लेना नहीं, लेकिन इस उत्तर को व्यवहार मे सक्रिय रूप दिया जाता है या नही, यह विचारणीय है। व्यवहार मे तो हाय पैसा हाय पैसा की ध्वनि ही सर्वत्र सुनाई पडती है। फिर भले ही दूसरा का कुछ भी हो – वे चाहे जीए या मरे। जब इस प्रवृत्ति मे परिवर्तन किया जाय और दूसरो के सुख मे ही सुख मानने की भावना उदभूत हो ओर अपने सुख के लिए दूसरो को दु ख देने की भावना बदल जाय, तब समझना चाहिए कि धर्मश्रद्धा का फल हमें प्राप्त हो गया है।

आज तो धर्म के विषय मे यही समझा जाता है कि जिससे अष्टसिद्धि ओर नवनिधि प्राप्त हो वही धर्म है। अष्टसिद्धि और नवनिधि का मिलना ही धर्म का फल है। किन्तु शास्त्रकार जो बात बतलाते है वह इससे विपरीत है। शास्त्रकारो का कथन यह है कि धर्मश्रद्धा का फल सातावेदनीय के उदय से प्राप्त होने वाले सुखो से विरक्त होना है।

अब आपको यह सोचना है कि आपको किस भावना से धर्म पर श्रद्धा रखना है? अगर आपको अपना ही सुख – सासारिक सुख चाहिए तो यह दुनिया मे चला आ रहा है मगर इस चाह मे धर्मश्रद्धा नही है। अगर आप धर्मश्रद्धा उत्पन्न करना चाहते हैं और धर्म का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो आपको सदैव यह उच्च भावना रखनी होगी कि मै दूसरो को सुख देने मे ही पयत्नशील रहू। इस प्रकार की उच्च भावना टिकाये रखिये और इस भावना को मर्तस्वरूप देने के लिए सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुखो के पति उदासीन रहिए। अगर यह भावना आपको प्रिय लगती है तो उसे जीवन मे व्यवहृत करने के लिए प्रभु के प्रति यह प्रार्थना करो –

**दयामय! ऐसी मति हो जाय!**
**भूले–भटके उलटी मति के, जो है जन समुदाय,**
**उन्हे सुझाऊ सच्चा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय।। दया.।।**

अर्थात् हे प्रभो! मेरी बुद्धि ऐसी निर्मल हो जाय कि मेरे हृदय मे घृणा या तिरस्कार उत्पन्न न हो वरन् ऐसा मैत्रीभाव पैदा हो कि अपना सर्वस्व लगाकर भी उसे सन्मार्ग पर लाऊ और उसका कल्याण करू। दूसरे को सुधारने के लिए अपना सर्वस्व होम देने वाले सत्पुरुषो के ज्वलन्त उदाहरण शास्त्र के पन्नो मे लिखे हुए है।

अर्जुन माली महापापी और अधम था, लेकिन सुदर्शन सेठ ने उसका सुधार किया। शास्त्र मे इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि सुदर्शन सेठ ने अपना कल्याण किस प्रकार और किस समय किया, लेकिन अर्जुन माली के विषय का उल्लेख शास्त्र मे अवश्य पाया जाता है। उसने उसी भव मे अपनी आत्मा का कल्याण साध लिया। सुदर्शन सेठ ने अर्जुन माली के विषय मे विचार किया – यह भान भूला हुआ है और इसी कारण दूसरो की हत्या करता है। ऐसे का सुधार करना ही तो मेरा धर्म है। इस प्रकार विचार कर अर्जुन माली को सुधारने के लिए आप ध्यानस्थ अवस्था मे बैठ गया। अर्जुन माली जब मुग्दर लेकर मारने आया तो सेठ ने विचार किया – अगर मुझमे सच्ची धर्मनिष्ठा हो तो अर्जुन के प्रति लेशमात्र भी द्वेष उत्पन्न न हो। इस प्रकार की उच्च भावना करके और अपने सर्वस्व का त्याग करके भी अर्जुन माली जैसे अधम का उसने उद्धार किया। हालाकि सुदर्शन का सर्वस्व नष्ट नही हो गया फिर भी उसने अपनी ओर से तो त्याग कर ही दिया था। जिस सुदर्शन ने अर्जुन माली जैसे का उद्धार किया था उसने गृहस्थ होते हुए भी परमात्मा से यही प्रार्थना की थी कि हे प्रभो! मेरे अन्त करण मे अर्जुन

के प्रति तनिक भी द्वेष उत्पन्न न हो। इसी सद्भावना के प्रताप से अर्जुन विनाशक के बदले उसका सेवक बन गया। सुदर्शन की सद्भावना ने अर्जुन माली जैसे नर–घातक को भी सबका रक्षक बना दिया। क्या सद्भावना की यह विजय साधारण है?

जो सद्भावना आसुरी प्रकृति को भी दैवी बना सकती है उस सद्भावना को अपने–अपने जीवन मे प्रकाशित करो तो आपका कल्याण अवश्य होगा। जहा ऐसी सद्भावना है, वही सच्ची धर्मश्रद्धा है। इस प्रकार सद्भावना धर्मश्रद्धा की कसौटी है। सच्ची धर्मश्रद्धा को अपने जीवन मे जिसे प्राप्त करना है उसे दुर्भावना का त्याग कर इसी प्रकार की सद्भावना करनी चाहिए।

## धर्म का फल

आज बहुत–से लोग धर्म के फल के सबध मे गडबड मे पडे हुए हैं। कुछ लोगो ने समझ रक्खा है कि धर्म का फल इच्छित वस्तुओ की प्राप्ति अर्थात् सासारिक ऋद्धि–सिद्धि आदि मिलना है। पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति हो, निर्धन को धन प्राप्त हो, इसी प्रकार जिसे जिस वस्तु की अभिलाषा है उसे वह प्राप्त हो जाय तो समझना चाहिए कि धर्म का फल मिल गया। ऐसा होने पर ही धर्मश्रद्धा उत्पन्न हो सकती है। जैसे भोजन करने से तत्काल भूख मिट जाती है, पानी पीने से प्यास बुझ जाती है, उसी प्रकार धर्म से भी आवश्यकता की पूर्ति हो तभी धर्म पर श्रद्धा जाग सकती है।

इस प्रकार धर्म से पुत्र–धन आदि की आशा रखने वालो से शास्त्रकार कहते हैं कि तुमने अभी धर्म–तत्त्व समझा ही नही है। कुम्हार जब मिट्टी लेकर घडा बनाने बैठता है तब वह मिट्टी मे से हाथी–घोडे निकलने की आशा नही रखता। जुलाहा सूत लेकर कपडा बुनने बैठता है तो सूत मे से तावा–पीतल निकलने की आशा नही रखता। किसान बडे परिश्रम से खेती करता है मगर पौधो मे से हीरा–मोती निकलने की आकाक्षा वह नही रखता। कुम्हार जुलाहा और किसान भी ऐसी भूल नही करते तो धर्मात्मा कहलाने वाले लोग धर्म से पुत्र या धन की प्राप्ति की आशा किस प्रकार करते हैं? यह बात तो कुम्हार भी जानता है कारण के अभाव से कार्य [illegible]। नही होती। जो जिसका कारण ही नही उससे वह कैसे पैदा होगा? [illegible] जब भात पकाती हैं तो क्या [illegible] पैदा हो जाने की [illegible] ऐसा न सोचने का कारण यही है कि उन्हे पता है कि कारण होगा [illegible] होगा अन्यथा नही। इस प्रकार लोक मे कारण के [illegible]

इच्छा नही करता तो फिर धर्म के विषय मे ही यह भूल क्यो हो रही है? जो धर्म ससार का कारण ही नही है उससे सासारिक कार्य होने की इच्छा क्यो की जाती है?

तो फिर धर्मश्रद्धा का वास्तविक फल क्या है? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान ने बतलाया है कि धर्मश्रद्धा का फल ससार के पदार्थो के प्रति अरुचि उत्पन्न होना है। धर्मश्रद्धा उत्पन्न होने पर सासारिक पदार्थो के प्रति रही हुई रुचि हटती चली जाती है, अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति मे ससार के भोग–विलास एव भोग–विलास के साधन सुखप्रद प्रतीत नही होते। लोग धर्मश्रद्धा के फलस्वरूप मोह या विकार की आशा रखते हैं, परन्तु शास्त्र कहता है कि धर्मश्रद्धा का फल सासारिक पदार्थो के प्रति अरुचि जाग्रत होना है। कहा तो सासारिक पदार्थो के प्रति निर्ममत्व और कहा सासारिक पदार्थो की चाह! धर्म से इस प्रकार विपरीत फल की आशा रखना कहा तक उचित है?

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आजकल धर्म की जो अवहेलना हो रही है, उसका एक कारण धर्म के स्वरूप को न समझना है। लोगो को यह भी पता नही कि धर्म किस कार्य का कारण है? धर्म सम्बन्धी इस अज्ञान के कारण ही धर्म से विपरीत फल की आशा की जाती है। जब विपरीत फल मिलता नहीं तो धर्म के प्रति अरुचि पैदा होती है।

हमारे अन्त करण मे धर्मश्रद्धा है या नही इस बात की परीक्षा करने का 'थर्मामीटर' सातावेदनीय के सुखो के प्रति अरुचि उत्पन्न होना है। आप इस 'थर्मामीटर' द्वारा अपनी जाच कीजिये कि वास्तव मे आप मे धर्मश्रद्धा है या नही। अगर आप मे धर्मश्रद्धा होगी तो सातावेदनीयजन्य सुखो के प्रति आपको अरुचि अवश्य होगी।

मान लीजिये आप भोजन करने बैठे हैं। थाल परोसा हुआ आपके सामने है। उसी समय आपका कोई विश्वासपात्र मित्र आकर यदि भोजन मे विष मिला है इस बात की सूचना देता है तो क्या आपको वह भोजन खाने की रुचि होगी? नही। इसी प्रकार सच्ची धर्मश्रद्धा उत्पन्न होने पर सातावेदनीय–जन्य सुखो के प्रति रुचि नहीं हो सकती। इस प्रकार जब सासारिक विषय–भोगो के प्रति विरक्ति हो तो समझना चाहिए कि मुझमे धर्मश्रद्धा है।

## धर्म और विज्ञान

कहा जा सकता है कि हम तो उसी को धर्म मानते हैं जो हमे अधिक से अधिक सुख प्रदान करे सुखो के प्रति अरुचि उत्पन्न करने वाले को हम

धर्म नहीं, अधर्म समझते हैं। उसे जीवन में किस प्रकार स्थान दिया जा सकता है? आपके कहे धर्म से तो कोई सुख नही मिलता। इसके विपरीत विज्ञान द्वारा सभी प्रकार के सुख सुलभ हो जाते हैं। विज्ञान ने मानव–समाज को कितना सुखी बना दिया है? जिस जगह पहुचने मे महीनो लगते थे वहा अब कुछ ही घटो मे वायुयान द्वारा पहुच सकते हैं। अमेरिका का गायन और भाषण घर बैठे–बैठे सुनना क्या शक्य था? लेकिन विज्ञान की कृपा से आज वह सभी के लिए सुलभ हो गया है। जिस सुख और सुविधा की कल्पना भी नही की जा सकती थी, वही सुख आज विज्ञान की बदौलत प्राप्त हो रहा है। ग्रामोफोन, टेलीग्राफ, बेतार का तार आदि वैज्ञानिक आविष्कारो द्वारा कितनी सुविधाए हो गई है? इस प्रकार विज्ञान ने मनुष्य–समाज के कितने दु ख दूर कर दिये हैं? जो विज्ञान हमे इतना सुख पहुचा रहा है उसे क्यो न माना जाय? कुछ भी सुख न देने वाले बल्कि प्राप्त सुखो के प्रति अरुचि उत्पन्न करने वाले धर्म को मानने की अपेक्षा सब प्रकार की सुख–सुविधाए देने वाले विज्ञान को ही उपास्य क्यो न माना जाय?

इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर बहुत–से लोग धर्म की अपेक्षा विज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। धर्म वस्तु का स्वभाव है। अतएव जिस वस्तु मे जो स्वभाव है उचित कारणकलाप मिलने पर अवश्य ही उसका प्राकट्य होता है। इस दृष्टि से विज्ञान को कौन नही मानता? परन्तु जो विज्ञान धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ और सफल सुखदाता माना जाता है वह वास्तव मे ही सुखदायक है या दु खदायक? इस प्रश्न पर यहा विचार करना आवश्यक है। जिस विज्ञान ने जितनी सुख–सामग्री प्रस्तुत की है उसी विज्ञान ने सहारक सामग्री भी उतनी ही उत्पन्न की है। उस दृष्टि से गभीर विचार करने पर पता चलेगा कि विज्ञान की बदौलत सुख की अपेक्षा दु ख की ही वृद्धि हुई है। विज्ञान का जब इतना विकास नही हुआ था तब राष्ट्र सुखी था या दुखी? विज्ञान ने मानव–समाज का रक्षण किया है या भक्षण? शाति प्रदान की है या अशाति? ऊपरी दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान ने सुख–साधन प्रदान किये हैं मगर विचारणीय तो यह है कि इन सुख–साधनो ने राष्ट्र का सुख पहुचाया भी है या नही बल्कि सुख के बदले दु ख तो नही पहुचाया? सावधानी से विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि विज्ञान ने राष्ट्र का दु ख दारिद्रय और घोर अशाति की ही वृद्धि की है।

कहा जा सकता है? पहले जब कभी युद्ध होता था तो योद्धागण ही तलवारो से आपस मे लडते थे। लडने के उद्देश्य से जो सामने आता, उसी पर तलवार का प्रहार किया जाता था। मगर आज विज्ञान के अनुग्रह से युद्ध मे भाग लेने वाले और शाति से घर बैठे हुए लोग भी बमो के शिकार बनाये जाते हैं। बम–गोलो की मार से अबीसीनिया और चीन देश के हजारो, लाखो नागरिको को जान–माल से हाथ धोना पडा है। विज्ञान की बदौलत यहा अमानुषिक और रोमाचकारी अत्याचार किये जा रहे हैं और विनाश का ताडव नृत्य हो रहा है। यह विज्ञान का आविष्कार है? *एक सज्जन ने मुझे बताया था कि एक ग्लास पानी मे विशेष प्रकार की वैज्ञानिक क्रिया–विक्रिया करने से ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो सम्पूर्ण लन्दन नगरी को थोडी ही देर मे नष्टप्राय कर सकती है। जिस नगरी मे लाखो की आबादी है और जो ससार की सबसे विशाल नगरी कहलाती है उसे कुछ ही देर मे नष्ट कर डालने की यह योजना विज्ञान की ही है। यह है विज्ञान की अनुपम देन।

आज जिन पाश्चात्य या पौर्वात्य देशो मे विज्ञान का अधिक प्रचार है वे देश क्या युद्ध के चक्कर मे नही फसे हैं? आज सारा यूरोप – जर्मनी, इग्लैण्ड इटली फ्रास स्पेन आदि देश तथा एशिया – रसिया जापान आदि देश विज्ञान के बल पर युद्ध करके राज्यलिप्सा को तृप्त करना चाहते हैं। इस कुत्सित लिप्सा के कारण ही मानव–सृष्टि के शीघ्र सहार की शोध आज विज्ञान कर रहा है। इस प्रकार विज्ञान ही मानव–समाज की सस्कृति का विनाश करने के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी है।

आज इस प्रकार विज्ञान का दुरुपयोग किया जा रहा है। अगर विज्ञान का सदुपयोग किया जाय तो वह धर्म और सस्कृति की रक्षा करने मे अच्छा सहायक बन सकता है। प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग भी होता है और दुरुपयोग भी होता है यह एक सामान्य नियम है। किन्तु प्राय देखा जाता है कि सदुपयोग बहुत कम मात्रा मे होता है और दुरुपयोग अधिक मात्रा मे। यही कारण है कि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तु से विकास की अपेक्षा विनाश ही अधिक होता है। विज्ञान का अगर सदुपयोग किया जाय तो उससे मानव–समाज का बहुत–कुछ कल्याण–साधन किया जा सकता है। आज तो विज्ञान धर्म और सस्कृति के ह्रास का ही कारण बना हुआ है।

---

* नोट – इस व्याख्यान के पश्चात विश्वव्यापी महायुद्ध का जो प्रचण्ड ताडव हुआ उससे विज्ञान के कटुक फल खूब साफ मालूम होने लगे है। पूज्यश्री का यह व्याख्यान तो महायुद्ध के पहले का है।

ससार मे धर्म न होता तो दुनिया मे कितना भयकर हत्याकाड मच रहा होता, यह कल्पना भी दु खदायक प्रतीत होती है। मानव–सस्कृति के होने वाले इस विनाश को केवल धर्म ही रोक सकता है। धर्म के अमोघ अस्त्र अहिसा द्वारा ही यह हिसाकाड अटकाया जा सकता है। धर्म के अतिरिक्त एक भी ऐसा साधन दिखाई नहीं देता जो मानव–सस्कृति का सत्यानाश करने के लिए पूरे जोश के साथ बढे चले आने वाले विष के वेग को रोक सकता है। जो धर्म आज दु खरूप और जीवन के लिए अनावश्यक माना जाता है वही धर्म वास्तव मे सुखरूप और जीवन के लिए आवश्यक है। साथ ही जो विज्ञान आज सुखरूप और जीवन के लिए आवश्यक माना जाता है वही विज्ञान वास्तव मे दु खरूप और जीवन के लिए अनावश्यक है। यह सत्य आज सपादक नहीं तो निकट भविष्य मे सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। ❖आज समझाने से भले ही समझ मे न आवे, मगर समय आप ही समझा देगा।

धर्म और विज्ञान पर विवेकपूर्ण दृष्टि के साथ विचार किया जाय तो धर्म की महत्ता समझ मे आये बिना नही रहेगी। जो लोग निष्पक्ष दृष्टि से देख सकते है, और विज्ञान के कटुक फलो का विचार कर सकते हैं, उन्हे धम्मो मगल' अर्थात् धर्म मगलकारी है– यह सत्य समझते देर नही लग सकती।

प्राचीनकाल मे वायुयान टेलीफोन बेतार का तार आदि वैज्ञानिक साधन नहीं थे। फिर भी प्राचीन काल के लोग अधिक सुखी थे या वैज्ञानिक साधनो वाले इस समय के लोग सुखी हैं? उस समय अधिक शाति थी या इस समय अधिक शाति है? वैज्ञानिक साधन न होने पर भी प्राचीन काल का मनुष्य–समाज अधिक सुख और शाति भोगता था। यह किसके प्रताप से? आज लोग विज्ञान पर ऐसे मुग्ध हो रहे हैं कि धर्म का नाम तक नहीं सुहाता। इसका एकमात्र कारण लोगो की मोहावस्था ही है। विज्ञान की उन्नति को देखकर ज्ञानीजन प्रसन्न ही होते हैं। वे सोचते हैं कि पहले अधिकारपूर्वक नहीं

बतलाया जा सकता था कि विज्ञान शाति का सहारक है। कदाचित् बतलाया जाता तो लोगो को इस कथन पर प्रतीति न होती। मगर आज हमे प्रमाणपूर्वक कहने का कारण मिला है कि आजकल विज्ञान का इतना विकास होने पर भी और वैज्ञानिक साधनो की प्रचुरता होने पर भी क्या मानव–जीवन का अस्तित्व और सुख–शाति सुरक्षित है? इस प्रकार आज हम धर्म का महत्त्व प्रमाणित करने मे समर्थ हो सके है और प्रमाण पुरसर कह सकते हैं कि धर्म ही सच्चा मगल है।' धर्म ही अशरण का शरण है। धर्म मे ही मानव–समाज की सुख–शाति सुरक्षित है।

## धर्म श्रद्धा का फल

धर्मश्रद्धा उत्पन्न होने से हृदय मे सासारिक पदार्थों के प्रति अरुचि और विरक्ति की उत्पत्ति होती है और विरक्ति उत्पन्न होने से आगार धर्म का त्याग कर अनगार धर्म स्वीकार किया जाता है। विरक्त पुरुष सासारिक बन्धनो का त्याग कर देता है। धर्मश्रद्धा से वैराग्य होगा और वैराग्यवान् पुरुष अनगार बन जायेगा। इस प्रकार धर्मश्रद्धा का फल तो अनगारिता को स्वीकार करना है। लेकिन आजकल तो कुछ लोगो को धर्म का नाम तक नहीं सुहाता। ऐसी स्थिति मे यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि लोगो मे धर्मश्रद्धा है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिनमे धर्मश्रद्धा होती है उन्हे सासारिक पदार्थों के ऊपर वैराग्य होता है और जिन्हे वैरागय होता है, वे अनगारिता स्वीकार कर लेते हैं। आपमे से किसी को मिट्टी के बदले सोना मिलता हो तो आप लेते देर लगाएगे? नही। इसी प्रकार जिसके अन्तकरण मे धर्मश्रद्धा उत्पन्न होगी और जिसे सासारिक पदार्थो पर विरक्ति हो जायगी वह अनगारिता स्वीकार करने मे विलम्ब नही लगाएगा।

## धर्मकथा

धर्मकथा से चित्त के विकार दूर होते हैं और चित्त को शाति मिलती है। इस कारण सबसे पहले यह देख लेने की आवश्यकता है कि अपने विकार कौनसे है? डाक्टर रोगी को दवा देने से पहले रोग का निदान करता है। जब तक रोग का निदान न किया जाय तब तक दवा कैसे दी जा सकती है? इसी तरह जब तक विकारो का पता न लगा लिया जाय तब तक यह बात कैसे जानी जा सकती है कि धर्मकथा सुनने से विकार दूर हुए हैं या नही? इस कारण सर्वप्रथम अपने विकारो को जान लेने की आवश्यकता है। विकारो मे सबसे बड़ा विकार मोह है। मोह अन्य विकारो का बीज है। उसी से दूसरे विकार उत्पन्न होते हैं। फिर भले ही मोह काम का हो या क्रोध का हो लोभ

का हो या दूसरे प्रकार का हो। मगर विकारो का राजा मोह ही है। जिसे सुनने से मोह मे कमी हो, वही धर्मकथा है और जिसे सुनने से मोह मे कमी न हो, बल्कि मोह उल्टा बढ जाय, वह धर्मकथा नहीं मोहकथा है।

जीवन की नीव धर्म है। मानव–जीवन यदि मकान के समान है तो धर्म उसकी नीव है। बिना धर्म के मानव–जीवन टिक नही सकता। अर्थात् धर्म के अभाव मे जीवन मानव–जीवन न रहकर पाशविक जीवन बन जाता है। अत जीवन को उत्तम, मानवीय जीवन बनाने के लिए धर्म रूपी नीव गहरी और पुख्ता बनाने की आवश्यकता है। धर्म रूपी नीव यदि कच्ची रहेगी तो मानव–जीवन रूपी मकान शका कुतर्क अज्ञान अनाचार और अधर्म आदि के तूफानो से हिल जायेगा और उसका पतन हुए बिना नही रहेगा।

## राष्ट्रधर्म

जिस कार्य से राष्ट्र सुव्यवस्थित होता है राष्ट्र की उन्नति–प्रगति होती है, मानव–समाज अपने धर्म का ठीक–ठीक पालन करना सीखता है राष्ट्र की सम्पत्ति का सरक्षण होता है सुख–शाति का प्रसार होता है प्रजा सुखी बनती है राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढती है और कोई अत्याचारी परराष्ट्र स्वराष्ट्र के किसी भाग पर आत्याचार नही कर सकता वह कार्य राष्ट्रधर्म कहलाता है।

## जीवनव्यापी धर्म

आज धर्म–अधर्म का विवेक नष्टप्राय हो रहा है। इसी कारण जनसमाज मे ऐसी मिथ्या धारणा घुस गई है कि जितनी देर सामायिक मे बैठा जाय, बस उतना ही समय धर्म मे व्यतीत करना आवश्यक है। सामायिक समाप्त की दूकान पर पेर रखा ओर धर्म भी समाप्त हुआ। दुकान पर तो पाप ही पाप करना होता है। वास्तव मे यह धारणा भ्रमपूर्ण है। सामायिक मे बैठ जाने मात्र से धर्म नही होता। रात–दिन की शुभ–अशुभ प्रवृत्तियो से ही पुण्य–पाप का हिसाब होता है।

## मानवधर्म

का हो या दूसरे प्रकार का हो। मगर विकारो का राजा मोह ही हे। जिसे सुनने से मोह मे कमी हो, वही धर्मकथा है और जिसे सुनने से मोह मे कमी न हो बल्कि मोह उल्टा बढ जाय, वह धर्मकथा नही मोहकथा है।

जीवन की नीव धर्म है। मानव–जीवन यदि मकान के समान हे तो धर्म उसकी नीव है। बिना धर्म के मानव–जीवन टिक नही सकता। अर्थात धर्म के अभाव मे जीवन मानव–जीवन न रहकर पाशविक जीवन बन जाता है। अत जीवन को उत्तम, मानवीय जीवन बनाने के लिए धर्म रूपी नीव गहरी और पुख्ता बनाने की आवश्यकता है। धर्म रूपी नीव यदि कच्ची रहेगी तो मानव–जीवन रूपी मकान शका, कुतर्क अज्ञान, अनाचार और अधर्म आदि के तूफानो से हिल जायेगा और उसका पतन हुए बिना नही रहेगा।

## राष्ट्रधर्म

जिस कार्य से राष्ट्र सुव्यवस्थित होता है राष्ट्र की उन्नति–प्रगति होती है, मानव–समाज अपने धर्म का ठीक–ठीक पालन करना सीखता हे राष्ट्र की सम्पत्ति का सरक्षण होता है सुख–शाति का प्रसार होता हे प्रजा सुखी बनती है राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढती है और कोई अत्याचारी परराष्ट्र स्वराष्ट्र के किसी भाग पर आत्याचार नही कर सकता वह कार्य राष्ट्रधर्म कहलाता हे।

## जीवनव्यापी धर्म

आज धर्म–अधर्म का विवेक नष्टप्राय हो रहा हे। इसी कारण जनसमाज म ऐसी मिथ्या धारणा घुस गई हे कि जितनी देर सामायिक म बेठा जाय बस उतना ही समय धर्म मे व्यतीत करना आवश्यक हे। सामायिक समाप्त की दूकान पर पेर रखा ओर धर्म भी समाप्त हुआ। दुकान पर तो पाप ही पाप करना होता हे। वास्तव म यह धारणा भ्रमपूर्ण हे। सामायिक म बैठ जाने मात्र स धर्म नही होता। रात–दिन की शुभ–अशुभ प्रवृत्तिया स ही पुण्य–पाप का हिसाब होता हे।

## मानवधर्म

और मानव के लिए ही जीवित रहना चाहिए, क्योकि सभी धर्म महान् हैं किन्तु मानवधर्म उन सबमे महान् हैं।

जिसके जीवन मे, रग–रग मे मानवता व्याप जाती है वह मानता और समझता है कि धर्म मात्र मानव के लिए है। मानव को अधिक सस्कारी, अधिक सुन्दर अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए धर्म है। अतएव जहा धर्म का पालन करने मे मानव के प्रति अन्याय होता हो वहा धर्म को साधन रूप मानकर उसकी पुनर्योजना करना उचित है।

तमाम धर्म मानवधर्म सीखने के साधन हैं। जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, मानव को तुच्छ समझना सिखलाता है वह धर्म नही है। धर्म मे ऐसी बातो को स्थान नही है।

मनुष्य धर्म का पालन करता है सो इसलिए नही कि वह अपने–आप को ऊचा ठहराने की कोशिश करे, बल्कि इसलिए कि वह वास्तव मे ऊचा बने। धर्मपालन का उद्देश्य वह उत्कृष्ट मनोदशा प्राप्त करना है, जिसमे विश्वबन्धुत्व का भाव मुख्य होता है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ ण केणई' अर्थात् समस्त प्राणियो के प्रति मेरा मैत्रीभाव है, किसी के साथ मेरा वैर–विरोध नही है। जैसे सच्ची महत्ता सादी होती है उसी प्रकार यह महान् मानवधर्म भी सरल और सादा है। इसे एक ही वाक्य **आत्मवत् सर्वभूतेषु** मे प्रकट किया जा सकता है।

तुम्हारे लिए जो अनिष्ट है वह दूसरे के लिए भी अनिष्ट है। अगर तुम सडा पानी नही पी सकते तो दूसरा मनुष्य भी उसे पी नही सकता। अगर तुम अपनी बीमारी मे दूसरो की सहायता चाहते हो तो दूसरा भी यही चाहता है।

अगर मनुष्य इतना सीधा–सादा मानवधर्म समझ ले और अपने समस्त साधन इस धर्म का विकास करने के लिए मान ले तो फिर धर्म सबधी अधिक ज्ञान इसी मे से उसे मिल जायेगा। धर्म सबधी विधि–विधान खोजने के लिए उसे इधर–उधर नही भटकना पडेगा। मानवधर्म इतना सादा है कि उसे घडी–भर मे सब सीख सकते है फिर भी मानवधर्म मे रहने वाली गहनता इतनी उदार और भव्य है कि वह जीवन–भर की शुद्धि की माग करती है। मानवधर्म का आदर्श विकारो को जीतना और विश्वबन्धुता सीखना है।

का हो या दूसरे प्रकार का हो। मगर विकारो का राजा मोह ही है। जिसे सुनने से मोह मे कमी हो, वही धर्मकथा है ओर जिसे सुनने से मोह मे कमी न हो बल्कि मोह उल्टा बढ जाय, वह धर्मकथा नही, मोहकथा है।

जीवन की नीव धर्म है। मानव–जीवन यदि मकान के समान हे तो धर्म उसकी नीव है। बिना धर्म के मानव–जीवन टिक नही सकता। अर्थात् धर्म के अभाव मे जीवन मानव–जीवन न रहकर पाशविक जीवन बन जाता है। अत जीवन को उत्तम मानवीय जीवन बनाने के लिए धर्म रूपी नीव गहरी और पुख्ता बनाने की आवश्यकता है। धर्म रूपी नीव यदि कच्ची रहेगी तो मानव–जीवन रूपी मकान शका, कुतर्क अज्ञान अनाचार और अधर्म आदि के तूफानो से हिल जायेगा और उसका पतन हुए बिना नही रहेगा।

## राष्ट्रधर्म

जिस कार्य से राष्ट्र सुव्यवस्थित होता है राष्ट्र की उन्नति–प्रगति होती है, मानव–समाज अपने धर्म का ठीक–ठीक पालन करना सीखता है राष्ट्र की सम्पत्ति का सरक्षण होता है सुख–शाति का प्रसार होता हे प्रजा सुखी बनती है राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढती है और कोई अत्याचारी परराष्ट्र स्वराष्ट्र के किसी भाग पर आत्याचार नही कर सकता वह कार्य राष्ट्रधर्म कहलाता है।

## जीवनव्यापी धर्म

आज धर्म–अधर्म का विवेक नष्टप्राय हो रहा है। इसी कारण जनसमाज म ऐसी मिथ्या धारणा घुस गई है कि जितनी देर सामायिक म बैठा जाय बस उतना ही समय धर्म मे व्यतीत करना आवश्यक है। सामायिक समाप्त की दूकान पर पेर रखा और धर्म भी समाप्त हुआ। दुकान पर तो पाप ही पाप करना होता हे। वास्तव मे यह धारणा भ्रमपूर्ण है। सामायिक म बैठ जाने मात्र से धर्म नही होता। रात–दिन की शुभ–अशुभ प्रवृत्तिया से ही पुण्य–पाप का हिसाव हाता हे।

## मानवधर्म

जीवनधर्म का मर्म समझाने का अर्थ है आत्मा को प [illegible] ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म आदि धन जीवन के अग–उपाग हैं। [illegible] समानता का आदर्श जीवन म नही उतरना वहा तक आ [illegible] होती। ओर समानता का आदर्श जीवन म उतार [illegible] म मानवता प्रकट करनी पडती है।

और मानव के लिए ही जीवित रहना चाहिए, क्योकि सभी धर्म महान् हैं किन्तु मानवधर्म उन सबमे महान् हैं।

जिसके जीवन मे, रग–रग मे मानवता व्याप जाती है वह मानता और समझता है कि धर्म मात्र मानव के लिए है। मानव को अधिक सस्कारी, अधिक सुन्दर, अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए धर्म है। अतएव जहा धर्म का पालन करने मे मानव के प्रति अन्याय होता हो, वहा धर्म को साधन रूप मानकर उसकी पुनर्योजना करना उचित है।

तमाम धर्म मानवधर्म सीखने के साधन हैं। जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, मानव को तुच्छ समझना सिखलाता है वह धर्म नही है। धर्म मे ऐसी बातो को स्थान नही है।

मनुष्य धर्म का पालन करता है सो इसलिए नही कि वह अपने–आप को ऊचा ठहराने की कोशिश करे, बल्कि इसलिए कि वह वास्तव मे ऊचा बने। धर्मपालन का उद्देश्य वह उत्कृष्ट मनोदशा प्राप्त करना है, जिसमे विश्वबन्धुत्व का भाव मुख्य होता है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ ण केणई' अर्थात् समस्त प्राणियो के प्रति मेरा मैत्रीभाव है, किसी के साथ मेरा वैर–विरोध नही है। जैसे सच्ची महत्ता सादी होती है उसी प्रकार यह महान् मानवधर्म भी सरल और सादा है। इसे एक ही वाक्य **आत्मवत् सर्वभूतेषु** मे प्रकट किया जा सकता है।

तुम्हारे लिए जो अनिष्ट है वह दूसरे के लिए भी अनिष्ट है। अगर तुम सडा पानी नही पी सकते तो दूसरा मनुष्य भी उसे पी नही सकता। अगर तुम अपनी बीमारी मे दूसरो की सहायता चाहते हो तो दूसरा भी यही चाहता है।

अगर मनुष्य इतना सीधा–सादा मानवधर्म समझ ले और अपने समस्त साधन इस धर्म का विकास करने के लिए मान ले तो फिर धर्म सबधी अधिक ज्ञान इसी मे से उसे मिल जायेगा। धर्म सबधी विधि–विधान खोजने के लिए उसे इधर–उधर नही भटकना पडेगा। मानवधर्म इतना सादा है कि उसे घडी–भर मे सब सीख सकते हैं फिर भी मानवधर्म मे रहने वाली गहनता इतनी उदार और भव्य है कि वह जीवन–भर की शुद्धि की माग करती है। जीवनधर्म का आदर्श विकारो को जीतना और विश्वबन्धुता सीखना है।

## धर्म की व्यापकता

धर्म सार्व है, सर्वजनहितकारी है। सभी उसकी आराधना करके कल्याण साधन कर सकते हैं। जो धर्म कुछ व्यक्तियो के काम आवे, वह अपूर्ण है, सकीर्ण है। प्रकृति की समस्त वस्तुओ पर समस्त प्राणियो का अधिकार है।

धर्म भी प्राकृतिक है। वस्तु का स्वभाव है। 'पयइसहावो धम्मो। ऐसी स्थिति मे धर्म मे भेदभाव की गुजाइश कहा?

# पांच व्रत

## अहिंसा

अहिसा एक सात्त्विक धर्म है। इसके पालने वालो को तीन श्रेणियो मे बाटा गया है – सात्त्विक वृत्ति वाले, राजस वृत्ति वाले और तामस वृत्ति वाले। अहिसा का पूर्ण रूप से पालन, वीतराग पुरुष ही कर सकते हैं। इसके अलावा जो सात्त्विक वृत्ति वाले मुनिगण है, वे भी सम्पूर्ण हिसा के त्यागी हैं। जो राजस वृत्ति वाले अहिसा के पालक हैं वे जानबूझ कर तो हिसा नही करते हैं किन्तु अन्याय का प्रतिकार करने के लिए सेना–सधान करना भी अनुचित नही मानते। ये मध्यम कोटि के अहिसा धर्म के पालक हैं। इसमे श्रावक, सम्यग्दृष्टि न्यायप्रिय और वीर पुरुष का समावेश है। तीसरे तामसी वृत्ति वाले भी अहिसा धर्म के पालन का दावा करते हैं, परन्तु ऐसे प्राणियो द्वारा वास्तविक अहिसा नही पाली जा सकती। ऐसे केवल अहिसा पालक नामधारी हैं अहिसा का सच्चा स्वरूप समझते ही नही। वे लोग अपनी मा, बहिन की बेइज्जती होते देखकर हृदय मे तो बहुत क्रोध लाते हैं किन्तु कहीं मर न जाऊ, इस भय से चुप्पी साधे रहते हैं। जब कोई उनके इस मौन का कारण पूछता है तो कह देते हैं कि मैं अहिसा धर्म का पालक हू, इसलिए अपने धर्म के पालन के लिए मैंने उसे दण्ड नही दिया और दयापूर्वक छोड दिया।

इस तरह मन मे भय–भ्रान्त होकर ऊपर से अहिसा की बाते बनाने वाले तामसी अहिसा का ढोग मात्र रचते हैं।

## अहिसा और कायरता

अहिसा कायर बनाती है या कायरो का शस्त्र है यह बात वही कह सकता है जो अहिसा का स्वरूप और सामर्थ्य नही समझ पाया है। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि अहिसा का व्रत वीर शिरोमणि ही धारण कर सकते है। जो कायर है वह अहिसा को लजावेगा। वह अहिसक बन नही

सकता। कायर अपनी कायरता को छिपाने के लिए अहिसक होने का ढोग रच सकता है, वह अपने–आप को अहिसक कहे तो कौन उसकी जीभ पकड सकता है, पर वास्तव मे वह सच्चा अहिसक नहीं है। यो तो सच्चा अहिसावादी एक चीटी के भी व्यर्थ प्राणहरण करने मे थर्रा उठेगा, क्योकि वह सकल्पजा हिसा है। वह इसे महान् पातक समझता है। पर जब नीति या धर्म खतरे मे होगा, न्याय का तकाजा होगा और सग्राम मे कूदना अनिवार्य हो जायेगा तब वह हजारो मनुष्यो के सिर उतार लेने मे भी किचित् मात्र खेद प्रकट न करेगा। हा, वह इस बात का अवश्य पूर्ण ध्यान रखेगा कि सग्राम मेरी ओर से सकल्परूप न हो, वरन् आरम्भरूप हो।

## आत्मज्ञान के लिये वीरता

मित्रो! जो कदम आपने आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ। तभी आप विजयी होगे। आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको वीरो मे भी वीर बनना पडेगा।

## हिसा–प्रतिहिसा (आघात–प्रत्याघात)

मगल से मगल और अमगल से अमगल होता है। आघात का प्रत्याघात होता रहता है। आज जो पार्ट तुम दूसरे से करवा रहे हो वही तुम्हे भी करना पडेगा। साराश यह है कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हे कष्ट मिलेगा। अगर तुम किसी के प्राण लोगे तो तुम्हे भी प्राण देने पडेगे। शस्त्र से गर्दन उडाओगे तो कभी उडवानी पडेगी। दूसरे के शरीर का मास खाओगे तो दूसरे को मास खिलाना पडेगा।

## अभिमान हिसा है

आत्मा भले ही ऊपर से हिसा न करता हो किन्तु अगर उसे यह अभिमान है कि मैं हिसा करता ही नही हू तो यही अभिमान हिसा है। इसी प्रकार ऊपर से झूठ न बोलने वाले का अभिमान भी झूठ है और वह भी हिसा है। किसी सद्गुणी के सद्गुण को देखकर प्रमोद पाने के बदले उस पर द्वेषभाव होना और उसे किसी प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करना भी हिसा है।

## स्व–आत्मा सम पर–आत्मा जानो

अगर तुम्हारे सामने कोई गरीब आदमी सख्त सर्दी का मारा थर थर काप रहा हो तो अपना फालतू कोट उसे दे देने की इच्छा तुम्हारे अन्तःकरण मे उत्पन्न होनी चाहिए। अगर तुम इस अवस्था मे उसे [illegible] नहीं [illegible] सकते तो यह समझा जायगा कि तुम [illegible]

पाये हो। भोजन से तुम्हारा पेट ठसाठस भरा हो, फिर भी बची हुई रोटी गरीब को दे देने की भावना तुम्हारे हृदय मे पैदा नही हुई और रोटी सेक कर या सुखाकर दूसरे दिन खाने की तृष्णा बनी रही, तो माना जायगा कि अभी तुम दूसरो की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझने मे समर्थ नही हो सके हो।

## अहिसा की शक्ति

अहिसा मे ऐसी अपूर्व शक्ति है कि सिह और हिरण, जो जन्म से ही विरोधी हैं अहिसक की जाघ पर आकर सो जाते हैं। **अहिसा प्रतिष्ठाया वैरत्याग** अर्थात् जहा अहिसा की प्रतिष्ठा होती है वहा वैर का नाश हो जाता है। अहिसक के निकट जाति–विरोधी पशुओ के एकत्र निर्वैर निवास करने के उदाहरण आज भले ही न दिखाई पडते हो, फिर भी अहिसा की शक्ति के उदाहरणो की कमी नही है। अहिसा के आराधक महात्माओ की चरण–रेणु से हजारो को मारने वाला हत्यारा शुद्ध हो गया है।

## सकीर्ण अहिसा

लोगो ने अहिसा का अर्थ जीव न मारना, इतना ही समझ लिया है। लोग दया भी सूक्ष्म जीवो की ही करके अहिसावादी बनना चाहते हैं, क्योकि इसमे कुछ करना–धरना नहीं पडता। मनुष्य की दया करने मे तो क्रोध, मान, माया मोह आदि छोडना पडता है। इस कारण लोगो ने दया को सूक्ष्म जीवो की हिसा न करने मे सीमित कर दिया है। भाई–भाई आपस मे कट मरेगे और स्थावर जीवो की दया मे आगे रहेगे। भाई को मारने, उसका नाश करने, उसे हानि पहुचाने और उसका हक छीनने को तैयार रहते हैं, फिर भी कहते हैं – मैं महीने मे छह दया पालता हू। क्या यही दया का स्वरूप है? ऐसा करने से दया हो जाती है? पृथ्वीकाय के जीवो की दया पालना उत्कृष्ट है, पर पहले पहले के खाते तो पूरे करो। कपडो का त्याग करते समय पहले पगडी का त्याग किया जाता है या धोती का? आज यह हाल हो रहा है कि पगडी तो छोडते नही और धोती छोडने के लिए तैयार हो जाते हैं।

## अहिसा की ध्वजा के नीचे आना होगा

महायुद्ध से पहले यूरोप बहुत ऊची दृष्टि से देखा जाता था। युद्ध मे लाखो–करोडो रुपयो का गरीबो से छीना हुआ माल समुद्र के उदर मे चला गया होगा। अरबो का धन तोपो से उडा दिया होगा बडे–बडे मकान और सुदृढ दुर्ग ढा दिये गये और सुधरे हुए तथा बुद्धिमान कहलाने वाले लोग बमो और गोलो के शिकार बना दिये गये। इसके अतिरिक्त लगभग डेढ करोड

गरीब सैनिक मौत के मुह मे ठेल दिये गये। ऐसी विषैली गैस का प्रयोग किया गया जिससे लोगो का दम घुट जाय और तत्काल मरण हो जाय। यह सब परिणाम साइन्स के नये सस्करण का ही है। लोग पहले सत्तर मील की दूरी से गोला फेकने वाली तोप, एक मिनट मे सैकडो गोले बरसाने वाली तोप आदि आविष्कारो को देख–सुनकर आश्चर्य करते और प्रसन्न होते थे। लेकिन इसका नतीजा क्या हुआ, सो अब देखो। हिसा ही का यह घोर अनर्थ अन्य देशो को नही दिखाई दिया, यह केवल भारतवर्ष को ही दिखाई दिया। भारत पहले से ऐसी हिसा का विराध करता रहा है और आज भी वह अपनी पूर्वकालीन परम्परा पर चट्टान की तरह सुदृढ है।

गाधीजी के नेतृत्व मे आज भी भारतवर्ष अहिसा की ध्वजा फहरा रहा है और पुकार–पुकार कर कहता है – लोगो! हमारी बात सुनो। अगर तुम शाति और सुख के साथ रहना चाहते हो, तो अपने झूठे विज्ञान को हिसा रूपी पिशाचिनी के पिता इस विज्ञान को समुद्र मे डुबो दो। हिसा को अपने देश के अभ्युदय का साधन मत समझो। हिसा तो किसी भी देश को तबाह करने वाली है। जब तक ससार अहिसा की ध्वजा के नीचे नही आ जाता तब तक ससार नरक से बेहतर नही बन सकता।

## अहिसा का विधि अर्थ

अहिसा शब्द को लोगो ने हिसा का अभाव अर्थ मे तो समझ लिया हे मगर उससे जो विधि अर्थ निकलता हे उस पर बहुत कम लक्ष्य दिया जाता हे। अहिसा का विधि अर्थ हे – मैत्री बन्धुता, सर्वभूत–प्रेम। जिसने मैत्री या बन्धुता की भावना जाग्रत नही की हे उसके हृदय मे अहिसा का सर्वागीण विकास नही हुआ हे। अहिसा के इस विधि अर्थ का आराधन करते हुए हिसा का विरोध करना भी अहिसा हे। चाहे प्राण जाव लकिन हिसा का विराध करे। हा, हिसक का विराध न करे। यदि हिसक का विरोध किया तब ता प्रतिहिसा हो जायेगी जो हिसा ही हे। सच्चा अहिसक अहिसा क लिए हिसा करना स्वीकार नहीं कर सकता।

## सुधार का राजमार्ग

काई आदमी कितना ही बुरा क्या न हा फिर भी वह [illegible] सर्प सरीखा ता नही हागा। भगवान न उस बिगड हुए का सुधार [illegible] बन्धुता प्रकट की थी। अतएव मार–पीट कर बिगडे का सुधार [illegible] बिगडी का मार्ग अपनाना ओर उससे सुधार की आशा करना [illegible] सुधार का जा मार्ग भगवान न अपने जीवन–व्यवहार द्वारा [illegible] वही सुधार का राजमार्ग है।

## बन्धुतामय साम्य

चण्डकौशिक को बुरा कहने वाले, उससे लडने वाले, बहुत–से लोग उसे मारकर समता स्थापित करना चाहते थे, पर बन्धुता के बिना ऐसा नही हो सका। समता के लिए हिसात्मक भावो से लडने वाला यदि निर्बल हो और प्रतिपक्षी सबल हो, तो वह लडने वाला मारा जाता है। चण्डकौशिक को कई लोग मारने गये, लेकिन वे खुद ही मारे गये। जो चण्डकौशिक इतना प्रबल था जिसे कोई जीत नहीं सकता था, उसी चण्डकौशिक को बन्धुता की प्रबल भावना से परिपूर्ण भगवान महावीर स्वामी ने अनायास ही जीत लिया।

तात्पर्य यह है कि जगत् मे शाति स्थापित करने के लिए साम्य की आवश्यकता तो है मगर बन्धुता के बिना शाति–स्थापना का उद्देश्य पूरा नही हो सकता। साम्य की स्थापना करते समय यदि बन्धुता की प्रतिष्ठा नही की गई तो मारकाट और अशाति हुए बिना नही रहेगी।

आज अपने–आप को जैन कहने और कहलवाने वाले लोग भले ही सख्या मे कम हो, लेकिन भगवान महावीर का सिद्धात समस्त ससार मे आदर्श माना जाता है। मानव–समाज ने इस सिद्धात के विरुद्ध व्यवहार करके जो बुरे परिणाम भुगते हैं और आजकल भी भुगत रहा है, उन्होने बन्धुता की भावना की आवश्यकता सिद्ध कर दी है। और अब प्रत्येक राष्ट्र उसे प्राप्त करने मे गौरव समझता है भले ही वह उसे प्राप्त करने मे अपनी लाचारी अनुभव करता है।

## अहिसा का बल

हिसा के सामने दया क्या कर लेगी? इसका उत्तर यह है कि दया हिसा पर विजय प्राप्त करेगी। जिन्होने अहिसा की उपलब्धि की है जिन्हे अहिसा पर अचल आस्था है, वे जानते हैं कि अहिसा मे अद्‌भुत और आश्चर्यजनक शक्ति विद्यमान है। अहिसा के बल के सामने हिसा गल कर पानी–पानी हो जाती है।

## सूक्ष्म हिसा

यदि आप किसी को गाली देकर उसका मन दुखाने का प्रयत्न करते है तो समझिए कि मैं एक प्रकार की हिसा कर रहा हू। यदि आप किसी का अपमान कर रहे हैं तो समझ लीजिए कि मैं एक प्रकार का हिसा का भागीदार बन रहा हू। यदि आप किसी को लडाई–झगडा करने की सलाह देते है, तो समझिए कि मेरा यह कृत्य एक प्रकार की हिसा मे शामिल हैं। इतना ही नही

मन से किसी का बुरा विचारना भी हिसा है। इन तमाम हिसाओ के करने वाले प्राणियो को, यथासमय बदला चुकाना पडता है।

## हिसा का अधिकारी नही

सब प्राणियो ने, अपनी–अपनी रक्षा के लिए नाखून, खाने के लिए दाढ व दात देखने के लिए नेत्र सुनने के लिए कान सूघने के लिए नाक चखने के लिए जीभ आदि अग–उपाग अपने–अपने पूर्व कर्म के अनुसार प्राप्त किये हैं। इनको छीन लेने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। जो मनुष्य मक्खी के पख को भी नही बना सकता, उसे उसको नष्ट करने का अधिकार नही है। परन्तु स्वार्थ ऐसी चीज है कि उसकी ओट मे कुछ भी नही दिखता। जो अग–उपाग उस प्राणी के लिए उपयोगी हैं मनष्य कहा करते हैं कि ये तो हमारे लिए पैदा किये गये है। ऐसा कहने वालो से सिह यदि मनुष्य की भाषा मे कहे कि तू मेरे खाने के लिए पैदा किया गया है तो वह मनुष्य उसे क्या जवाब देगा।

## अहिसा कायरो का धर्म नही

अत्याचार करना जैसे मानिसक दोर्बल्य है वेसे ही कायरता धारण करके हृदय मे जलते हुए ऊपर से अत्याचार सहन कर लेना भी मानसिक दोर्बल्य हे। परन्तु वास्तविक शाति धारण कर लेना ही मानसिक उच्चता और उन्नत धर्म हे। जेसे कोई दुराचारी मनुष्य किसी धर्मशील स्त्री का शील हरण करता हे ओर दूसरा उस शरण आई हुई बहिन को कायर बनकर शरण नहीं देता ओर भागता हे तो ये दोनो मानसिक दोर्बल्य के धारण करने वाले हैं। एक क्रूरता से ओर दूसरा कायरता से। आज यह बात दिखाई पडती है कि बहुत–से जेनी भाई कायरता को ही अहिसा मान बेठे हे। इसकी वजह से कर्तव्य से पराङ्मुख होकर अन्य समाज के सामने डरपाक–से दिखाई देते हैं। यह उनका मानसिक दोर्बल्य का कारण हे। वास्तविक अहिसा कायरो का धर्म नही किन्तु सच्चे वीरो का हे।

## दया का दर्शन

जो दूसरे को दुखी देखकर उसके दुख को आत्मीय [illegible] ग्रहण करता है और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है वही दयालु है [illegible] है वही कर्तव्यनिष्ठ है।

तडफ–तडफ कर मरना पडता है। आपके प्रत्येक व्यवहार मे गरीबो की भलाई का विचार होगा, आपके अन्त करण मे निर्धनो के दु खो के प्रति सदा सवेदना जाग्रत होगी, आप उनके प्रति सदैव सहानुभूतिमय होगे। उनके सुख के लिए प्रयत्नशील होगे। आप उनकी सहायता करेगे और उस सहायता के बदले उन पर एहसान का बोझ नही लादेगे, वरन् उनका उपकार करके अपने–आप को उपकृत समझेगे।

मित्रो! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दु खी प्राणियो को देखो। न केवल नेत्रो से, वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो, वैसे ही उनकी विपदा निवारण के लिए प्रयत्नशील बनो।

## अहिसा

एक शक्ति अपनी विरोधी शक्ति का सहार किया करती है। लोग यह समझ बैठते हैं कि विरोधी शक्ति का नाश करना भी हिसा है। वास्तव मे आत्मा के आत्मिक शक्तियो के विरोधी का नाश करना हिसा नही है। अगर ऐसा होता तो अरिहत अर्थात् आत्मिक शत्रुओ को नाश करने वाले महापुरुष एव भगवान क्यो कहलाते?

## दया–देवी

जब दया–देवी ज्ञान–सिह पर आरूढ होकर तपत्रिशूल हाथ मे लेकर प्रकट होगी तब वह अपने विरोधी दल को कैसे बचा रहने देगी?

अब प्रश्न यह है कि दया का विरोधी कौन है? उत्तर यह है कि दया की विरोधनी हिसा ज्ञान का विरोधी अज्ञान और तप का विरोधी इन्द्रियभोग है। दया–देवी इन्ही की शत्रु है।

कई लोग आलस्य मे ही दया मान बैठे हैं। शरीर से काम न करना और ऐश–आराम मे पडे रहना, यही उनके लिए दया बन गई है। परन्तु ऐसा करने से आलस्य ने शरीर को घर बना लिया है। इसी आलस्य के कारण स्त्रिया घूमने लगती है तब यह समझा जाता है कि इन्हे भूत लग गया है या हिस्टीरिया रोग हो गया है।

मित्रो! स्वय आलस्य के वश होकर पडे रहना और दूसरो से काम कराना दया नही है। दया करनी है तो पहले ज्ञान सीखो। ज्ञान से ही दया होती है। दयादेवी के दर्शन करना हो तो वह देखो ज्ञान–रूपी सिह पर सवार है। अज्ञान से उसके दर्शन न होगे। जब तक अज्ञान विद्यमान है तब तक दया की परछाई पाना भी कठिन है।

देवी के हाथ मे त्रिशूल होता है, जिसके द्वारा वह अपने शत्रुओ का हनन करती है। इस दयादेवी के हाथ मे क्या है? इसका उत्तर यह है कि दयादेवी तप–रूपी त्रिशूल को ग्रहण किये हुए है। तप–त्रिशूल से दुश्मन सदा भयभीत रहते हैं। इसी त्रिशूल के द्वारा वह अपने शत्रुओ का सहार करती है।

## दया और घृणा

दया मे घृणा को कतई स्थान नहीं है। अन्त करण मे जब दया का निर्मल स्रोत बहने लगता है तब घृणा आदि के दुर्भाव न जाने किस ओर बह जाते है।

## अहिसक की शूरता

लोगो मे एक भ्रमपूर्ण धारणा फेली हुई है कि अहिसा कायरो का सहारा है। किन्तु वास्तव मे अहिसा कायरो की नही, वरन् वीरो की महान शक्ति है। सच्चा शूरवीर ही अहिसा का पालन कर सकता है। सच्चा अहिसक इन्द्रो को भी पराजित कर सकता है। वह निरन्तर लडता रहता है विपक्ष का नाश करता रहता है। कदाचित् तुम कहोगे कि अहिसक के हाथ मे तलवार तो होती नही, फिर वह लडता केसे है? इसका उत्तर यह है कि उसके पास जीवरक्षा का जो साधन – रजोहरण होता है वह उसकी तलवार है। पर वह भी एक बाह्य चिह्न है। अहिसक का सच्चा शस्त्र तो उसकी भावना है। अहिसा के प्रतिपक्ष को विध्वस करने की भावना ही अहिसक का प्रबल शस्त्र है।

## वीर और कायर

चचल बालक अपने पिता की दाढी खींच लेता है ओर कभी–कभी चपत भी मार देता हे फिर भी पिता उसे मारता नहीं है वरन् चुपचाप सहन कर लेता हे। तो क्या पिता को कायर कहा जायगा? ओर यदि पिता उस पुत्र को बदल मे मारे ता क्या उसे वीर कहा जायगा? सच्चा पिता वही कहलायगा जो अबोध बालक द्वारा पहुचाये हुए कष्ट को शात भाव से सहन कर लेता है और बदला लेने की मलीन भावना से बालक को कष्ट नही पहुचाता। इसी प्रकार वीर पुरुष वह है जो अज्ञानी पुरुषो द्वारा दिये हुए कष्टो को [illegible] सहन करता है और हृदय मे बदला लेने की भावना [illegible]

## भारतीय अहिसा

दुनिया की प्रत्येक मौजूदा शासनपद्धति खून–खच्चर की भयावह स्मृति है। कौनसा राज्य है जिसकी नीव खून से न सीची गई हो? कौनसी सत्ता है जो मनुष्यो का खून पीये बिना मोटी–ताजी बनी हो? आज सारा ससार ही जैसे वध ध्वस, विनाश और सहार के बल पर सचालित होता है। यह स्थिति घबराहट पैदा करने वाली है। आखिर मनुष्य यह स्थिति कब तक सहन करता चला जायेगा?

भारतवर्ष ने अहिसा और सत्य का जो झडा गाडा है, उस झडे की शरण ग्रहण करने से ही ससार की रक्षा होगी। अन्य देश जहा तोपो और तलवारो की शिक्षा देते हैं वहा भारतवर्ष अहिसा का पाठ सिखाता है। भारत ही अहिसा का पाठ सिखा सकता है, किसी दूसरे देश की सस्कृति मे यह चीज ही नजर नही आती। बन्धुता का जन्म भारत मे ही हुआ है। भारतीय स्त्रियो ने ही शाति और प्रसन्नता के साथ लाठियो की मार खाकर दुनिया को अहिसा की महत्ता दिखलाई है। ऐसी क्षमता किसी विदेशी नारी मे है? हर्गिज नही।

## अहिसक

जिसका हृदय–पुष्प अनुकम्पा के सौरभ से सुरभित है वह दूसरो के दुख को अपना ही दुख मानता है और उसे दूर करने का ऐसा ही प्रयास करता है मानो अपने दुख को दूर करने का प्रयास कर रहा हो। पर आप क्या करते है?

कल्पना करो आपके पास दो कोट हैं। आपको एक ही कोट की आवश्यकता है। दूसरा कोट अतिरिक्त है। अब अगर कोई मनुष्य कडाके की सर्दी से ठिठुर रहा हो तो क्या आप उसे अपना अतिरिक्त कोट दे देगे? मन मे यह तो नही सोचोगे कि ठिठुरने वाला अपने कर्मो का भोग भोगता है? मरता है तो मरे मुझे उससे क्या सरोकार है? यदि आप यह सोचते हैं तो कहना चाहिए कि आप मे सच्ची अहिसा का उदय नही हुआ है। सच्चा अहिसक दूसरो का दुख दूर करने के लिए आप स्वय दुख उठाता है। धन्य है वह धर्मरुचि अणगार जिन्होने कीडियो की अनुकम्पा करके कडवे तुबे का शाक खा लिया और स्व–प्राणो का उत्सर्ग करके भी पर–जीवो रक्षा की। और धन्य है भगवान नेमिनाथ जिन्होने पशुओ की रक्षा के लिए राजीमती का भी परित्याग कर दिया।

आप धर्मरुचि और नेमिनाथ की अहिसा के आराधक हैं। आदर्श आपके सामने उपस्थित है। अपने कर्तव्य का निर्धारण उस आदर्श के प्रकाश मे कीजिए।

जो व्यक्ति अहिसक कहलाता हुआ और अपने–आप–को अहिसक मानता हुआ भी अपने कुटुम्बीजनो पर अथवा नोकरो पर करुणाभाव नही रखता, उसके हृदय मे क्या वास्तविक अहिसा हे? नोकर जब बीमार हो और कार्य करने मे समर्थ न हो, उस समय उसका वेतन काट लेना अहिसक को शोभा नही देता। अग्रेज लोग अपने बीमार नोकरो की सार–सभाल रखते हैं उनकी दवा का प्रबन्ध करते हैं और वेतन नही काटते। तो क्या अहिसा की आराधना करने वालो को ऐसा ही व्यवहार करना उचित नही है?

## दयाधर्म

जिसका जीवन दयाधर्म से सराबोर हे वह चर्बी लगे वस्त्र पहनेगा या बिना चर्बी लगे वस्त्र पहनेगा? कदाचित् बिना चर्बी का वस्त्र अधिक कीमती हो तो क्या पैसो के लिए दयाधर्म का त्याग किया जा सकता है? अगर किसी जगह शाक–भाजी आठ आने सेर और मास चार आने सेर बिकता हो तो क्या कोई दयाधर्मी शाक–भाजी छोडकर मास–भक्षण करना पसद करेगा? मास के समय दया का विचार हो आता है इसका प्रधान कारण पैतृक सस्कार हैं, मगर वस्त्रो के विषय मे दया का भाव क्यो उदित नही होता? शिकागो के सबध मे सुना जाता है कि वहा के कत्लखानो से रक्त बाहर निकालने के लिए किसी बडे शहर के गटर के समान मोटे–मोटे नल लगाये जाते हे। इस प्रकार की महान् हिसा वाली चर्बी लगे वस्त्र पहनना दयाधर्मी को शोभा देता हे? सच्चा दयाधर्मी तो यही कहेगा कि बिना कपडे रह जाना अच्छा हे पर ऐसा पापमूलक वस्त्र नही पहन सकता।

दयाधर्म की रक्षा के लिए तुमने मास खाने का त्याग कर रखा हे। मास से इतनी घृणा करते हो कि प्राण भले ही चले जाए पर मास का स्पर्श नही कर सकते। मास न खाने के लिए जिस युक्ति का उपदेश किया जाता हे उसी युक्ति का अन्य विषयो मे – प्रत्येक वस्तु की हेयता और उपादेयता मे उपयोग करने से ही दयाधर्म टिक सकता हे।

दयाधर्म पालन करने मे जो कष्टो की शिकायत करते हैं [illegible] समझना चाहिए कि दयाधर्म की रक्षा के लिए कष्टो को सहन करना [illegible] हे। गजसुकुमार मुनि ने सयम का पालन करते [illegible] किया था और सयम का पालन कर रहे थे इसी कारण [illegible] कष्टो का सामना करना पडा। पर कष्ट आ पडने पर [illegible] त्याग कर दिया था? तो तुम दयाधर्म [illegible] का भी सहन नही कर सकते? [illegible]

ही पाली जा सकती है, पर उससे पहले अपनी शक्ति के अनुसार दयाधर्म का पालन करना ही चाहिए और दयाधर्म की शक्ति का एव उसके द्वारा होने वाले आत्मकल्याण का माप निकालना चाहिए।

## पुण्यवान

पुण्यवान बनने की इच्छा सभी की होती है, पर वास्तव मे पुण्यवान होता कौन है? हाथी पर बैठकर छत्र-चवर कराने तथा राजसिहासन पर बैठकर प्रजा पर हुक्म चलाने से ही कोई पुण्यात्मा नही कहलाता। यह सब सामग्री पुण्य से भले ही मिली हो, लेकिन उनका उपभोग करना पुण्यवानी नही है। इस सामग्री के उपभोग से पुण्य का क्षय होता है, पुण्य का उपार्जन नही होता। हम तो उसी को पुण्यवान समझते हैं जिसका दिल दीन-दु खी जीवो को देखते ही पिघल कर पानी-पानी हो जाता है, जिसके दिल मे दया की विद्युत दौडने लगती है।

## गरीबो की सहायता के लिए खादी

आजकल बहुत-से लोग श्रीमन्ताई के ढोग मे पडकर गरीबो की ओर से आखे बन्द कर लेते हैं। उनके दिल मे दीन-दुखियो की सेवा-सहायता करने का विचार तक नही आता है। मगर उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज की यह विषमता एक दिन असह्य हो जायेगी और तब भयकर क्राति होगी। उस क्राति मे गरीब-अमीर का भेदभाव विनष्ट हो जायेगा और एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा। बनेडा (मेवाड) मे पूज्य श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा न करो, नही तो बालशेविज्म आ जायगा। उस समय आप श्रीमन्त लोगो को कष्ट मे पडना पडेगा। उस समय गरीब लोग अमीरो से कहेगे – बताओ, तुम्हारे पास यह धन कहा से आया है? हम गरीबो की रोटियो को पैसे के रूप मे जमा करके हमे तुमने भूखे मारा है। अब तुम अमीर और हम गरीब नहीं रह सकते। तुम्हे भी हमारे समान बनना पडेगा। हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा। अब दूसरो के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उडा सकते। बिना पर्याप्त मेहनत किये किसी को भर-पेट खाने का क्या अधिकार है? इस प्रकार जिन गरीबो की आज उपेक्षा की जाती है वे ही गरीब आपकी श्रीमन्ताई नष्ट कर डालेगे। अगर आप चाहते है कि बोलशेविज्म न आवे – क्योकि यह सिद्धात भी अनेक दोषो और त्रुटियो से भरा हुआ है – तो आपको गरीबो की सुध लेनी चाहिए। अगर आप गरीबो की रक्षा करेगे तो गरीब आपकी रक्षा मे अपने प्राण तक निछावर कर देगे। अतएव गरीबो की सहायता के लिए और अपनी रक्षा के

लिए खादी को अपनाओ। गरीबो की रक्षा किये बिना आपकी रक्षा होना कठिन हे। चर्बी के वस्त्र त्यागने पर आपकी आत्मा को शाति मिलेगी गरीबो की सहायता होगी और आप पाप से बचे रहेगे। इससे मुझे भी प्रसन्नता होगी। मेरी यह प्रबल कामना है कि आपको सुबुद्धि प्राप्त हो।

## खादी और जैनदृष्टि

कुछ लोग कहते हैं – हम खादी केसे पहने? खादी मे जू पडते हैं और खादी धोने मे पानी अधिक खर्च होता हे। अतएव खादी पहनने मे हिसा अधिक होती है। इसके अतिरिक्त जैन धर्म राग–द्वेष करने का निषेध करता है और खादी पहनना तथा विलायती वस्त्र न पहनना यह क्या राग–द्वेष नही है?

जिसने राग–द्वेष को जीत लिया है वह चाहे तो खादी पहनता है चाहे तो विलायती वस्त्र पहनता है – उसके मन मे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। जैनदृष्टि के अनुसार खादी और विदेशी वस्त्र म से किसी पर राग और किसी पर द्वेष करना उचित नही हे। गाधीजी खादी पहनने के सबध मे जो–कुछ कहते हैं, उसके विरुद्ध जैन दृष्टि से यह तर्क किया जा सकता है किया जाता हे। हमे गाधीजी के कथन पर और उसके विरुद्ध किये जाने वाले तर्क पर तटस्थ रह कर विचार करना हे।

कहा जाता हे कि खादी मे अधिक जू पड जाते हैं और उसे धोने मे अधिक पानी काम मे लाना पडता हे। परन्तु इस प्रकार आरम्भ–समारम्भ देखने बेठगे तब तो अनेक अनीतिमय कार्य करने पडगे। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक आदमी कहता हे – मैं ब्रह्मचर्य पाल नहीं सकता और विवाह करता हू तो आरम्भ–समारम्भ होता हे। इसके अतिरिक्त विवाह करने से सन्तान उत्पन्न होगी और झझट बेहद बढ जायगी। अत इस आरम्भ से बचने के लिये उत्तम उपाय यह हे कि रुपया दो रुपया देकर वेश्यागमन करके कामवासना को तृप्त कर लिया जाय। अगर कोई मनुष्य ऐसा कहे तो तुम उससे क्या कहोगे? निस्सदेह तुम्हे कहना पडेगा कि [illegible] हे। इस प्रकार दिखाऊ आरम्भ को पकड लिया जाय और परोक्ष रूप से [illegible] वाले महाआरम्भ आदि घोर पापो पर नजर न [illegible] से हाथ धो लेने पडेगे और जीवन मे अनीति [illegible] म जितने भी कृत्य हे उन सबके साथ पाप और पुण्य [illegible] एसी अवस्था मे हमे पाप–पुण्य की न्यूनता और अधिकता [illegible] चाहिए।

जिस कृत्य से पाप अधिक होता है, उसका त्याग पहले करना चाहिए। वेश्यागमन और विवाह विषय को ही लीजिए। यदि वेश्यागमन भयकर पाप है और नैतिक विवाह करना भयकर पाप नही है, तो पहले वेश्यागमन का त्याग करना श्रेयस्कर है। यही बात वस्त्र के विषय मे समझनी चाहिए। कपडे के विषय मे यदि गहरा विचार करोगे तो मालूम होगा कि वेश्यागमन से देश और धर्म को जितनी हानि पहुचती है, उससे कही अधिक हानि चर्बी लगे हुए वस्त्रो के उपयोग से हुई है। जैसे परम्परा की अपेक्षा वेश्यागमन से अधिक पाप लगता है, उसी प्रकार परम्परा से चर्बी के वस्त्रो का उपयोग करने से अधिक पाप होता है, ऐसी स्थिति मे आरम्भ का बहाना करके जैसे विवाह की अपेक्षा वेश्यागमन को अल्पारम्भी नही माना जा सकता, उसी प्रकार आरम्भ के बहाने खादी के विरुद्ध भी नही कहा जा सकता।

सम्भव है चर्बी के वस्त्र धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती हो, पर जरा इस बात पर भी विचार करो कि परम्परा से उसमे कितना पाप समाया हुआ है? खादी धोने मे अपेक्षाकृत अधिक पानी का उपयोग करना पडता होगा, पर चर्बी के वस्त्रो की अपेक्षा खादी के पाप का परम्परा की अपेक्षा से विचार करोगे तो दोनो का भेद साफ मालूम हो जायेगा।

भारतवर्ष पर राग और विलायत पर द्वेष क्यो किया जाय? इसके समाधान मे मैं कहना चाहता हू कि जैन धर्म राग–द्वेष का विधान कदापि नहीं करता। पर जब तुम सासारिक उत्तरदायित्व के बोझ से लदे हुए हो, तो नैतिक राग–द्वेष से बच नही सकते। उदाहरणार्थ, तुम अपने पुत्र को अपना मानते हो, पडोसी के पुत्र को अपना पुत्र नही समझते। पडौसी के पुत्र पर दया और स्नेह तो तुम रखते हो पर उसे अपना ही पुत्र तो नही मानते। इसी प्रकार भारत तुम्हारा देश है, तुम भारत मे रहते हो, भारत मे ही तुम्हारा पालन–पोषण हुआ है अतएव भारत पर अगर तुम्हारा राग है तो यह स्वाभाविक है।

भारतवर्ष पर प्रेम रखने का अर्थ यह नही है कि तुम इग्लैंड पर द्वेष रखते हो। जहा तुम भारत से प्रेम करते हो वहा इग्लैंड पर भी तुम्हे दया–भाव रखना चाहिए। आज वह देश भी खराब हो रहा है। तुम उस देश के कपडे का व्यवहार करते हो इस कारण वह दूसरे देश का खून चूसना सीख गया है और विलासी बन गया है। अगर तुम चर्बी लगे वस्त्रो का पहनना छोड दो तो उस देश मे चर्बी के लिए होने वाली हिसा रुक सकती है। इसके साथ ही उस देश के निवासियो मे जो बुराइया घुस गई है वे दूर हो सकती हैं और उनकी दूसरो का रक्त चूसने की आदत भी मिटाई जा सकती है। इन सब

बातो को भलीभाति समझलो। फिर करोगे तो वही, जो तुम्हे रुचिकर होगा। अलवत्ता इस तथ्य को समझ कर प्रवृत्ति करोगे, तो महाआरम्भ से वच सकोगे। शास्त्रो मे श्रावक को अल्पारम्भी—अल्पपरिग्रही कहा हे और यह भी कहा गया हे कि श्रावक धर्म—मार्ग के अनुसार अपनी आजीविका चलाता हे। श्रावको के वर्णन मे कहा गया हे कि श्रावको ने आरम्भ का सर्वथा त्याग न किया था, फिर भी वे महा—आरम्भ से मुक्त थे। जो महा—आरम्भ से मुक्त रहे हैं उन्हे अल्पारम्भी होने पर भी शास्त्र धर्मी बतलाते हैं पापी नही कहते। अतएव चर्बी के वस्त्रो और खादी के वस्त्रो की तुलना करो। देखो किससे अल्प—आरम्भ होता हे ओर किससे महा—आरम्भ होता है? फिर विवेक के साथ, जो वस्तु महा—आरम्भजनक जान पडे उसका त्याग करो।

खादी के कपडे धोने मे अधिक पानी लगता हे इसी कारण खादी की निन्दा करना उचित नही है। साथ ही चर्बी लगे कपडो को धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती है, इतने मात्र से उन्हे खादी की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझना भी ठीक नही है। इनके पीछे कितनी महा—आरम्भ की परम्परा विद्यमान है इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए। खादी के उपयोग से कदाचित् अधिक पानी की हिसा होती हो किन्तु चर्बी लगे कपडो से तो मनुष्य तक की हिसा होती हे।

मैं यह नही कहता कि तुम खादी पहनो मैं तो यह कहना चाहता हू कि महाआरम्भ ओर अल्पआरम्भ को समझो ओर महाआरम्भ से वचो। अल्पारम्भ से भी छूटने की भावना रक्खो। कदाचित् अल्पआरम्भ से न बच सको, तो महाआरम्भ से अवश्य ही वचो। कपडा का तुम सर्वथा त्याग करके नग्न रह सको तब तो ठीक हे मगर एसा न कर सको ओर कपडा पहनना अनिवार्य समझो तो महाआरम्भ का तो त्याग करो। जिस कपडे मे चर्बी लगी हो वह आरम्भ की दृष्टि से पहले त्याज्य हे।

अगर तुम लोग विलकुल कपडे पहनते न होते तो यह उपदेश देकर मैं अपने—आप को धन्य मानता। मगर तुम कपडो का व्यवहार करना [illegible] सकते। एसी दशा मे चर्खा न चलाने का उपदेश देना तुम्हे [illegible] मे पटकना होगा। मान लीजिये एक भाई चक्की चलाकर [illegible] खाती है।

जायगी। इसके बदले यदि मैं यह उपदेश दू कि तुम मशीन का पिसा आटा खाना छोड दो तो वह कह सकती है कि इस अवस्था मे मुझे हाथो चक्की चलानी पडेगी। पर क्या चक्की चलाने का पाप मुझे लगेगा? नही। जब मुझे मशीन के आटे के त्याग का उपदेश देना पडेगा, तो मुझे यह बताना पडेगा कि मशीन और चक्की से होने वाले पाप मे कितना अन्तर है? मुझे कहना होगा कि मशीन से पिसे और चक्की से पिसे आटे मे नैतिक दृष्टि से इतना ही अन्तर है जितना अन्तर मक्खन निकले दूध मे और बिना मक्खन के दूध मे है। दीखने मे तो दोनो प्रकार के दूध एक-से रग के दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव मे दोनो मे बहुत भेद है। इसी प्रकार मशीन-चक्की और हाथ-चक्की से होने वाले आरम्भ मे भी महान् अन्तर है। मशीन-चक्की मे महा-आरम्भ है और हाथ-चक्की मे अल्प-आरम्भ है। इस नैतिक और पारमार्थिक दृष्टि से मशीन-चक्की का आटा खाना त्याज्य है। चर्बी से बना हुआ घी और बाजारू दूध-दही आदि को त्याग दोगे तो अहिसा की अपूर्व ज्योति से तुम्हारा हृदय जगमगा जायेगा। इस प्रकार जब महा-आरम्भ से बचना होता है तब अल्पआरम्भ के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नही रहता। आरम्भ मात्र से उसी अवस्था मे बचा जा सकता है जब आरम्भजनक कृत्यो को और उनके फल को सर्वथा त्याग दिया जाय। इसलिए गाधीजी कहते हैं अगर खादी पहनना है तो चर्खा चलाने के सिवाय और कोई रास्ता नही है। चर्खा नही चलाओगे तो मील का आसरा खोजना पडेगा अतएव यह विचारना आवश्यक है कि अधिक आरम्भ मील मे होता है या चर्खे मे? मील मे अधिक आरम्भ होता है, इस सत्य को कौन अस्वीकार कर सकता है। वह मील, जिसमे घोर आरम्भ होता है, चर्खा चलाये बिना बन्द नही हो सकता, और मील बन्द हुए बिना महाआरम्भ रुक नही सकता।

## खादी मे अल्प-आरम्भ

जहा तक तुम गृहस्थ हो वहा तक महा-आरम्भ का त्याग करने के लिए अल्प-आरम्भ का आश्रय लिए बिना काम नही चल सकता। किसी मासाहारी को मासभक्षण त्यागने का उपदेश दिया जाय तो यह नही कहा जा सकता कि तुम भूखे मर जाओ। उसे तो यही कहना होगा कि तुम्हारा जीवन अगर शुद्ध और सात्त्विक आहार से टिक सकता है तो अशुद्ध मास भक्षण का त्याग करो। मास का त्याग करने वाले को आखिर अन्न का आधार तो चाहिए। इस प्रकार जब महा-आरम्भ का त्याग करना हो तो अल्प-आरम्भ का आश्रय लेने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है।

गाधीजी महा–आरम्भ का त्याग कराते है। जो स्वय महाआरम्भ का त्याग करता है और दूसरो से त्याग कराता है वह अहिसक है। इस प्रकार हिसा के त्याग की बात स्वीकार करना जैन दृष्टि से न बुरा है और न पापमय ही। इस बात को भलीभाति समझ कर खादी के और चर्बी लगे कपडो मे से जिसमे महाआरम्भ हो, उनका विवेक के साथ त्याग कर देना चाहिए। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

## चर्बी के वस्त्र

साधु–सन्तो की यह विशेष जिम्मेवारी है कि वे तुम से चर्बी के वस्त्रो का त्याग करावे। साधु–सन्त अपनी जिम्मेवारी को समझे तो अहिसा का पालन हो सकता है और तुम से चर्बी के वस्त्रो का त्याग भी कराया जा सकता है, किन्तु जब तक वे स्वय चर्बी के वस्त्रो का त्याग नही कर सकते तब तक दूसरो से कैसे करा सकते हैं? अगर त्याग करने का उपदेश भी देवे तो उसका प्रभाव ही क्या पड सकता है? गाधीजी स्वय तो चर्बी के वस्त्र पहने और दूसरो से त्याग करने को कहे तो उनके कथन का जनता पर असर नही पडेगा। इसी प्रकार साधुवर्ग जब तक स्वय चर्बी के वस्त्रो का त्याग नही करता तब तक उसके उपदेश का रचमात्र भी प्रभाव नही पड सकता।

कोई यह कह सकता है कि साधु गृहस्थ के घर से वस्त्र लाते है। इस अवस्था मे उन्हे जेसे मिल जाते हैं वैसे ही पहनने पडते हैं। पर इस कथन मे कोई जान नही है। जब चर्बी के वस्त्र उन्हे मिल जाते है तो तलाश करने पर क्या बिना चर्बी के खादी के वस्त्र उन्हे नही मिल सकते? अतएव सर्वप्रथम साधुओ को चर्बी के कपडो का त्याग करना चाहिए। बाद मे दूसरो को उनके त्याग का उपदेश देना चाहिए। जिन चर्बी के वस्त्रो के लिए घोर हिसा की जाती है उन वस्त्रो का त्याग करना ही तुम्हारे लिए उचित है। अगर तुमने अहिसा को समझा है तुम भगवान महावीर का शासन पाये हो तो चर्बी के वस्त्रो का त्याग करने से स्वार्थ के साथ परमार्थ भी सधता है। [illegible] मे सादगी आती है और अहिसा की आराधना होती है। चर्बी के वस्त्रो के [illegible] कैसे–कैसे भयकर हत्याकाण्ड होते है यह सब जानते [illegible] भी [illegible] वस्त्रो का उपयोग करना अहिसा की अवहेलना करना है।

अगर तुम चर्बी लगे मील के वस्त्रो का त्याग करो तो तुम्हारी क्या हानि होगी? ऐसा करने मे सरकारी रुकावट है? सरकार की ओर से ऐसी कोई रोक–टोक नही है फिर भी अगर कोई सरकार के डर से चर्बी के कपडे नही छोडता तो वह देवादिक का उपसर्ग उपस्थित होने पर किस प्रकार निर्भय और निश्चल बना रह सकेगा? राजा अगर सच्चा राजा है तो चर्बी के कपडे त्याग कर खादी पहनने के कारण तुम से कदापि अप्रसन्न न होगा। कदाचित् कोई राजा नाराज हो भी जाय तो अन्त मे उसे ठिकाने पर आना ही पडेगा। तुम खादी को पहनने से डरते क्यो हो? अगर तमाम स्त्रिया और पुरुष खादी पहनने का निश्चय करले तो क्या हानि होने की सम्भावना है? ऐसा करने से तुम्हारा कौनसा कार्य रुक जाता है? अगर यह बात तुम्हारी समझ मे आ गई हो तो मील के वस्त्रो का त्याग करने की प्रतिज्ञा कर सकते हो। पर त्याग केवल देखा–देखी नही होना चाहिए। तत्त्व को भलीभाति समझ–बूझकर त्याग करना चाहिए। तुम जिस देश मे जन्मे हो, जहा के अन्न, जल और वायु से तुम्हारा पोषण हुआ है, उसी देश मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का तुम्हें त्याग करना चाहिए। उस वस्तु से तुम्हारा जीवन–निर्वाह सरलता से हो सकेगा और साथ ही तुम महाआरम्भ से भी बच जाओगे। अल्पारम्भ से ही तुम्हारा कार्य चल जायेगा।

## अहिसा और सुख

अहिसा का पालन करने से दुख की सभावना ही नही की जा सकती। आजकल जो व्याधिया दृष्टिगोचर हो रही हैं उनका दायित्व अहिसा पर नही, हिसा पर है। शास्त्र मलीन रहने का अथवा गन्दगी– भरे रहने का आदेश नही देता। सच तो यह है कि गन्दगी एव मलीनता से ही रोग उत्पन्न होते हैं और यह हिसा का ही एक प्रकार है।

इसी प्रकार रगडे झगडे क्लेश–द्वेष आदि का मूल कारण भी हिसा ही है। अहिसा के कारण आज तक कोई झगडा नही हुआ। न्यायालय मे जाकर तलाश करो तो विदित होगा कि अहिसा के कारण एक भी मुकदमा वहा न पहुचा होगा। अहिसा सदैव सुख का कारण है।

हाथी के मडल मे आत्मरक्षा के लिए इतने पशु इकट्ठे हुए थे कि हाथी को पैर रखने की भी जगह न बच पाई। ऐसे अवसर पर हाथी को क्रोध पैदा हो सकता था या नही? तुम्हारे सामने कोई आकर बैठ जाय तो उतने से ही तुम्हारा क्रोध उमड पडता है। क्या दयाधर्म के अनुयायी होने के कारण ऐसा होता है? हाथी के मडल मे अनगिनती जानवर घुस आये थे आर

तिल–भर भी जगह न रहने दी थी। बेचारे एक खरगोश को कही जगह नही मिली थी। वह बडी मुसीबत मे था। इतने मे ही हाथी ने पैर ऊचा किया। हाथी का पैर ऊचा करना था कि खरगोश उस खाली जगह मे बैठ गया। हाथी चाहता तो खरगोश पर पैर रख देता और उसे कुचल देता। किन्तु दया से द्रवित हाथी ने ऐसा नही किया। उसने अपना पैर ऊचा ही रक्खा। हाथी जानता था सच्चा घर वही है जहा दीन–दुखियो को विश्राम मिलता है। घर आया अतिथि कष्ट न पाये, इस बात का ध्यान रखने वाला ही सच्चा घर–मालिक है। हाथी को ऐसा उदार विचार आया। इस विचार के कारण हाथी ने बीस प्रहर तक अपना एक पैर ऊचा उठाए रखा, नीचा न किया। हाथी जैसे स्थूल शरीर वाले प्राणी के लिए तीन पैरो पर इतने लम्बे समय तक खडा रहना कितना कष्टकर है? मगर हाथी ने इसे कष्ट नही आनन्द माना। परिणाम यह हुआ कि हाथी मर कर प्रसिद्ध मगध सम्राट श्रेणिक का पुत्र हुआ।

जब इस प्रकार का दयाभाव हृदय मे प्रकट हो तो सम्यक्त्व का सद्भाव समझना चाहिए। सम्यग्दृष्टि इस बात का विचार रखता है कि उसके रहन–सहन, खान पान आदि से कितने जीवो को क्या कष्ट पहुच रहा है? तुम अपने विषय मे इस प्रकार सावधानी रखोगे तो हिसा से बच सकोगे और अपना तथा दूसरो का कल्याण करोगे।

## अहिसा

एक आदमी गगा के किनारे खडा रो रहा था। वह इतने जोर से रो रहा था कि राहगीरो को भी उस पर दया आती थी। किसी राहगीर ने उससे पूछा – भाई रोते क्यो हो? तुम्हे क्या कष्ट है? रोने वाले ने रोते–रोते कहा – मुझे जोर की प्यास लगी है।

राहगीर बोला – तो रोने से मतलब? सामने गगा बह रही है। [illegible] जल है शीतल है मधुर है। पीलो। प्यास बुझालो।

रोने वाले ने कहा – हाय! गगाजल कैसे पीऊ? गगा की धारा [illegible] चौडी है और मेरा मुह जरासा है। इतनी चौडी धारा मुह मे [illegible]

यही बात उन लोगो पर चरितार्थ होती है जो हिसा की व्यापकता को देखकर उससे जरा भी निवृत्त होने की चेष्टा नही करते। कुछ लोग ऐसे है जो सूक्ष्म हिसा को अपनी जवाबदेही समझते हैं। ऐसे लोग न स्थूल हिसा से ही बच पाते हैं और न सूक्ष्म हिसा से ही। वे न इधर के रहते है, न उधर के रहते हैं।

जो लोग गृहस्थी मे रहना चाहते हैं, गृहस्थी का उत्तरदायित्व सिर पर ओढे हुए हैं, मगर साधु की क्रिया का पालन करना चाहते हैं, वे एक साथ दो घोडो पर सवार होने के समान हास्यास्पद चेष्टा करते हैं। गृहस्थ को अग्नि से काम पडता है, पानी का व्यवहार करना पडता है, मिट्टी का उपयोग करना पडता है। जैन शास्त्र ने इन सबमे जीव का अस्तित्व स्वीकार किया है। ऐसी दशा मे गृहस्थ उनसे कैसे बच सकता है?

### हिसा

अहिसा का मर्म न जानने के कारण आज सूक्ष्म हिसा के बदले स्थूल हिसा की प्रचुरता हो गई है। पर दोष शास्त्र का नही, उसे न समझने वाली बुद्धि का है। गृहस्थ को पहले स्थूल हिसा से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। स्थूल हिसा से मेरा प्रयोजन उस हिसा से है जिसके करने मे, मनुष्य जगत् मे हिसक कहलाता है जिसके लिए राजा दण्ड देता है। जिसका कानून निषेध करता है और शास्त्र मे जिसे श्रावक के लिए त्याज्य ठहराया गया है।

मैने स्थूल हिसा की जो व्याख्या की है, उसका अभिप्राय आप समझ गये होगे। इसलिए मैं पूछता हू – किसी गृहस्थ के घर मे चोर घुस जाय अथवा कोई दुष्ट पुरुष स्त्री की लज्जा का हरण करे और उसे ऐसा न करने देने के प्रयास मे उसके प्राण चले जाए तो क्या राजा मारने वाले को हिसा का अपराधी ठहराएगा? कोई उसे हिसक कहेगा? पापी बताएगा? नही। व्यवहार मे ऐसा पुरुष बहादुर कहलाता है। ऐसी हिसा शास्त्र मे सापराधी की हिसा कहलाती है। जो पुरुष ऐसी हिसा से बचना चाहता है, वह गृहस्थ कहलाने योग्य नही है। उसे पडिमा धारण करके ससार के सब झझट त्यागकर जगल का रास्ता लेना चाहिए।

विचार कीजिए कोई राजा श्रावक है। उसके देश पर दूसरा राजा चढाई करने आया। अब उस श्रावक राजा का क्या कर्तव्य है? वह देश की रक्षा के लिए आक्रमणकारी का अस्त्र–शस्त्र से सामना करे या घर मे छिप कर बैठा रहे? जो सग्राम से डरेगा उसे लोग कायर कहगे बुजदिल एव डरपोक कहेगे। यदि उस राजा को वैराग्य हो तो उसे राजपाट छाड दना चाहिए।

तिल–भर भी जगह न रहने दी थी। वेचारे एक खरगोश को कही जगह नहीं मिली थी। वह वडी मुसीवत मे था। इतने मे ही हाथी ने पैर ऊचा किया। हाथी का पैर ऊचा करना था कि खरगोश उस खाली जगह मे बेठ गया। हाथी चाहता तो खरगोश पर पैर रख देता और उसे कुचल देता। किन्तु दया से द्रवित हाथी ने ऐसा नही किया। उसने अपना पेर ऊचा ही रक्खा। हाथी जानता था, सच्चा घर वही है जहा दीन–दुखियो को विश्राम मिलता हे। घर आया अतिथि कष्ट न पाये, इस वात का ध्यान रखने वाला ही सच्चा घर–मालिक है। हाथी को ऐसा उदार विचार आया। इस विचार के कारण हाथी ने बीस प्रहर तक अपना एक पैर ऊचा उठाए रखा, नीचा न किया। हाथी जैसे स्थूल शरीर वाले प्राणी के लिए तीन पैरो पर इतने लम्बे समय तक खडा रहना कितना कष्टकर है? मगर हाथी ने इसे कष्ट नहीं आनन्द माना। परिणाम यह हुआ कि हाथी मर कर प्रसिद्ध मगध सम्राट श्रेणिक का पुत्र हुआ।

जब इस प्रकार का दयाभाव हृदय मे प्रकट हो तो सम्यक्त्व का सद्भाव समझना चाहिए। सम्यग्दृष्टि इस बात का विचार रखता है कि उसके रहन–सहन, खान पान आदि से कितने जीवो को क्या कष्ट पहुच रहा हे? तुम अपने विषय मे इस प्रकार सावधानी रखोगे तो हिसा से बच सकोगे और अपना तथा दूसरो का कल्याण करोगे।

## अहिसा

एक आदमी गगा के किनारे खडा रो रहा था। वह इतने जोर से रो रहा था कि राहगीरो को भी उस पर दया आती थी। किसी राहगीर ने उससे पूछा – भाई रोते क्यो हो? तुम्हे क्या कष्ट है? रोने वाले ने रोते–रोते कहा – मुझे जोर की प्यास लगी है।

राहगीर बोला – तो रोने से मतलब? सामने गगा बह रही हे। निर्मल जल है, शीतल है, मधुर है। पीले। प्यास बुझाले।

रोने वाले ने कहा – हाय! गगाजल केसे पीऊं? गगा की धारा इतनी चौडी है ओर मेरा मुह जरासा हे। इतनी चोडी धारा मुह मे समायेगी केसे?

राहगीर का करुण रस, हास्य मे परिवर्तित हो गया। उसने हसते हुए कहा – मूर्खराज! तुझे अपनी प्यास मिटाने से मतलव हे या गगा की धारा मुह मे भरने से? अगर तू इसी विचार मे डूबा रहेगा तो प्यास का मारा प्राण खो वेठेगा। न गगा की धारा इतनी छोटी होगी कि तेरे मुह मे समा जाय न तेरा मुह इतना वडा होगा कि वह उसे अपने भीतर घुसेड सके।

यही बात उन लोगो पर चरितार्थ होती है जो हिसा की व्यापकता को देखकर उससे जरा भी निवृत्त होने की चेष्टा नही करते। कुछ लोग ऐसे हैं जो सूक्ष्म हिसा को अपनी जवाबदेही समझते है। ऐसे लोग न स्थूल हिसा से ही बच पाते हैं और न सूक्ष्म हिसा से ही। वे न इधर के रहते है, न उधर के रहते है।

जो लोग गृहस्थी मे रहना चाहते हैं गृहस्थी का उत्तरदायित्व सिर पर ओढे हुए हैं मगर साधु की क्रिया का पालन करना चाहते हैं, वे एक साथ दो घोडो पर सवार होने के समान हास्यास्पद चेष्टा करते हैं। गृहस्थ को अग्नि से काम पडता है पानी का व्यवहार करना पडता है, मिट्टी का उपयोग करना पडता है। जैन शास्त्र ने इन सबमे जीव का अस्तित्व स्वीकार किया है। ऐसी दशा मे गृहस्थ उनसे कैसे बच सकता है?

## हिसा

अहिसा का मर्म न जानने के कारण आज सूक्ष्म हिसा के बदले स्थूल हिसा की प्रचुरता हो गई है। पर दोष शास्त्र का नही, उसे न समझने वाली बुद्धि का है। गृहस्थ को पहले स्थूल हिसा से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। स्थूल हिसा से मेरा प्रयोजन उस हिसा से है जिसके करने मे, मनुष्य जगत् मे हिसक कहलाता है जिसके लिए राजा दण्ड देता है। जिसका कानून निषेध करता है और शास्त्र मे जिसे श्रावक के लिए त्याज्य ठहराया गया है।

मैने स्थूल हिसा की जो व्याख्या की है उसका अभिप्राय आप समझ गये होगे। इसलिए मैं पूछता हू – किसी गृहस्थ के घर मे चोर घुस जाय अथवा कोई दुष्ट पुरुष स्त्री की लज्जा का हरण करे और उसे ऐसा न करने देने के प्रयास मे उसके प्राण चले जाए तो क्या राजा मारने वाले को हिसा का अपराधी ठहराएगा? कोई उसे हिसक कहेगा? पापी बताएगा? नही। व्यवहार मे ऐसा पुरुष बहादुर कहलाता है। ऐसी हिसा शास्त्र मे सापराधी की हिसा कहलाती है। जो पुरुष ऐसी हिसा से बचना चाहता है वह गृहस्थ कहलाने योग्य नही है। उसे पडिमा धारण करके ससार के सब झझट त्यागकर जगल का रास्ता लेना चाहिए।

विचार कीजिए कोई राजा श्रावक है। उसके देश पर दूसरा राजा चढाई करने आया। अब उस श्रावक राजा का क्या कर्तव्य है? वह देश की रक्षा के लिए आक्रमणकारी का अस्त्र–शस्त्र से सामना करे या घर मे छिप कर [illegible]? जो सग्राम से डरेगा उसे लोग कायर कहेगे बुजदिल एव डरपोक [illegible]। [illegible] उस राजा को वैराग्य हो तो उसे राजपाट छोड देना चाहिए।

राज्यकार्य और ऐसा वैराग्य, दोनो एक साथ नहीं चल सकते। शास्त्रकार ऐसी हिसा का श्रावक के लिए निषेध नही करते।

आज दस लखपति श्रावको मे इतनी हिम्मत नहीं है कि अपने साथ की एक स्त्री के ऊपर कोई हमला करे तो वे उसे वचा सके। वे अपने प्राण के भय से उस स्त्री को छोडकर भाग जायेगे। क्या सच्चे श्रावक का यही लक्षण है?

कई लोग कहेगे – वे अहिसा के उपासक हैं, इस कारण भाग जायेगे। मगर यह झूठी बात है – वहानेवाजी है। मैं कहूगा – उनमे वीरता नही थी, इसलिए वे भागे। आप याद रखिये, इस प्रकार की अहिसा कायरता है, अहिसा कायरो के लिए नही है। अहिसा वीरो का भूषण हे। जो गृहस्थ अपनी बेटी का बाप बनना चाहता हे, पुत्र का पिता बनना चाहता हे, ओर स्त्री का पति बनना चाहता है, पर उन पर आपत्ति आने के समय भाग छूटता है, वह बेटी का बाप नही है, पुत्र का पिता नहीं है ओर बहिन का भाई नही है स्त्री का पति नही है। वह डरपोक है। जेन शास्त्रो ने ऐसे समय मे भागना बताया होता तो तीर्थकरो की विद्यमानता मे राजा लोग जैन धर्म को स्वीकार ही कैसे करते?

चेडा राजा के घर उनका एक दौहित्र हार और हाथी लेकर आया। मगधपति कोणिक ने कहलाया – हार ओर हाथी वापस भेजो अन्यथा युद्ध करना पडेगा।

राजा चेडा ने सोचा – मेरी शरण मे आया हुआ न्याय–पथ पर हे। मुझे इसी का साथ देना चाहिए। कोणिक अन्याय–पथ पर है, क्योकि इसे इसके हिस्से का राज्य नही देते। राजा चेडा को यह विचार भी आया कि कोणिक के साथ दस राजा ओर भी हैं। मैं अकेला हू। केसे उनका सामना करूगा?

मगर चेडा के पक्ष मे न्याय था सत्य था। सत्य के सामने ससार की समस्त शक्तिया परास्त हो जाती है। सत्य के प्रचण्ड वल के सामने अस्त्र–शस्त्र का बल तुच्छ है। यह विचार कर चेडा ने तनिक भी चिन्ता न की। वह सत्य का सहारा लेकर अपनी बात पर अडा रहा।

राजा चेडा (चेटक) शरणागत का नाना था। आप खयाल कर सकते हैं कि चेडा ने नाना होने के कारण शरणागत का साथ दिया। मगर वात ऐसी नही है। नौ लच्छी (लिच्छिवीवशीय राजा) ओर नो मल्ली (राजवशविशेष) तो शरणागत के कुछ नही लगते थे। वे श्रावक थे। उन्हाने उसका साथ क्या

दिया? इसलिए कि वे वीर थे। उन्होने अन्याय सहन नही किया। वे सत्य के पक्षपाती थे।

जिन दिनो ऐसे वीर श्रावक होते थे उन्ही दिनो जैन धर्म की जाहोजलाली थी। आज के धनवान तो अपनी ही इज्जत नहीं बचा सकते।

आखिर कोणिक और चेडा का युद्ध हुआ। युद्ध मे कोणिक के छक्के छूट गये। तब इन्द्र उसकी सहायता के लिए आया। जिस युद्ध मे साक्षात् इन्द्र भाग लेता है वह कितना भयानक युद्ध होगा? इन्द्र के विरुद्ध लडने वाले श्रावको के धैर्य का उनकी वीरता का और उनके पराक्रम का जिह्वा कैसे वर्णन कर सकती है।

क्या सग्राम करना पाप नही है? पर इस युद्ध का पाप कोणिक के सिर आता है क्योकि हिसा की प्रवृत्ति कराने वाला कोणिक है। चेडा का उद्देश्य अन्याय का प्रतिकार करना है।

इस दृष्टात से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गृहस्थ आवश्यकता पडने पर त्याग सत्य और धर्म की रक्षा के लिए, अपने कर्तव्य का समुचित रूप से पालन करने के लिए सापराधी हिसा से काम लेता है। वह केवल निरपराध जीवो की हिसा का त्यागी होता है।

### अनुकम्पा

अनुकम्पा का गुण हीनाधिक परिमाण मे प्रत्येक व्यक्ति मे विद्यमान रहता है परन्तु जब स्वार्थ के कारण हृदय मे चचलता आती है तो अनुकम्पा अदृश्य हो जाती है। गाय किसी को – यहा तक कि कसाई को भी खट्टा दूध नही देती। फिर भी कसाई के हृदय मे स्वार्थ के कारण या विषय–लालसा के कारण चचलता उत्पन्न होने से वह निदर्यतापूर्वक गाय की हत्या करता है। विषय लालसा से हृदय मे चचलता उत्पन्न होती है और चचलता के कारण अनुकम्पा का भाव कम हो जाता है या थोडी देर के लिए विलीन हो जाता है।

तुम्हारे अन्त करण मे पशुओ के प्रति दया का जो भाव है वह सच्चा है या दिखावा है? इस प्रश्न पर प्रामाणिकता के साथ आत्मसाक्षी से विचार करो। अगर तुम्हारे अन्त करण मे पशुओ के प्रति सच्ची दया है तो क्या तुम ऐसी वस्तुओ का व्यवहार कर सकते हो जिनके लिए पशुता का निर्दयतापूर्वक [illegible] किया जाता है?

तुम गाय को मारने के लिए तैयार न होओगे पर तुम्हारे सामने गाय [illegible] सुन्दर और सुकोमल बूट रक्खे जाए अथवा गाय की चर्बी

के वस्त्र तुम्हे दिए जाए तो तुम उन्हे अपनाओगे या नही? यो तुम गाय को गोमाता कहकर पुकारते हो, पर तुम्हारे कारण गाय माता की दशा कितनी भयावह, कितनी दयनीय हो रही हे, इस वात पर कभी विचार ही नहीं करते। क्या तुमने कभी विचार किया हे कि तुम जिस मुलायम ओर सुन्दर चमडे के बूट पहनते हो वह किसके चमडे के वने हे?

तुम कह सकते हो, तव क्या जूता पहनना छोड दिया जाय? नगे पेरो चला जाय? मगर ऐसा नही। भारतवर्ष मे, चमडे के लिए पहले पशुओ का कभी घात नही किया जाता था। जो पशु स्वाभाविक मृत्यु से मर जाते थे उनके चमडे के जूते वनाये जाते थे। आज खास तोर से चमडे के लिए ही पशुओ का घात किया जाता है। इतना ही नहीं, चमडा मुलायम ओर सुन्दर हो, इसलिए उन पशुओ को अत्यन्त निर्दयता के साथ मारा जाता हे। क्या तुमने ऐसी सुन्दर और मुलायम चमडे की चीजो का त्याग किया हे? अगर त्याग नही किया है, तब भी क्या तुम मानते हो कि पशुओ के प्रति तुम्हारे दिल मे दयाभाव है?

कल्पना कीजिए, आपके सामने द्रौपदी नग्न की जा रही हे ओर उसके शरीर के वस्त्र उतार कर आपको कोट–कमीज बनाने के लिए दिये जा रहे हैं। तो क्या आप उन वस्त्रो को लेना और पहनना पसन्द करेगे? आप कहेगे – जो वस्त्र द्रौपदी माता को नग्न करने के उद्देश्य से खीचे गये हैं उन्हे हम कैसे हाथ लगा सकते हैं? मगर जो वस्त्र आपकी माता – जन्मभूमि को नगी करके दरिद्र बनाकर आपके सामने पेश किये जाते हैं उनका उपयोग करने का भी आपने त्याग किया है? आपने अब तक हिसामूलक वस्त्रो का ओर चमडे का त्याग नही किया इसका एकमात्र कारण यह कि आपके अन्त करण मे अभी भूतदया की भव्य भावना का उदय नही हुआ है। जिस दिन भूतदया की भावना से आपका हृदय पावन होगा उस दिन आप ऐसे हिसाजनक वस्त्रो का ओर अन्य वस्तुओ का उपयोग करना छोड देगे।

हृदय मे अनुकम्पा का भाव उदित होने से एक प्रकार की मृदुता का आविर्भाव होता है। मृदुता के आविर्भाव से अनुद्धतता का जन्म हाता हे निरभिमानता उत्पन्न होती है। अनुकम्पा से हृदय नम्र बन जाता हे और नम्र हृदय मे अभिमान उत्पन्न नही होता। अनुकम्पा से विभूषित मनुष्य पराये दु ख को अपना दु ख मानता हे ओर उसे दूर करना अपन दु खा को ही दूर करना समझता हे। वही सच्ची अनुकम्पा हे जिसम अभिमान ओर लालसा न हो।

## अहिसा की शक्यता

कुछ लोगो को शका हुआ करती है कि जब सम्पूर्ण भूमण्डल ही जीवो से व्याप्त है और शरीर द्वारा जीवो का मरण भी स्वाभाविक है, तो फिर मुनि पूर्णरूपेण अहिसक कैसे हो सकते हैं?

इस शका का समाधान यह है कि मुनि के शरीर से जीवो का मर जाना स्वाभाविक है पर देखना तो यह है कि मुनि का उद्देश्य क्या है? क्या मुनि का भाव जीव मारने का है? वास्तव मे हिसा वह है जो प्रमाद के योग से या विषयपोषण के लिए की जाती है। इसके अतिरिक्त जो हिसा होती है वह पाप रूप नहीं गिनी जा सकती। उदाहरण के लिए कोई मुनि ईर्यासमिति-पूर्वक यतना से चल रहा हो, फिर भी अगर कोई जीव उसके पैर के नीचे आकर मर जाय तो मुनि को उसकी हिसा का पाप नही लगता। इसके विपरीत कोई मुनि अगर ईर्यासमितिपूर्वक यतना से न चल रहा हो और कोई जीव न मरे तो भी वह मुनि अयतना के कारण पाप का भागी होता है, क्योकि हिसा प्रमाद से होती हे, बल्कि प्रमाद ही हिसा है। इसी प्रकार विषय-लोलुपता भी हिसा का कारण है। ऐसी स्थिति मे अप्रमत्त भाव से, विषय-वासनाहीन मनोवृत्ति के साथ विचरने वाला साधु हिसा का भागी नहीं हो सकता।

## वीर-धर्म

भगवान महावीर ने जो शिक्षा दी है वह कायरता लाने के लिए नहीं, वीरता प्रकट करने के लिए दी है। तुम उस वीर-शिक्षा का उल्टा अर्थ करके कायर मत बनो। वीर के हाथ मे तलवार हो तो वह अपनी रक्षा करता है, साथ ही दूसरो की भी। वही तलवार कायर के हाथ मे पड जाती है तो उसकी प्राण-हानि का कारण बनती है। कायर उस तलवार का अपमान कराता है।

तुम्हे वीर-धर्म मिला है। उसे विपरीत समझकर उसका अर्थ उल्टा करके कायर मत बनो। वीर धर्म की प्रतिष्ठा बढाओ। प्रतिष्ठा न बढा सको तो कम से कम उसे बदनाम मत कराओ।

## सत्य -

जिस विचार बात और कार्य का त्रिकाल मे भी पलटा न हो जिसको अपनी आत्मा निष्पक्ष भाव से अपनावे जिसके पूर्ण रूप से हृदय मे स्थित हो जाने पर भय ग्लानि अहकार मोह दम्भ ईर्ष्या द्वेष काम क्रोध लोभ आदि कुत्सित भाव निःशेष हो जावे जो भूत मे था वर्तमान म ह और भविष्य मे होगा तथा जिसके होने पर आत्मा को वास्तविक शाति प्राप्त हो उसी का नाम सत्य है।

## सत्य प्रकृतिदत्त गुण

प्रकृति ने मनुष्य के हृदय मे एक से एक उत्तम गुण पैदा किये। उत्तम गुण के लिये मनुष्य को कही जाना नहीं पडता, वे तो सर्वथा स्वाभावि होते है। यदि मनुष्य कुसग मे पडकर बुरी बाते अपने हृदय मे न भर ले, अ जन्म से ही सत्य के वातावरण मे पले, तो सम्भवत वह असत्याचरण व विचार भी न करे। यदि किसी शिशु को, सत्यासत्य विवेक का उपदेश न दिया जाय, किन्तु असत्य–आचरण उसके सामने न किया जाय तो निश्चि ही वह सत्य का अनुगामी बनेगा। साराश यह हे कि सत्य एक प्रकृतिदत्त गुण है

सत्य एक व्यापक और सार्वभौम सिद्धान्त है। ससार मे अने मत–मतान्तर प्रचलित हैं और उनके सिद्धान्त भी पृथक्–पृथक् हैं। बहुत– मतो के ऊपरी सिद्धान्त तो इतनी भिन्नता रखते हैं कि एक मतानुयायी दूस मतानुयायी से नही मिल पाता, बल्कि इन्हीं ऊपरी सिद्धान्तो को लेकर प्राय आपस मे महायुद्ध मचा देते हैं। ऐसा होते हुए भी, सब मतावलम्बी यदि गम्भीरतापूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से विचार करे तो मालूम होगा कि धर्म की नी सत्य के ऊपर ही है और वह सत्य सबके लिए एक है। उस सत्य को समझ लेने पर वे ही लोग, जो आपस में धर्म के नाम पर द्वेष रखते हैं, द्वेषरहित होक एक दूसरे से गला मिलाकर भाई की तरह प्रेमपूर्वक रह सकते हैं।

## सत्य के तीन भेद

जिस विचार मे ससार के किसी प्राणी को कष्ट देने की कल्पना न की गई हो, जिसके प्रकट कर देने पर किसी प्रकार की कुत्सित भावना क परिचय न मिले और वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करके निष्पक्षभाव से प्राणी मात्र को अपना मित्र समझते हुए जो विचार किया जाय वह मानसिक सत्य है।

जिस वाणी ने, किसी को अनुचित कष्ट पहुचने योग्य बात न कही हो, जिसके वक्ता ने निस्वार्थभाव से केवल सत्य का स्पष्टीकरण करने के लिए कही हो जो बात जैसी देखी सुनी समझी हे, उसको वेसे की वेसे समझाने को कही हो वह वाचिक अर्थात् वाणी का सत्य हे।

जिस कार्य के करने से ससार के किसी प्राणी का अहित न होकर हित ही हो जो स्वार्थ, छल दम्भ, ईर्ष्या द्वेषादि दुर्गुणो से रहित हो शास्त्र मे वर्णित नीति को जिस कार्य से क्षति न पहुचती हो वह कायिक सत्य हे।

उपरोक्त तीनो भेदो का एकीकरण हो जाने पर शास्त्र मे जिस सत्य को भगवान ने कहा है वह सत्य तैयार हो जाता है अर्थात् ऐसे सत्य को पूर्ण रूप से पालन करने वाले मे और ईश्वर मे कोई अन्तर नही रहता।

## सत्य से उत्कृष्ट सिद्धि, असत्य से हानिया

सत्य विचार सत्य भाषण, और सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य उत्कृष्ट सिद्धि पाप्त कर सकता है। जिस मनुष्य मे सत्य नही है, समझना चाहिए कि उसकी देह जीवरहित काष्ठ, पाषाण की तरह, धर्म के लिए अनुपयोगी है।

मनुष्य को असत्याचरण से प्रकट मे चाहे कुछ लाभ दीखे, परन्तु वे लाभ क्षणिक – अस्थायी होते हैं तथा उस लाभ के पीछे अनेक ऐसी हानिया छिपी रहती हैं जो उस समय नहीं दिखती।

जो सत्य का आचरण नही करता, वह ससार मे कभी भी सुखी नही रह सकता न उसका कोई आदर ही करता है। जब इस लोक के लिए यह बात है तब परलोक के लिए भी यही बात हो तो इसमे सन्देह ही क्या है?

## प्रकृति का सत्यानुसरण

प्रकृति ने मनुष्य को ही सत्याचरण नही सिखाया, बल्कि वह स्वय भी सत्य का अनुसरण करती है। समयानुसार ऋतुओ का परिवर्तन और ग्रह–उपग्रहो का ठीक–ठीक अपने कक्ष पर चलना भी सत्य की पुष्टि करता है। यदि गर्मी की ऋतु के स्थान पर वर्षा ऋतु और वर्षा ऋतु के स्थान पर हेमन्त ऋतु आदि उलट–फेर हो जाया करे तो कैसी भारी गडबड हो जाय, यह बात सब जानते हैं।

जिस प्रकार प्रकृति के नियम सत्य का पालन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर भी एक ऐसा पदार्थ है जो सदा सत्य–पालन का आदेश देता है। उस वस्तु का नाम आत्मा है।

जो सत्य आत्मरूप से मनुष्य के हृदय मे स्थित है, वही सत्य सारे ससार मे भिन्न–भिन्न रूपो मे दिखाई देता है। प्रत्येक पदार्थ मे यह किसी–न–किसी रूप मे अवश्य मौजूद है। यदि वह न हो तो ससार की स्थिति ही एक विचित्र प्रकार की हो जाय। सत्य की अनुपस्थिति मे मनुष्य ही मनुष्य के प्राणो का ग्राहक बन सकता है।

जिसके हृदय मे सत्य होता है वह मृत्यु को सामने खडी देखकर भी नही घबराता। यदि कोई मनुष्य उसका वध करने चलता है तब भी वह ऐसी घबराहट मे नही पडता जैसी घबराहट मे असत्य का आश्रय लेने वाला

मनुष्य पड जायेगा। साराश यह है कि सत्य का पालन करने वाले को किसी भी समय अशाति नहीं होती।

सत्य इस लोक और परलोक मे कल्याण करने वाला और असत्य चक्कर मे डालने वाला गुण है। इन दोनो भेदो को जानकर भी जो मनुष्य सत्य का पालन और असत्य का त्याग नही करता, वह बुद्धिमान नही कहा जाता।

## सत्य से शातिलाभ

असत्य से मनुष्य को कभी भी शाति नही मिल सकती। शाति सदैव सत्य का आश्रय लेने से ही मिला करती हे। जो मनुष्य असत्य मे सुख का अनुभव करते हैं, उन पर असत्य का पूरा कब्जा हो चुका हे, ऐसा समझना चाहिए।

सत्य बडा ही महत्त्वपूर्ण ओर कल्याणकारक सिद्धान्त है। इसके पालन करने वाले को तो सदैव आनन्द है ही, किन्तु जो व्यक्ति सत्य का पालन करने वाले व्यक्ति के सम्पर्क मे एक बार भी आ जाता है ओर उसकी एक भी शिक्षा ग्रहण कर लेता है वह भी भविष्य मे अपना कल्याण–मार्ग पा जाता है।

## आत्म–बल (सत्य बल)

जो मनुष्य सत्य का आचरण करने लग जाता है वह लोगो मे देवता के समान पूजनीय हो जाता है। उसका आत्म– बल बढ जाता है ओर वह उस आत्मबल द्वारा महान् से महान कार्य भी कर डालता हे। आत्मबल किसी भी बल से कम नही है, इस बल के सामने भोतिकबल तुच्छ, हेय और नगण्य है।

जिन तोपो और मशीनगनो के नाम मात्र से लोग काप उठते हैं जिनकी गडगडाहट की भयकर ध्वनि से लोगो के रोम–रोम खडे हो जाते हैं और गर्भवती स्त्रियो के गर्भपतन हो जाते हैं वे ही तोपे तथा मशीनगने सत्य द्वारा बल प्राप्त करने वाले आत्मबली का एक रोम भी नही हिला सकती। उसके सामने वे शाक–भाजी करने के टोकरे के समान निकम्मी हो जाती हैं।

## पूर्ण सत्य–निष्ठा

गाधीजी अमेरिका की अतुल धन–राशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते हैं, पर आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही हे जो आठ आने के लिए आठ बार असत्य आचरण कर सकता हो? अगर कोई ऐसा हे तो उसे अपने इस पतन के लिए पश्चात्ताप नहीं होना चाहिए? पश्चाताप की ज्वाला म उसे अपने पापो को भस्म करके भविष्य को निष्कलक वनाना चाहिए। भीला के

विषय मे कहा जाता है कि शपथ दिलाने पर वे मरने से बचने के लिए भी झूठ नही बोलते। फिर आप कुलीन और धर्मात्मा कहला कर भी तुच्छ बात के लिए असत्य का आचरण करे तो कितना अनुचित है? सत्य के प्रति गाधीजी की दृढता से यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्य-निष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय मे पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा हो तो उसमे आश्चर्य की बात ही क्या है? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नही किया। सीता अनेक प्रलोभनो के आगे भी सत्य का ही आराधन करती रही। इन सब प्राचीन आख्यानो को गाधीजी की सत्य-निष्ठा देखते हुए कपोलकल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है? गाधीजी की सत्यनिष्ठा को देखते हुए सहज ही विचार आता है कि इस गये-गुजरे जमाने मे भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढता दिखाने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीन काल मे ऐसे सत्यनिष्ठ क्यो न रहे होगे?

सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा होने पर असत्य को आग्रहपूर्वक त्यागने मे ही एकात कल्याण है। सब महापुरुषो के जीवन के अन्तस्तत्व मे यही तथ्य समाया हुआ है।

### सत्य भगवान

सत्य भगवान है इसलिए सत्य की आराधना करो। सत्य का आसरा गहो। सत्य पर श्रद्धा रक्खो। सत्य का आचरण करो। मन से, वचन से और काया से सत्य की आराधना करो। सत्य-भाषण करने से निडर बन जाओगे। सत्य बोलने से अगर कोई प्राण ले ले तो भी परवाह मत करो।

### सत्य का ज्ञान व पहचान

सत्य को अच्छी तरह से वे ही लोग जान सकते हैं जिन्हे सत्य प्यारा है जो सत्य के उपासक है या होना चाहते है और सत्य के आगे त्रिलोक की ऋद्धि ही नही बल्कि अपने प्राण तक को तुच्छ समझते हैं। किन्तु किसी एक सम्प्रदाय के धर्म या मजहब के पीछे जो उन्मत्त है जो स्वार्थवश अच्छे-बुरे की परवाह नही करता सत्य-असत्य को न देख केवल हा मे हा मिलाना ही जानता है ऐसा मनुष्य पूर्ण सत्य को नही पहिचान सकता।

### सत्य

कदाचित तुम सोचो कि हमारी सत्य बात मानी नही जायेगी लेकिन अगर कोई सत्य पर विश्वास नही करता तो तुम्हारी क्या हानि है? तुम अपने सत्य पर अटल रहो। असत्य के भय से सत्य का त्याग कर असत्य का आसरा

लेने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी सत्य बात नही मानी जायेगी यह विचार कर अगर भय किया तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम्हे सत्य पर पूर्ण विश्वास नही है। चिन्ता नही, अगर कोई तुम्हारे सत्य पर विश्वास नहीं करता। भले ही तुम्हारे सत्य की लोग निदा करे, खिल्ली उडावे या सत्य के कारण भयकर यातना पहुचावे, परन्तु भय मत खाओ। अगर तुम भय खाते हो तो समझलो कि तुम्हारे अन्दर के किसी–न–किसी कोने मे सत्य के प्रति अश्रद्धा का कुछ भाव मौजूद हे। सत्य पर जिसे पूर्ण श्रद्धा हे, वह निडर हे। ससार की कोई भी शक्ति उसे भयभीत नही कर सकती।

तुम किसी से भय न करके सत्य ही सत्य का व्यवहार रखो तो तुम जान जाओगे कि मुझे ईश्वर मिल गया। ईश्वर की शरण मे जाने का उपाय है–सत्य! सत्य ईश्वरीय विधान है। तुम ईश्वर की शरण ले लोगे तो फिर किसी प्रकार का भय न होगा। भय का स्थान तो असत्य हे। सत्य का ही व्यवहार करना और किसी से भय न खाना ही मोह को जीतना कहलाता है। अपनी आत्मीय वस्तु का त्याग करके परकीय वस्तु को ग्रहण करना ही मोह कहलाता है। इसे छोडा और ईश्वर मिला।

मित्रो! अगर आप अपने प्रत्येक जीवन–व्यवहार को सत्य की कसौटी पर कसे, सत्य को ही अपनावे और सत्य पर पूर्ण श्रद्धा रखे तो आप ईश्वर की शरण मे पहुच सकेगे और आपका अक्षय कल्याण होगा।

असत्य साहसशील नहीं होता। वह छिपना जानता है बचना चाहता है, क्योकि असत्य मे स्वय बल नही है। निर्बल का आश्रय लेकर कोई कितना निर्भय हो सकता है। सत्य अपने–आप मे बलशाली है। जो सत्य को अपना अवलम्ब बनाता है, सत्य के चरणो मे अपने प्राणो को सोंप देता हे उसमे सत्य का बल आ जाता है और उस बल से वह इतना सबल बन जाता हे कि विघ्न और बाधाए उसका पथ रोकने मे असमर्थ सिद्ध होती हैं। वह निर्भय सिह की भाति निस्सकोच होकर अपने मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता हे।

## सत्य भाषण

आजकल लोगो मे एक मिथ्या धारणा फेली हे कि आधुनिक व्यापार सत्य के आधार पर नही चल सकता। यह धारणा शीघ्र बदल जानी चाहिए। यूरोप के व्यापारी चार सो गज कपडे के बदले पोने चार सो गज ही क्या नही देते? अगर वे ऐसा करे तो सत्ता उनके हाथ मे होने से तुम अधिक सक्रिय विरोध भी नही कर सकते। फिर भी वे सत्य से व्यापार चलाते ह या नहीं? इस अवस्था मे तुम्हारा व्यापार सत्य से क्या नही चल सकता?

सचाई यह है कि जगत् का व्यवहार असत्य से नही चल सकता। अगर कोई यह प्रतिज्ञा कर ले कि मैं सत्य कभी नही बोलूगा तो क्या उसका जीवन बहुत दिन तक टिक सकेगा? सत्य स्वाभाविक है, सरल है। सत्य के बिना ससार टिक नही सकता।

## सत्य

सत्य इतना व्यापक है कि क्या धार्मिक क्षेत्र मे और क्या व्यापारिक क्षेत्र मे सर्वत्र लाभदायक है जो व्यापार मे सत्य का प्रयोग करके देखेगा उसे सत्य की सफलता देखकर चकित रह जाना पडेगा। हृदय की पामरता के कारण ही असत्यमय विचार उत्पन्न होते हैं। उन तुच्छ विचारो के कारण ही आज भारतीय व्यापार की वह प्रतिष्ठा नही रह गई है जो पहले थी। व्यापारियो मे अप्रामाणिकता की जो प्रचुरता दिखाई देती है, उसने उन्हे अविश्वनीय बना दिया है। भारत की बनी हुई वस्तु लोग उस विश्वास के साथ नही खरीदते, जो विश्वास विदेशी वस्तु के सबध मे पाया जाता है। इसका कारण व्यापारियो का असत्य है। इस असत्य का त्याग करके व्यापारी देश का मस्तक ऊचा उठा सकते हैं। इससे उन्हे भी अधिक प्रतिष्ठा और सफलता मिल सकती है।

सत्य जिसके जीवन मे ओत–प्रोत हो जायेगा उसका आचरण धर्मस्थान मे और दुकान मे परस्पर विरोधी नही हो सकता। वह सदा सत्य के ही दर्पण मे अपने कर्तव्य को देखेगा और सत्य का ही अनुसरण करेगा। वह असत्य की परछाई भी कभी अपने ऊपर नही पडने देगा।

## चोरी

मन वचन काया द्वारा दूसरे के हको को स्वय हरण करना, दूसरे से हरण करवाना या इसका अनुमोदन करना चोरी कहलाती है। अर्थात् जिस पर अपना वास्तवविक रीति से अधिकार ही नहीं है (फिर वह अधिकार चाहे रहा ही न हो या था लेकिन त्याग दिया हो) उस पर बिना उसके स्वामी की आज्ञा के अधिकार करने उसे अपने काम मे लेने और उससे लाभ उठाने को चोरी कहते है।

## चोरी के भेद

आज के कानून ने कुछ इने–गिने उपायो द्वारा दूसरे के हक हरण को चोरी मे मानकर प्रकारान्तर से चोरी के दूसरे मार्ग खुले कर दिये है। इसलिए चोरी के भी वे सभ्य उपाय निकले हैं जिनके द्वारा चोरी करने वाले, दूसरे के हको का अपहरण करने पर भी राज्य–नियम से दण्डित नही होते।

सेघ लगाने डाका डालने, ठगने, जेव काटने आदि राज्य–नियम मे दण्ड्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले, चाहे दो पैसे की भी चीज चुरावे, तब भी वे चोर कहलाते है और राज्य नियमानुसार दण्डित होते हैं, परन्तु सभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले, हजारो, लाखो ओर करोडो रुपयो की चोरी करके भी साहूकार ही कहलाते है ओर राज्य नियम से बचे रहते हैं। ऐस सभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले लोगो से जनता की जितनी हानि हो सकती है उतनी हानि उस असभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले लोगो से शायद ही होती हो। क्योकि असभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले लोगो से जनता सावधान रहती है और उनसे अपने हको की रक्षा करने का उपाय करती है। परन्तु इन सभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले प्रतिष्ठित शाह नामधारी लोगो से जनता सावधान नही रहती। इस प्रकार उन असभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वालो की अपेक्षा, सभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वाले कहीं अधिक भयकर है।

## सभ्य उपायो से चोरी

एक विज्ञापनबाज ने मक्खियो से बचने की दवा का विज्ञापन किया। उसने अपने विज्ञापन मे लिखा था कि–केवल एक आने के टिकट भेज देने मात्र से हम वह दवा भेजते हैं, जिसे भोजन करते समय पास रखने पर मक्खिया नही सताती। लोगो ने उसके पास एक–एक आने के टिकट भेजे। विज्ञापक ने टिकिटो मे से तीन पैसे के टिकिट तो अपने जेब मे रखे ओर एक पैसे के कार्ड पर टिकिट भेजने वालो को उत्तर दे दिया कि आप भोजन करते समय एक हाथ हिलाते जाइये फिर मक्खिया नही सता सकती।

मतलब यह हे कि आज के कानूनो से असभ्य चोरियो की सख्या चाहे कम हो गई हो परन्तु सभ्यता की ओट मे होने वाली चोरियो की सख्या मे तो वृद्धि ही सुनी जाती है। असभ्य उपायो से चोरी करने वाले का राज्य भी दण्डित करता हे ओर समाज भी घृणा की दृष्टि से देखता हे परन्तु इन सभ्य उपायो से चोरी करने वालो को न तो राज्य ही दण्ड देता हे ओर न समाज मे ही वे घृणित माना जाते ह। हा ऐसी चोरी करने वाला समाज म चतुर या होशियार अवश्य कहलाता हे। इसका परिणाम यह हो रहा हे कि आज ससार का अधिकाश समाज चोरी के पाप म पडा हुआ हे।

## चोरी का कारण

चोरी का सबसे वडा वाह्य कारण अराजकता हे। राज्य द्वारा भूख मरतो की व्यवस्था नही की जाती दुर्व्यसन नही मिटाय जात सामाजिक

कुप्रथाओ तथा मान–बडाई के लिए चोरी करने वालो को नही रोका जाता और शिक्षा का प्रबन्ध नही किया जाता तब चोरी करना स्वाभाविक है।

बहुत लोग समझते है कि हमारा काम बिना चोरी किये नही चल सकता। ऐसा समझना उसी प्रकार की कमजोरी और भूल है, जैसी कमजोरी और भूल नशेबाज की होती है, जो यह समझता है कि बिना नशे के मेरा जीवन नही रह सकता।

## नैतिक चोरी

एक रुपये की चोरी करने वाले पर मुकदमा चलाया जाता है। पुलिस के अधिकारी और सरकारी वकील न्यायाधीश के सामने जाते हैं और चोरी करने वाले को दण्ड दिलवाते हैं। न्यायाधीश अपना निर्णय देता है – एक रुपये की चोरी के अपराध मे अमुक सजा दी जाती है। मगर दूसरी और वही न्यायाधीश और पुलिस का अधिकारी कहलाने वाला व्यक्ति रिश्वत खाता है, हजारो की थैली घूस मे डकार जाता है। क्या यह चोरी नही है?

पुलिस का कर्तव्य है–जनता के जानमाल की रक्षा करना। मगर पुलिस किस प्रकार जानमाल की रक्षा कर रही है, यह बात मेरी अपेक्षा आप और अच्छी तरह जानते हैं।

## कर्तव्य की चोरी

अपने सिर पर लिए हुए कर्त्तव्य का पालन न करना भी एक प्रकार की चोरी है। दुनिया के तमाम अन्याय और नीति के विरुद्ध की जाने वाली खीचातानी चोरी के ही विभिन्न रूप हैं।

## ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य शब्द कैसे बना हे ओर वह क्या वस्तु है? सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिए। हमारे आर्य धर्म के साहित्य मे ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख मिलता है। जिन दिनो अवशेष ससार यह भी नही जानता था कि वस्त्र क्या होते हैं और अन्न क्या चीज है? नगधडग रहकर, कच्चा मास खाकर अपना पाशविक जीवनयापन कर रहा था उन दिनो भारत बहुत ऊची सभ्यता का धनी था उस समय भी उसकी अवस्था बहुत उन्नत थी। यहा के ऋषियो ने जो सयम, योगाभ्यास ध्यान मौन आदि अनुष्ठानो मे लगे रहते थे, उन्होने ससार मे ब्रह्मचर्य नाम को प्रसिद्ध किया। ब्रह्मचर्य का महत्त्व तभी से चला आता है जब से धर्म की पुन प्रवृत्ति हुई। भगवान ऋषभदेव ने धर्म मे ब्रह्मचर्य को भी अग्रस्थान प्रदान किया था। साहित्य की ओर दृष्टिपात कीजिए तो

विदित होगा कि अत्यन्त प्राचीन साहित्य – आचाराग सूत्र तथा ऋग्वेद मे भी ब्रह्मचर्य की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार आर्य प्रजा को अत्यन्त प्राचीन काल से ब्रह्मचर्य का ज्ञान मिल रहा है।

## ब्रह्मचर्य की शक्ति

आजकल ब्रह्मचर्य शब्द का सर्वसाधारण मे कुछ सकुचित–सा अर्थ समझा जाता है। पर विचार करने पर मालूम होता है कि वास्तव मे उसका अर्थ बहुत विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उसकी महिमा भी बहुत अधिक है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नही कर सकते। जो विस्तृत अर्थ को लक्ष्य मे रखकर ब्रह्मचारी बना है उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी का मिलना इस कलिकाल मे अति कठिन है। आजकल तो अखण्ड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुर्लभ हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी मे अद्‌भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नही है? वह चाहे सो कर सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माड को हिला सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियो को और मन को अपने अधीन बना लिया हो जो इन्द्रियो और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रिया जिसे फुसला नही सकती, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता। ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी की शक्ति अजब–गजब की होती है।

## ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ

परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यो नही रहता? यह प्रश्न अनेक के मस्तक मे उत्पन्न होता है। इसका उत्तर ज्ञानी यह देते हैं कि आन्तरिक निर्बलता ही परमात्मा के प्रति विश्वास को स्थायी नही रहने देती। परमात्मा के प्रति विश्वास न होने के जो कारण हैं उनमे से एक कारण है ब्रह्मचर्य का अभाव। जीवन मे यदि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई तो निस्सदेह ईश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धाभाव स्थायी रह सकता है।

ज्ञानीजन कहते हैं – समस्त इन्द्रिया पर अकुश रखना और विषय–भोग मे इन्द्रिया को प्रवृत्त न होन देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। और वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्यरक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा स्वीकार की जाती है पर वास्तव म सब इन्द्रिया और मन को विषयो की ओर प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य ह। केवल वीर्यरक्षा अपूर्ण ब्रह्मचय है। अतएव अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुचा जा सकता है।

## वीर्य का दुरुपयोग

देश मे आज जो रोग, शोक, दरिद्रता आदि जहा–तहा दृष्टिगोचर होते हैं उन सबका एकमात्र कारण वीर्यनाश है। आज बेकार वस्तु की तरह वीर्य का दुरुपयोग किया जा रहा है। लोग यह नही जानते कि वीर्य मे कितनी अधिक शक्ति विद्यमान है। इसी कारण विषय–भोग मे वीर्य का नाश किया जा रहा है। उसी मे आनन्द माना जा रहा है। ऐसा करने से जब अधिक सन्तान उत्पन्न होती है तो घबराहट पैदा होती हैं, पर उनसे मैथुन त्यागते नहीं बनता। भारतीयो को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। विदेशी लोग ब्रह्मचर्य की महत्ता भले ही न समझते हो या स्वीकार न करते हो, परन्तु भारत मे तो ऐसे महान ब्रह्मचारी हो गये हैं जिन्होने ब्रह्मचर्य द्वारा महान शक्ति– लाभ कर जगत् के समक्ष यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि ब्रह्मचर्य के प्रशस्त पथ पर चलने से ही जगत्–समाज का कल्याण हैं। ब्रह्मचर्य ही कल्याण का मार्ग है। यह समझते–बूझते हुए भी विषयभोग मे सुख मानना और जब सतान उत्पन्न हो तो उसका निरोध करने के लिए कृत्रिम उपाय काम मे लाना घोर अन्याय है। वीर्य को वृथा बर्बाद करने के समान दूसरा कोई अन्याय नही है।

हमारे अन्दर जो शान्ति और साहस है वह वीर्य के ही प्रताप से है। अगर शरीर मे वीर्य न हो तो मनुष्य हलन–चलन, गमनागमन आदि क्रियाए करने मे भी समर्थ नही हो सकता।

## ब्रह्मचर्य का महत्त्व

जो भाई–बहिन अपने ब्रह्मचर्य का पालन करेगे वे ससार को अनमोल रत्न प्रदान करने मे समर्थ हो सकेगे। हनुमानजी का नाम कौन नही जानता? आलकारिक भाषा मे कहा जाता है कि उन्होने लक्ष्मणजी के लिए द्रोण पर्वत उठाया था। उसी पर्वत का एक टुकडा गिर पडा जो गोवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलकार का आवरण दूर कर दीजिए और विचार कीजिए तो इस कथन मे हनुमानजी की प्रचण्ड शक्ति का दिग्दर्शन आप पायेगे। हनुमानजी मे इतनी शक्ति कहा से आई? यह महारानी अजना और महाराज पवन की बारह वर्ष की अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना का प्रताप था। उनके ब्रह्मचर्य पालन ने ससार को एक ऐसा उपहार ऐसा वरदान दिया, जो न केवल अपने समय मे ही अद्वितीय था वरन् आज तक भी वह अद्वितीय समझा जाता है और शक्ति की साधना के लिए उसकी पूजा भी की जाती है।

बहिनो! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज–सिगार और

हाव–भाव त्याग कर स्वय ब्रह्मचर्य की साधना करो ओर पति को भी ब्रह्मचर्य पालन करने दो।

## ब्रह्मचर्य ही जीवन है

अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्यरक्षा को कहते हैं। वीर्य वह वस्तु है कि जिसके सहारे सारा शरीर टिका हुआ हे। यह शरीर वीर्य से बना भी हे। अतएव आखे वीर्य हैं, कान वीर्य हैं, नासिका वीर्य है हाथ–पेर वीर्य हं। सारे शरीर का निर्माण वीर्य से हुआ हे अतएव सारा शरीर वीर्य हे। जिस वीर्य से सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या साधारण कही जा सकती है? किसी ने ठीक ही कहा हे–

**मरण बिन्दुपातेन, जीवन बिन्दुधारणात्।**

**अपूर्ण ब्रह्मचर्य का प्रथम नियम**–अपूर्ण ब्रह्मचर्य के दस नियमो मे पहला नियम भावना है। माता–पिता को ऐसी भावना लानी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने। इस प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता हे। आप लोगो को, जो यहा बैठे है अलग–अलग तरह के स्वप्न आते होगे। इसका कारण क्या है? कारण यही हे कि सबकी भावना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। यह बात प्राय सभी जानते हैं कि जेसी भावना होती है वैसा स्वप्न आता है। इसी प्रकार सतान के विषय मे माता–पिता की भावना जैसी होती है वेसी ही सतान बन जाती हे। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता हे उसी प्रकार भावना से सतान के विचारो ओर कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता हे ओर यही बात सतान के विषय मे भी समझनी चाहिए। सतान के विषय मे तुम जेसी भावना लाओगे, आगे चलकर सतान वेसी ही बन जायगी। अतएव सतान के लिए ओर अपने लिए ब्रह्मचर्य की भावना निरन्तर लानी चाहिए।

## दूसरा नियम

ब्रह्मचर्य का दूसरा नियम भाजन सवधी विवेक हे। कुछ लाग एसा समझते हें कि जिस खान–पान म आनन्द आता हे वही भाजन हे। पर यह मान्यता भ्रमपूर्ण हे। ब्रह्मचारी के भाजन म आर अब्रह्मचारी क भाजन म बहुत अन्तर होता हे। गीता म रजागुणी तमागुणी ओर सतागुणी का भाजन अलग–अलग वताया हे। पर आज क लाग जिह्वा के वशवर्ती हाकर भाजन के गुलाम हो रहे हं। यदि तुम अपनी जीभ पर भी अकुश नही रख सकते ता तुम आग किस प्रकार वढ सकाग? विद्याभ्यास आर शास्त्र–श्रवण का फल

यही है कि बुरे कामो मे प्रवृत्ति न की जाय। पर आजकल खान–पान के सबध मे बडी भयकर भूले हो रही हैं और हालत ऐसी जान पडती है मानो विद्याभ्यास का फल खान–पान का भान भूल जाना ही हो।

## वीर्यनाश के कारण

वीयनाश का एक कारण एक ही कमरे मे, एक ही बिछौने पर स्त्री–पुरुष का शयन करना भी है। एक ही कमरे मे और एक शैया पर सोने से वीर्य स्थिर नही रह सकता। शास्त्र मे जहा स्त्री और पुरुष के सोने का वर्णन मिलता है वहा ऐसा ही वर्णन मिलता है कि स्त्री और पुरुष अलग–अलग शयनागार मे सोते थे। पर आज इस विषय मे नियम का पालन होता नजर नही आता।

निष्क्रिय बैठे रहना भी वीर्यनाश का एक कारण है। जो लोग अपने शरीर और मन को किसी सत्कार्य मे सलग्न नही रखते, उन लोगो का वीर्य भी स्थिर नही रह सकता। यदि शरीर और मन को निष्क्रिय न रखा जाय तो वीर्य को हानि नही पहुचती।

रात्रि मे देर तक जागरण करना, सूर्योदय के बाद भी सोते रहना और अश्लील साहित्य का पढना– ये सब भी वीर्यनाश के कारण हैं। अश्लील चित्र देखने से और अश्लील पुस्तके पढने से भी वीर्य स्थिर नही रहता। आज जहा–तहा अश्लील पुस्तके पढने और अश्लील चित्र देखने का प्रचार हो गया है। आजकल लोग महापुरुषो और महासतियो के जीवन–चरित्र पढने के बदले अश्लीलतापूर्ण पुस्तके पढने के शौकीन हो गये हैं। उन्हे यह विचार ही नही आता कि ऐसा करने से जीवन मे कितने विकार आ घुसे हैं। कहावत है कि–जैसा वाचन। इस कहावत के अनुसार अश्लील पुस्तको के पठन से लोगो के विचार भी अश्लील बनते जा रहे हैं।

नाटक–सिनेमा देखना भी वीर्यनाश का कारण है। आजकल नाटक–सिनेमा की धूम मची हुई है। जहा देखो वहा गरीब से लेकर अमीर तक – सबको नाटक–सिनेमाओ मे फसाने का प्रयत्न किया जा रहा है। और इस प्रकार सिनेमा वीर्यनाश के साधन बन रहे है।

## सिनेमा और ग्रामोफोन

आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते हैं कि कोई भला मानुष अपने बाल–बच्चो के साथ उन्हे देख नही सकता। सिनेमाओ के कारण आज लाखो नवयुवक आचरणहीन बन रहे हैं। इन सिनेमाओ की बदौलत भारतीय नारी अपनी महत्ता का विस्मरण कर

भारतीय सभ्यता के मूल मे कुठाराघात कर रही है। यह अत्यन्त खेद की बात है। इसी प्रकार ग्रामोफोन को भी आनन्द का साधन समझा जाता है पर उसके द्वारा सस्कारो मे कितनी बुराइया घुस रही हैं, इस ओर कितने लोगो का ध्यान जाता है?

## ब्रह्मचर्य–साधन

ब्रह्मचर्य पालन करने वालो अथवा जो ब्रह्मचर्य पालना चाहते हैं उन्हे विलासपूर्ण वस्त्रो से, आभूषणो से तथा आहार से सदेव बचते रहना चाहिये। मस्तिष्क मे कुविचारो का अकुर उत्पन्न करने वाले साहित्य को हाथ भी नही लगाना चाहिए। जो पुस्तके धर्म, देशभक्ति की भावना जाग्रत करने वाली ओर चरित्र को सुधारने वाली होती हैं उनमे सरकार राजनीति की गध सूघती है और उन्हे जब्त कर लेती है। पर जो पुस्तके ऐसा गदा ओर घासलेटी साहित्य बढाती हैं, प्रजा का सर्वनाश कर रही हैं, उनकी ओर से वह सर्वथा उदासीन रहती है। यह कैसी भाग्य–विडम्बना है?

## वीर्य की महिमा

स्वप्नदोष मे भी वीर्य का नाश होता है। कुछ लोग कहा करते हैं कि वीर्यरक्षा से स्वप्नदोष होता है, पर यह कथन भ्रमपूर्ण है। इस भ्रामक विचार का परित्याग करके स्वप्नदोष के असली कारण का पता लगाना चाहिए। फिर उस कारण से बचकर दोष–निवारण का प्रयत्न करना चाहिए। जब तुम सो रहे होओ तव तुम्हारी जेब मे से अगर कोई रत्न निकाल कर ले जाने लगे ओर उस समय तुम जाग उठो तो आखो देखते क्या रत्न ले जाने दोगे? नही तो फिर स्वप्नदोष के कारण जान–बूझकर वीर्य को नष्ट होने देना कहा तक उचित कहा जा सकता हे?

## ब्रह्मचर्य और रसनानिग्रह

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अकुश रखने की वहुत आवश्यकता हे। जिह्वा पर अकुश न रखन से अनेक प्रकार की हानिया होती ह। इससे विपरीत जो मनुष्य अपनी जीभ पर काबू रखता हे उसे प्राय वेद्यो और डाक्टरो के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती।

अनेक लोग ऐस हैं जिनके लिए जीवन की अपक्षा भोजन अधिक महत्त्व की वस्तु हे। वे जीने के लिए नही खात पर खाने क लिए जीते हैं। भले ही कोई सीधी तरह इस वात का स्वीकार न कर मगर उसक भोजन–व्यवहार का देखने से यह सत्य साफ तोर स प्रकट हुए विना नहीं रहगा। यही

कारण है कि अधिकाश लोग जीवन के हित–अहित की कसौटी पर भोजन की परख नही करते। वे जिह्वा को कसौटी बनाकर भोजन की अच्छाई–बुराई की जाच करते हैं। जो जीवन की दृष्टि से भोजन करता है वह स्वास्थ्य–नाशक और जीवन को भ्रष्ट करने वाला भोजन कैसे कर सकता है? कुशल मनुष्य अज्ञात व्यक्ति को सहसा अपने घर मे स्थान नही देता। तब जिस भोजन के गुण–दोष का पता न हो उसे पेट मे स्थान देना कहा तक उचित कहा जा सकता है? जो ऐसे भोजन को पेट मे ठूस लेता है उसके पेट को भोजन–पिटारे के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

एक विद्वान का कथन है कि दुनिया मे जितने आदमी खाने–पीने से मरते हैं उतने खाने–पीने के अभाव मे नही मरते। लोग पहले तो ठूस–ठूस कर खाते हैं ओर फिर डाक्टर की शरण लेते हैं। आज जो आदमी जितनी अधिक चीजे अपने भोजन मे समाविष्ट करता है वह उतना ही बडा आदमी गिना जाता है। मगर शास्त्र का आदेश यह हे कि जो जितना महान त्यागी है वह उतना ही महान पुरुष हे। शास्त्र मे आनन्द श्रावक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बारह करोड स्वर्ण मोहरो का और चालीस हजार गायो का धनी होने पर भी उसने अपने खाने–पीने के लिए कुछ गिनती की चीजो की ही मर्यादा कर ली थी। इस प्रकार खान–पान के विषय मे जो जितना सयम रखता है वह उतना ही महान है। जिह्वा–सयम से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। नागरिको को जितना और जैसा भोजन मिलता है, उतना और वैसा किसानो को नही। फिर भी अगर दोनो की कुश्ती हो तो किसान ही विजयी होगा। यह कौन नही जानता कि सभ्य और बडे कहलाने वाले लोगो की अपेक्षा किसान अधिक स्वस्थ ओर सबल होता है। इसका एक कारण सादा और सात्त्विक भोजन है।

इस प्रकार अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य सुधरने के बदले बिगडता है। विकृत भोजन से स्वास्थ्य को हानि पहुचती हे और चरित्र को भी। इसी कारण विकृत (विगय) भोजन करने का शास्त्र मे निषेध किया गया है।

ब्रह्मचर्य का भोजन के साथ घनिष्ठ सबध है। भोगी का भोजन और योगी का भोजन एक–सा नही हो सकता। ब्रह्मचर्य की साधना करने वालो को ऐसा आर इतना ही भोजन करना चाहिए जिससे शरीर की रक्षा हो सके और जो ब्रह्मचर्य मे बाधक न होकर साधक हो। अधिक गरिष्ठ, तेज मसालेदार ओर परिमाण से अधिक भोजन सर्वथा हानिकारक है।

## ब्रह्मचर्य के सबध मे लोगो की भ्रान्त धारणा

विषय–भोग की कामना का नियत्रण नहीं हो सकता। यह कामना अजेय है। इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष–समाज मे एक बार पैठ पायी, तो भयकर अनर्थ होगे और उन अनर्थों की परम्परा का सामना करना सहज नहीं होगा।

यद्यपि आजकल भी अनेक लोग हैं जिनकी यह भ्रात धारणा हो गई है कि मनुष्य कामभोग की वासना पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। सभवत वे लोग मनुष्य को काम–वासना का कीडा समझते हैं। पर प्राचीन आर्य ऋषियो का अनुभव इस धारणा का विरोध करता हे। कोई व्यक्ति–विशेष ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ रहे, यह एक बात है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना सम्भव नही है, दूसरी बात हे। किसी व्यक्ति की असमर्थता के आधार पर किसी व्यापक सिद्धात का निर्माण कर बैठना सचाई के साथ अन्याय करना है। इस प्रकार असमर्थता की ओट मे विषय–भोगो का प्रचार करना सर्वथा अनुचित है।

आज भी ससार मे ऐसे व्यक्तियो का मिलना असम्भव नही है जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जन–सेवा कर रहे हैं। फिर भीष्म और भगवान नेमिनाथ जैसे पवित्र ब्रह्मचारियो का उच्च आदर्श जिन्हे मार्ग–प्रदर्शन कर रहा हो, उन भारतवासियो के हृदय मे न जाने यह भूत कैसे घुस गया है कि विषय–वासना पर काबू रखना शक्य नही है। साधु हुए बिना ब्रह्मचर्य का पालन हो ही नहीं सकता और गृहस्थ जीवन मे ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान एकदम अशक्यानुष्ठान है। वास्तव मे यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण हे। मनोबल दृढ होने पर पूर्ण या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता हे। यही नहीं, वरन् विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थ जीवन मे भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता हे। ब्रह्मचर्य पालने से किसी भी प्रकार की हानि की सम्भावना नही हे। यही नहीं किन्तु अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। कहा भी है–

**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया वीर्यलाभ**

कुछ महानुभावा ने एक नये सिद्धात का आविष्कार किया हे। उनकी अनोखी–सी समझ यह हे कि ब्रह्मचर्य का पालन करने स शरीर म रोग उत्पन्न होते हैं। पर न तो आज तक यह सुना गया हे कि ब्रह्मचय पालन स किसी को किसी रोग का शिकार होना पडा हे ओर न एसा कोई उदाहरण ही दखा गया हे। हा ठीक इसस उल्टे जो लोग विषयी हाते हैं व ही रोगो द्वारा सताय जाते हैं– यह बात ता प्रत्यक्ष दिखाई दती हे। अतएव अपन हृदय स इस भाति

को निकाल फेको कि ब्रह्मचर्य से रोग पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य जीवन है। उससे शक्ति का विकास होता है। जहा शक्ति है वहा रोगो का आक्रमण नही होता। अशक्त और दुर्बल पुरुष ही रोगो द्वारा सताये जाते हैं।

खेद है कि लोगो के मन मे यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय–भोग की इच्छा का दमन करना अशक्य है। परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोश मे से निकाल डालने को कहा था, उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से काम–भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय–भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

## विवाह

विवाह तो तुम्हारा हुआ, पर देखना यह चाहिए कि तुम विवाह करके चतुर्भुज बने हो या चतुष्पद। विवाह करके अगर तुम बुरे काम मे पड गये तो समझो कि चतुष्पद बन हो। अगर विवाह को भी तुमने धर्म–साधना का निमित्त बना लिया है तो निस्सदेह तुम चतुर्भज – जो कि ईश्वर का रूप माना जाता है बने हो। इस बात के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य चतुष्पद न बनकर चतुर्भुज – ईश्वर रूप बने और अन्तत उसमे एव ईश्वर मे किंचित् भी भेद न रह सके।

स्त्री और पुरुष के स्वभाव मे जहा समता नही होती वहा शातिपूर्वक जीवन–व्यवहार नही चल सकता। विवाह का उत्तरदायित्व अगर माता–पिता अपना समझते हो तो प्रतिकूल स्वभाव वाले पुत्र–पुत्री का विवाह उन्हे नहीं करना चाहिए। लोभ के वश होकर अपनी सन्तान का विक्रय करके उनका जीवन दु खमय बनाना माता–पिता के लिए घोर कलक की बात है।

विवाह मे जहा धन को प्रधानता होगी वहा अनमेल विवाह हो, यह स्वाभाविक है। अनमेल विवाह करके दाम्पत्य जीवन मे सुख–शाति की आशा करना ऐसा ही है जैसे नीम बोकर आम के फल की आशा करना। ऐसे जीवन मे प्रेम कहा? प्रेम को तो वहा पहले ही से आग लगा दी जाती है।

पुरुष मनचाहा व्यवहार करे, स्त्रियो पर अत्याचार करे, चाहे जितनी बार विवाह करने का अधिकार भोगे यह सब विवाह–प्रथा से विपरीत प्रवृत्तिया है। ऐसे कामो से विवाह की पवित्र प्रथा कलुषित हो गई है। विवाह का आदर्श भी कलुषित हो गया है। विवाह का वास्तविक आदर्श स्थापित करने के लिए पुरुषो को सयमशील होना चाहिए।

प्राचीन काल मे विवाह के सबध मे कन्या की भी सलाह ली जाती थी और अपने लिए वर खोजने की उसे स्वतन्त्रता प्राप्त थी। माता–पिता इस उद्देश्य से स्वयवर की रचना करते थे। अगर कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती थी तो भी उसे अनुमति दी जाती थी। भगवान ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनो कन्याए विवाह के योग्य हुई। भगवान उनके विवाह–सबध का विचार करने लगे। दोनो कन्याओ ने भगवान का विचार जाना तो कहा – पिताजी, आप हमारी चिन्ता न कीजिए। आपकी पुत्री मिटकर दूसरे की पत्नी बनना हमसे न हो सकेगा। अन्तत दोनो कन्याए आजीवन ब्रह्मचारिणी रहीं।

हा, विवाह न करके अनीति की राह पर चलना बुरा है पर ब्रह्मचर्य पालन करना बुरा नहीं है। ब्रह्मचारिणी रह कर कुमारिकाए जनसमाज की अधिक से–अधिक और अच्छी–से–अच्छी सेवा कर सकती हैं।

बलात् ब्रह्मचर्य और बलात् विवाह, दोनो बाते अनुचित हैं। दोनो स्वेच्छा और स्वसामर्थ्य पर निर्भर होनी चाहिए।

आजकल धन ओर आभूषणो के साथ विवाह किया जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास को देखो तो पता चलेगा कि सीता, द्रौपदी का स्वयवर हुआ था। उन्होने अपने लिए आप ही वर पसद किया था। भगवान नेमिनाथ तीन सो वर्ष की उम्र तक कुमार रहे। क्या उन्हे कन्या नही मिलती थी? पर उनकी स्वीकृति के बिना विवाह केसे हो सकता था? इसी कारण उनका विवाह नही हुआ। आजकल विवाह के सबध मे कोन अपनी सतान की सलाह लेता है।

## पाणिग्रहण का प्रधान उद्देश्य

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिए किया हे। इसी प्रकार स्त्री ने भी आपका। जो नर या नारी इस उद्देश्य को भूलकर खान–पान ओर भोग–विलास मे ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं वे धर्म के पति–पत्नी नही वरन् पाप के पति–पत्नी हैं।

## दाम्पत्य

आज राग के वश होकर पति–पत्नी न जाने केसी–केसी अनीति का पोषण कर रहे हैं पर प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पति–पत्नी अलग–अलग कमरो मे सोते थे एक ही जगह नहीं सोते थे। पर आज की स्थिति कितनी दयनीय है। आज अलग–अलग कमरो मे सोना तो दूर रहा अलग–अलग विस्तर पर भी बहुत कम पति–पत्नी सोते

होगे। इस कारण विषय-वासना को कितना वेग मिलता है, यह सक्षेप मे नही बताया जा सकता। अग्नि पर घी डालने से वह बिना पिघले नही रहता। एक ही शैया पर शयन करने से अनेक प्रकार की बुराइया उत्पन्न होती हैं। वे बुराइया इतनी घातक होती हैं कि उनसे न केवल धार्मिक जीवन निर्मान्य बनता है वरन् व्यावहारिक जीवन भी निकम्मा बन जाता है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है, पर की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नही होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते है, परन्तु जो कर्तव्य स्त्री का माना जाता है क्या वही पुरुष का भी समझा जाता है?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुष को पिता एव भाई के समान मानती है उसी प्रकार सदाचारशील पुरुष वही है जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखते है। पर-ती लखि जे धरती निरखे, धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं नर ते।

पति-पत्नी सबध की विडम्बना देखकर किसका हृदय आहत नही होगा? जिन्होने पति और पत्नी बनने का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने सिर लिया है वे भी पति-पत्नी के कर्तव्य को न समझे, यह कितनी खेद की बात है? पति का कर्तव्य पत्नी को स्वादिष्ट भोजन देना, रग-बिरगे कपडे देकर तितली के समान बना देना या मूल्यवान आभूषणो से गुडिया के समान सजा देना नहीं है। इसी प्रकार पत्नी का कर्तव्य पति को सुस्वादु भोजन बनाकर परोस देने मे समाप्त नही होता। वासना की पूर्ति का साधन बनना भी पत्नी का कर्तव्य नही है। ऐसे कार्यों के लिए ही दाम्पत्य का सबध नही है। दम्पती का सबध एक-दूसरे को सहायता देकर आत्मकल्याण की साधना मे समर्थ बनाने के लिए है। जहा एक उद्देश्य की पूर्ति होती है वही सात्विक दाम्पत्य-सबध समझा जा सकता है।

## विधवाओ का कर्तव्य

विधवा बहिनो से मेरा यही कहना है कि अब परमेश्वर से नाता जोडो। धर्म को अपना साथी बनाओ। सयम से जीवन व्यतीत करो। ससार के राग-रगो को और आभूषणो को अपने धर्मपालन मे विघ्नकारी समझकर उनका त्याग करो। इसी मे आपकी प्रतिष्ठा है। आप त्यागशील देविया हैं। आपको गृहस्थी के ऐसे प्रपचो से दूर रहना चाहिए जिनसे आपके धर्मपालन मे बाधा पहुचती है।

## बाल–विवाह

विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शक्ति के लिए मगल वाद्य बजवाये जाते हैं। शक्ति के लिए ज्योतिषी से ग्रहादिक का सुयोग पूछा जाता है। शक्ति के लिए सुहागिनो का आशिष लिया जाता है। परन्तु जहा अशक्ति के लिए ये सब काम किये जाते हो वहा के लोगो से क्या कहा जाय? जो अशक्ति के स्वागत–सत्कार के लिये ये सब समारोह करता हो उस मूर्ख को किस पदवी से अलकृत करना चाहिए।

बाल–विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना ही है। इससे शक्ति का नाश होता है। अतएव, चाहे जेन श्रावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा ओर कोई हो, सबका कर्तव्य है कि अपनी सतानो के हित के लिए सतान की रक्षा करने के लिए इस घातक प्रथा को त्याग दे। इसका मूलोच्छेदन करके सतान का और सतान के द्वारा समाज एव राष्ट्र का मगलसाधन करे।

आप मगल के लिए बाजे बजवाते हैं मगल के लिए सुहागिने आशिष देती हैं। मगल के लिए ज्योतिर्विद से शुभ मुहुर्त निकलवाते हैं पर यह स्मरण रखिए कि ये सब मगल जब अमगल के लिए किये जाते हैं तब ये किसी काम मे नही आते। इन सब मगलो से बाल–विवाह के द्वारा होने वाला अमगल दूर नही हो सकता। छोटी – कच्ची उम्र मे बालक–बालिका का विवाह करना अमगल है। ऐसा विवाह भविष्य मे हाहाकार मचाने वाला है। ऐसा विवाह त्राहि–त्राहि की आवाज से आकाश गुञ्जाने वाला है। ऐसा विवाह देश मे दुख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवनी–शक्ति का ह्रास हो रहा है। वह शरीरिक क्षमता की न्यूनता उत्पन्न कर रहा है। विविध प्रकार की आधि–व्याधियो को जन्म दे रहा है। अतएव अव सावधान हो जाओ। अगर ससार की भलाई करने योग्य उदारता आपके दिल मे नही आई हो तो कम से कम अपनी सन्तान का अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को घोर अधकार से आवत मत बनाओ। जिसे तुमने जीवन दिया हे उसीके जीवन का सत्यानाश मत करो। अपनी सन्तान की रक्षा करो।

यह वालक दुनिया के रक्षक वनने वाले हें इन पर दाम्पत्य का पहाड मत पटको। बेचारे पिस जाएगे।

वालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार हे। इस उपहार को लापरवाही से मत रोंदो।

मित्रो! किसी रथ म दो छाट–छाटे वछडा का जात दिया जाय और उस रथ पर 10–12 स्थूलकाय आदमी वेठ जाए ता जातन वाल को आप दयावान कहगे या निदय? निर्दय।

तब छोटे–छोटे बच्चो को गृहस्थी–रूपी गाडी मे जोतकर उन पर ससार का बोझ लादने वालो को आप निर्दय न कहेगे?

भारतीय शास्त्र छोटी उम्र मे बालको के विवाह करने का निषेध करता है। बालक की उम्र बीस वर्ष और बालिका की उम्र सोलह वर्ष निर्धारित की गई है। इतने समय तक बालक–बालिका सज्ञा रहती है। अगर आप लोगो को बहुत कठिन जान पडे तो सोलह वर्ष से पहले बालक और तेरह वर्ष से पहले बालिका का विवाह कदापि न होना चाहिए। जिस राज्य मे योग्य बालक–बालिका का विवाह होता है उसी राज्य के राजा और मत्री प्रशसा के योग्य है। जहा प्रजा इसके विपरीत आचरण करती हो वहा के वीर राजा और प्रजावत्सल मन्त्री का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने राज्य की जड को खोखला बनाने वाले आचरणो पर तीव्र प्रतिबन्ध लगा दे।

बाल–विवाह की भयानक प्रथा का अगर जनता स्वयमेव त्याग नही करती तब उसका एक ही उपाय रह जाता है और वह यह कि राज्य अपनी सत्ता से कानून का निर्माण करे और दुराग्रहशील व्यक्तियो के दुराग्रह को छुडावे। मनुष्य की आयु का ह्रास करने मे बाल–विवाह भी एक प्रधान कारण है। अमेरिका जर्मनी और जापान आदि देशो मे 125 वर्ष की आयु के हट्टे–कट्टे तन्दुरुस्त पुरुष मिल सकते हैं, वहा भारतवर्ष की औसत आयु पच्चीस वर्ष की भी नही है। भारतवर्ष का यह कैसा अभाग्य है?

देश की इस दुर्दशा मे भी भारत के साठ–साठ वर्ष के बूढे विवाह करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढो की इस वासना ने देश को उजाड डाला है। आज विधवाओ की सख्या कितनी बढ गई और बढती जाती है, यह किसे नही मालूम? आप थोकडो पर थोकडे गिन लेते हो पर कभी इन विधवाओ की भी गिनती आपने की है? कभी आपने यह चिन्ता की है कि इन विधवा बहिनो का निर्वाह किस प्रकार होता है?

## सौन्दर्यविषयक भ्रान्त धारणा

लोगो ने केवल पुद्गलो मे सौन्दर्य की कल्पना कर रखी है और धारणा यह बन गई है कि सुन्दरता केवल तेल साबुन, उज्ज्वल वस्त्रो एव अलकारो मे है। परन्तु यह धारणा भ्रान्त है। तेल साबुन और गहने–कपडे कुरूपता के आवरण हैं। कुरूपता को छिपाने के लिये इन सब चीजो का उपयोग किया है और अपने–आप को सुन्दर प्रकट करने की चेष्टा की जाती है। जो स्वय लाल है उस पर लाल रग चढाने की क्या आवश्यकता है? जो स्वय सुन्दर है उस पर अलकारो का बोझ लादने की क्या जरूरत है?

शास्त्रविरुद्ध आहार–विहार करके ओर जिह्वालोलुपता के वशीभूत वनकर लोग पहले तो अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश करते हैं, वीर्यरक्षा करके शरीर को तेजस्वी वनाने का खयाल नही करते ओर जब शरीर दुर्बल तथा चेहरा निष्प्रभ बन जाता हे तो उसके आच्छादन के लिए तेल–साबुन आदि का प्रयोग करते हैं। परन्तु इस प्रकार के आचरण से वास्तविक सोन्दर्य की वृद्धि नही हो सकती।

जिसके चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज अठखेलिया करता है उसे पाउडर लगाने की आवश्यकता नहीं होती। जिसके शरीर के अगप्रत्यग से आत्म–तेज फूट पडता हो, उसे अलकारो की अपेक्षा नहीं रहती। सच पूछो तो सुन्दरता–वर्धन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले ऊपरी पदार्थ आन्तरिक तेज की दरिद्रता को सूचित करते हैं और सौन्दर्य विषयक सम्यग्ज्ञान के अभाव के परिचायक हैं।

## मर्यादित ब्रह्मचर्य

वीर्य का अपमान न करने से मेरा आशय यह नही कि आप विवाह न करे। मैं गृहस्थधर्म का निषेध नही करता। गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए। वीर्य का अपमान करने का अर्थ है – गृहस्थ धर्म की मर्यादा का उल्लघन करके पर–स्त्री के मोह मे पडना वेश्यागामी होना अथवा अप्राकृतिक कुचेष्टाए करके वीर्य का नाश करना। पितामह भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था। आप उनका अनुकरण करके जीवन–पर्यन्त ब्रह्मचर्य पाले तो खुशी की बात है। अगर आप से यह नही हो सकता तो विधिपूर्वक लग्न कर सकने की मनाही नही है। पर विवाहिता पत्नी के साथ भी सतानोत्पत्ति के सिवाय ऋतुदान के अतिरिक्त वीर्य का नाश नही करना चाहिए। स्त्रियो को भी यह चाहिए कि वे अपने मोहक हाव–भाव से पति को विलासी बनाने का प्रयत्न न करे। जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा क सिवाय केवल विलास के लिये अपने पति को विलास मे फसाती हे वह स्त्री नही पिशाचिनी हे। वह अपने पति के जीवन को चूसने वाली हे।

आप परस्त्री–सेवन का त्याग कर यह किसी पर एहसान नही है। यह तो अपने–आप के लिए लाभदायक हे कल्याणकारक हे। भारतवर्ष का यह दुर्भाग्य हे कि आज भारत की सन्तान को वीर्यरक्षा का महत्त्व समझाना पडता हे।

ऐ भीष्म की सन्ताना! भीष्म न आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करक दुनिया के कानो मे ब्रह्मचर्य का पावन मत्र फूका था। आज उन्ही की सन्तान कहलाते हुए उन्ही के मन्त्र का क्या भूल रह हो?

## परस्त्रीगमन

परस्त्रीगामी पुरुष नीच से नीच हैं और देश मे पाप का खप्पर भरने वालो मे अगुवा हैं। ऐसे दुष्ट लोग अपना ही नाश नहीं करते, वरन् दूसरो का भी सत्यानाश करते हैं। इन हत्यारो की रोमाचकारिणी करतूतो को सुनकर हृदय थर्रा उठता है। यही रोग के कीटाणु हैं।

## स्वस्त्री–सतोष

जो लोग परस्त्रीगमन का त्याग कर देते हैं वे भी स्वस्त्री के विषय मे अपने–आप को एकदम निरकुश समझते हैं। जरा मेरी बात पर ध्यान दीजिए। जो पराये घर की जूठन त्यागकर अपने घर मर्यादा से अधिक भोजन करता है उसे क्या अजीर्ण नही होता? क्या वह अजीर्ण से इसलिए बच जायेगा कि उसने घर का ही भोजन किया है? नही भाइयो, चाहे पराये घर की जूठन आपने त्याग दी है, फिर भी यदि अपने घर पर खाने की मर्यादा नहीं रखोगे तो शरीर का शीघ्र नष्ट हो जाना नही रुकेगा।

श्रावक के लिए परस्त्री–त्याग जैसे आवश्यक है उसी प्रकार स्पस्त्री–सतोष भी आवश्यक है।

विवाह के प्रकरण मे शास्त्र मे सरिसवय पाठ आता है। इसका तात्पर्य है सदृश वयवाले अर्थात वर–वधू की उम्र विवाह के समय योग्य होनी चाहिए।

विवाह के पश्चात् जो स्त्री धम्मसहाया अर्थात् गृहस्थधर्म के पालन मे सहायक मानी जाती थी आज वही धर्मपत्नी भोग की सामग्री समझी जाती है। पुरुषो के लिए यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि वे तीसो दिन स्त्री के साथ नीच आचरण करते हैं। जो वस्तु सजीवनी जडी से भी अधिक मूल्यवान् है उसे इस प्रकार नष्ट करना मूर्खता की पराकाष्ठा है। क्या अमृत से पैर धोने वाला बुद्धिमान कहला सकता है? जिस चीज से तीर्थंकरो के पावन शरीर का निर्माण हुआ जिससे बडे–बडे राजा–महाराजा बने, उस चीज को पानी की तरह वृथा बहा देना मूर्खता के अतिरिक्त क्या है?

## वीर्य–रक्षा का सुफल

जो वीर्य रूपी राजा को अपने काबू मे कर लेता है वह सारे ससार पर अपना दावा रख सकता है। उसके मुखमण्डल पर विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रो से अद्भुत ज्योति टपकती है। उसमे एक प्रकार की अनोखी क्षमता होती है। वह प्रसन्न निरोग और प्रमोदमय जीवन का धनी होता है। उसके इस धन के सामने चादी–सोने के टुकडे किसी गिनती मे नही हैं।

## वीर्य की रक्षा

जिस वीर्य से तीर्थंकर और अवतार माने जाने वाले महापुरुष उत्पन्न होते हैं, उसे अनावश्यक व्यय करना उचित नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले प्रशसा के पात्र हैं, पर जो अनावश्यक वीर्य नष्ट नही करते और नीति के इस अग का पालन करते हैं वे भी कम प्रशसा के पात्र नही हैं।

दाम्पत्य जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त जो पुरुष अनावश्यक, असमय मे अपना वीर्य नष्ट करता है वह अपने–आप को धधकती आग मे होमता है।

# अपरिग्रह

दु ख का मूल कारण तृष्णा है। चीटी से लगाकर चक्रवर्ती पर्यन्त सभी जीव तृष्णा के पीछे–पीछे दौड लगा रहे हैं। खेद की बात यह है कि उस दौड का कही अन्त नहीं है, कहीं विराम नही है, तृष्णा की मजिल कभी तय हो नही पाती। उसका तय होना सम्भव भी नहीं है, क्योकि लक्ष्य स्थिर नहीं है। पहले निश्चित किये हुये लक्ष्य पर पहुचने को हुए कि लक्ष्य बदल कर और आगे बढ जाता है। इस प्रकार ससार मे दौड–धूप मची रहती है। मनुष्य पहले विवाह करके सुख की आकाक्षा करता है – विवाह कर लेना उसका लक्ष्य होता है। परन्तु विवाह होते ही सन्तान की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। कदाचित् सन्तान उत्पन्न हो गई तब भी तृष्णा का अन्त कहां? वह और आगे बढती है – सन्तान के विवाह की इच्छा पैदा करती है। इसके बाद मनुष्य को पौत्र चाहिए प्रपौत्र चाहिए और न जाने क्या–क्या चाहिए? इस 'चाहिए' के चगुल मे फसकर मनुष्य बेतहाशा भाग–दौड लगा रहा है। कभी किसी क्षण शाति नही सन्तोष नहीं और निराकुलता नही। भला इस दौड–धूप मे सुख कैसे मिल सकता है? यह ससार की व्याकुलता का कारण है। इसी तृष्णा से दु ख शोक और सताप की उत्पत्ति होती है।

ज्ञानीजन तृष्णा के पीछे नही दौडते। उन्होने समझ लिया है कि अगर कोई अपनी परछाई पकड सकता है तो तृष्णा की पूर्ति कर सकता है। मगर अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौडे वह आगे–आगे दौडती रहेगी पकड मे नही आवेगी। इसी प्रकार तृष्णा की पूर्ति के लिए कोई कितना ही उपाय करे मगर वह पूरी नही होगी। ज्यो–ज्यो परछाई के पीछे दौडने का प्रयत्न किया जाता है त्यो–त्यो वह आगे–आगे बढती जाती है। मगर मनुष्य जब उससे विमुख हो जाता है तब वह लौटकर उसका पीछा करने लगती है। इस प्रकार परछाई के पीछे दोडकर अपनी शक्ति का नाश करना व्यर्थ है आर तृष्णा की पूर्ति करने के लिए मुसीबत उठाना भी वृथा है।

ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि मुझे जो– कुछ प्राप्त है वह भी मेरा नही तो दूसरी वस्तु की आकाक्षा क्यो करू? ज्ञानवान पुरुष अज्ञानियो की तरह चिन्ता मे घुल–घुल नही मरते। ज्ञानी जानते हैं कि मेरा विवाह हुआ है, पर मेरी स्त्री मुझसे भिन्न रही है, मैं इसके नष्ट होने पर चिन्ता नही करता ओर प्राप्त होने पर खुशी भी नही मानता। ज्ञानी अपने शरीर पर भी शासन कर सकता है।

## माया का मालिक और गुलाम

माया का मालिक होना और बात है ओर गुलाम होना और बात है। माया का गुलाम माया के लिए झूठ बोल सकता है मगर माया का मालिक ऐसा नही करेगा। अगर न्याय–नीति के अनुसार माया रहे तो वह उसे रखेगा अगर वह अन्याय के साथ रहना चाहेगी तो उसे निकाल बाहर करेगा। यही बात अन्य सासारिक सुख–सामग्री के सबध मे समझनी चाहिए।

## मोह–ममता

सासारिक जड पदार्थों का ध्यान करते–करते यह चैतन्य आत्मा भी जड–सा बन गया हे। यद्यपि आत्मा और ससार के जड पदार्थ भिन्न–भिन्न हैं, लेकिन उन जड पदार्थों से आत्मा का ऐसा मोहाकर्षण हो गया है कि आत्मा अपने–आप को उनसे अभिन्न समझने लगा है। विचार कर देखो कि रुपया क्या है ओर आत्मा क्या है? रुपया जड है। वह कट सकता हे घिस सकता है नष्ट हो सकता है ओर एक के पास से दूसरे के पास जा सकता हे। आत्मा चैतन्य है। आत्मा कट नही सकता घिस नही सकता ओर कभी नष्ट नही हो सकता। फिर भी लोग सिक्के से प्रेम करते हे उसे अपनाते हैं ओर उसके बिना अपने जीवन को निस्सार समझते हैं।

आखिर लोग सिक्के को क्यो इतना चाहते हैं? उससे इतना प्रेम क्या करते हे? उसके लिए अपना जीवन भी विपदा मे क्यो डाल देते हैं? उसके उपार्जन के लिये अधर्म ओर अन्याय करते भी क्यो नही झिझकते? हे रुपेया तुममे ऐसा कोनसा बडा आकर्षण हे? तूने आख वाला को भी अन्धा केसा बना दिया है? बडे–बडे विद्वान ओर विद्यावान भी तरे आग नतमस्तक क्या हो जाते हैं? तूने जगत् पर क्या जादू चलाया हे?

वास्तव म सिक्क क प्रति जनता के मोह का प्रधान कारण है आत्मा के द्वारा जड का ध्यान करना। मोही आत्मा निरन्तर जड पदार्थों का ध्या[illegible] किया करता हे अतएव वह जडवत वन गया हे। इसी कारण ज[illegible] का त्याग [illegible] म आत्मा अत्यन्त असाता का अनुभव करता है। यह सब जड क ध्या[illegible]

प्रताप है। जड का ध्यान आत्मा मे आर्ति उत्पन्न करता है। अतएव वह ध्यान आर्तध्यान बन जाता है।

जड के ध्यान से आत्मा जडवत् बन जाता है तब भी और समस्त शस्त्र–परिग्रह की निन्दा करते हैं फिर भी जड परिग्रह से आत्मा का इतना प्रेम क्यो है? इसका कारण यह है कि आत्मा मे अभी आर्तध्यान बना है, इसी कारण वह जड के प्रति इतना अनुरागी है। लोग समझते हैं – बिना सिक्के के रोटी कपडे का काम कैसे चलेगा? इस रोटी–कपडे के आर्त्तध्यान से बचने के लिए सिक्के की शरण मे गये। लेकिन सिक्के की शरण मे जाकर भान भूल गये और दूसरे आर्तध्यान मे पड गये। यदि रोटी–कपडे के आर्तध्यान से बचने के लिए धर्म ध्यान की शरण ली जाय, सिक्के से प्रेम न किया जाय तो आत्मा एक आर्त्तध्यान से निकलकर दूसरे आर्त्तध्यान मे न फसे।

## प्राचीन और आधुनिक श्रीमन्त

पहले के श्रीमान और आधुनिक श्रीमान मे बहुत अन्तर पड गया है। पहले की श्रीमन्ताई कुछ और थी, और आज की श्रीमन्ताई कुछ निराले ही ढग की है। प्राचीन काल के श्रीमान अपने घर पर गाये–भैंसे पालते थे, वे स्वय इनका घी–दूध खाते थे और दूसरो को भी उससे लाभ पहुचता था। दूसरो को कदाचित दूध–घी नही मिलता तो भी छाछ तो चाहे जिसे मिल ही जाती थी। पर आज के श्रीमानो के घर चाय के प्याले सजे रहते हैं। इस अवस्था मे दूसरे लोग उनसे क्या लाभ उठा सकते है? चाय के प्याले दूसरो को लाभ नही पहुचाते न सही पर वे स्वय पीने वालो को भी लाभ नहीं पहुचाते, उल्टे शारीरिक हानि उत्पन्न करते हैं। इसका परिणाम होता है डाक्टर की शरण लेना। आज के श्रीमान दूसरो की सेवा करना भूल गये हैं। वे लोग बगले मे रहने और मोटरो पर सवार होकर चलने–फिरने मे ही अपनी श्रीमन्ताई समझते हैं। गाये–भैंसे पालने से मच्छर बढते हैं अतएव बाजारू दूध खरीद लेने मे ही अपना बडप्पन मानते है। पर यह उन्हे नही सूझता कि अगर गाय–भैंस पालने से ही मच्छर होते हैं तो उनके बगले मे गाय न होने पर भी मच्छर कहा से आ पहुचते है। अगर तुम सच्चे श्रीमन्त हो तो अपनी श्रीमन्ताई का दूसरो की सेवा करने मे उपयोग करो। यह नहीं हो सकता तो तुम्हारी श्रीमन्ताई घोडे की पूछ के समान किस मतलब की है? बडे–बडे शानदार बगले बनाने मे दो–चार कुत्ते पालने मे और मोटर खरीद कर उसे चारो ओर फिराकर लोगो पर धूल उडाने मे भले ही आज तुम्हे श्रीमन्ताई दीखती हो पर ज्ञानियो की दृष्टि मे वह सच्ची श्रीमन्ताई नही है। जो जन–समाज की अधिक से अधिक

सेवा करते हैं वे ही सच्चे श्रीमन्त हैं और उनकी सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिए हितकारक है।

यज्ञ—'इदम् न मम' अर्थात् यह मेरी वस्तु नहीं है, इस भाव से उस वस्तु पर से ममत्व हटा लेना और उस पर दूसरे का अधिकार कर देना यज्ञ का अर्थ है। जो अपने अधिकार की चीजो पर से अपना स्वत्व त्याग देता हे और दूसरे का अधिकार मान लेता हे वही सच्चा यज्ञ करने वाला है।

द्रव्य पर ममत्व न रखना और उसे अपना न समझना द्रव्ययज्ञ कहलाता है। ऐसा करने के लिए घर—गृहस्थी त्याग कर साधु बन जाना ही आवश्यक नही। द्रव्य पर अपना अधिकार न समझे, जगत् की वस्तु जगत् के लिए है, यह समझकर उस द्रव्य का अपने—आप को ट्रस्टी मात्र समझे और सार्वजनिक हित मे द्रव्य का उपयोग करे यह आवश्यक हे। इसी को द्रव्ययज्ञ कहते हैं।

जैसे द्रव्य का यज्ञ होता है वैसे ही दान का भी यज्ञ होता है। दान देकर उससे मान न कमाना, निष्काम भाव से दान देना दानयज्ञ हे। जो लोग दान द्वारा मान की कामना करते हैं वे दान नहीं करते वरन् दान का सौदा करते हैं। किसी वस्तु को देकर उसके बदले मे दूसरी वस्तु की अभिलाषा करते हैं। ऐसे लोगो को कीर्ति या मान कितना मिलता है? यह तो आप भी जानते हैं, पर उन्हे दान का वास्तविक फल नही मिलता। दान के असली फल को प्राप्त करने के लिए फल की आकाक्षा का त्याग करना चाहिए। यही सच्चा दान है और यही प्रशस्त दान हे।

## यज्ञ क्या?

यज्ञ वास्तव मे क्या हे? यज्ञ किसे कहना चाहिए? कोई—कोई अग्नि मे घी होमने को यज्ञ कहते हैं। किसी ने पशुओ की बलि चढाना यज्ञ समझ लिया हे। और कोई तो नरबलि को भी यज्ञ मानते हैं। तात्पर्य यह हे कि लोगो ने यज्ञ का मूलभूत वास्तविक अर्थ बदल कर उसे हिसा मे परिणत कर दिया हे। इसी कारण यज्ञ के नाम पर घोर हत्या हुई हे और आज भी अनेक देवी—देवताओं को उद्देश्य करके लाखो पशुओ का निर्दयता के साथ वध किया जाता हे। प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता हे कि यज्ञ से धरती पर रक्त की नदिया बहाई गई थी।

लोकमान्य तिलक ने यज्ञ की घोर प्रथा का वर्णन करते हुए लिखा हे कि चम्बल नदी का वास्तविक नाम चर्मवती हे। इस नदी का चर्मवती नाम पडने का कारण भी उन्होने बताया हे – एक राजा ने यज्ञ के लिए इतने

पशुओ की बलि चढाई कि इस नदी के किनारे उन पशुओ के चर्म का ढेर लग गया और उससे रक्त की जो धारा बही उससे नदी का पानी रक्त–वर्ण हो गया। तभी से इस नदी का नाम चर्मवती पडा जिसे आजकल की बोली मे चम्बल कहते है।

इस प्रकार यज्ञ का अर्थ हिसा मे बदल गया परन्तु उसका वास्तविक अर्थ हिसापरक नहीं है। यज्ञ का वास्तविक अर्थ समझाने का बीडा जैन शास्त्रो ने तो उठाया ही है, परन्तु गीता आदि वैदिक सप्रदाय के अनेक ग्रथ भी हत्या वाले यज्ञ को यज्ञ नही कहते। गीता मे कहा है–

**द्रव्य यज्ञास्तपोयज्ञा, योग यज्ञास्तथाऽपरे।**
**स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च, यतय सशितव्रता ।।**

—अ॰ 4, श्लो॰ 28

अर्थात् द्रव्य, तप, योग, स्वाध्याय और ज्ञान से यज्ञ होता है। परोपकार के लिए द्रव्य आदि को लगाना, सात्त्विक रूप से दान मे लगे रहना द्रव्ययज्ञ है। सात्त्विक तप करना तपयज्ञ है। शास्त्रो का पाठन–पठन स्वाध्याय यज्ञ है और आध्यात्मिक विचार मे मग्न रहना ज्ञानयज्ञ है।*

इन पाच प्रकार के गीता–वर्णित यज्ञो मे हत्या को कहा अवकाश है? यहा तो विशुद्ध आचार का ही प्रतिपादन – किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र के बारहवे अध्ययन मे हरिकेशी मुनि ने भी ब्राह्मणो को यज्ञ का अर्थ समझाया है।

**कह चरे भिक्खु वय जयामो, पावाइ कम्माइ पुणोल्लयामो।**
**अक्खाहि ण सजय! जक्खु पूइया, कह सुइट्ठ कुसला वयति।।**

उत्त॰ 12/40

जब मुनिराज हरिकेशी ने ब्राह्मणो के हिसात्मक यज्ञ को पापरूप बतलाया तब उन्होने मुनि से पूछा – हे भिक्षु! हम लोगो को यज्ञ करना चाहिए या नही? अगर यज्ञ करे तो कौनसा यज्ञ करे, जिससे पाप का नाश हो सके? हे सयत! कृपा करके हमे समझाइये कि ज्ञानी पुरुषो ने किसे सुयज्ञ बताया है?

ब्राह्मणो के प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि ने कहा है–

**छज्जीवकाये असमारभन्ता मोस अदत्त च असेवमाणा।**
**परिग्गह इत्थीओ माण माय एव परिण्णाय चरन्ति दन्ता।।**

उत्त॰ 12/41

*देखो गीता का व्यवहारदर्शन। पृ. 201

**सुसबुडा पचहि सवरेहि, इह जीविय अणवकखमाणा।**
**वोसड्डकाया सुचइत्तदेहा, महाजय जयइ जन्नसिट्ठ।।**

उत्त. 12/42

अर्थात् षट्जीवनिकाय का आरम्भ न करने वाले, मृषावाद और अदत्तादान का सेवन न करने वाले परिग्रह स्त्री, मान, माया आदि का त्याग करने वाले पाच प्रकार के सवर से युक्त, जीवन के प्रति निष्काम शरीर की ममता से रहित पुरुषश्रेष्ठ यज्ञ करते हैं अर्थात् उल्लिखित गुणो को अपने जीवन मे व्यवहार्य बनाना ही श्रेष्ठ यज्ञ है। इसके बाद ब्राह्मणो के एक और प्रश्न के उत्तर मे मुनि ने कहा है--

**तवो जोई जीवो जोइठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग।**
**कम्मेहा सजमजोगसती, होम हुणामि इसिण पसत्थ।।**

उत्त. 12/44

अर्थात् तप अग्नि है। जीव अग्नि का स्थान है – होम कुण्ड है। योग चट्टुवा सामग्री लेकर होमने का उपकरण है। शरीर ईंधन हे। सयम ओर योग शातिपाठ है। हम इस प्रकार का अग्निहोत्र करते हैं। यही अग्निहोत्र ऋषियो द्वारा प्रशसित है।

## स्वत्व का त्याग

तुम समझते हो हमने तिजोरी मे धन को केद कर लिया है पर धन समझता है कि हमने इतने बडे धनी को अपना पहरेदार मुकर्रर कर लिया हे।

तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नही कर सकते पर धन तुम्हारे प्राणो का भी व्यय कर सकता हे।

तुम धन को चाहे जितना प्रेम करो प्राणो से भी अधिक उसकी रक्षा करो उसके लिए भले ही जान दे दो लेकिन धन अन्त मे तुम्हारा नही रहगा नही रहेगा। वह दूसरो का बन जायेगा।

तुम धन का त्याग न करोगे तो धन तुम्हारा त्याग कर देगा। यह सत्य इतना स्पष्ट ओर ध्रुव हे कि इसमे लेशमात्र भी सन्देह नही किया जा सकता। ऐसी स्थिति म विवेकवान् हाते हुए भी इतने पामर क्या बने जा रहे हो? तुम्ही त्याग की पहल क्यो नही करते? क्या सत्व क धाग का ता फिर फेक नही देते?

## धन के सरक्षक मात्र बनो

मित्रो! अगर आप लाग भी अपनी सम्पति स पाप न करके उसके ट्रष्टी–भर बन रहो तो क्या उस सम्पति का कुछ दाग लग जायगा? हा उसे

अवस्था मे अपने भोग–विलास के लिए उसका दुरुपयोग न कर सकोगे। लेकिन बहुत लोगो की तो ट्रस्टी बनने की भावना ही नही होती। क्या श्रावक की जिन्दगी ऐसी होती है कि वह धन के कीचड मे फसा रहे और उससे आत्मा को मलिन बना डाले? उसे परोपकार मे न लगावे? क्या श्रावक को धर्म पर विश्वास नही है? बैंक पर विश्वास करके उसमे लाखो रुपया जमा करा देने वालो को धर्म रूपी बैंक पर विश्वास नहीं है?

मैं आपका धन नहीं चाहता। मेरे पास जो–कुछ था उसका त्याग कर देना मैंने अपना सौभाग्य समझा है। उससे मुझे शाति और सुख मिला है। ऐसा करके मैंने निराकुलता का आनन्द अनुभव किया है। तुम्हे जो त्याग का उपदेश करता हू तो इसीलिए कि तुम भी सुख–शाति का इसी उपाय से लाभ कर सकोगे। सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य यही है कि वह अपनी सम्पत्ति परोपकार के लिए समझे और आप उससे अलहदा रहता हुआ अपने को उसका ट्रस्टी अनुभव करे।

मित्रो! आप लोगो के पास जो द्रव्य है उसे अगर परोपकार मे, सार्वजनिक हित मे और दीन–दुखियो को सहायता पहुचाने मे न लगाया तो याद रखना इसका ब्याज चुकाना भी तुम्हे कठिन हो जायगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बनकर आप फूले न समाते होगे कि चलो हमारा द्रव्य बढ गया है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश बढा है। जब आप बैंक से ऋण रूप मे रुपया लेते है तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है? उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक से प्राप्त द्रव्य को चुकाने की क्यो नही करते? समझ रखो, यह सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है। इसे परोपकार के अर्थ अर्पण कर दो। याद रखो कि यह जोखिम दूसरे की मेरे पास धरोहर है। अगर इसे अपने पास रख छोडूगा तो यह तो यही रह जायेगी लेकिन इसका बदला चुकाना मेरे लिए बहुत भारी पड जायेगा।

### साम्यवाद

ससार के सभी मनुष्य समान होकर रहे, इस प्रकार का साम्यवाद कभी समस्त ससार मे फैल सकता है लेकिन उस समानता मे जब तक बन्धुता न होगी तब तक उसकी नीव बालू पर खडी हुई ही समझना चाहिए। वायु के एक झकोरे से साम्यवाद की ही नीव हिल जायेगी और उसके आधार पर निर्मित की हुई इमारत धूल मे मिल जायेगी। साम्य के सिद्धान्त को अगर सजीव बनाया जा सकता है तो केवल उसमे बन्धुता की भावना का सम्मिश्रण करके ही। यही नही बन्धुता–हीन साम्यवाद विनाश का कारण बन जाता है। इसके लिए रूस का उदाहरण मौजूद है। रूस ने अपने साम्यवाद के लिए

हजारो मनुष्यो की हत्या की है। जो भी देश रूस की तरह कोरा साम्यवाद अपनाने जायेगा और बन्धुता के उससे पहले ही नहीं अपना लेगा, वह अशान्ति का बीजारोपण ही करेगा।

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने एक बार कहा था – ऐ धनिको! सावधान रहो। अपने धन मे से गरीबो को हिस्सा देकर यदि उन्हे शान्त न करोगे, उनका आदर न करोगे, उनकी सेवा न करोगे तो साम्यवाद फैले बिना न रहेगा। सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो जायेगी कि गरीब लोग धनवानो के गले काटेगे। उस समय हाय–हाय मच जायेगी।

## सचय वृत्ति

कनक और कामिनी की लोलुपता ने ससार को नरक बना डाला है। आजकल मुद्रादेवी ने सोने, चादी और ताबे आदि के सिक्को ने कितनी अशाति फेला रखी है! तुम लोग रात–दिन पैसे के लिए दौड–धूप करते रहते हो मगर पैसे का सग्रह करके भी सुख की सास नही ले सकते। पैसे के लिए आपस मे लडाई–झगडे होते हैं हजारो मनुष्यो का खून बहाया जाता है। इसका बाहरी कारण कुछ भी बताया जाय, पर असली कारण तो द्रव्य के सग्रह की भावना ही है। इतिहास स्पष्ट बतला रहा है कि जब से मानव–समाज मे सग्रहपरायणता जागी है तब से ससार की दयनीय दशा आरम्भ हुई हे।

मैं अपने बचपन की बात करता हू। उस समय लोग अन्न आदि कोई वस्तु देकर शाक–भाजी या ओर कोई आवश्यक वस्तु खरीदते थे। उस समय वस्तुओ का विनिमय होता था, वह वास्तविक विनिमय था। सिक्का तो तब भी था पर आज की भाति उसका अधिक प्रचलन नही था। इस कारण अधिक अशाति भी नही थी। सिक्के की वृद्धि से साथ अशाति की वृद्धि हुई है। सिक्का सग्रह करने की मनोवृत्ति ने अशाति का पोषण किया हे।

## धन

धन व्यावहारिक कार्यो का एक साधन हे। धन से व्यवहारोपयागी वस्तुए प्राप्त की जा सकती हैं। पर आज तो लागो ने इस साधन का साध्य समझ लिया हे ओर वे इसी की प्राप्ति म सारा जीवन व्यय कर रह हैं। तुम इस बात का विचार करा कि धन तुम्हार लिए हे या तुम धन क लिए हो? कहने को तो तुम कह दाग कि हम धन क लिए नही हैं। धन हमार लिए है। पर क्या व्यवहार म भी यही बात हे?

सर्वप्रथम तुम अपन का समझा। विचार करा कि तुम कौन हो? तत्पश्चात इस बात का साचा कि धन किसक लिए हे? तुम रक्त मास या

हड्डी नही हो। ये सब चीजे शरीर हैं और शरीर के साथ ही भस्म होने वाली हैं। अतएव धन रक्त–मास आदि के लिए नहीं, आत्मा के लिए है। इस बात को भलीभाति समझ कर आत्मा को धन का गुलाम मत बनाओ। जो सत्य को समझ लेगा वह धन का दास नही बनेगा, स्वामी बनेगा। वह धन को साध्य नहीं, साधन मात्र समझेगा। वह धन के लिए जीवन बर्बाद नही करेगा, किन्तु जीवन के उत्कर्षसाधन मे धन को भी निमित्त बनायेगा।

अगर तुम्हे प्रतीति है कि धन तुम्हारे लिए है, धन के लिए तुम नहीं हो तो धन के लिए कभी पाप तो नही करते?

असत्य भाषण करना, विश्वासघात करना, पिता–पुत्र के बीच क्लेश होना, ये सब किसलिए हैं? इन सब बुराइयो का मूल कौन है? धन के लिए ससार मे घोर क्लेश हो रहे हैं, पापाचरण हो रहे हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि लोगो ने धन को साधन नही, साध्य मान लिया है और वह आत्मा से भी अधिक आत्मीय बन गया है। लोगो के इस भ्रम के कारण ही ससार मे दु ख व्याप रहा है। धन को साधन मानकर लोकहित के कार्यो मे व्यय करना धन का सदुपयोग है।

धन के सद्व्यय के लिए हृदय मे उदारता चाहिये। जहा हृदय मे उदारता नही, वहा धन का सद्व्यय नही हो सकता। धन के प्रति हृदय मे ममता रहती है उसका त्याग करने मे ही आत्मा का कल्याण है।

**वित्तेण ताण न लभे पमत्तं।**

प्रमादी पुरुष धन से त्राण – रक्षण नही पा सकता। धन को मौत से नहीं बचा सकता। वह दु खो का सर्जन करता है।

धन को साधन मानकर उसके प्रति निर्मम बनना, उसे आत्मा को न गसने देना इतनी महत्त्व की बात है कि उसके बिना जीवन का अभ्युदय सिद्ध नही हो सकता।

**तृष्णा**

'यह मेरा है, वह तेरा है मुझे यह करना है, यह नहीं करना है' इस प्रकार की घटना ससार मे अनवरत रूप से दिन–रात चलती रहती है। जीवन छोटा है काम बहुत है। ऐसी अवस्था मे कोई भी व्यक्ति अपना काम पूरा नहीं कर सकता। किसी व्यक्ति ने अपनी इच्छानुसार ससार के सब काम कर लिए हो और वह कृतकृत्य हो गया हो ऐसा आज तक कभी हुआ नहीं, हो सकता भी नही। मैंने अमुक कार्य किया है और अमुक कार्य करूगा, इस प्रकार की लालसा जीव के साथ सदैव चिपटी रहती है। यह लालसा कभी पूरी हो ही

नही सकती। कठ के आभूषण तैयार हुए, न हुए कि हाथ के आभूषणो की चर्चा शुरू होती है। हाथ के आभूषण तैयार होते ही पैर के आभूषणो की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार लालसा का कही अन्त नहीं। चादी के बन गये तो सोने के आभूषणो की कमी रहती है। यदि भाग्यवश सोने के बन भी गये तो हीरा–माणिक के आभूषणो की इच्छा बलवती हो उठती है। इस प्रकार तृष्णा आकाश के समान असीम है।

**सम्पत्ति**

सम्पत्ति की प्राप्ति पुण्य से होती है, पर यह आवश्यक नहीं कि वह पुण्य को ही उत्पन्न करे। सम्पत्ति एक साधन है और अन्यान्य साधनो की भाति उसके सदुपयोग और दुरुपयोग पर ही उसकी पुण्यप्रदता या पापजनकता निर्भर है। सम्पत्तिमान चाहे तो सम्पत्ति से अक्षय पुण्य उपार्जन कर सकता है और घोरतर पाप भी सचय कर सकता है।

वह सम्पत्ति सफल है जो ससार के कल्याण का साधन बनती है। जो सम्पत्ति व्यक्तिगत विलास का कारण है, जिसका व्यय व्यक्ति अपने आमोद–प्रमोद के लिये ही करता है, वह पाप–सम्पत्ति है। ऐसी सम्पत्ति मनुष्य मे अभिमान आदि अनेक अवगुण उत्पन्न करके उसे नरक का अतिथि बनाती है।

**अपरिग्रह**

गेद–दडा के खेल मे गेद एक होती है, खेलने वाले बहुत होते हैं। जिसके पास गेद जाती है वह दूसरे के पास उसे धकेलता है। ऐसा करने से ही खेल का रग जमता है। एक ही व्यक्ति गेद को पकड कर बेठ जाय तो खेल का मजा ही नहीं आ सकता। इसके सिवाय क्या दूसरे खिलाडी उसे ऐसा करने देगे? नहीं वे उससे बलपूर्वक गेद छीन लेगे।

इसी प्रकार सम्पत्ति के सबध मे समझना चाहिए। तुम्हारे पास जा सम्पत्ति हे वह तुम कहा से लाये हो? वह आकाश से तुम्हारे आगन म नहीं टपक पडी हे। तुमने उसे यही से एकत्र किया हे फिर भी दु खी और निधा। की तरफ तुम्हारा ध्यान कभी जाता हे? अगर नही जाता ता यही कहा। चाहिए कि तुम अकेले ही गद पकड रखना चाहते हो। सम्पति की जा शक्ति तुम्हे प्राप्त हुई हे वह अगर दूसरा को दत रहाग ता वह उसी प्रकार लोट आवेगी जेस गद लोट आती हे। अगर तुम उस पकड कर दबा कर बेठ जाओगे तो उसी प्रकार छीन ली जायगी जेस दूसर खिलाडिया द्वारा गद छीन ली जाती हे। रूस म क्या हुआ था? लागा न सम्पति अपनी मान ली थी और

उसे दबाकर बैठ गये थे। गरीबो की तरफ उनका ध्यान नही था। जब लोग बहुत अधिक दुखी हो गये तो विद्रोह की चिनगारिया प्रज्वलित हो उठी। अन्त मे पूजीवाद का अन्त हुआ। इस इतिहास से शिक्षा ग्रहण करो। धर्म का भी यही आदेश है कि पूजी को पकडकर मत बैठे रहो। ऐसा करने से इस लोक मे भी दुख मिलेगा और परलोक मे भी।

## इच्छा का परिमाण

सब लोग अपनी इच्छाओ को परिमित कर ले, इच्छापरिमाण व्रत धारण कर ले तो ससार की बहुत–कुछ अशाति मिट सकती है। ससार की मौजूदा अशाति का प्रधान कारण इस व्रत का अभाव है। इस व्रत के अभाव के कारण ही साम्यवाद की उत्पत्ति हुई है। भारतवर्ष मे भी साम्यवाद की लहर आ रही है। धनिक पूजी दबाकर बैठ जाए और गरीब दुख पाए, ऐसी स्थिति मे धनिको के प्रति गरीबो को द्वेष होना स्वाभाविक है। गरीबो के दिलो मे उत्पन्न होने वाली इस भावना को कैसे रोका जा सकता है कि हम दाने–दाने को तरसते रहे हैं और ये पूजी दबाकर बैठे रहे। इन्हे ऐसा अधिकार-किसने दिया है कि ये लोग ठूस–ठूसकर खाए और न खा सके तो फेक दे। और हम भूख के मारे मरे। कोई हमारी खोज–खबर भी न ले। इसी प्रकार तुम्हारे पास अनावश्यक वस्त्र पडे पेटियो मे सड रहे हैं और दूसरे ठड के मारे ठिठुर रहे हैं। तुम उन्हे देना नही चाहते। तब उसके दिल मे क्या भावना उत्पन्न होगी? विद्वेष भावना से प्रेरित होकर ऐसे लोग लूटमार करने को तैयार हो जाए और समाज की दोषपूर्ण रचना मे आमूल–चूल परिवर्तन करने की माग करे तो क्या आश्चर्य की बात है?

कदाचित् तुम सोचते होगे कि ये असहाय निर्धन लोग तुम्हारा क्या बिगाड सकते हैं? पर यह तुम्हारी भूल है। कगालो की सख्या इतनी अधिक है कि उनकी उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नही। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास जो धन है वह गरीब से ही आया हैं – गरीबो के पसीने की ही कमाई है। अतएव तुम्हे सोचना चाहिए कि तुम्हारी शाति दीन–दुखियो की शाति पर ही निर्भर है। मत सोचो कि अधिकाश जनता का हक छीन कर कोई चिरकाल तक गुलछर्रे उडा सकता है।

वस्तु किसी प्रकार का भेदभाव नही करती। जो भोजन तुम्हारी भूख मिटाता है वही कगालो की भी भूख मिटाता है। पर भेदभाव तुम ही क्यो करते हो? पहले जमाने मे तो ऐसे लोग हो गये हैं जो स्वय भूखे रह कर दूसरो को भरपेट भोजन खिलाते थे। तुम उन जैसे नही बन सकते तो इतना तो कर

सकते हो कि जो चीज तुम्हारे पास फालतू है, अतिरिक्त है, उसे दबाकर मत बैठो। तृष्णा के वश होकर दूसरो के दु ख की उपेक्षा मत करो। तृष्णा की पूर्ति न कोई कर सका है, न हो ही सकती है, अतएव इच्छा का निरोध करके तृष्णा पर विजय प्राप्त करो।

## पदार्थों का उपयोग

तुम ससार के पदार्थों पर कितनी ही ममता रखो, पर ससार के पदार्थ अपना स्वभाव नही छोड सकते। अगर तुम ससार के पदार्थों को नही छोडना चाहोगे तो ससार के पदार्थ अन्त मे तुम्हे छोड कर चल देगे। जब यह स्थिति है तो तुम उन प्राप्त पदार्थों का सदुपयोग क्यो नहीं कर लेते? सदुपयोग करने से तुम्हे ही आनन्द लाभ होगा। ऐसा अवसर बार–बार नही मिलता। अतएव जो सामग्री तुम्हे प्राप्त है उसका सदुपयोग करके आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त बनाओ।

# धर्म चतुष्टय

## दान, शील, तप, भावना

हे दानी! तू दान के बदले कीर्ति और प्रतिष्ठा खरीदने का विचार मत कर। अगर तेरे अन्त करण मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है तो समझ ले कि तेरा दान, दान नहीं है, व्यापार है। इसलिए गुप्त रूप से दान दे। दाहिने हाथ से दिये दान का पता बाये हाथ को भी मत लगने दे।

दूसरो का सहायक बनने के लिए दान दिया जाता है, उनकी इज्जत–आबरू की चिता पर अपनी प्रतिष्ठा का स्तम्भ खडा करने के लिए नही, अपने–आप को दानी के रूप मे प्रसिद्ध करने के लिए जो दान दिया जाता है वह दान नहीं है। आजकल के दानी इस तथ्य की ओर कितना ध्यान देते हैं? सात्त्विक दान मे किसी प्रकार की स्पृहा को स्थान नहीं होता।

किसी वस्तु पर से अपनी सत्ता उठा लेने को ही दान कहते हैं। मान, प्रतिष्ठा या यश के लिए जो त्याग किया जाता है, वह दान नहीं है। वह तो एक प्रकार का व्यापार है, जिसमे कुछ धन आदि दिया जाता है और उससे मान–सम्मान आदि खरीदा जाता है। ऐसे दान से दान का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अहभाव या ममता का त्याग करना दान का उद्देश्य है। अगर कोई दान अहकार की वृद्धि के लिये होता है तो उससे दान का प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? दान से कीर्ति भले ही मिले, पर कीर्ति की कामना करके दान नहीं देना चाहिए। किसान धान्य की प्राप्ति के लिए खेती करता है, पर उसे भूसा तो मिल ही जाता है। अगर कोई किसान भूसे के लिए ही खेती करे तो उसे बुद्धिमान कौन समझेगा? इस प्रकार निष्काम भाव से दान देने से कीर्ति आदि भूसे के समान आनुषगिक फल मिल ही जाते हैं, पर इन्ही फलो की प्राप्ति के लिए दान देना विवेकशीलता नही है। इसी प्रकार दानीय व्यक्ति

को लघु और अपने–आप को गौरवशाली समझ कर भी दान नहीं देना चाहिए।

यह कभी नही भूलो कि दान देकर तुम दानीय व्यक्ति का जितना उपकार करते हो, उससे कहीं अधिक दानीय व्यक्ति तुम्हारा – दाता का – उपकार करता है। वह तुम्हे दान धर्म के पालन का सुअवसर देता है, तुम्हारे ममत्व को घटाने मे या हटाने मे निमित्त बनता है। अतएव वह तुमसे उपकृत है तो तुम भी उससे कम उपकृत नही हो। अगर दान देते समय अहकार का भाव आ गया तो तुम्हारा दान अपवित्र हो जायगा।

आत्मबल की प्राप्ति के लिए इसी प्रकार के निष्काम और निरहकार त्याग की आवश्यकता है। उसके बदले न स्वर्ग–सुख की अभिलाषा करो, न दानीय पुरुष की सेवाओ की आकाक्षा करो, न यश–कीर्ति खरीदो और न उसे अपने अहकार की खुराक बनाओ।

तुम्हारे पास धन नही है, तो चिन्ता करने की क्या बात है? धन से बढकर विद्या, बुद्धि, बल आदि अनेक वस्तुए हैं। तुम उनका दान करो। धन–दान से विद्यादान और बलदान क्या कम प्रशस्त हैं? नही। तुम्हारे पास जो कुछ अपना कहने को है, बस, उसी का उत्सर्ग कर दो।

गरीब अगर अपनी एक रोटी मे से एक छोटासा टुकडा भी दान कर देता है तो उसका दान धन्य है। श्रीमान् के लाखो–करोडो रुपयो की अपेक्षा उस गरीब की एक रोटी के एक टुकडे का दान अधिक महत्त्वशाली है। हे गरीब! तू क्यो चिन्ता करता है? जिसके शरीर पर अधिक कीचड लगा होगा वह उतना ही अधिक उसे छुडाने का प्रयत्न करेगा। तू भाग्यशाली है कि तेरे पैर मे कीचड अधिक नही लगा है। तू दूसरो से ईर्ष्या क्या करता है? उन्हे तुझ से ईर्ष्या करनी चाहिए। पर देख सावधान रहना अपने पेरा मे कीचड लगाने की भावना भी तेरे दिल म न होनी चाहिए। जिस दिन, जिस क्षण यह दुर्भावना पेदा होगी, उसी दिन, उसी क्षण, सोभाग्य पलट जाएगा। तरे शरीर पर अगर थोडासा मेल हे तो तू उसे छुडाता चल। उसे थोडा समझ कर सग्रह न किये रह।

कोई दीन–दुखिया जब किसी के द्वार पर भीख मागन आता है तब प्राय उसे डाट कर कहा जाता है – चल हट यहा स! यहा क्या तर बाप की धरोहर धरी ह? ऐसी कहन वाल लोगा से पवन भी कदाचित् यही कह द तो केसी बीते?

आध्यात्मिक विषय को जानने वाला पुरुष, पवन आदि पदार्थों के उपकार के भार से विनम्र होकर कहेगा कि मैं किस पर गर्व करू? गर्व करने योग्य मेरे पास क्या है? जीवन ही मेरा दूसरो की बदौलत टिका हुआ है तो गर्व की सामग्री मेरे पास क्या रह जाती है? वह जीवन को श्वास का ही खेल समझता है।

सम्यग्दृष्टि होते हुए भी कृपणता का त्याग न करना आश्चर्य की बात है। जो पुरुष पुद्‌गलो का स्वरूप जानता है, जो पुण्य और पाप का विवेक कर सकता है वह कृपण नही रह सकता। जो व्यक्ति पापकार्य का तो त्याग करता नही, उल्टा पुण्यकार्य का त्याग कर बैठता है, वह कैसा सम्यग्दृष्टि है। अतएव जाति को हानि पहुचाने वाले खान–पान मे और काम–काज मे अपनी शक्ति का दुर्व्यय न करते हुए, भगवान के मार्ग की प्रभावना करने वाले कार्यो मे अपनी शक्ति लगाओ। जिसमे जितनी शक्ति हो, वह सब परमात्मा के मार्ग को दिपाने मे लगानी चाहिए। शारीरिक, मानसिक, वाचिक या आर्थिक किसी भी प्रकार की शक्ति क्यो न हो, भगवान का धर्म फैलाने मे लगे तो ही शक्ति की सार्थकता है। जगत् को व्यक्ति का यही सर्वोत्तम दान है।

दान देने से धन मे कमी हो जाती है यह भ्रमपूर्ण विचार है। इस भ्रम के कारण दाने देने मे लोगो की रुचि प्राय कम होती है। साधुमार्गी समाज जैसी कृपणता तो शायद ही किसी समाज मे होगी। यह समाज दान–धर्म को भूल–सा गया है। इसका एकमात्र कारण धन मे कमी आ जाने का भय है। परन्तु यह धारणा गलत है।

## शील

जब कोई मनुष्य किसी मन्त्र को सीखता है तो उसे बडी सावधानी रखनी पडती है। वह उसी ओर ध्यान लगाये रहता है। शील महामन्त्र है। उसे सीखने के लिए आप सावधान रहे। कोई आकाशगामिनी विद्या सीखता है, कोई ताबे को सोना बनाने की विद्या सीखता है, कोई विषैले जानवरो के विष को उतारने का मन्त्र सीखता है पर शील का महामन्त्र इनसे कम नही है। जिस मन्त्र से साधारण व्यक्ति समस्त विश्व का महान पुरुष बन सकता है वह मत्र क्या छोटा हो सकता है? इस मत्र के प्रभाव से अर्हन्त भी बना जा सकता है फिर भी वह छोटा कैसे हो सकता है? शीलमत्र के प्रभाव से मनुष्य आकाशगामी ही नही वरन् लोकाकाश के अग्रभाग पर सदा के लिए प्रतिष्ठित हो जाता है। शीलमत्र के प्रभाव से तावा सोना ही नही बनता वरन् नरक का

जीव भी सिद्ध, बुद्ध, निर्विकार परमात्मा बन जाता है। शीलमत्र के माहात्म्य से जानवरो का ही विष दूर नहीं होता, बल्कि समस्त विकार रूपी विष नष्ट हो जाता है। ऐसा है शील महामत्र का प्रभाव।

जो भद्र पुरुष शीलमत्र को भलीभाति सीख लेगा जो इस मत्र की आराधना करेगा उसे अद्‌भुत आनन्द प्राप्त होगा। उसके हृदय मे अपूर्व जागृति आ जायेगी।

## शील का स्वरूप

बुरे कामो से निवृत्त होना और अच्छे कामो मे प्रवृत्त होना शील कहलाता है। यह शील का सामान्य स्वरूप है। इससे यह प्रश्न स्वत उत्पन्न हो जाता है कि बुरा क्या है ओर अच्छा क्या है? ससार के समस्त शास्त्रो का सार अच्छे और बुरे की व्याख्या मे ही आ जाता है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि पाच बाते बुरी हैं। (1) हिसा (2) झूठ (3) चोरी (4) व्यभिचार (5) शराब पीना। इन पाचो बातो से निवृत्त होना चाहिए। पाच अच्छी बाते है– (1) दया (2) सत्य (3) प्रामाणिकता अर्थात् अन्याय से किसी वस्तु को प्राप्त करने की अपेक्षा न रखना (4) परस्त्री को माता–बहिन के समान समझना ओर (5) नशे की किसी वस्तु का उपयोग न करना।

परस्त्री से परहेज करना, स्वस्त्री–सेवन की मर्यादा करना ही शील हे, ऐसा जो अर्थ समझते हैं वे शील का एकागी अर्थ समझते हैं। जिसके हाथ मे एक ही उगली हो वह मुट्‌ठी नही बाध सकता। इसी प्रकार जो पूर्वोक्त पाच बातो का त्याग ओर उसके विपरीत का ग्रहण नही करता वह शीलजन्य परम कल्याण का पात्र नहीं बन सकता।

मान लीजिए एक आदमी पत्र लिखने बेठा। उसे स्वरा का ज्ञान तो हे पर व्यजन उसे नही आते। या व्यजन वह जानता हे स्वर नही जानता। ऐसी स्थिति मे वह पूरी चिट्ठी लिख सकेगा? जेसे सिर्फ स्वरा से या सिर्फ व्यजनो से पूरी भाषा नहीं बनती उसी प्रकार केवल परस्त्री–त्याग ओर स्वस्त्री–सतोष से शील की परिपूर्ण परिभाषा नही होती। शील की पूर्णता क लिए उक्त पाचो की निवृत्ति ओर पाचा म प्रवृत्ति होना आवश्यक है।

## महिलाए और शील

बहिना। स्मरण रखना तुम जगत् की जननी हा ससार की शक्ति हा। तुम माता हा। जगत् तुम्हार सद्‌गुण रूप सोरभ स सुरभित है। तुम्ही समाज की पवित्रता ओर उज्ज्वलता कायम रख सकती हा। तुम्हारी पूर्ववर्ती म महासतिया किस स शाभा पाती थी। शील व्रत स ही। आप सा [illegible]

हैं, सो इसे ताबा न बनाना। तुम्हारे शील पर, तुम्हारे कुल–धर्म पर, तुम्हारे जाति–धर्म पर किसी प्रकार का धब्बा न लगने पावे। तुम ऐरो–गैरो के चक्कर मे न पड जाना। मगर यह सब कब होगा? सादगी धारण करने पर। बनाव–सिगार करना तुम्हारा काम नही है। शील के समान दिव्य आभूषण तुम्हारी शोभा बढाने के लिए काफी है। फिर तुम्हे और आभूषणो का लालच रखने की क्या आवश्यकता है? आत्मा की शोभा बढाओ, मन को उज्ज्वल करो। हृदय को पवित्र भावनाओ से अलकृत करो। इस मास के पिड शरीर की सजावट मे क्या पडा है? शरीर का सिगार आत्मा को कलकित करता है। अगर तुम अपना सारा शरीर भी हीरो और पन्नो से मढ लोगी, तो भी तुम्हारी कोई पूजा नही करेगा। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

## शीलधर्म

शील ससार की उत्तम सम्पत्ति है। शील धर्म का अर्थ है – सदाचार का पालन। सदाचार का पालन आत्मबल वाला ही कर सकता है। और आत्मबल वाले मे ही सदाचार हो सकता है। शील की महिमा अपरिमित है। उसकी महिमा प्रकट करने वाली अनेक कथाए मौजूद हैं। सुदर्शन सेठ के लिए शील के प्रताप से ही फासी का तख्ता सिहासन बन गया था। सीता के शील के प्रभाव से अग्नि शीतल हो गई थी। प्रभात होते ही सोलह सतियो का स्मरण क्यो किया जाता है? क्यो उनका यश गाया जाता है? शील के कारण ही।

राजा ने सेठ सुदर्शन से बहुतेरा कहा कि तुम रानी का सच्चा–सच्चा हाल बताओ। मैं तुम्हारी बात पर अविश्वास नहीं करूगा। फिर भी सुदर्शन ने राजा को उसकी रानी का हाल नही बताया। रानी के द्वारा वह तिरस्कृत ही नही हुआ था। वरन् उसकी बदौलत वह शूली पर चढाया जा रहा था, फिर भी सुदर्शन ने रानी का अनिष्ट नही किया। आप शूली पर चढ गया, लेकिन शूली शील के प्रताप से सिहासन बन गई।

ऐसी–ऐसी अनेक कथाए हैं जिनमे शील धर्म की महिमा का बखान है। कई लोग इन कथाओ को कल्पित कहकर उनकी उपेक्षा करते हैं। पर वास्तव मे उन्होने उनका मर्म नही समझा है। आत्मबल के प्रति अनास्था ही इसका प्रधान कारण है।

## तपधर्म

शील धर्म के पश्चात तप धर्म है। तप मे क्या शक्ति है सो उनसे पूछो जिन्होने छह–छह महीने तक निराहार रह कर घोर तपश्चरण किया है और

जिनका नाम लेने मात्र से हमारा हृदय निष्पाप एव निस्ताप बन जाता है। तप मे क्या बल है, यह उस इन्द्र से पूछो जो महाभारत के कथनानुसार अर्जुन की तपस्या को देखकर काप उठा था और अर्जुन को एक दिव्य रथ प्रदान किया था।

कहते है, अर्जुन की तपस्या से इन्द्र काप उठा। उसने मातलि को रथ लेकर अर्जुन के पास भेजा। मातलि अर्जुन के पास रथ समेत पहुचा और बोला–धनञ्जय! इन्द्र आपके तप से प्रसन्न है। आप इस रथ के योग्य हैं अतएव इसमे आप बैठिये। बहुत लोगो ने ससार के बहुत–से काम किए हैं, पर यह रथ किसी को नही मिला। मगर तप के प्रताप से आज यह रथ आपको भेट किया जाता है।

इस भाषा मे अलकार–भाषा का प्रयोग है। वस्तुत यह शरीर ही रथ है। इस रथ मे जुतने वाले अश्व इन्द्रिया हैं। तप के प्रभाव से अर्जुन को एक विशिष्ट प्रकार के रथ की प्राप्ति हुई, जिसमे तपोधनी ही बैठ सकते हैं। चक्रवर्ती भरत महाराजा के पास सेना, अस्त्र–शस्त्र और शरीर के बल की कमी नहीं थी। लेकिन जब युद्ध का समय आता था, तब वे तेला करके युद्ध किया करते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेला का बल चक्रवर्ती के समग्र बल से भी अधिक होता है।

तप एक प्रकार की अग्नि हे जिसमे समस्त अपवित्रता सम्पूर्ण कल्मष एव समग्र अशाति भस्म हो जाती हे। तपस्या की अग्नि मे तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भाति तेज से विराजित हो जाती हे। अतएव तप धर्म का महत्त्व अपार है।

## तप की महिमा

जो तप करता हे उसकी वाणी पवित्र ओर प्रिय होती हे ओर जो प्रिय, पथ्य तथा सत्य बोलता हे उसी का तप तप कहलाने योग्य होता है। तपस्वी को असत्य या अप्रिय भाषण करने का अधिकार नही। तपस्वी सत्य ओर प्रिय भाषा ही बोल सकता हे। उसे क्लेशजनक पीडाजनक या भयोत्पादक वाणी नही बोलनी चाहिए। तपस्वी की वाणी म अमृत का माधुर्य होता है। भयभीत प्राणी उनकी वाणी सुनकर निर्भय यनता हे। तपस्वी अपनी जिह्वा पर सदा नियत्रण रखता हे। उसकी वाणी शुद्धि एव पवित्रता स पूत होती है।

यही नहीं तपस्वी म वाचिक पवित्रता के साथ मानसिक पवित्रता होती ह। अगर मधुर भाषण मन की अपवित्रता का आवरण न बना जाय तो तपस्वी की तपस्या सार्थक हो जाती ह। जिस तप स मन शरद ऋतु के चन्द्रमा

के समान निर्मल बन जाता है, वह सच्चा तप है। मन मे रजोगुण या तमोगुण हो तो निर्मल नहीं रह सकता। जो मन रजोगुण और तमोगुण से अतीत हो जाता है, वही निर्मल है। तपस्वी को ऐसी निर्मलता प्राप्त करने के लिए सदा जाग्रत रहना चाहिए।

तपस्या करना वीरता का काम है। प्रत्येक आदमी तप नही कर सकता। तपस्वी अपनी शक्ति का सचय करके तप करे और अहकार आ जाए तो सारी तपस्या निरर्थक हो जाती है। अतएव तपस्या करके **इद न मम** कहकर भगवान की सेवा मे उसे समर्पित कर देना चाहिए।

इसी प्रकार स्वाध्याय आदि को **इद न मम** कहकर परमात्मा को अर्पण कर देना ही हितकर है। इससे अभिमान का भाव उदित नही होता है। इस प्रकार द्रव्यतप आदि का यज्ञ करता रहे तब तो ठीक है। यदि इनका अभिमान किया तो आत्मा का अध पतन हो जाता है।

**आहारत्याग**

अनशन—कुछ लोग कहते है — जैन धर्मानुयायी आहार का त्याग करते हैं, यह भी हिसा का एक प्रकार है। आहार का त्याग करना और मरना, दोनो समान हैं। आहार के बिना शरीर टिक नही सकता। जब भूख लगती है और भोजन नही किया जाता तब शरीर का रक्त—मास ही भूख का खाद्य बन जाता है। अतएव आहार का त्याग करना हिसा है।

यह विचार भ्रमपूर्ण धारणा का परिणाम है। वास्तविक बात यह है कि जैसे आहार करना शरीर—रक्षा के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार आहार का त्याग करना — उपवास करना भी जीवन—रक्षा के लिए आवश्यक है। आज अनेक स्वास्थ्यशास्त्री उपवास का महत्त्व समझ कर उसे प्राकृतिक चिकित्सा मे प्रधान स्थान देते हैं। उपवास करने से शरीर का रक्त—मास ही भूख की खुराक नहीं बन जाता। उपवास से शरीर कृश अवश्य होता है, परन्तु उस कृशता से शरीर को किसी प्रकार की हानि नही पहुचती। शरीर की कृशता शरीर के सामर्थ्य के ह्रास का प्रमाण नहीं है। वैज्ञानिक पद्धति से दूध को सुखाकर उसका एक पदार्थ बना लिया जाता है और फिर उस पदार्थ का पानी से मिश्रण करने से फिर दूध तैयार हो जाता है फिर भी दूध की शक्ति नष्ट नही होती। इसी प्रकार उपवास करने से शरीर सूख जाता है फिर भी शारीरिक शक्ति नष्ट नही होती। इसके विपरीत यदि उपवास विधि—पूर्वक किया जाय और उपवास की समाप्ति के पश्चात शीघ्र आहार की वृद्धि न की जाय तो शरीर की कृशता ही दूर न हो जायगी वरन् शरीर के रोग भी समूल

नष्ट हो जाएगे। यह बात केवल कल्पना के सहारे नहीं कही जा रही है। इसका आधार प्रत्यक्ष अनुभव है। इस बात की सचाई मे जिसे सदेह हो वह अपने शरीर का वजन करके एक दिन का उपवास कर डाले। उपवास के दूसरे दिन फिर वजन करके देखे तो प्रतीत होगा कि उपवास से शारीरिक शक्ति को तनिक भी हानि नही पहुचती।

उपवास से उत्पन्न होने वाली शारीरिक कृशता मे ओर रोगजन्य कृशता मे बहुत अन्तर है। जो लोग उपवास के अभ्यासी नही हैं, दवा के अभ्यासी हैं, उन्हे ही यह भीति बनी रहती है कि उपवास से शरीर निर्बल निस्तेज तथा कृश बन जाता हे। वास्तव मे उपवास शरीर को स्वस्थ रखने की एक प्राकृतिक अमोघ ओषध है। एक मास मे छह दिन ही अगर उपवास चिकित्सा का प्रयोग किया जाय तो शरीर मे किसी प्रकार का रोग नही रह पाएगा और डाक्टर का द्वार भी न खटखटाना पडेगा।

अलबत्ता यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि उपवास करने से शारीरिक लाभ होता है, फिर भी उपवास की परिपूर्ण सफलता उसमे नही है। आत्मा और परमात्मा के मिलन के लिये किया जाने वाला उपवास ही आदर्श उपवास हे। उपवास शव्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है–उप–समीपे **वसति इति उपवास** अर्थात् आत्मा को परमात्मा के समीप पहुचाने के लिए आत्मध्यान करना, आत्म–चिन्तन करना ओर इसके लिए आहार का त्याग करके जीवितव्य की आशा का भी त्याग कर देना सच्चा उपवास हे। इस व्याख्या से स्पष्ट हे कि उपवास परमात्मा के निकट पहुचने का एक मार्ग हे।

आज के लोग दवा के ऐसे दास बन गए हे कि दवा के नाम पर अखाद्य ओर असेव्य वस्तुओ का सेवन करते भी नही हिचकते। इस प्रकार की वस्तुओ से बचने के लिए तथा अन्त करण को शुद्ध करने के लिए उपवास करना अत्यावश्यक हे। उपवास मे शारीरिक ओर आत्मिक विकास की, दोना दृष्टियो का समावेश हो जाता हे। तपश्चरण भ्रष्ट दवा के सेवन से वचा सकता हे ओर अन्त करण को भी निर्मल वना सकता हे।

कुछ लोग उपवास को भी खान–पान का साधन वना वेठत हैं। कल उपवास करना हे इसलिए आज हलवा पूडी कलाकन्द आदि गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करके पट का ठास–ठास कर भर लेना उपवास की खिल्ली उडाना हे।

जेन शास्त्र एसे उपवास का विधान नही करत। यह उपवास नहा एक प्रकार की आत्मवचना हे। धारणा आर पारणा क दिन अथात उपवास

के पहले और पिछले दिन सिर्फ एक बार भोजन करने से 'चतुर्थभक्त' उपवास होता है।

अतएव उपवास के सबध मे किसी प्रकार का भ्रम न रहे और वह विधिपूर्वक किया जाय, यह आवश्यक है।

**अनशन की उपयोगिता**

तप जीवन का आवश्यक अग है। तप के बिना एक श्वास भी सुखपूर्वक नही लिया जा सकता। प्रथम तप – अनसन तो इतना व्यापक है कि उसकी महत्ता आज सर्वविदित है। अमेरिका के डाक्टर अनशन को समस्त औषधो मे सर्वोत्तम मानते है। उपवास के द्वारा रोगो की चिकित्सा करने की पद्धति भी प्रचलित हो गयी है। जिन भयकर असाध्य रोगो को मिटाने मे डाक्टर समर्थ नही थे वह रोग भी अनशन के द्वारा मिटाये गये हैं। उपवास के सबध मे मेरा स्वानुभव है और मैं कह सकता हू कि उससे अनेक रोगो का विनाश हो जाता है। सभव है, जिन्होने उपवास सबधी अनुभव प्राप्त नही किया ऐसे लोग उपवास की यह महत्ता स्वीकार न करे, पर उनके अस्वीकार का कोई मूल्य नही है। अनुभवी इस सत्य को स्वीकार किये बिना नही रह सकते। गीता मे कहा है–

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ।। 2/59**

लोकमान्य तिलक विद्वान थे मगर विद्वत्ता अलग चीज है और साधना अलग है। इसी कारण उन्होने गीता के इस श्लोक का यह अर्थ लिखा है कि उपवास से विषय तो छूट जाते हैं पर विषय की वासना नही छूटती, अतएव उपवास करना मानो आत्मा का घात करना है। लोकमान्य की इस व्याख्या से जान पडता है कि उपवास के सबध मे उनका आत्मानुभव नहीं रहा होगा। कौन जाने उन्होने कभी एकादशी का भी उपवास किया या नही। इससे विपरीत गाधीजी उपवास के अनुभवी है। उन्होने लगातार इक्कीस–इक्कीस दिन के उपवास किये हैं और आत्मशुद्धि के लिए या अन्य कारण से फुटकर उपवास भी किये हैं। उन्हे उपवास के सबध मे अच्छा अनुभव है। अतएव गाधीजी ने इस श्लोक का अर्थ किया है कि शरीर की बाह्यशुद्धि के लिए उपवास बहुत बढिया उपाय है।

जगली घोडे जब पकडे जाते हैं तब उनके उधम का पार नहीं रहता। दो–तीन दिन भूखे रखने पर वही काबू मे आ जाते हैं। इसी प्रकार इन्द्रिय रूपी घोडे को काबू मे रखने के लिए उपवास एक समर्थ साधन है।

विधवा स्त्री और साधु, ब्रह्मचारी आदि उपवास की सहायता से ही अपने नियमो का पालन करते हैं और सयम मे स्थिरता प्राप्त करते हैं।

यद्यपि अनशन तप की उपयोगिता सशय का विषय नही है, तथापि बलात् अनशन नहीं कराया जा सकता। तुम उपवास करते हो, इसी कारण अगर अपने आश्रितजनो को और पशुओ को आहार–पानी नही देते तो हिसा का पाप लगेगा। भक्त–पान का विच्छेद करना पहले अहिसा व्रत का अतिचार है।

**अनशन तप**

वही तप उत्तम है जिससे मन, वचन, काय की शुद्धि होती है। कोई–कोई तपस्वी क्रोधी अधिक होते हैं, पर जो क्रोध करता है उसमे अभी तप नहीं है, यह कहा जा सकता है। तप मे क्रोध को स्थान नही हो सकता और जो तप क्रोध से रहित है, वही उत्तम तप है।

तप मात्र आत्मोपकारक है। मगर उन सबमे अनशन प्रधान है। जैन शास्त्र अनशन तप को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। महाभारत मे भी कहा है–

**तपो नानशनात् परम्।**

तप आत्मा को पापो से दूर रखता है। जो तप का आचरण करता है, वह अहिसा का पालन करता है, सत्य का अनुसरण करता है अचौर्य का आचरण करता हे, ब्रह्मचर्य की आराधना करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए मन की वृत्तियो को वश मे करना आवश्यक है। मन की वृत्तिया अन्य उपायो से कदाचित् वश मे न भी हो, पर अनशन तप उन्हे वश करने का अमोघ उपाय है।

**उपवास**

एक बार भारतवर्ष ने उपवास के गुण समस्त ससार को बतलाये थे। आज वही भारतवर्ष दिनोदिन उसके महत्त्व को भूलता जा रहा हे।

जेन साहित्य ओर वेदिक साहित्य भी मुक्तकठ से तप की महिमा का बखान करते हैं। उपवास इन्द्रियो की रक्षा करने वाला हे। धर्म–साधना का सबल साधन है। इन्द्रिया के चाचल्य का निग्रह उपवास से ही होता है।

इन्द्रिया को काबू म रखना बहुत कठिन है। महाशत्रु पर अधिकार करना सरल हे पर इन्द्रिया पर अधिकार करना कठिन है। उपवास ही इन्द्रिया पर अधिकार करन का सरल उपाय है।

मनुष्य हमेशा खाता है। सावधानी रखने पर भी कहीं भूल हो जाना अनिवार्य ह। प्रकृति भूल का दण्ड देने से कभी नहीं चूकती। किसी और स

सकल्प करना अर्थात् आत्मा को जाग्रत करना। जो जाग्रत होता है उसका कोई कुछ बिगाड नही सकता। जो मनुष्य गाढी नीद मे सोया पडा हो या डरपोक हो उसके घर मे घुस कर चोर चोरी कर सकते है, पर जो मनुष्य जाग्रत है और साहसी है, उसके घर मे घुसने का साहस चोर को नही होता। अगर हम जाग्रत होगे तो चोर क्या कर सकेगे? ऐसा विश्वास तुम्हे है पर आध्यात्मिक विषय मे यह विश्वास टिकता नही है। अगर तुम्हारी आत्मा जाग्रत है तो कर्म–चोर की क्या बिसात कि वह तुम्हारी शक्ति का अपहरण कर सके। तुम्हारी गफलत के ही कारण चोर तुम्हारे आत्मगृह मे प्रवेश कर सका है। जिस क्षण तुम्हारी सकल्प शक्ति जाग्रत होगी, उसी क्षण चोर बाहर निकल भागेगे।

**ज्ञान–दीप तप–तेल भर, घर सोधो भ्रम छोर।**
**या विधि विन निकसै नही, पैठे पूरब चोर।।**

अपनी सकल्पशक्ति का विकास करना ही आध्यात्मिक विकास है।

## सत्सकल्प

सत्सकल्प का प्रभाव जड सृष्टि पर भी अवश्य पडता है। शास्त्र मे कहा है–**त सच्च खु भयव**। सत्य के प्रभाव से क्या नही हो सकता? सत्य के प्रभाव से ईश्वरत्व की भी प्राप्ति होती है। सत्य ही भगवान है। सत्य से पूत सकल्प के प्रभाव से विष भी अमृत बन जाता है, अग्नि भी शीतल हो जाती है। सत्सकल्प मे ऐसा महान प्रभाव और अद्भुत क्षमता है।

जो सकल्प शुभ हो, जिसमे विकार न हो और जिसका पालन प्रत्येक स्थिति मे किया जाय, वह सत्सकल्प है। जो सकल्प अस्वस्थ अवस्था मे किया गया हो उसका स्वस्थ अवस्था मे भी पालन करना सत्सकल्प है। एक बार सकल्प कर लेना किन्तु सकल्प के अनुसार कार्य करने का समय आने पर कर्तव्यपालन न करना दृढसकल्प नही कहा जा सकता।

## उत्कृष्ट भावना

कुछ लोगो का भ्रम है कि गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भावना अमृतमय नही बन सकती। अतएव वे कहते है – हम क्या करे – भावना को अमृतमय बनाए या ससार व्यवहार का निर्वाह करे? वास्तव मे गृहस्थ अवस्था साधक दशा मे बाधक है किन्तु जो गृहस्थ अमृत भावना का अभ्यासी [illegible] जाता है उसके लिए गृहस्थ अवस्था सर्वथा बाधक नही है। अतएव मै [illegible] यही कहता हू कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा भावना को अमृतमय [illegible] प्रयास करो।

तुम चाहो तो तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृतमय भावना का झरना फूट सकता है। पर तुम बाह्य प्रपचो मे इतना तन्मय हो रहे हो कि वह प्रशान्त प्रवाह दूसरे मार्ग पर चला गया है और तुम यह जानते ही नही हो। इसलिए तुम अपनी बुद्धि को बहिर्मुख न होने देकर अन्तर्मुखी बनाओ। बस, तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृतमयी भावना का पीयूष–प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा।

जिन ज्ञानियो ने अपनी बुद्धि अन्तर्मुखी बनाली है, उनका मुख देखो तो जान पडेगा कि अमृतमयी भावना के प्रभाव से उनका मुख कितना पफुल्लित है? कितना आजादमय है? कैसी अनुपम शाति उनके मुख पर किलोले कर रही है? उनके नेत्र देखो तो मालूम होगा कि उनमे से कैसी अद्भुत ज्योति जग रही है? कैसा उल्लास उनमे से फूट पडता है? उनकी किसी भी चेष्टा का अवलोकन करो, विदित होगा कि उनमे जैसे अलौकिक सयतता अगाध गभीरता और निस्पृहता भरी हुई है।

दुनिया के लोग जिसे पर्वत के समान दु ख अनुभव करते हैं, उस भयकर दु ख के माथे पडने पर भी, जिस दिव्य भावना का पवित्र त्राण पाकर ज्ञानीजन प्रसन्न एव प्रमोदमय बने रहते हैं, मानो चींटी भी शरीर पर नही रेग रही है। उस भव्य भावना को खोजो उसमे एक अद्भुत सामर्थ्य है। वह भावना एक ऐसा अनोखा यत्र है, जिसमे घोर दु ख भी सुख का रूप धारण कर लेता है। वह वेदना की विकृति को निकाल फेकती है।

## गाली देने वाले के प्रति विचार

जब तुम्हे कोई गाली दे तो तुम्हे भी ऐसा उज्ज्वल विचार करना चाहिए कि इसके मुह मे गाली की जो गदगी भरी थी, वह बाहर आ गई, यह बहुत अच्छा हुआ। इतने अश मे गाली देने वाले का मुह शुद्ध हो गया, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है।

किसान खाद के रूप मे गन्दगी का सदुपयोग कर लेता है और उससे उत्तम उपज होती है। इसी प्रकार तुम भी आत्म–कल्याण के रूप मे गालियो का सदुपयोग कर सकते हो।

## मन की एकाग्रता

मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का प्रधान कारण है। मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो । मन के सकल्प–विकल्प से ही अच्छे–बुरे काम होते है। बिल्ली जिन दातो से अपने बच्चे को दबाती है उन्ही दातो से चूहे को पकडती है। दात उसके वही हैं मगर मानसिक क्रिया की विभिन्नता के कारण दोनो के दबाने मे कितना अन्तर पड जाता है?

मन मे इस प्रकार का जो अन्तर रहता है, उसका कारण मानसिक चचलता है। मानसिक चचलता दूर हो जाने पर मन मे किसी प्रकार का भेद्भाव नही रहता। यही मन के निरोध का लक्षण है। मन मे अभेद भावना आ जाना मन के निरोध या मन की एकाग्रता का हेतु है।

कहा जा सकता है कि मन मे भेदभाव न उत्पन्न होने देना और उसकी चचलता को दूर करना योगियो के लिए भी सरल कार्य नहीं है तब गृहस्थ लोग इसे किस प्रकार कर सकते हैं?

इसका सक्षिप्त उत्तर यह है कि इस सबध मे साधु और गृहस्थ के भेद का कोई प्रश्न ही नही है। जो पुरुष अपने जीवन को अभ्यास और वैराग्यमय बनाता है, वही मन को वश कर सकता है। मन को वश करने के दो ही उपाय है। अभ्यास और वैराग्य।

मन को वश मे करने से अभ्यास के सबध मे लम्बी चर्चा है। योगक्रिया का समावेश इस प्रकार के अभ्यास मे ही होता है। सर्वप्रथम मन की अप्रशस्त प्रवृत्ति को रोक कर उसे प्रशस्त प्रवृत्ति मे पिरो देना चाहिए। ऐसा करने से धीरे–धीरे मन पर पूर्ण नियत्रण हो जाता है। एक ओर से मन को अप्रशस्त मे जाने से रोका जाय और दूसरी ओर से उसे परमात्मा के ध्यान मे पिरोते रहा जाय तो शनै–शने मन वश मे हो जायेगा और मन की एकाग्रता साधी जा सकेगी।

मन को वशीभूत करने का दूसरा उपाय वेराग्य हे। इन्द्रियो का समूह बलवान् होने के कारण मन को अपनी तरफ आकर्षित करता रहता है। इस आकर्षण से बचने के लिए वेराग्यभावना की साधना करनी चाहिए। वस्तुआ के प्रति विरक्ति रखने से इन्द्रिया उस ओर आकर्षित न हागी ओर मन भी उस ओर जाने से रुक जायेगा ओर तव स्थिर रह सकेगा। वस्तुआ के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के लिए वस्तु के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। वस्तु–स्वरूप का यथावत् ओर गहरा चिन्तन न करन स ही वस्तुआ क प्रति राग–द्वेष उत्पन्न होता ह। वस्तुआ का स्वरूप वास्तव म इतना उद्वेगजनक हे कि उनके स्वरूप की दृढ प्रतीति हा जान क पश्चात राग–द्वेष का अवकाश नही रहता। राग–द्वेष की कमी जितन अश म होती जायगी विरक्ति और तज्जन्य मानसिक एकागता उतन ही अश म बढती जायगी। इस प्रकार अभ्यास और वेराग्य स ही मन को वश म किया जा सकता ह।

मन की एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है। चित्त का निरोध मानसिक एकाग्रता का परम्परा फल है। मन की एकाग्रता का तात्कालिक फल यह है कि आत्मा मे अनिर्वचनीय, अपूर्व और अनुपम निराकुलता का उदय होता है। जिसका मन एकाग्र होता है वह जो–कुछ बोलता है, सत्य ही बोलता है और जो–कुछ मनोरथ करता है वह पूर्ण ही होता है। मानसिक एकाग्रता से सत्य–भाषण और मनोरथ की पूर्ति होती है। अतएव मन की एकागता पाप्त करो और उसे प्राप्त करने के लिए परमात्मा का भजन करो।

# ज्ञान और क्रिया

एक कहता है – 'अगर ज्ञान हमे प्राप्त हो गया है तो क्रिया की क्या आवश्यकता है?' दूसरा कहता है – 'क्रिया ही कल्याणकारी है। ज्ञान प्राप्त कर लेने से कोई लाभ नही है।'

लक्ष्य दोनो का एक है, फिर भी लक्ष्य की उपलब्धि के मार्गों मे समन्वय न होने के कारण दोनो मे से एक भी लक्ष्य पर नही पहुच सकता। ज्ञान और क्रिया, दोनो का समन्वय ही दोनो पैरो के समान लक्ष्य तक पहुचाने मे सहायक होता है। जो ज्ञानक्रिया का निषेध करता है वह ज्ञान नही अज्ञान है। जो क्रिया अज्ञानपूर्वक की जाती है वह ससार भ्रमण का कारण होती है। दोनो का सम्यक् समन्वय परमार्थ साधक हे।

न केवल परमार्थ साधन मे ही, अपितु व्यवहार मे भी ज्ञान और क्रिया दोनो की आवश्यकता होती हे। कोई मनुष्य स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहता है पर केवल स्वतन्त्रता को जान लेने मात्र से वह प्राप्त नही हो सकती और न उसे जाने विना प्रयत्न करने से। ज्ञान और क्रिया दोनो होने पर ही वह प्राप्त हो सकती है। कडकडाती भूख लगने पर भोजन के ज्ञान से ही भूख नही मिट सकती और भोजन का स्वरूप समझे बिना भूख मिटेगी ही कैसे? इस प्रकार प्रत्येक व्यावहारिक सिद्धि के लिए ज्ञान और तदनुकूल क्रिया अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। शास्त्र मे कहा हे–पढम नाण तओ दया। पहले ज्ञान की आवश्यकता हे फिर दया अर्थात् चारित्र या क्रिया सम्भव है।

**ज्ञानहीन क्रिया अन्धी है और क्रियाहीन ज्ञान पगु है।**

**हत ज्ञान क्रियाहीन हता चाज्ञानिना क्रिया।**

मुख के द्वारा भोजन किया जाता हे यह तो सभी जानते है पर भोजन पथ्य ह या अपथ्य यह जानना भी आवश्यक है। अपथ्य भोजन करने वाले रोगी और परिणामत दु खी देखे जाते है? [illegible] जाता [illegible]

है कि प्रत्येक सिद्धि के लिए, चाहे वह व्यावहारिक हो या पारमार्थिक हो, तुच्छ हो या महान् हो, ज्ञान और क्रिया, दोनो अपेक्षित हैं। जैसे एक चक्र से रथ नही चल सकता इसी प्रकार अकेले ज्ञान और अकेली क्रिया से कोई सिद्धि प्राप्त नही हो सकती।

ज्ञान–रहित क्रिया बहुत बार हानिकारक सिद्ध होती है। इसी प्रकार क्रिया–रहित ज्ञान तोतारटत मात्र है। एक आदमी ने तोते को सिखाया कि बिल्ली आवे तो उससे बचते रहना।' तोते ने ये शब्द रट लिये, रटता रहा। एक बार बिल्ली आई और उसने तोते को अपने निर्दय पजे मे पकड लिया। उस समय भी तोता यही रटता रहा – 'बिल्ली आवे तो उससे बचते रहना।' लोग कहने लगे – मूर्ख तोता! अब कब बिल्ली आयेगी और कब तू बचेगा?

आशय यह है कि तोते को ज्ञान होने पर भी क्रिया के अभाव मे वह बच न सका। इस प्रकार क्रियाविहीन ज्ञान निरर्थक होता है।

आधुनिक शिक्षा तोतारटन्त के समान ही है। जिस वस्तु पर अपना अधिकार नही उसे अपनी समझना और जिसे आप बना नहीं सकते, उसे पाकर अभिमान करना और जीवन को पराधीन बनाना तोतारटन्त के समान है। उदाहरणार्थ तुम्हारे सिर पर जो पगडी है, उसे बनाने मे तुमने क्या किया है? क्या यह पगडी तुमने बुनी या रगी है? तुमने अपनी धोती कभी स्वय बनाई? अगर नही तो उसे पहन कर अभिमान कैसे कर सकते हो?

भाईयो अगर जीवन मे किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करनी है तो पहले उसका स्वरूप उसके साधन और उसके मार्ग को समीचीन रूप से समझो और फिर तदनुकूल क्रिया करो। ऐसा किये बिना जीवन सफल नही हो सकता।

## ज्ञान और चारित्र

जैन धर्म का कथन है – उत्कृष्ट सयम का सद्भाव होने पर ही उत्कृष्ट ज्ञान आता है। यह सम्भव नही है कि उत्कृष्ट सयम तो न हो पर उत्कृष्ट ज्ञान का आविर्भाव हो जाय। कदाचित् उत्कृष्ट सयम से पहले ही उत्कृष्ट ज्ञान उत्पन्न होने लगे तो गजब हो जाये। ऐसी स्थिति मे ससार पतित हुए बिना न रहे। अतएव पहले मोह का सम्पूर्ण क्षय होता है तदनन्तर ही परिपूर्ण ज्ञान – केवल ज्ञान उत्पन्न होता है। मोह नष्ट होने से पहले ज्ञान उत्पन्न होता तो ससार पतित हो जाता। कल्पना कीजिए – आपको धन की लालसा है। धन का मोह ज्यो–का–त्यो बना हुआ है, फिर भी आपको अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाय तो आप न जाने कितनो का सफाया कर डालेगे?

यह तो बिल्ली को पख आने के समान होगा। बिल्ली को पख आ जाए तो वह किसी भी पक्षी को चैन न लेने देगी। इस प्रकार धन का मोह छूटने से पहले आपको अवधिज्ञान प्राप्त हो जाय तो आप ससार मे न जाने क्या उलट–फेर कर डाले। बिल्ली को पख नहीं आते, यही गनीमत है। पख न आने से बिल्ली विशिष्ट पाप से बच जाती है और पक्षियो के प्राण बच जाते हैं। इसी भाति मोह छूटने से पहले ज्ञान की उत्पत्ति न होने मे ही कुशल है।

## ज्ञानी और अज्ञानी मे अन्तर

ज्ञानी और अज्ञानी के बीच यह एक महान् अन्तर है कि अज्ञानी जिन पदार्थों को अपने विनोद और आमोद–प्रमोद का साधन समझता है, ज्ञानी उन्ही पदार्थों को अपनी जीवन–साधना का कल्याणकारी साधन मानते हैं। किसी झरने का झर–झर शब्द सुनकर साधारण आदमी उसे विनोद का कारण मानकर थोडी देर खुश हो लेता है, परन्तु ज्ञानी जन उस ध्वनि को सुनकर गभीर विचार करते हैं, वे सोचते हैं – 'यह झरना है मेरे आने से पहले भी झर–झर ध्वनि कर रहा था इस समय भी यही ध्वनि कर रहा है और जब मैं यहा से चल दूगा तब भी इसका यह नाद निरन्तर जारी रहेगा। यह झरना न किसी की निन्दा की परवाह करता है, न प्रशसा की, यह तो इसी प्रकार सगीत करता हुआ सागर मे समा जाता है। एक ओर मैं हू मनुष्य – प्रकृति का राजा। जो जरा–सी प्रशसा सुनकर फूल कर कुप्पा हो जाता हू और तनिक–सी निन्दा सुनकर ज्वालाए उगलने लगता हू। ज्ञानीजन प्रकृति के प्रगाढ परिचय से ऐसा पाठ सीखते हैं।

ससार के पदार्थ अलग–अलग दृष्टियो से देखे जाने पर अलग–अलग प्रकार के दिखाई देने लगते हैं। हाड–पीजरे को देखकर कोई उसे अपना भोजन समझता हे तो कोई उसे अपनी खोज का साधन मानता है। किसी कुत्ते के सामने अस्थिपजर रख दिया जाय तो वह अपना भोजन समझ कर खाने लगता हे ओर अस्थिपजर किसी डाक्टर के सामने रख दिया जाय तो वह शरीर सबधी किसी खोज के लिए उसका उपयोग करता है। ज्ञानी और अज्ञानी के बीच भी इसी प्रकार का अन्तर हे। अज्ञानी लोग हाड–पींजर का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते है। और ज्ञानीजन बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा हे इस प्रकार का विचार करके वैराग्य प्राप्त करते है।

## ज्ञानी का निर्ममत्व

माथे पर अगार रखे हो और मुनि तपस्या मे लीन हो– यह कैसी असम्भव सी कल्पना है। परन्तु यह असम्भावना अपनी निर्बलता को प्रकट करती है। हमने शरीर और आत्मा के प्रति अभेद की कल्पना स्थिर करली है। हमारे अन्तःकरण मे देहाध्यास प्रबल रूप से विद्यमान है। हम शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं। अतएव शरीर की वेदना को आत्मा की वेदना मानकर विफल हो जाते हैं। परन्तु जिन्होने परमहस की वृत्ति स्वीकार करके, स्व–पर भेदविज्ञान का आश्रय लेकर, अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक् कर लिया है, जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगते हैं उन्हे इस पकार की शारीरिक वेदना तनिक भी विचलित नही कर सकती। वे सोचते हैं – शरीर के भस्म हो जाने पर भी मेरा क्या बिगडता है? मैं चिदानन्दमय हू, मुझे अग्नि का स्पर्श भी नहीं हो सकता।

जब आपका ध्यान दूसरी ओर होता है तो मामूली चोट का आपको पता नहीं लगता। बालक को खेल मे खासी चोट लग जाती है, पर वह खेल मे तल्लीन होने से उस समय चोट का किचित् भी अनुभव नहीं करता।

इसी प्रकार मुनि की आत्मानुभूति इतनी उग्र होती है, आध्यात्मिक ध्यान मे ऐसी निश्चलता होती है कि शरीर की ओर उसका ध्यान ही नही जाता। इस दशा मे जिसे हम भीषण उपसर्ग समझते हैं वह उपसर्ग उनके लिए साधारण–सी वस्तु हो जाती है। दु ख एक प्रकार का प्रतिकूल सवेदन है। दह अपने–आप मे कुछ भी नही है। जिस घटना को प्रतिकूल रूप मे अनुभव किया जाता है वही घटना दु ख बन जाती है। अगर उस पर ध्यान ही नही दिया जाय अथवा उसे प्रतिकूल सवेदन न किया जाय तो दु ख की देदना नही हो सकती। यही कारण है कि एक ही घटना, विभिन्न मानसिक स्थितियो मे विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करती है। गाली कभी प्रतिकूल सवेदन के कारण दु ख उत्पन्न करती है और वही गाली ससुराल मे, प्रियजनो के मुख से निकलने पर अनुकूल सवेदन के कारण सुख रूप हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि दु ख या सुख पहुचाने की शक्ति गाली मे नही है। अगर ऐसा होता तो दह सदा दु ख ही पहुचाती या सदा सुख ही प्रदान करती। मगर ऐसा होता नहीं है। अतएव यह स्पष्ट है कि गाली को सुखरूप और दु खरूप मे ढालने वाला साचा दूसरा है। वह साचा आत्मा के अधीन है। वही सवेदना का साचा है।

साधारण जनता को अतिशय भीषण प्रतीत होने वाली घटना को भी मुनिराज अपनी सवेदना के साचे मे ढालकर सुखरूप परिणत कर लेते हैं। यही कारण है कि गजसुकुमार मुनि मस्तक जलने पर भी दु ख की अनुभूति से बचे रहे।

## ज्ञानी

ज्ञानीजन बालक के समान निर्विकार बनना चाहते हैं अथवा होते हैं। सच्चे ज्ञानी अपनी स्थिति बालक के समान बना भी लेते हैं। किसी नारी पर उनकी नजर पडती है तो उसे माता के रूप मे ही देखते हैं। कोई गालिया देता है तो वह अपने निर्दोष हास्य से उसकी उपेक्षा कर देते हैं। सम्यग्ज्ञान का कवच प्रत्येक स्थिति मे उनकी रक्षा करता है।

## ज्ञानी पुरुष और गाली

साधारणतया लोग गाली सुनते ही क्षुब्ध हो जाते हैं। क्षोभ की ज्वालाओ मे विवेक घी बनकर भस्म हो जाता है। पर ज्ञानवान पुरुषो का चरित्र विचित्र होता है। वे गालियो मे भी सत्य की शोध करते हैं।

ज्ञानी पुरुष गाली सुनकर सोचते हैं – गाली देने वाला शरीर को गाली देता हे या आत्मा को? अगर शरीर को गाली देता है तो इसमे मेरा क्या बिगाड हुआ? मैं शरीर नहीं हू। मैं शरीर से निराला सच्चिदानन्दमय चेतन हू। अगर आत्मा को गाली देता है तो इसका और मेरा आत्मा समान हे। इसके अतिरिक्त आत्मा को गाली लग नही सकती।

गाली देने वाला अपनी जिह्वा का दुरुपयोग करता हे पाप का उपार्जन करता हे। वह मानसिक दुर्बलता का शिकार हे अतएव करुणा का पात्र हे। जो करुणा का पात्र हे उस पर क्रोध करना विवेकशीलता नही हे।

गाली देने वाला अगर पाप करता हे ता उसका मुकाविला करने के लिए मुझे पाप क्या करना चाहिए? ऐसा करने स हम दोनो म क्या अन्तर रह जायेगा?

पाप से पाप का मुकाविला करने पर पापा की परम्परा अक्षय हो जायेगी। पाप का क्षय धर्म से हा सकता हे। धर्म स ही पाप का प्रतिकार करना हितावह हे।

## ज्ञानी और अज्ञानी

ज्ञानी पुरुष मन स वचन स ओर तन स क्षण-क्षण म पुण्य[illegible] करक पुण्यप्रकृति का वन्ध करत ह ओर अज्ञानी पापाचरण करके [illegible] म पाप की पाटली वाधत ह।

ज्ञानी का प्रत्येक कार्य विश्वकल्याण की कामना से होता है और अज्ञानी का स्वार्थ–लिप्सा से। अतएव ज्ञानी के कार्य उसे स्वर्ग का स्वामी बनाते हैं और अज्ञानी के कार्य अज्ञानी को नरक का अतिथि बनाते हैं।

## क्रियाशील बनो

ससार मे ऐसे लोगो की कमी नही है जो किसी कार्य की प्रशसा मे 'वाह! वाह!' के नारे लगाते हैं और जब वही कार्य सिर पर आ पडता है तो एक ओर खिसक जाते हैं। इस प्रकार की दुरगी नीति से कोई भी कार्य सिद्ध नही हो पाता। अतएव हमारी प्रामाणिकता का यह तकाजा है कि हम जिस कार्य को हृदय से अच्छा समझे उस कार्य को क्रिया मे उतारने का हृदय से पयास करे। दूसरो को खुश करने के लिए मुह से वाह–वाह करना कार्यकताओ को और अपने अन्त करण को छलने की चालाकी है। चालाकी से दुनिया खुश हो सकती है परमात्मा नही।

## वचन और कार्य

सौ निरर्थक बाते करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन मे उतारने की प्रबल चेष्टा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गदगी खोजती है उसी प्रकार तुम दूसरो के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाडा मारना होगा। पराये दुर्गुणो पर दृष्टि डालने की अपेक्षा और उनका पचार करने की अपेक्षा चुपचाप अपने दुर्गुणो को पहचानना और उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करना लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

## तर्क और श्रद्धा

बुद्धिवाद का यह जमाना है। मनुष्य अपने बुद्धिवैभव पर फूला नही समाता। प्रत्येक विषय मे तर्क–वितर्क किया जाता है। पर केवल तर्कबुद्धि से काम नही चलता। तर्क तो पारे की तरह चपल है। **तर्कोऽप्रतिष्ठ** तथा **तक्का तत्थ न विज्जइ** इत्यादि अनुभवप्रसूत उद्‌गारो से प्राचीन शास्त्रकारो ने तर्क की अक्षमता घोषित की है। प्रकृति के निगूढतर रहस्य और सूक्ष्मतम अध्यात्मतत्त्व बुद्धि या तर्क के विषय नही हैं। तर्क उनके निकट भी नही पहुच पाता। ऐसी स्थिति मे बुद्धि या तर्क के भरोसे बैठा रहने वाला सम्यग्ज्ञान से वचित रहता है।

श्रद्धा ने मानव–जाति का परम हित–साधन किया है। जहा मनुष्य अपने को असहाय पाता है वहा श्रद्धा उसकी सहायता करती है।

इस प्रकार तर्क और श्रद्धा दोनो का जहा समन्वय होता है वही सत्य की उपलब्धि की सम्भावना हो सकती है।

# संघ और वर्णव्यवस्था

## सघ

सघ तो महान् है पर उसमे सग नही दिखाई देता। सघ का तात्पर्य है, जघा का पेट को, पेट का भुजा को, भुजा का मस्तक को मस्तक को भुजा का, पेट का जघा को, भुजा का पेट, मस्तक और जघा को, पेट का मस्तक भुजा को और जघा का मस्तक, भुजा और पेट को सहायता देना। चारो अगो का सगठन होना चाहिए। मस्तक मे ज्ञान हो, भुजा मे बल हो पेट मे पाचनशक्ति हो और जघाओ मे गतिशीलता हो तो अभ्युदय मे क्या कसर रह जायेगी। अगर सघ–शरीर के लिए सर्वस्व का भी त्याग करना पडे तो भी वह त्याग कोई बडी चीज होनी चाहिए। सघ मे सगठन के लिए अपने प्राणा का उत्सर्ग करने मे भी पश्चात्पद नही होना चाहिए। सघ इतना महान् हे कि उसके सगठन के हेतु, आवश्यकता पडने पर पद और अहकार का मोह न रखते हुए इन सबका त्याग कर देना श्रेयस्कर हे।

आज यदि सघ सुसगठित हो जाय शरीर की भाति प्रत्येक अवयव एक–दूसरे का सहायक बन जाये समस्त शरीर का श्रेय ही एक–एक अवयव का मुख्य लक्ष्य हो जाये तो साधुता की वृद्धि हो सघशक्ति का विकास हो तथा धर्म एव समाज की विशिष्ट उन्नति हो। इस पवित्र और महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए म तो अपनी पदमर्यादा को भी त्याग देन क लिए तेयार हू। सघ की सेवा म पारस्परिक अनेक्य को कदापि वाधक नही वनना चाहिए। ऐक्य–भग पाप हे – सघ की एकता के पवित्र काय म विघ्न डालना घोर पाप के वन्ध का कारण हे। भगवान न सघ म अनकता उत्पन्न करना सबसे [illegible] पाप वताया ह आर सभी पाप इस पाप स छोट ह। चतुर्थ व्रत [illegible] पर नवीन दीक्षा देकर साधु का शुद्ध किया जा सकता है [illegible] शाति आर एकता भग करक अशाति आर अनेक्य फेलाने वा[illegible]

छिन्न–भिन्न करने वाला दशवे प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि सघ को छिन्न–भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बडप्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके सघ मे विग्रह उत्पन्न करते हैं वे घोर पाप करते हैं। अगर आप सघ की शाति और एकता के लिए सच्चे हृदग से प्रार्थना करेगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही सघ मे अशान्ति फैलाने वालो के हृदय का पाप भी धुल जाएगा। सघ मे एकता होने पर सघ की सब बुराइया नष्ट हो जाती है।

## सघ–सेवा

भारत रूपी मानसरोवर के राजहसो! अगर तुम इतना भी न कर सके तो भारत का ऋण किस प्रकार चुकाओगे?

अगर आप सघ की विजय करना चाहते हैं तो सघ का सगठन करो। वर्तमान युग इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ऐसा युग है, जिसका भविष्य के साथ गहरा सबध रहेगा। जैनो की सख्या 11–12 लाख के करीब है। यह सख्या पैंतीस करोड की जन सख्या मे नगण्य–सी है फिर भी अगर आप सगठित हो जावे तो वीरसघ की प्रतिष्ठा बढा सकते हैं। अगर आप मे सगठन का बल न होगा तो आप किसी गिनती मे न रहेगे। अतएव सगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो और वीरसघ को शक्तिशाली बनाओ। सघ सेवा का बहुत बडा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नही है। सघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गोत्र का बध हो सकता है। अगर आप सघ की सेवा करेगे तो आपका कल्याण होगा।

## व्यक्ति–समष्टि

व्यक्ति चाहे जितना महान् हो फिर भी समष्टि के मुकाबिले उसका महत्ता कम ही है। किसी भी अवस्था मे एक व्यक्ति समष्टि से अधिक वजनदार नही हो सकता, क्योकि समष्टि के वजन मे उस व्यक्ति का भी वजन सम्मिलित है और साथ ही अन्य व्यक्तियो का भी जो उस समष्टि के अग है। अतएव व्यक्ति की अपेक्षा उस समूह का जिसमे वह स्वय भी सम्मिलित है सदैव अधिक मूल्य ठहरेगा। इसलिए मैं कहता हू कि एक व्यक्ति की रक्षा की अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व की रक्षा का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण उपयोगी और श्रेयस्कर है। गाधीजी ने अमेरिका को जो सदेश भेजा उसमे समस्त ससार की फासी छुटाने का प्रयोजन है। ससार अहिसा की आराधना द्वारा ही फासी से छुटकारा पा सकता है। अहिसा भगवती की वात्सल्यमयी गोदी मे जब प्रत्येक राष्ट्र सतान की भाति लोटेगा तभी उसमे सच्चा बन्धुत्व पनप सकेगा।

अहिसा भगवती ही बधुत्व का अमृत सचार कर सकती है। अहिसा माता के अतिरिक्त और किसी का सामर्थ्य नही कि वह वन्धुभाव का प्रादुर्भाव कर सके ओर आत्मीयता का सवध विभिन्न राष्ट्रो एव विभिन्न जातियो मे स्थापित कर सके। विभिन्न–विभिन्न समयो मे जन्म लेने वाले व्यक्ति एक ही माता के हृदय का रस पान करके सहोदर बन जाते हैं, इसी प्रकार विभिन्न राष्ट्रो के मानव जिस दिन एक अहिसा माता का रस पान करेगे उसी दिन वे 'सहोदर' बन सकेगे।

## चातुर्वर्ण्य स्वरूप

चातुर्वर्ण्य समाज का विराट् रूप है। इसमे क्षमा और विवेक के सागर ब्राह्मण मस्तक माने गये हैं। पराक्रमी वीर क्षत्रिय वाहु माने गये हैं उदार दानी वैश्य पेट माने गये हैं और सेवा–भक्ति करने वाले शूद्र पैर माने गये हैं।

## वर्ण व्यवस्था के बिना भारत की दुर्दशा

जब तक भारत मे वर्ण–व्यवस्था ठीक रही तव तक उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं भोगना पडा। पर जब से एक मस्तक मे कई मस्ताक हुए, हाथो मे से कई हाथ निकल पडे अर्थात् ब्राह्मणो मे कई–एक उपजातिया खडी हो गई, क्षत्रियो मे अनेक शाखाए ओर प्रशाखाए बन गई वैश्यो मे विभिन्न जातियो की उत्पत्ति हुई और शुद्र विविध हिस्सो मे विभक्त हो गये तभी से देश की हीन अवस्था आरम्भ हुई ओर धर्म के कर्म नष्टभ्रष्ट हो गये। **स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह** इसी अवस्था को सुधारने के लिए कहा गया था। इसी गडबड को मिटाने के लिए आचार्य जिनसेन ने राजाओ को सलाह दी थी कि अगर कोई वर्ण वाला अपने कर्तव्य कर्म को अतिक्रमण करके अन्य धर्म का आचरण करे तो राजा को उसे रोक देना चाहिए अन्यथा वर्णसंकरता फेल जायेगी।

जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सवको सभ्यता सिखाने वाला था आज वह इतना दीन–हीन हो गया हे कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तके जर्मनी से मगाता हे। युद्ध सामग्री के लिए अमरिका के प्रति याचक वनता हे नीति–धर्म की पुस्तका के लिए इग्लेण्ड के सामने हाथ पसारता है। ओर ता ओर सुई जेसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदशिया का मुंह ताकता ह। इसका क्या कारण हे?

## वर्ण–व्यवस्था

आज असली वर्ण–व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी है और उसके स्थान पर अनगिनती जातिया–उपजातिया दिखाई पडती है। [illegible]

ब्राह्मण–ब्राह्मण, क्षत्रिय–क्षत्रिय, वैश्य–वैश्य और शुद्र–शूद्र भी एक नही है। शूद्रो मे भी एक जाति का शूद्र दूसरी जाति के शूद्र को स्पर्श करना पाप समझता है। न जाने अस्पृश्यता कहा से और कैसे चल पडी है? जिसने भारतीय जन–समाज को, एकता को छिन्न–भिन्न कर दिया और जो भारतवर्ष के विकास मे बडी बाधा बनी हुई है। इससे समाज का उत्थान कठिन हो गया है और अब लोग अस्पृश्यता को भी धर्म का अग मान रहे है। तात्पर्य यह है कि जैसे आजकल जातियो के नाम पर सकीर्ण दल मौजूद है और उनके कारण व्यापक भावना उत्पन्न नही होने पाती, वैसे दल उस समय नही थे। अतएव विवाह आदि कार्यो मे जातीय भेदभाव बाधक नही बनता था। वर्ण थे पर सभी वर्णों मे परस्पर विवाह सबध होता था।

## कर्म से ब्राह्मणादि की व्यवस्था

मनुष्य के ऊपर न तो कोई ब्राह्मणत्व की छाप लगी है और न शूद्रत्व की। जिस प्रकार ब्राह्मण अग–प्रत्यग से व्यावहारिक काम करता है उसी प्रकार शूद्र भी काम करता है। फिर दोनो मे अन्तर क्या है? दोनो मे अगर कोई अन्तर हो सकता है तो यही कि ब्राह्मण में ब्राह्मण सबधी पठन–पाठन आदि लक्षण विद्यमान है और शूद्र मे सेवा करना आदि शूद्र के लक्षण होते हैं। मगर कई–एक ब्राह्मण सेवा धर्म अगीकार किये हुए है और सेवा करना शूद्र का धर्म है। जब कोई ब्राह्मण शूद्र का काम अपनाता है तो क्या वह कार्य की अपेक्षा से शूद्र नही कहलाएगा? इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान आदि कोई ब्राह्मणोचित गुण किसी शूद्र मे विद्यमान हो तो क्या वह उस अपेक्षा से ब्राह्मण नहीं कहलाएगा?

## वर्ण व्यवस्था और विकार

शास्त्रो के सूत्रो का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् के द्वारा की हुई वर्ण–व्यवस्था कर्तव्य की सुविधा के लिए थी। वह अहकार का पोषण करने के लिए नही थी। अतएव आज वर्णों के नाम पर जो उच्चता–नीचता की भावना फैली हुई है, वह वर्ण– व्यवस्था का स्वरूप नही है। वह वर्ण–व्यवस्था का विकार है। प्रत्येक व्यवस्था कुछ समय व्यतीत होने पर सर्वसाधारण के सम्पर्क से विकृत हो जाती है। यहा तक कि लोग उसका मूलसिद्धान्त भुला देते हैं और उसके विविध विकारो को इतना अधिक महत्त्व दे देते है कि उसके मूल सिद्धान्त को खोज निकालना भी मुश्किल हो जाता है। जब उस व्यवस्था का मूल सिद्धान्त विकारो मे दब जाता है तो अनेक लोग उसे हानिकारक और अनुपयोगी समझकर उससे घृणा करने लगते है। अगर इस प्रकार घृणा करने वाले लोग दोष के पात्र हैं तो उनसे

पहले दोषी वे हैं जो अमृत सरीखी हितकारक शुद्ध व्यवस्था मे विकार के विष का सम्मिश्रण करके उसे विषेली बना डालते हैं। तथापि विवेकशील विद्वानो का यह कर्तव्य है कि वे किसी व्यवस्था को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले उसके अन्तस्तत्त्व का अन्वेषण करे और उसे पहिचान कर आये हुए विकारो को ही दूर करने की चेष्टा करे।

## क्षत्रिय

क्षत्रिय को हाथ की उपमा दी गई है। हाथ को ही यह सुविधा प्राप्त हे कि वह सम्पूर्ण शरीर को स्पर्श कर सकता है और सम्पूर्ण शरीर की सारसभाल कर सकता है। शरीर के सब अवयवो मे हाथ को ही यह योग्यता प्राप्त है। शरीर का पालन करने वाला हाथ ही है। कमाई हाथ से ही होती है ओर खानपान की क्रिया भी हाथ से ही हो सकती है। इस कारण हाथ ही शरीर का पालक–पोषक है। लिखने आदि की अनेक क्रियाए हाथ पर ही निर्भर हैं। शरीर मे हाथ न हो तो काम चल नहीं सकता। हाथ, शरीर के किसी भी भाग से घृणा नहीं करता। वह मुख को भी साफ करता है ओर पेर को भी साफ करता हे।

यही वात क्षत्रियो के सवध मे है। क्षत्रिय राष्ट्र–शरीर के सव अगो का – समस्त प्रजा का पालन करता हे। वह किसी के प्रति घृणा या तिरस्कार का भाव अपने मे उदित नही होने देता। क्षत्रिय ब्राह्मण का भी पालन करता हे ओर चाडाल का भी। वह सबकी सार–सम्भाल रखता हे।

## वैश्यो का कर्तव्य

वेश्य देश के पेट के समान हें। पेट आहार को स्थान अवश्य दता हे परन्तु उस आहार का उपभोग समस्त शरीर करता हे। वह सिर्फ अपन ही लिये आहार जमा नही करता। वेश्य देश की आर्थिक दशा का कन्द्र है। दश की आर्थिक स्थिति को सुधारना उसका कर्तव्य हे। वेश्या को आनन्द श्रावक का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और स्वार्थमय वृति का त्याग कर जन–कल्याण की भावना को हृदय म स्थान दना चाहिए।

## अस्पृश्य

धर्म भावना का तकाजा हे कि मनुष्य मात्र का भाइ समझा जाय। प्रत्यक मनुष्य प्रत्यक मनुष्य का बन्धु ह। बन्धु का अथ सहायक है। इस प्रकार शूद्र आपक सहायक ह आर आप शूद्रो क सहायक हैं। [illegible] आर आपका पहना दिया। क्या यह आपको सहायता [illegible] आपका पाखाना साफ किया आपको नाना स्वच्छ [illegible]

बीमारियो से बचा दिया। क्या भगी ने आपकी मदद नही की? क्या आपकी सहायता का पुरस्कार यह होना चाहिए कि वह नीच गिना जाय? सफाई करके भयकर बीमारियो की सम्भावना दूर कर देने वाले महत्तर को नीच गिनना क्या कृतज्ञता की भावना के अनुकूल है? मानव–समाज का असीम उपकार करने वाले वर्ण को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले लोग अपने को जब उच्च वर्ग का कहते हैं तो समझ मे नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या है? क्या उच्चता का अर्थ कृतघ्नता है?

याद रक्खो, यह नीच कहलाने वाले लोग हिन्दू धर्म के प्यारे लाल हैं। इन्हे धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो। इनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करो। इन पर दया करो। इनके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करो।

शूद्र आपके समाज की नींव है। महल का आधार नींव है। नीव मे अस्थिरता आ जाने से महल स्थिर नही रह सकता। अगर तुमने शूद्रो को अस्थिर कर दिया – विचलित कर दिया तो तुम्हारे समाज की नीव हिल उठेगी। तुम्हारी सस्कृति धूल मे मिल जायेगी।

मनुष्य–शरीर अनन्त पुण्य के फल से मिलता है। चाहे मनुष्य राजा हो या रक हो, ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो, उसे मानव–शरीर बडी ही कठिनाई से प्राप्त हुआ है। आप सोचिए, मनुष्य की पुण्याई अधिक है या कुत्ते की? आप कहेगे – 'मनुष्य की।' वास्तव मे यही बात है।

एक बार मैं रतलाम मे जा रहा था। अचानक मेरी दृष्टि एक कुत्ते पर पडी। कुत्ता बोरी के पाल पर सोया हुआ था। उसके सामने पूडिया पडी हुई थीं। एक ओर जल का पात्र रक्खा था। अनुमान किया, कुत्ता बीमार है और लोग उसकी सेवा करते हैं।

उस दिन मैंने व्याख्यान मे पूछा – आप जैसे बीमार कुत्ते की सेवा करते हैं उसी प्रकार बीमार भगी की सेवा करना आपका कर्तव्य समझते हैं या नही?

यह प्रश्न सुनकर लोगो को आश्चर्य हुआ। कुछ ने दबी जबान से कहा – महाराज! भगी की सेवा यह कैसे हो?'

मैंने उनसे पूछा – मनुष्य की पुण्याई अधिक है या कुत्ते की? अगर मनुष्य अधिक पुण्यशाली है तो यह भेद क्यो? भगी मैले का टोकरा अपने सिर पर ही रखता है मगर कुत्ता तो उसे खा भी लेता है। मुर्दा जानवर को भगी घसीट कर ले जाता है और बस्ती से बाहर दूर डाल देता है, मगर कुत्ता उससे पेट भरता है। तब दोनो मे अधिक अपवित्र कौन है?

कहा जा सकता है भगी भी मुर्दा जानवर खाते हैं। मगर मेरा उत्तर यह है कि यद्यपि कई खाते हैं और कई नहीं भी खाते, मगर जो खाते हैं उनके दोष का उत्तरदायित्व क्या तुम पर भी नहीं है? तुम उनसे घृणा करके दूर भागते हो, उन्हे दुत्कारते हो, समय पडने पर उनकी सेवा नहीं करते पेट-भर अन्न नही देते, उन्हे धार्मिक शिक्षा नही देते, स्वास्थ्य रक्षा की विद्या नहीं समझाते। क्या यह उत्तरदायित्व तुम्हारा नहीं हे?

भगवान ऋषभदेव ने वनिता नगरी बसाई थी। वहा क्या झाडू देने वाला न होगा? अवश्य होगा।

कल्पना कीजिए, किसी गृहस्थ मे दो बाइया हैं। एक हीरे जडी चूडिया पहन कर, सुगधित तेल-इत्र लगा कर सुन्दर और सुकोमल वस्त्र पहन कर, झूले मे झूल रही है। भोजन के समय भोजन करती है और विलास मे डूबी रहती है। उसी गृहस्थी मे दूसरी बाई धर्मशीला है। वह सिगार की परवाह नही करती। नाज-नखरे मे दिल नही लगाती। घर को साफ-सुथरा रखती है। बच्चो की अशुचि मिटाकर उन्हे नहलाती है स्वच्छ वस्त्र पहनाती हैं। उनके भोजन की व्यवस्था करती है।

आप इन दोनो मे से किसे अच्छा समझते हैं? किसे जीवनदानी मानते हैं? मोज करने वाली को या काम-काज करने वाली को?

माता तुम्हे क्यो प्यारी लगती है? इसलिए कि वह सेवा करती है? अगर माता ने तुम्हारा मेला न धोया होता, आप गीली जमीन पर सोकर तुम्हे सूखी जमीन पर न सुलाया होता तो क्या तुम उसे अपनी माता कहकर गोरव मानते?

अत्यजो के विषय म तनिक विचार कीजिए। वे आपकी अशुचि उठाते हें तथा दूसरे सफाई के काम करते हें। फिर भी आप उनसे घृणा करते हें। आपकी अशुचि को दूर करके स्वच्छता रखना क्या उनका इतना बडा अपराध हे? एक आदमी यहा अशुचि विखेरता हे और दूसरा उसे साफ कर डालता हे तो आप दोना म से किस अच्छा समझगे? आपकी अन्तरात्मा की सच्ची ध्वनि क्या हागी? यदि साफ करन वाले का आप अच्छा समझग तो पाखाने म अशुचि फेलान वाल अच्छ या उनकी सफाई करन वाल? क्या आप सफाई करन वाला से घृणा करत हे? खयाली एव कुसस्कारजन्य धारणा स मुक्त होकर थाडी देर क लिए गम्भीर विचार कीजिए कि वर्ण-व्यवस्था के आरम्भ म भगवान ऋषभदव न आज अस्पृश्य या अत्यज कहलाने वाले भाइया का क्या तत्त्व समझाकर इस सवा क लिए उत्साहित किया होगा?

यह महत्त्वपूर्ण सेवाकार्य करने के उपलक्ष मे पुरुष को महत्तर और स्त्री को महत्तरानी जैसे अतिशय महत्त्वसूचक नाम से सम्बोधित किया गया है।

भारतवर्ष मे जब गौ का सत्कार होता था तब वह सच्चे हृदय से गौमाता कह कर पुकारी जाती थी। उस समय गौहत्या करने वाले जाति से बहिष्कृत किये जाते थे और उन्हे सर्वसाधारण की दुस्सह घृणा का पात्र बनना पडता था। उनके मुह देखने मे भी लोग पाप समझते थे। पर आज सरे मैदान गौहत्या करने वालो एव गौमासभक्षियो के साथ हाथ मिलाना बडप्पन समझा जाता है। क्या यह लज्जा की बात नही है? क्या गोरी चमडी होने से किसी मे देवत्व आ जाता है? यह भारतीय जनता के पतन का जीता–जागता प्रमाण है। भाइयो! अन्त्यज भाइयो से घृणा करना त्यागो। उन्हे दुरदुराने के कारण वे अपनी ही निगाहो मे गिर गये हैं और इस कारण उनमे कई बुराइयां आ गई हैं। उनसे सम्पर्क स्थापित करके उनकी बुराइया दूर करो। मद्यपान एव मासभक्षण की उनकी आदते मिटाओ। याद रक्खो, तुम अपने भाइयो को नहीं चाहते उन्हे हिकारत की निगाह से देखते हो, इसी कारण गौहत्यारे तुम पर राज्य करते हैं और तुम्हे उनका सम्मान करना पडता है।

जो आपके रास्ते को साफ–स्वच्छ करते हैं, पाखानो की सफाई करके शुद्ध वायु का सचार करते हैं, उन्ही को तुम धिक्कारते हो, पर विलायत मे बैठे हुए घोर पाप करने वालो को अपने यहा निमन्त्रित करने मे अपना अहोभाग्य मानते हो, यह न्याय है या अधेर है? धर्म ठुकराना और अधर्म को पुचकारना इसी को कहते हैं।

मनुष्य आज किस प्रकार मिथ्या अहकार का वशवर्ती बन गया है? भगी चमार आदि कुए से पानी नहीं ले सकते। यही नही, यह विष कहीं–कहीं तो इतना उग्र बन गया है कि सवर्ण कहलाने वाले लोग उन्हे ऊपर से पानी डालने के लिए भी तैयार नहीं होते। इसमे भी उनके धर्म को ठेस लगती है। भला इस अत्याचार की भी कोई सीमा है? आज ईसाई–मुसलमान आदि के बच्चे के साथ अपने बच्चे बैठ सकते हैं, पढ–लिख सकते हैं। पर किसी अन्त्यज की परछाई पडने से ही उनका धर्म डूब जाता है। अन्त्यज का बच्चा पाठशाला मे पैर नहीं रख सकता।

समाज मे शूद्र का स्थान पैर के समान है तब भी उसे पैर तो समझो। मै उसे सिर समझने की बात नही कहता। जो जिस जगह उपयुक्त है उसे वह स्थान प्रदान करो।

कुछ लोग समझते है कि मैं चारो वर्णों को एकाकार करने की वात कहता हू। यह उनका भ्रम है। मैं अन्त्यजो के साथ रोटी–वेटी व्यवहार करने की बात नहीं कह रहा हू। मैं उनके प्रति मनुष्योचित एव सहानुभूतिमय व्यवहार की बात कहता हू। यह भी उनके प्रति एहसान करने के लिए नही, वरन् अपने धर्म की रक्षा के लिए, न्याय के लिए और मनुष्यता की प्रतिष्ठा के लिए कहता हू।

अन्त्यजो के प्रति दुर्व्यवहार करके आप धर्म का उल्लघन करते हैं, मनुष्यता का अपमान करते हैं, देश और जाति को दुर्बल बनाते हैं, अपनी शक्ति को क्षीण करते हैं और अपनी ही आत्मा को गिराते हैं।

# शिक्षा

## सच्ची शिक्षा

मित्रो! शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे गरीबो का हित हो। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को समझे, उसे विकसित करे और धीरे–धीरे उसका दायरा विशाल से विशालतर होता चला जाये। शिक्षा का फल यह नहीं है कि शिक्षा पाया हुआ व्यक्ति निर्बलो अशिक्षितो गरीबो का भार रूप बने। अपनी विलासिता की वृत्ति मे वृद्धि करके दूसरो को चूसे। जिस शिक्षा की बदौलत गरीबो के प्रति स्नेह, सहानुभूति और करुणा का भाव जाग्रत होता है, जिससे देश का कल्याण होता है और विश्वबन्धुता की ज्योति अन्त करण मे जाग उठती है वही सच्ची शिक्षा है।

## आधुनिक शिक्षा और उसका दुष्परिणाम

भारत मे शिक्षा की बहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं रहते। वे गुलामी के लिए तैयार किये जाते हैं और गुलामी मे ही अपने दिन व्यतीत करते हैं। उनका अपनापन अपने तक या अधिक से अधिक अपने सकीर्ण परिवार तक ही सीमित रहता है। उससे आगे की बात उनके मस्तिष्क में प्राय कभी आती ही नही है। वे अपने को समाज का एक अग मानकर समाज के श्रेय मे अपना श्रेय एव समाज के अमगल मे अपना अमगल नही मानते। समाज मे व्यक्ति का वही स्थान है जो विशाल जलाशय मे एक जल–कण का होता है। जल–कण जलाशय से अपने–आप को भिन्न माने तो क्या ठीक होगा? इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जब सामाजिक भावना से हीन हो जाता है अपनी सत्ता स्वतन्त्र और निरपेक्ष समझने लगता हे तब समाज का उत्थान रुक जाता है राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। ऐसे लोगो से विश्वसेवा की आशा ही क्या की जा सकती है?

पहले यह नियम था कि पहले शिक्षा पीछे स्त्री मिलती थी। प्रत्येक बालक को ब्रह्मचर्यमय जीवन व्यतीत करते हुए विद्याभ्यास करना पडता था। अब आजकल प्राय पहले स्त्री और पीछे शिक्षा मिलती है। जहा यह हालत है वहा सुदृढ शारीरिक सम्पत्ति से सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान कहा से उत्पन्न होगे?

जैसा कि अभी लिखा जा चुका है, आजकल जो शिक्षा मिलती है उसका जीवनसिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है वह बेकार–सी है, फिर भी वह बडी बोझिल है। विद्यार्थियो पर पुस्तको का इतना अधिक बोझा लादा जाता है कि बेचारे रोगी बन जाते हैं। चेहरे पर ओज नहीं, तेज नही रूखा और पीला चेहरा, धसी हुई आखे, कृश शरीर, गालो मे गड्ढे यही सब विद्यार्थी की सम्पत्ति होती है। युवावस्था मे जब यह दशा होती है, जवानी मे बुढापा आ जाता है तब बुढापे मे क्या होगा, यह विचारणीय प्रश्न है। अक्सर अनेक युवको का बुढापा ही नही आने पाता और वे विधवा की सख्या मे एक वृद्धि करके चल बसते हैं।

आप लोग गुरुकुलो और विद्यालयो की प्रशसा करते हैं समय–समय पर उनके सचालन के लिए आर्थिक सहायता भी देते हैं पर अगर आप सचमुच ही उन्हे कल्याणकारी समझते हैं तो उन सस्थाओ मे अपने बालको को प्रविष्ट क्यो नही कराते? प्राय गरीबो के ही बालक उन सस्थाओ मे क्या हैं? अपने लडको को पढाने के लिए दूसरी जगह भेजे और दूसरो के लडको के लिए इन्हे अच्छी बतावे, यह कोनसा न्याय है? ऐसी स्थिति म ये सस्थाए अच्छी केसे मानी जाएगी, और इनमे पर्याप्त धन भी कहा से आएगा?

## शिक्षा

अर्थ काम, धर्म – इन तीनो को साथ लेकर शिक्षा चलनी चाहिए। दो को भुलाकर एक को ही सामने रखने से जीवन सम्पन्न नही बन सकता। धर्म–शिक्षा का होना अनिवार्य है, पर वह ऐसी न हो जिससे भूखा मरने का समय आ जाय ओर धर्म–शिक्षा के प्रति जनता म कुत्सा का भाव उत्पन्न हो जाय। धर्म अन्याय के आचरण का विराध करता हे लेकिन गृहस्थो के लिए न्याययुक्त आचरण स धनापार्जन का निषध नही करता। इसी प्रकार काम भी अर्थ आर धर्म का विरोधी न हा तथा अर्थ धर्म ओर काम म बाधक नहीं होना चाहिए।

## शिक्षा का प्रचार

आप जितना खर्च विवाह–शादिया म करते हैं उतना न करके उसमें कमी करके वह रकम ज्ञान–प्रचार म शिक्षा के विकास मे लगावे तो [illegible]

महत्त्वपूर्ण काम हो जाय? सुना है, सेठ जमनालालजी बजाज ने, जो लाखो की सम्पत्ति के अधिकारी थे, अपनी पुत्री का विवाह सिर्फ रु 50/— मे ही सम्पन्न कर दिया था। आप लोग विवाहो मे कितना खर्च करते है? अगर आप विवाहो मे अनावश्यक खर्च न करे और उसके बदले शिक्षण—सस्थाओ का पोषण करे, जिनके छात्र चारो ओर घूम कर धर्म—प्रचार करने के योग्य हो, तो सघ और धर्म का कितना लाभ हो सकता है? ऐसा करने से समाज अशिक्षित कहलाने के बजाय शिक्षित कहलाने लगेगा। किसी भी समाज के सभी लोग पूर्ण शिक्षित नही होते लेकिन थोडे—से लोग यदि उच्च श्रेणी के शिक्षित होते हैं तो उस समाज की लाज रह जाती है।

आज अक्षरज्ञान को अत्यधिक महत्त्व दिया जा रहा है और इसी कारण पुस्तको के ढेर के ढेर पढाये जाते हैं। पर प्रश्न यह है कि क्या मात्र अक्षरज्ञान जीवन को स्वाधीन एव क्षमतायुक्त बनाने मे समर्थ है? निरे अक्षरज्ञान से जीवन परावलम्बी बन रहा है, यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है जीवन की परतत्रता का प्रधान कारण शिल्पकला की शिक्षा का अभाव है जीवन को स्वतन्त्र बनाने मे शिल्पकला की शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकत है। और परतत्रता के बन्धनो से मुक्त करने वाली विद्या ही सच्ची विद्या है

**सा विद्या या विमुक्तये।**

जीवन परतन्त्र न बनने पावे, इस उद्देश्य से नीतिकारो ने 72 कला के शिक्षण का विधान किया है। इन 72 कलाओ मे सभी कलाओ का समावे हो जाता है। जो पुरुष 72 कलाओ की शिक्षा पाया होगा वह क्या पराया मु ताकेगा? नहीं। वह स्वतत्रजीवी होगा। जो विद्या जीवन को परतन्त्र बना है वह विद्या वास्तव मे विद्या ही नही है।

आजकल जिसे विद्या कहा जाता है वह विद्या प्राप्त करके भले थोडे वकील या डाक्टर बन जावे, पर यह तो कदापि नही कहा जा सक कि यह विद्या परतन्त्रता के बन्धन काटने वाली और स्वतन्त्रता का स्व चखाने वाली है। यही कारण है कि आज अक्षरज्ञान के साथ शिल्पशिक्षा आवश्यकता अनुभव की जा रही है। वास्तव मे मानसिक शिक्षा के स शारीरिक—औद्योगिक शिक्षा की भी आवश्यकता रहती है। अक्षरात्मक शिक्ष के साथ शिल्पशिक्षा होने से सरलतापूर्वक जीवन—निर्वाह हो सकता है स्वतन्त्रता के साथ जीवन—व्यवहार चलाया जा सकता है।

**शिक्षक**

समाज मे शिक्षक का स्थान बहुत ऊचा है। शरीर मे मस्तिष्क का स्थान है वही स्थान समाज मे शिक्षक का है। शिक्षक विधाता है निर्माता

लेकिन खेद है कि आज शिक्षक की प्रतिष्ठा और पदमर्यादा कायम नहीं रही है। आज शिक्षक को नौकर समझा जाता है और शिक्षक स्वयमेव अपने को नौकर समझने लगे हैं।

पहले विद्या का विक्रय नहीं होता था। आज वह हो रहा है। इसी कारण विद्यार्थी को पढने मे और शिक्षक को पढाने मे प्रगाढ रुचि एव प्रीति नहीं होती। इसका परिणाम यह आता है कि पठित विद्या यथायोग्य फलदायिनी नही होती।

विद्या ग्रहण करने के लिये विनय की और विद्यादान के लिए प्रेम की आवश्यकता है। विनय के बिना विद्या ग्रहण नहीं की जा सकती और प्रेम के बिना वह दी नही जा सकती। आज न तो छात्रो मे अध्यापको के प्रति पर्याप्त विनयभाव दृष्टिगोचर होता है, न अध्यापको मे छात्रो के प्रति प्रेमभाव ही पाया जाता है।

जो विद्यार्थी, शिक्षक की सेवा या विनय नहीं करता वरन् अवज्ञा करता है, वह अपने भाग्य को दुर्भाग्य बनाता है।

## गदी पुस्तके

शिक्षा का विषय स्वतन्त्र है और उस पर यहा विस्तार पूर्वक विवेचन नहीं किया जा सकता। अतएव शिक्षा पद्धति की चर्चा न उठाते हुए विद्यार्थियो के हाथ मे आने वाली पुस्तको के सबध मे ही दो शब्द कहते हैं। विद्यार्थिया के हाथ मे मन बहलाने के लिए प्राय उपन्यास और नाटक आते हैं। किन्तु बहुत–से उपन्यास और नाटक ऐसे क्षुद्र लेखको द्वारा लिखे गये हैं जिनम कुत्सित भावनाओ को जाग्रत करने वाली सामग्री के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। जब कभी ऐसी पुस्तक अनजान मे हमारे हाथ आ जाती है तब उसे देख कर दिल दहलने लगता है यह सोचकर कि ऐसी जघन्य पुस्तक विद्यार्थी समाज का कितना सत्यानाश करती होगी। इन पुस्तको के भावा को देखकर हृदय म सताप का पार नही रहता।

प्यारे विद्यार्थिया! अगर तुम अपना जीवन सफल और तेजोमय बनाना चाहते हो तो ऐसी पुस्तका को कभी हाथ मत लगाना अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी म मिला दगी।

## दूषित शिक्षा पद्धति

अगर तुम अपन अनुभवी शिक्षका स अपन लिए सत्साहित्य का चुनाव करा लोग तो तुम्हारा बडा लाभ होगा। इसस तुम्हार [illegible] की सम्भावना नही रहगी। तुम्हारा मस्तक गन्दगी का [illegible]

आजकल की शिक्षा की ओर जब दृष्टिपात करते हैं, तब बडी निराशा होती है। आधुनिक शिक्षा पद्धति खोखली नजर आती है। शिक्षा का ध्येय जीवन निर्माण अथवा चरित्र गठन होना चाहिए। **ज्ञान भार क्रिया बिना।'** अर्थात् चरित्रहीन ज्ञान जीवन का बोझ है। आज शिक्षा के नाम पर यही बोझ लादा जा रहा है। आधुनिक शिक्षा पद्धति इतनी दूषित हो गई है कि उसमे चरित्र का कोई स्थान ही नहीं प्रतीत होता। यही कारण है कि हमारे देश की दुर्दशा हो रही है।

# राजप्रकरण

## राजनीति

आज विश्व मे जो राजनीति प्रचलित है, उसका मुख्य आधार छल–कपट है। राजनीतिज्ञो की धारणा है कि बिना चालबाजी किए राजनीति मे सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। एक ओर सुलह–सन्धि की बाते की जाती हैं और दूसरी ओर हिसात्मक आक्रमण की तैयारिया चालू रहती हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को भुलावे मे रखकर मैत्रीपूर्ण सबध बनाये रखने की पुकार मचाता हे ओर दूसरी ओर परिस्थिति अनुकूल होते ही उस पर हमला बोल देता है। तात्पर्य यह हे कि इस समय की राजनीति न्याय या प्रामाणिकता की सर्वथा उपेक्षा करती हुई मायाचार के जाल मे जकडी हुई है। मगर इससे दुनिया मे घोर अशाति है। कोन मित्र हे ओर कोन शत्रु है? कोन समय क्या गुजरेगा इस बात का ठीक–ठीक पता न लगा सकने के कारण प्रत्येक राष्ट्र का ओर प्रत्येक राजनीतिक दल का प्रत्येक क्षण नाना प्रकार के कपट–जाल के निर्माण मे ही लग रहा हे। कपट–जाल की उलझने बढती जा रही हैं ओर उनको बढाने मे घोर प्रतिस्पर्धा हो रही हे। जो छल–कपट मे जितना अधिक कुशल हे वह राजनीति म उतना ही उस्ताद माना जाता है।

समस्त विश्व छलनीति का शिकार हो रहा हे। पारस्परिक अविश्वास की मात्रा इतनी अधिक बढ गई हे कि अगर कोई अन्तःकरण से सच्ची सद्भावना प्रदर्शित करता हे तो उस पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। उसके विषय म भी यही सोचा जाता हे कि न जाने किस गूढ अभिप्राय से वह एसी बात कह रहा हे? इस प्रकार सर्वत्र अविश्वास सर्वत्र असतोष और शकाशीलता क साम्राज्य म कोन सुख की सास ले सकता है?

इसके अतिरिक्त जो कपटनीति से काम लेता है उसकी नीति भी कभी–न–कभी पराजय के रूप मे परिणत हुए बिना नहीं रह सकती।

अपने कपट का आप ही शिकार बन जाता है। प्राय देखा गया है कि जो समूह अपने विरोधियो के साथ छलनीति का प्रयोग करता है, वह अन्त मे आपस मे एक-दूसरे के साथ भी वैसा ही व्यवहार करके समूह की शक्ति को नष्ट कर डालता है।

**राष्ट्र का आदर्श**–कुटुम्ब का स्वामी जितना विकास चाहता है उसकी अपेक्षा देश का राजा अधिक विकास चाहता है। इसी प्रकार कुटुम्ब के स्वामी की जय-विजय मनाने की अपेक्षा देश के स्वामी की जय-विजय अधिक विस्तृत जय-विजय है। इस तरह कुटुम्ब के स्वामी की जय-विजय की अपेक्षा देश के अधिपति राजा की जय-विजय मनाना अधिक उदारतापूर्ण है, फिर भी राजा की जय-विजय भी विशुद्ध नही है, अपूर्ण है। राजा अपने विकास के लिए, अपने विजय-लाभ के लिए दूसरो का विनाश भी चाहता है। वह दूसरे को हानि पहुचाना चाहता है। अतएव एक राजा की विजय समष्टि की विजय नही है। जिस विजय का मूल्य अन्य की पराजय है, वह केवल विशुद्ध विजय नही कहला सकती। सच्ची विजय मे किसी के पराजय की कामना नहीं हो सकती। वहा तो समष्टिगत कल्याण की चिन्ता की जाती है। अतएव किसी एक राष्ट्र का लाभ जब वह अन्य राष्ट्र को हानि पहुचा कर प्राप्त किया जाता है तो अनर्थ का कारण बनता है। इससे राष्ट्रो मे समष्टि की भावना उत्पन्न नही होने पाती। प्रत्येक राष्ट्र अपने-आप को सुखी और समृद्ध बनाना चाहता है। जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का खून चूसकर स्वय मोटा बनना चाहता है तो विश्व मे शान्ति कैसे हो सकती है? आज यही अशुद्ध राष्ट्रीयता विश्व मे विप्लव मचाए हुए हे। राष्ट्रो मे परस्पर जो प्रतिस्पर्धा चल रही है एक-दूसरे को अपना भोग बना लेने के लिए जो भागीरथी प्रयत्न कर रहा है एक को निर्बल बनाकर दूसरा सबल बनता जा रहा है, सो क्या इससे जगत् सुख-शाति पा सकेगा? कदापि नहीं। यह प्रतिस्पर्धा और स्वार्थलिप्सा से दूषित राष्ट्रीयता ही राष्ट्रो के सत्यानाश का कारण बन जायगी। अतएव ससार के समग्र राष्ट्र जितनी जल्दी हो, इसका परित्याग करके शुद्ध राष्ट्रीयता की उपासना करेगे तो शान्तिलाभ कर सकेगे।

शुद्ध राष्ट्रीयता क्या वस्तु है? उसकी उपासना किस प्रकार होती है? इस सबध मे यहा इतना कहना पर्याप्त होगा कि जिस राष्ट्रीयता मे एक राष्ट्र का सहायक और पूरक रहता है, जिसमे प्रतिस्पर्धा के बदले पारस्परिक सहानुभूति की प्रधानता होती है जहा विश्व-कल्याण के प्रयोजन से राष्ट्रीय नीति का निर्धारण होता है वही शुद्ध राष्ट्रीयता है। जैसे शरीर का प्रत्येक अग

दूसरे अग का पोषक है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व शरीर का पोषक होना चाहिए। इस नीति पर जगत् के राष्ट्र अमल करेगे तभी शान्ति होगी। मानव–समाज का मेरे विचार से यही सर्वश्रेष्ठ सामाजिक आदर्श है। यही समाजवाद का चरम रूप है। इसी से स्थायी शाति और बन्धुत्व भावना की स्थापना की जा सकती है।

## स्वदेशीय राजा–

जो राजा अपने ही देश मे जन्मता है, उसका अपनी प्रजा के साथ गाढा सबध होता है। उसके विरुद्ध जो राजा दूसरे देश मे जन्मा हो और किसी दूसरे देश पर शासन करता हो, उसका उस देश की प्रजा के साथ घनिष्ठ सबध नही रहता। स्वदेशोत्पन्न राजा मे अपनी प्रजा के प्रति जिस आत्मीयता की सम्भावना हो सकती है वह विदेशी राजा मे नही। जो राजा हजारो मील की दूरी पर उत्पन्न हुआ है, हजारो मील पर जिसका पालन–पोषण हुआ है, हजारो मील दूर निवास करता है, वह उस देश के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नही हो सकता। ऐसे राजा द्वारा शासित देश की कैसी दुर्दशा होती है यह समझना कठिन नहीं है। भारतवर्ष इसका उदाहरण है।

राजा–प्रजा की रक्षा करने के कारण ही कोई राजा कहला सकता है। जो व्यक्ति राजा हो करके भी गरीबो के धन–प्राण का अपहरण करता है गरीब प्रजा को सताता हे वह कुशील हे। कुशील राजा गरीब प्रजा की रक्षा करने के बदले उसे सताता हे, जो लोग राजा को नमन करते हैं उन लोगो की रक्षा का भार उस पर आ जाता है। जो राजा अपने इस महान उत्तरदायित्व की परवाह नही करता वह राजा नही लुटेरा है। वह राजभक्ति का पात्र नही हो सकता।

## राजा–प्रजा का कर्तव्य

प्रजा को विगाडना राजनीति नही है। राजा वही कहलाता है जो प्रजा की सुव्यवस्था करे। जो राजा प्रजा की सुव्यवस्था नही करता और प्रजा को कुव्यसनो मे डालता हे जो अपनी आमदनी वढाने के लिये आबकारी जैसा प्रजा के स्वास्थ्य का नष्ट करने वाले विभाग स्थापित करता है फिर भी प्रजा अगर चुपचाप वेठी रहती हे तो समझना चाहिए कि वह प्रजा कायर है। प्रजा के हित का नाश करने वाली बात कानून के द्वारा न रोकने वाला राजा राजा कहलाने योग्य नही है।

## राजा–प्रजा का सबध

राजा और प्रजा के मधुर सबध के समय राजा [illegible]
से प्रजा की सुख–शान्ति के लिये प्रजा के अभ्युदय [illegible] करता था

वह प्रजा के सुख को ही राज्य की सफलता की कसौटी समझता था। उसके कार्यों का मुख्य और एकमात्र ध्येय होता था कि प्रजा किस प्रकार से अधिक सुखी, समृद्ध और सम्पन्न हो। प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रधान कर्तव्य था। राजा जब इस प्रकार का बर्ताव करता था, प्रजा का अपने को सेवक समझता था, तब प्रजा भी सब प्रकार से राजा की सेवा के लिये तैयार रहती थी। आज ये सब बाते कहने–सुनने के लिये रह गई हैं। आज राजा स्वार्थान्ध होकर प्रजा को चूसना चाहता है इसलिये प्रजा राजा का अन्त करने का उद्योग कर रही है। दोनो एक–दूसरे के विरोधी बन गये हैं।

### मातृभूमि की महिमा

अमेरिकन डाक्टर थॉर एक आध्यात्मिक विद्वान् था। एक बार वह अपने शिष्यो के साथ जगल मे गया। वहा उसके शिष्यो ने थॉर से पूछा–स्वर्ग की भूमि अच्छी है या यहा की भूमि? थॉर ने उत्तर दिया – जो भूमि तुम्हारा बोझ सहन कर रही है, जिस भूमि के उपादानो से तुम्हारे शरीर का निर्माण हुआ है, उसे अगर स्वर्ग की भूमि से हल्की समझते हो तो उस पर पैर धरने का भी तुम्हे अधिकार नही है।

इस प्रकार जिस भूमि से तुम्हारा अपरिमित कल्याण हो रहा है, उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुणगान करने रहना एक प्रकार का व्यामोह ही है।

**जननी जन्मभूमिश्च स्वगादपि गरीयसी।**

**भारत–द्रौपदी**–यह भारत भूमि द्रौपदी है। इसका वैभव, इसकी उत्तमता आदि सभी बाते अवर्णनीय हैं। जिन्होने देश–देश के प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का अवलोकन किया है, उनका कथन है कि भारत के समान दूसरा देश नही है। दूसरे देशो मे गगा–यमुना सरीखी लाभदायक नदिया और हिमालय जैसे विशाल और गगनचुम्बी पर्वत नहीं हैं। बडे–बडे महात्मा, ऋषि–मुनि बडे–बडे दार्शनिक और बडे–बडे विद्वान् जैसे और जितने भारत मे हुए है वैसे अन्यत्र नहीं हुए। यह देश शस्त्र–बल से परास्त नही हो सकता था इसलिए इस देश के वस्त्रो का अपहरण किया गया, जिससे वह पराजित हो जाय।

वस्त्र छीनने के लिए भारतीयो पर कैसे–कैसे अत्याचार किये गये है, यह इतिहास से प्रकट है। वस्त्रो का अपहरण करने के लिए भारतीय कारीगरो के अगूठे कटवाये गये और उन्हे तरह–तरह से धोखा दिया गया। इस प्रकार से अनुचित और घृणित उपायो से यहा के वस्त्र छीने गये और जबरदस्ती दूसरे देशो का कपडा यहा वालो के गले मढा गया है।

इस प्रकार विदेशी दु शासन ने भारतभूमि रूपी द्रोपदी को नगी करने के लिए अनेक उपाय किये। लेकिन यहा तपस्या का न जाने कितना ओर कैसा तेज है। जिसके प्रवाह से यह नग्न नही हो सकी।

## बूढा भारत

बूढा भारत गर्व के साथ कहता है – मैं आर्य प्रजा का जनक पुरातन गौरव–गरिमा से मडित देश हू। मुझे नगा बनाने की विदेशियो ने कितनी ही चेष्टाए की हो, मेरे वृहत् भण्डार मे से विदेशी कितनी ही सम्पत्ति क्यो न लूट ले गये हो, फिर भी मैं सदा के लिए दरिद्र और नगा नहीं हुआ हू। केवल दस वर्ष तक ही अगर हमारे यहा की गौए न मारी जावे, मेरा कच्चा माल बाहर न भेजकर पक्का माल बाहर से न मगाया जावे तो फिर वही सुवर्णकाल का भारत बन जाऊगा। मैं शीघ्र ही ससार के समुन्नत से समुन्नत किसी भी देश से प्रतिस्पर्धा मे बाजी मार लूगा।

## मातृभूमि का ऋण

आपने इसी भारत–भूमि पर जन्म ग्रहण किया है। इसी भूमि पर आपने शेशव–क्रीडा की है। इसी भूमि के प्रताप से आपके शरीर का निर्माण हुआ है। हस ने मानसरोवर से जो कुछ प्राप्त किया है उससे कही बहुत अधिक आपने अपनी जन्मभूमि से पाया है। अतएव हस पर मानसरोवर का जितना ऋण है, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक ऋण आपके ऊपर अपनी जन्मभूमि का हे। इस ऋण को आप किस प्रकार चुकायेगे?

आपका यह शरीर भारत म बना है या किसी विदेश मे? भारत म।

फिर आपने भारत को क्या बदला चुकाया हे? विलायती वस्त्र पहनकर विलायती सेट लगाकर, विलायती वेषभूषा धारण करके ओर विलायती भावना को अपना कर ही क्या आप अपनी जन्मभूमि का ऋण चुकाना चाहते हैं? ऐसा करके आप कृ कृत्यता का अनुभव करते हैं?

## पराया कौर न खाओ

सुना जाता हे कि भारतीया की देनिक आमदनी का ओसत पा। दो आने प्रति मनुष्य हे। यदि प्रत्यक आदमी इतन ही म काम चला तो सब को सबको बराबर भोजन आदि मिलता रह सकता हे। अगर कोई आदमी साढे तीन आना खा जाता हे ता वह एक आदमी को भूखा मारता है या नहीं? जो व्यक्ति इसस जितना ही अधिक भोजनादि का व्यय बढाता है वह उतने ही अधिक आदमिया का भूख मारन का दोषी सिद्ध होता है। सुनते हैं हमारे यहा के अनक रईस ता दो रुपया प्रतिदिन चुरुट और सिगरट म ही फूक देते हैं।

भला यह कैसी व्यवस्था है? जिस समाज मे इतना वैषम्य भरा है, वह समाज कब तक सुख चैन से सो सकेगा?

जीवित रहने के लिए खाने वाला विवेकी पुरुष ऐसा व्यवहार नही कर सकता। उसे जीवन निर्वाह के लिए सादा और सात्त्विक भोजन चाहिए। उसकी पूर्ति वह अपने हिस्से की आमदनी से ही पूर्ण कर सकता है। इतने के लिये दूसरो के मुख का कौर छीनने की आवश्यकता नही है।

**स्वतन्त्रता**

स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं किन्तु जो लोग आकाश मे स्वैरविहार करने की तरह केवल लम्बे–चौडे भाषण ही करना जानते हैं, उनसे परतन्त्रता का जाल कट नहीं सकता। परतन्त्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाला किसान ही काट सकता है।

**सत्याग्रह**

सत्याग्रह के बल की तुलना कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने मनुष्य–शक्ति तो क्या, किन्तु देवशक्ति भी हार मान जाती है। कामदेव श्रावक पर देवता ने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिये किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर केवल सत्योपार्जित आत्म–बल से ही उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया था।

प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी सत्याग्रह का महत्त्वपूर्ण दृष्टात है। प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी। इसलिए उस पर कितने ही अत्याचार किये गये लेकिन अन्त में सत्याग्रह के सामने अत्याचारी पिता को ही परास्त होना पडा। बहुत–से लोग अत्याचार को मिटाने के लिए अत्याचार से ही काम लेते है। अत्याचार से अत्याचार चाहे एक बार मिटता हुआ–सा दिखाई भी दे परन्तु वास्तव मे वह निर्मूल नही होता। समय पाकर वह मिटा हुआ अत्याचार भयकर रूप से ज्वालामुखी की तरह फटकर बाहर निकल आता है और उसकी लपटे प्रतिपक्षियो का नाश करने के लिये पहले से भी ज्यादा उग्रता से लपलपाने लगती हैं। अतएव अत्याचार को अत्याचार से नाश करने का विचार निरर्थक है। अत्याचार से न तो अत्याचार भली प्रकार मिटता है न ससार मे शाति ही फैलती है। इसका वास्तविक उपाय सत्याग्रह ही है। क्योकि सत्याग्रह मे दूसरे के नाश का हेतु नही रहता, किन्तु उसे सधारने का हेतु रहता है।

अत्याचार का प्रभाव केवल शरीर पर पडा करता है, मन पर नही और जब तक मन पर प्रभाव न पडे, तब तक जिस कार्य के लिये अत्याचार किया जाता है, उस कार्य मे पूर्णतया और स्थायी सफलता प्राप्त नहीं होती। लेकिन सत्याग्रह का प्रभाव मन पर पडता है और मन सारे शरीर का राजा है। इसलिए सत्याग्रह द्वारा जो सफलता प्राप्त होती है, वह स्थायी और शातिप्रद होती है।

सत्याग्रह एक महाशस्त्र है। इसका प्रयोग अत्याचार पर रामबाण–सा अचूक होता है। लेकिन प्रयोग करने के पहले प्रयोग करने वाला अपने दुर्गुणो को दूर करके अपने पर ही सत्याग्रह का पूरा प्रयोग कर ले। इसमे विजयशाली होने पर उसका प्रभाव सब प्राणियो पर ही नही किन्तु जड पदार्थों पर भी पडे बिना नही रहे। सत्य–पुरुष के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है, विष अमृत बन जाता है और अस्त्र–शस्त्र फूल–से कोमल हो जाते हैं। जब इतना हो जाता है तो क्रूर प्राणियो की क्रूरता दूर होने मे सन्देह ही क्या है? इसके विपरीत अर्थात् अपने दुर्गुणो को दूर किए बिना केवल दूसरो को दबाने के लिए जो सत्याग्रह किया जाता है वह सत्याग्रह दुराग्रह हो जाता है और स्वय चलाने वाले का ही नाश कर देता है। ऐसे भी अनेक उदाहरण विद्यमान हैं।

भगवान महावीर ने सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ही ऊपर कर लिया था। इससे वे चण्डकौशिक जैसे विषधर सर्प के स्थान पर लोगो के मना करते हुए भी निर्भयतापूर्ण चले गये। उस चण्डकोशिक ने जिसकी दृष्टिमात्र से ही जीवो को मृत्यु का आलिगन करना पडता था भगवान महावीर को अपने भयकर विषैले दातो से काटा भी लेकिन सत्य के प्रताप से वह विष भगवान की किचत्मात्र भी हानि न कर सका। उलटे चण्डकोशिक की तामसी प्रकृति भगवान महावीर की सात्त्विक प्रकृति से टकरा कर शात हो गई और भगवान से बोध पाकर वह कल्याणमार्ग का पथिक बना।

## असहयोग

जिस प्रकार धर्म–सिद्धान्त के लिए मनुष्य का असहयोग करना आवश्यक है उसी प्रकार लौकिक नीतिमय व्यवहारो मे अगर राज्य–शासन की ओर से अन्याय मिलता हो तो ऐसी दशा मे राजभक्तियुक्त सविनय असहकार करना प्रजा का मुख्य धर्म है। वह प्रजा नपुंसक है जो चुपचाप अन्याय का सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नहीं करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती परन्तु उस राजा के नाश का भी हेतु बन जाती है जिसकी वह प्रजा है। जिस प्रजा ने अन्याय के प्रति [illegible] प्रति [illegible]

का सामर्थ्य नही है उसे कम से कम इतना तो प्रकट कर ही देना चाहिए कि अमुक कानून या कार्य हमे हितकर नहीं है और हम उसे नापसन्द करते हैं।

## कानूनभग

राजा के भय से अपकारक कानून को शिरौधार्य करना धर्म का अपमान करना है। धर्मवीर पुरुष राजा के अपकारक कानून को ही नही ठुकराता, पर राजा और प्रजा के किसी भाग द्वारा भी अगर कोई ऐसा कानून बनाया गया हो तो उसे भी उखाड फेकने की हिम्मत रखता है।

## सत्याग्रह न करने से अनर्थ

अन्याय के प्रति असहयोग न करने से बडा भारी अनर्थ हो जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए महाभारत के युद्ध पर ही दृष्टि डालिये। अगर भीष्म और द्रोण आदि महारथियो ने कौरवो से असहयोग कर दिया होता तो इतना भीषण रक्तपात न होता और इस देश के अध पतन का श्रीगणेश भी न होता। अन्याय से असहयोग न करने के कारण रक्त की नदिया बही और देश को इतनी भीषण क्षति पहुची कि सदिया व्यतीत हो जाने पर भी वह सभल न सका।

## भारतीयता

तुम भारत मे जन्मे हो। तुममे भारत का क्षेत्रविपाकी गुण होना स्वाभाविक है। फिर भी तुम अपने रग–ढग खानपान और पहनावे को देखो। तुम भारतीय हो पर भारतीय भाषा क्या तुम्हे प्यारी लगती है? अगर मातृभाषा तुम्हे प्रिय नही है तो इसे दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहा जाय? परदेशी लोग भारत की प्रशसा करे और तुम भारतीय होकर भी भारत की अवहेलना करो यह कुछ कम दुर्भाग्य की बात नही है।

आज भारतीय अनेक लुभावनी विदेशी वस्तुओ पर मुग्ध होकर भारत को अपनी जन्मभूमि को भूल रहे हैं यह नही देख पाते कि दरअसल वे वस्तुए कहा की है? उनका मूल उदगम कहा है? तुम्हे अपने घर का ही पता नही है।

# दुर्व्यसन

## मांसभक्षण, मदिरापान, तमाखू, बीड़ी

### मासभक्षण

शास्त्र मे मासभक्षण की घोर निन्दा की गई है। यह किसे नही मालूम? ऐसी स्थिति मे मासभक्षण के विरुद्ध शास्त्र के प्रमाण उपस्थित करने की आवश्यकता ही नही है।

मासभक्षण उपयोगी है या नहीं? इस बात की परीक्षा अमेरिका मे दस हजार विद्यार्थियो पर की गई थी। पाच हजार विद्यार्थी शाक–फल–फूल आदि पर रक्खे गये और पाच हजार विद्यार्थी मास पर। छह महीने तक यह प्रयोग चालू रहा। इसके बाद जाच की गई तो मालूम हुआ कि जो विद्यार्थी मासाहार पर रक्खे गये थे, उनकी अपेक्षा शाकाहारी विद्यार्थी सभी बातो मे उत्तम रहे। शाकाहारियो मे दया, क्षमा आदि मानवोचित गुण अधिक परिमाण मे विकसित हुए। मासाहारियो की अपेक्षा शाकाहारियो मे बल अधिक पाया गया और उनका मानसिक विकास भी अच्छा हुआ। इस परीक्षा के फल को देखकर वहा के बहुत–से मनुष्यो ने मास खाना छोड दिया।

गाधीजी एक बार विलायत के किसी नगर मे, किसी के घर आमन्त्रित किये गये। वहा उन्होने देखा कि हिन्दुस्तानियो की अपेक्षा यूरोपियन अधिक सख्या मे निरामिष भोजी थे।

अनार्य देश मे आर्य देश के नियमो पर अमल किया जाय और आर्य देश मे आर्य देश के निवासी ही अपने नियमो की अवहेलना करे यह कितनी शोचनीय बात है?

मासाहार मनुष्य के लिए स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? इस बात की भी जाच कर लेनी चाहिए। इस बात की जाच पशुओ [illegible]

जा सकती है। मनुष्य तो बौद्धिक विकास की उस सीमा को भी पारकर गया है, जहा स्वाभाविक और अस्वाभाविक का भेद ही नहीं रहता। उसने विवेक को तिलाजलि दे दी है। वह अस्वाभाविक को स्वाभाविक और स्वाभाविक को अस्वाभाविक मान बैठता है। बेईमानी और झूठ को सत्य का रूप देने से जितनी सफलता बुद्धिशाली वकील पा सकता है, उतनी सफलता पा सकना क्या साधारण बुद्धि वाले के बूते की बात है? यह बुद्धि जब निरर्गला हो जाती है – हृदय और निसर्ग के नियमो के बन्धन से मुक्त हो जाती है तब बैल, गाय, घोडे की तरह भागती फिरती है। उसे भले ही कोई सम्पदा समझे, पर वास्तव मे वह विपदा है।

बेचारे पशु–पक्षी मनुष्यो की भाति बुद्धि के धनी नही हैं। वे पढे–लिखे नहीं हैं। इसलिए उनमे प्रकृति के नियमो को तोडने की हिम्मत नही। इसी कारण प्रकृति के कानूनो की परीक्षा इन पर अच्छी तरह हो सकती है।

पशुओ मे दो दल हैं – एक मासाहारी, दूसरा शाकाहारी अर्थात् घास खाने वालो का दल। मासाहारी दल के पशुओ के नाखून पैने होते हैं, जैसे कुत्ता बिल्ली सिह, चीता आदि के। घास खाने वाले पशुओ मे यह बात नहीं पायी जाती। उसके नाखून पैने नही होते, जैसे गाय, भैंस आदि के। शाकाहारी पशु मनुष्यो के मित्र होते हैं। जैसे गाय घास खाती है और दूध देती है। पर कुत्ता मासभक्षी होने के कारण मनुष्यो की रोटी भी खाता है और काटने से भी नहीं चूकता। घास खाने वाले पशु शान्त होते हैं और मास खाने वाले क्रूर होते हैं।

मासाहारियो की दूसरी पहचान यह है कि उनके जबडे लम्बे होते हैं जबकि शाकाहारियो के गोल होते हैं। गाय और कुत्ते के जबडे ध्यानपूर्वक देखने से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

मासाहारियो की तीसरी पहचान है – चप–चप करके पानी पीना। शाकाहारी होठ टेककर पानी पीते हैं। गाय, भैंस, बन्दर और सिह तथा कुत्ते को पानी पीते देखने से यह भेद भी स्पष्ट मालूम हो जायेगा।

मासाहारी और शाकाहारी जीवधारियो की जो परीक्षा बतलाई गई है उसके अनुसार मनुष्य निर्विवाद रूप से निरामिषभोजी ही ठहरता है। मनुष्य मे मासभोजी प्राणियो के नही अमासभोजी प्राणियो के लक्षण पाये जाते हैं।

कई विद्वान् डाक्टरो ने सिद्ध कर दिखाया है कि घास खाने वाले, मास खाने वाले और अन्न खाने वाले प्राणियो की आते एक–सी नहीं होती। इन सबकी आतो मे भिन्नता पाई जाती है।

बदर के शरीर मे मास को पचाने वाली आत नही है। इस कारण बन्दर कभी मास नहीं खाता – फल पर वह टूट पडता है। जरा विचार करो कि जो प्राणी – बन्दर सिर्फ मनुष्य की शक्ल का है, वह तो मास नही खाता। वह अपनी आतो को पहचानता है। पर मनुष्य कहलाने वाला प्राणी इतना विवेकहीन है कि वह मासभक्षण कर लेता है।

अब पक्षियो की ओर देखिए। क्या आपने कबूतर को कभी कीडे खाते देखा है? कभी नही देखा होगा। और कौवा? वह मास खाता है। तो कबूतर और कौवा को यह पाठ किसने पढाया है। प्रकृति ही उनकी शिक्षिका है।

तोता सिखाने से आपकी भाषा बोल सकता है। वह मास नही खाता। तो जो पक्षी सिखाने से मनुष्य की भाषा बोलता है वह तो मास खाता नही और स्वय मनुष्य मासभक्षण करे, यह कितने आश्चर्य की बात है!

अरे मनुष्य! तू तकदीर लेकर आया है। तकदीर पर भरोसा रख और प्रकृति का कानून मत तोड। क्या मास न खाने वाले भूखे मरते हैं? सचाई तो यह है कि मासाहारी जितने भूख से मरते हैं, शाकाहारी उतने नही। व्यवहार दृष्टि से शाकाहारी सब प्रकार सुखी और मासाहारी दु खी दिखाई देते हैं।

## भोजन

पान का शरीर ओर मन पर अवश्य प्रभाव पडता है। सात्विक भोजन करने से सतोगुणमयी प्रकृति बन जाती है राजस भोजन करने से रजोगुणमयी और तामस भोजन करने स तमोगुणमयी प्रकृति बनती है। खाने से पुण्य प्रकृति भी बधती हे ओर पाप प्रकृति भी बधती है। अतएव भोजन के विषय मे शान्त चित्त से स्वच्छ हृदय से विचार करने की आवश्यकता है।

## मदिरापान

शराब के कारण कई राजाओ का खून हुआ है और कई शराबियो ने शराब क नश म अपनी मा–बहिनो क साथ कुकृत्य किया है ऐसा सुना म आया ह। सच बात ता यह हे कि शराब पीन स दिल पर ऐसा [illegible] होता है कि भले–बुर का कुछ भी ध्यान नही रहता। यही क्या आप चुरुट को ही लीजिए। एक अग्रेज को चुरुट पीने का [illegible] शौक था। एक दिन [illegible] चुरुट क जोर स खूब नशा चढ आया। उसकी ओर [illegible] थी। [illegible] उस उसन मारना चाहा पर थोडी दर [illegible] नशा उतर [illegible] पर वह धिक्कार दन लगा। थोडी दर [illegible] फिर चुरुट [illegible] उसन अपनी स्त्री को छुरे स मारने का कुकृत्य [illegible]

जब इतना पतन हो जाता है, तब शराब से कितना होता होगा, इसका विचार आप ही कीजिए। शराब पीने वालो के हाथ से हजारो खून हुए हैं।

जगत का कोई भी धर्म, सम्प्रदाय या मत, जो किसी ऊचे उद्देश्य से कायम हुआ है, मदिरापान का विधान या समर्थन नही कर सकता। जो वस्तु आपा भुला देती है जिसके सेवन से मनुष्य बेभान, पशु से भी बदतर और घृणास्पद बन जाता है, उसके सेवन का अनुमोदन कौन कर सकता है? जिसके चगुल मे पडकर मनुष्य अपने दोनो लोक बिगाड देता है, निकृष्ट से निकृष्ट अवस्था को प्राप्त होता है, जिसके कारण भीषण से भीषण अपराध एव पाप करने मे मनुष्य को सकोच नहीं रहता और जिसकी कृपा से साक्षर भी पूरा राक्षस बन जाता है, वह मदिरा मानसजाति के लिए घोर अभिशाप है, बुरी से बुरी बला है और दुरत्न दुर्भाग्य है। मदिरा पीने वाला मदिरा की बुराइयो को समझता हुआ भी उससे बच नही पाता। वह पिशाचिनी की तरह एक बार अपने अधीन करके मनुष्य का सत्त्व चूस लेती है। वह मनुष्य को हडिडयो का ढेर बना डालती है। जीवन को एकदम बर्बाद कर देती है। अब तक न जाने कितने होनहार नवयुवक मदिरा की बलि चढ गये हैं। न मालूम कितनो ने अपनी कीमती जिदगी मदिरा–पान करके बेकार बना डाली है। और यह सब प्रत्यक्ष हो रहा है। मदिरापान के दोष छिपे नहीं रहते। 'भूत वही जो सिर चढ बोले– इस कहावत के अनुसार मदिरा अपने दोषो को चिल्ला–चिल्लाकर प्रकट करती है। फिर भी मनुष्य ऐसा मूर्ख प्राणी है कि सावचेत नही होता।

शराब पीने वालो को अपने हित–अहित का, भले–बुरे का तनिक भी भान नही रहता। न्याय–अन्याय और पाप–पुण्य के विचार शराब की बदबू मे प्रवेश ही नही कर सकते। शराब पीने वालो के हाथ से हजारो खून हुए हैं। दुराचार और व्यभिचार तो उसका प्रत्यक्ष फल है। शराब मे इतनी अधिक बुराइया है कि कोई भी समझदार और विवकेशील पुरुष उनके विरुद्ध अपना मत नही दे सकता।

मदिरा के सब दोषो को जानकर अमेरिका जैसे अनार्य कहलाने वाले देश के निवासियो ने उसका बहिष्कार कर दिया। पर कितने आश्चर्य की बात है कि आर्यभूमि भारतवर्ष मे इसका प्रचार दिनो–दिन बढता जाता है। इसके उपासको की सख्या बढ रही है। यह कैसी उल्टी गगा बह रही है?

ओसवाल जाति ने मदिरा और मास का त्याग किया है, पर सुना जाता है कि अब कई ओसवाल लुक–छिपकर इनका सेवन करने लगे हैं। ऐसे

लोग अपनी जाति के घोर शत्रु हैं। जाति वालो की तरफ से उनके इस कृत्य का तिरस्कार होना चाहिए।

आज विशेषतया अछूत भाइयो मे मदिरापान का दोष बढा हुआ है और बढता जा रहा है। उनके इस दोष को दूर करने का प्रयत्न करो। लडका मूर्ख रहे तो मा–बाप का दोष माना जाता है।

हे अछूत भाइयो! इस बात का विचार करो कि शराब पीना स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? शराब पीना स्वाभाविक होता तो सभी मनुष्य शराबी होते और शराब पिये बिना कोई जीवित न बचता। जिसके बिना जीवन–निर्वाह न हो सके, वही वस्तु स्वाभाविक कहलाती है। पानी के बिना कोई मनुष्य जीवित नही रह सकता, अत उसका पीना स्वाभाविक है। क्या शराब के विषय मे भी यह बात कही जा सकती है,? हम देखते हैं, शराब के बिना भी आज करोडो मनुष्य जीवित हैं, सुखी हैं। हम यह भी देखते हैं कि शराब पीने वालो की हालत बहुत बुरी होती है। शराब के कारण अनेक राजाओ तक का खून हुआ है। शराब ने कभी जोधपुर, बीकानेर और कोटा आदि के राजाओ एव सरदारो के प्राण हरण किये हैं ऐसा एक कवि ने अपनी कविता मे बताया है। इसी कवि ने ओर भी बहुतेरे रईसो के नाम गिनाये हैं, जो शराब के शिकार हुए हैं। इस दुष्ट दारू ने न मालूम कितनो के कलेजे सडाये हैं? न जाने कितने देवी प्रकृति वालो को राक्षसी प्रकृति वाला बना डाला है? कौन जाने कितने आबाद घर बर्बाद कर दिये? दारू की बदोलत असख्य मनुष्य अपने सुखमय जीवन से हाथ धोकर दुखो के पात्र बने हैं?

जिस घर मे शराब पीने का रिवाज है उस घर की दशा देखिये तो कलेजा कापने लगेगा उस घर के स्त्री–बच्चे टुकडे–टुकडे के लिए हाय–हाय करते हैं ओर घर मालिक शराब के चगुल म ऐसा जकड जाता है कि उसका उस ओर लक्ष्य ही नही रहता। वह शराब के नशे म झूमता रहता है। उसे पता ही नही रहता कि शराब के दुष्परिणामस्वरूप उसके धन का उसकी शक्ति का उसके सम्पूर्ण जीवन ओर परिवार का किस प्रकार सत्यानाश हो रहा है?

## तमाखू

डॉक्टरो ने प्रयोग करके यह परिणाम निकाला है कि [illegible] की मात्रा काफी परिमाण म होती है। एक जगह मैंने पढा है कि एक [illegible] की तमाखू का सत्त्व निकालकर सात लडको को दिया जाय तो [illegible] मृत्यु हो जायगी। तमाखू म जो विष होता है डॉक्टरो [illegible] दी है।

वास्तव मे तमाखू अन्यन्त हेय वस्तु है। उसमे मादक शक्ति है, विष है और इसलिए वह बुद्धि तथा स्मरणशक्ति का विनाश करती है, उससे रक्तविकार आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, जो जीवन को खतरे मे डाल देते हैं। मैं जब विचार करता हू, तो मुझे आश्चर्य होता है कि तमाखू मे आखिर क्या आकर्षण है, जिससे आज दुनिया-भर मे उसका दौरदौरा हो रहा है। तमाखू मे मिठास नही है कटुकता है। इन्द्रिया उसे पहले-पहल स्वीकार नहीं करना चाहती। मनुष्य जब तमाखू को भीतर ठूसना चाहता है तब इन्द्रिया प्रबल विरोध करती हैं। छीक के द्वारा, खासी के द्वारा या वमन के द्वारा, अन्दर ठूसी हुई तमाखू को इन्द्रिया बाहर फेक देती हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तमाखू शरीर के लिए अस्वाभाविक वस्तु है। फिर भी मनुष्य मानता नहीं और अपने ऊपर बलात्कार करके तमाखू का सेवन किया करता है। कुछ दिनो तक इन्द्रिया विरोध करके थक जाती हैं और मनुष्य तब स्वच्छन्द होकर शरीर मे तमाखू का जहर घुसेडने लगता है। अन्त मे शरीर तमाखू के विष से विषैला हो जाता है और तब लोग **शरीर व्याधिमदिर**, अर्थात् शरीर रोगो का घर है, यह कहकर अपना रोना रोया करते हैं। कहते हैं आध सेर तमाखू मे इतना विष होता है कि उससे मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। मगर मनुष्य थोडी-थोडी करके सेवन करता है, इसी से तत्काल इतना उग्र प्रभाव नही होता, फिर भी उससे भयकर हानिया होती हैं। तमाखू ज्ञान-ततुओ पर विनाशक प्रभाव डालती है। हृदय को दुर्बल बनाती है। मन को भ्रान्त करके स्मरणशक्ति की जड उखाड फेकती है। यह एक नशीली वस्तु है। इसके नशे मे अनेक बार घोर अनर्थ हो जाते हैं।

इस विषमयी तमाखू के खरीदने मे भारतीयो का लाखो-करोडो रुपया प्रति वर्ष विदेशो मे चला जाता है। जरा अपनी विवेकशीलता का विचार तो करो! एक ओर करोडो आदमी भूख के मारे तडफते हैं और दूसरी ओर करोडो रुपया तमाखू खरीदने के लिए विदेशो मे भेज दिया जाता है। और उस रुपये के बदले मे मिलता क्या है – भयकर क्षति, भीषण विनाश, शरीर शोषण बुद्धिभ्रंश आदि इन सब सौगातो के लिए तुम्हारा धन व्यय होता है। और यह धन गरीबो के हाथ का कौर छीनकर इकट्ठा किया जाता है। इस व्यवहार की कहा तक प्रशसा की जाय? वैश्यो की वणिक बुद्धि भी आज कहा चली गई है?

मित्रो! दूसरो पर दया नही कर सकते तो कम से कम अपने ऊपर दया करो। अपने पैर पर आप कुल्हाडा मत मारो। तमाखू जेसे निन्दनीय पदार्थो

के सेवन से बचने का प्रयास करो। अपनी वृत्ति को सात्त्विक बनाओगे तो जीवन का आदर्श तुम्हे सूझ पडेगा। उस समय तुम्हारा हृदय दया से द्रवीभूत होगा। वह दया तुम्हारा परम कल्याण करेगी। वह सच्ची दया जगत् को आनन्द का धाम बना सकती है। दिखावटी दया से काम नही चल सकता। अन्त करण को करुणामय बनाओ। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

## बीडी

आजकल लोगो की जेब मे बीडी, सिगरेट और दियासलाई रहती है। कई लोग तो बिस्तर पर पडे–पडे ही मुह मे बीडी डाले रहते हैं। बीडी–पान के पश्चात् ही उठते हैं।

प्रात काल ईश्वर स्मरण का अपूर्व समय है। बुद्धिमान पुरुष यह–अमूल्य समय बीडी की धुआधार मे नष्ट नहीं करता। पर जिनके लिए बीडी ईश्वर से बडी चीज है, उनकी बात निराली है।

आप लोग विश्व का कल्याण चाहने वाले हैं। तब अपनी मातृभूमि – भारत का बुरा कैसे चाहेगे? भारत का बुरा चाहने वाला भारतीय सपूत नही कहला सकता। सचमुच भारत की भलाई–बुराई मे अपनी भलाई–बुराई है। भारत का सुख–दु ख अपना ही सुख–दु ख है। अतएव प्रत्येक भारतीय को भारत के सुख–दु ख का खयाल रखना होगा। जिस कार्य से भारत का अकल्याण होता हे उसे त्याग देना भारतीय का प्रथम कर्तव्य है।

बीडी से देश के धन का कितना नाश होता हे जरा हिसाब लगाकर देखिए। भारत की जनसख्या चालीस करोड है। इनम करीब आधी सख्या स्त्रियो की अलग निकाल दीजिए। क्याकि वह प्राय बीडी नही पीती। बचे हुए बीस करोड मनुष्या मे दस कराड को ओर कम कर दीजिए। इसमे बालक आदि गिन लीजिए। शेष दस करोड पुरुष रह। इनम कई–एक ता एसे हैं जिनका बीडी–खर्च तीस रुपया मासिक हे। छह आन प्रतिदिन खर्च करने वाल एक भाई ने मरे समक्ष बीडी का त्याग किया। पर सामान्य रूप से दो रुपया मासिक आसत बीडी–खर्च समझ लिया जाय ता दस कराड मनुष्या का प्रतिमास बीडी खर्च बीस कराड रुपया हाता है। एक वर्ष म यही खर्च दो अरब आर चालीस कराड हा जाता है। इसे हस कर मत टालिए। जरा ध्यान दीजिए। यह हसन का नहीं हृदय को चीर डालने वाला हिसाब है। [illegible] चालीस कराड रुपय किसे कहते हैं? क्या यह उपेक्षणीय रकम है? [illegible] देश म छह कराड मनुष्या का पेट–भर अन्न नहीं मिलता [illegible] क्या साधारण गिनी जा सकती है?

छोटी–छोटी रकम पर डकैती डालने वालो को सरकार पकडती है और सजा देती है। पर इतनी विशाल धनराशि धुआ होकर उड जाती है, इस ओर उसका ध्यान क्यो नही जाता?

यह व्यसन देश रूपी वृक्ष को उदेई – दीमक लगने के समान है। अगर इसका उचित उपाय न किया गया तो देश रसातल मे चला जायगा।

कई लोग कहा करते हैं, साहब, अकेला चना क्या भाड फोड सकता है? मेरे अकेले के किये क्या हो सकता है? अगर मैंने बीडी पीना छोड भी दिया तो कौनसा देश का भारी उपकार हो जायगा?

यह खयाल गलत है या अपनी दुर्बलता को दबाने का बहाना है। अकेला सूर्य सारे देश को प्रकाशित करने मे समर्थ होता है। जो जिस व्यसन के वशीभूत होता है, वह उसका निषेध नही कर सकता। यही नहीं, वरन् वह अपनी मण्डली बढाने की फिक्र मे रहता है। अगर आज एक आदमी भी बीडी पीना छोड देता है तो वह दस दूसरो से भी छुडा सकता है।

मैने सुना है, एक बीडी मे जितनी तमाखू होती है, उतनी तमाखू का सत्त्व निकाल कर सात मेढको को खिलाया जाय तो उनकी मृत्यु हो जाती है। जब एक बीडी मे इतना विष है तो आप दिन–भर मे न जाने कितनी बीडिया पीते हैं और कितना विष अपने उदर मे भरते हैं। यह विष आपकी जीवनी–शक्ति को, आखो के तेज को और आपके बुद्धिबल को कितनी क्षति पहुचाता है? एक बार इस बात पर विचार कर देखिए।

बीडी पीने वालो की पाचनशक्ति मन्द पड जाती है। अन्न पर उन्हे रुचि नही रहती। अन्न पर अरुचि होने से मसालेदार शाको की, चटनियो की और नाना प्रकार के व्यजनो की आवश्यकता होती है जिससे रुचि जाग्रत हो जाय। इसके फलस्वरूप कितने ही नये–नये रोग आते हैं और स्वास्थ्य का अपहरण करते हैं। बीडी पीने वालो का नैसर्गिक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। रक्त उनका दूषित हो जाता है। दात काले पड जाते हैं। मुह से बदबू इतनी निकलती है कि दूसरे से पास बैठा नही जाता। हाथ से भी दुर्गन्ध आने लगती है। यह सब दोष पत्यक्ष दिखाई देते है। फिर भी आश्चर्य है कि लोग बीडी के कीडे बने रहने मे ही आनन्द मान रहे है।

कई लोग कहा करते हैं – हमे दस्त साफ नही होता, कब्जी रहती है। अतएव लाचारी से बीडी पीनी पडती है। मगर यह भी मिथ्या सस्कार है। स्त्रियो को यह बीमारी क्यो नही होती? उनका काम कैसे चलता है? उन्हे बीडी की आवश्यकता नही होती और तुम्हे होती है, इसका क्या कारण है?

# गोपालन और कृषि

## गोपालन

शास्त्र मे लिखा है कि प्राचीन काल मे एक करोड मोहरो का स्वामी एक गोकुल अर्थात् दस हजार गायो का पालन करता था। जिसके पास जितने करोड स्वर्ण–मोहरे होती वह उतने ही गोकुल रखता था। जिस समय भारत मे गौओ का ऐसा मान था, उस समय का भारत वैभवशाली क्यो न होता? गो ऋद्धि–सिद्धि देने वाली मानी गई है। जहा ऋद्धि–सिद्धि देने वाली गोए हो वहा वेभव की क्या कमी?

श्रीकृष्ण मूर्ख नही थे दरिद्र नही थे। फिर भी उन्होने गोए क्यो चराई? उनके गाये चराने का मर्म समझने की चिन्ता किसे है? एक कवि ने कहा हे कि गोवश की रक्षा के लिए ही कृष्ण ने अवतार धारण किया था। हाथ मे लकडी लेकर गोओ के साथ श्रीकृष्ण का जगल म जाना कितना मार्मिक व्यापार हे। पीजरापोल या गोशाला खोली जाती है और चन्दा उगाहकर उनका निर्वाह किया जाता हे। यह उपाय कहा तक कारगर होगा? इस प्रणाली से कव तक काम चलेगा? गोरक्षा का असली और बुनियादी उपाय श्रीकृष्ण ने बतलाया था वही सच्चा और ठोस उपाय है।

आजकल लोगो की गोरक्षा के प्रति उपेक्षा हो गई है। इसी कारण ऋद्धि–सिद्धि देने वाली गो भार–रूप प्रतीत होती है। इस समय गायो पर जितना सकट आ पडा है उतना पहले कभी नही आया था।

जैनशास्त्रो म गो का वहुत ऊचा स्थान दिया गया है। वेदो और पुराणो म भी गो का अत्यधिक सम्मान पाया जाता है। ब्राह्मण लोग गायत्री मत्र का जाप गोमुखी म हाथ डालकर करते है। पर [illegible] जानने वाले कितने मिलेगे?

ऊपर कहा जा चुका है कि गो ऋद्धि–सिद्धि देने वाली है। [illegible] म भी क्या यह कथन सत्य साबित होता है [illegible]

मान लीजिए, एक अच्छी दुधारू गाय अभी सौ रुपये मे मिलती है। आप यह सौ रुपया गाय–खाते नाम लिख देगे। गाय अक्सर दस महीना दूध देती है। इस समय मे आप उस पर दो सौ रुपया खर्च करेगे। तो वह भी उसके खाते लिख लीजिए।

सौ रुपये की अच्छी गाय प्रात काल और सायकाल चार–चार सेर दूध कम से कम देगी। बाजार मे अच्छा दूध चार सेर का बिकता हो तो दस महीने मे कितने का दूध आपको मिलेगा? छह सौ रुपये का दूध आप प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् तीन सौ रुपया खर्च करके आप छह सौ रुपया प्राप्त कर लेते हैं।

दस मास के पश्चात् गाय दूध देना बन्द कर देगी, फिर भी उस पर कुछ खर्च करना होगा, मगर उसके बदले उसके वश की वृद्धि भी होगी। इसके अतिरिक्त जिसके यहा खेती होती है, उन्हे खर्च और भी कम पडता है। इस प्रकार महगाई के जमाने मे भी गाय आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है, कम से कम हानिकारक तो नही ही है। गाय का गोबर ईंधन के काम आता है। गाय का मूत्र वातावरण को ऐसा विशुद्ध रखता है कि उसके प्रभाव से अनेक बीमारिया उत्पन्न नही होती। गोमूत्र के गुण कस्तूरी से भी अधिक माने जाते हैं।

**गौ**–प्राचीन ग्रन्थो मे गाय की महत्ता का खूब बखान किया है। गाय 'गौ' कहलाती है। 'गौ' पृथ्वी का भी नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसीलिए कृष्ण ने गो–रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय का जैसा महत्त्व प्रदर्शित किया है वैसा विश्व के इतिहास मे प्रदर्शित नहीं किया गया। आज गाय का आदर नही हो रहा है, पर प्राचीनकाल के राजा और सेठ अपने–अपने घर मे गायो के झुड के झुड रखते थे। उस समय शायद ही ऐसा कोई घर रहा होगा, जहा गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय गोमाता कहलाती थी और जय गोपाल की ध्वनि स्पष्ट सर्वत्र सुनाई देती थी, अर्थात् गाय पालने वाले की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालन विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवश के ह्रास का कलक मुसलमानो के मत्थे मढते है पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को मा समझकर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओ ने गाय की रक्षा नही की इसी से गोवश नष्ट होता

जाता है। यही नहीं, मैं तो यहा तक कहूगा कि हिन्दू लोग भी किसी–न–किसी रूप मे गोवश के विनाश मे सहायक हो रहे हैं। उदाहरण के लिए वस्त्रो को ही लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक से पहने जाते हैं। क्या गाय की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है? चर्बी के लिए बडी क्रूरता से गायो का कत्ल किया जाता है और उन्हीं चर्बी वाले वस्त्रो को पहनकर लोग कहते हैं – 'हम गोभक्त हैं, गाय हमारी माता है।' धन्य है ऐसे मातृभक्त सपूतो को।

पर यह समझ बैठना कि इससे गायो की हानि हुई है गलत है। इस पद्धति से जहा गोवश को हानि पहुची है वहा मानव–वश को भी काफी हानि उठानी पडी है और पड रही है। दूध मर्त्यलोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है। परिणाम यह है कि लोगो मे निर्बलता और निर्बलता–जन्य हजारो रोग आ घुसे हैं। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट मे जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है।

## गोरक्षा

प्रत्येक हिन्दू गौ को 'गौमाता' के नाम से पुकारता है और उसे श्रद्धाभाव से देखता है। फिर भी उसकी पालना जैसी चाहिए वैसी नही हो रही हे। मानव–समाज पर गाय के अपरिमित उपकार हैं। उसके उपकारो के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए उसे 'गौमाता' सज्ञा दी गई है। इस सज्ञा को सार्थक बनाने के लिए उसके प्रति आज जो उपेक्षा दिखाई जा रही हे उसका दूर होना आवश्यक हे। अमेरिका म भारत की गाय से 120 रतल दूध प्राप्त किया जा रहा है। अमेरिका ने गाय की सेवा करके सचमुच उसके माता विशेषण को सार्थक किया है। अमेरिका क विद्वानो न बडे–बडे निबन्ध लिखकर बतलाया हे कि गाय प्रत्येक दृष्टि स रक्षणीय है। पर गाय को माता कहकर पूजन वाल हिन्दुस्तान म गाय की कितनी दुर्दशा हो रही है? उस पर खचाखच छुरिया चल रही हैं। यह कितनी लज्जा की बात है?

## खेती

भगवान ऋषभदव अपन हाथ स हल न चलात तो आप [illegible] को नीच कार्य समझत और कहत कि अगर हल चलाना [illegible] तो भगवान हल क्यो न चलात? मगर भगवान [illegible] तर्क–वितर्क की जड ही उखाड फकी है।

कुछ लाग अज्ञानवश खती को अनार्य [illegible] प्रज्ञापना सूत्र को निकाल कर दखा जाय [illegible]

धन्धा नही है, वरन् आर्य–धन्धा है। अगर इसे अनार्य–धन्धा ठहराया जायेगा तो लोगो का जीवित रहना कठिन हो जायेगा।

भलीभाति वस्तुतत्त्व को समझे बिना, खेती को आर्य–धन्धा या अनार्य–धन्धा ठहरा देना न्याययुक्त नही है। आप खेती नहीं करते, कारण खेती करने को आप अनार्य–कर्म मान बैठते हैं। इससे विपरीत वास्तव मे जो अनार्य–कर्म है और जिसे आप करते हैं उसे आर्य–कर्म बतला देते हैं। आप अनार्य–कार्य करते हुए भी आर्य बने रहते हैं और कृषको को बिना समझे–बूझे अनार्य ठहरा देते हैं। क्या यह न्याय है? नही।

## कृषि

लोगो ने कृषिकर्म को महापाप और खेती करने वाले को महापापी मान लिया है। पर खेती से उत्पन्न होने वाले अन्न को खाने मे भी पाप मान लिया जाय तो कैसी विडबना खडी होगी? लोग असत्य भाषण, मायाचार, धोखा और जुआ खेलने मे अल्पारम्भ मानते हैं और खेती करने मे महापाप मानते सकोच नही करते। यह उनकी गम्भीर भूल है। खेती मे होने वाला आरम्भ, आरम्भ तो है ही, पर सौदा–फाटका, कूड–कपट जितना पाप उसमे नही है। अगर किसान के हृदय के साथ व्यापारी की तुलना करो तो तुम्हे ज्ञात होगा कि अल्पपापी कौन है और महापापी कौन है? व्यापारी व्यापार मे छल–कपट का आश्रय लेता है पर किसान तो केवल प्रकृति का ही आश्रय लेता है। प्राकृतिक वर्षा हो तो वह अपना जीवन धन्य मानते हैं। वर्षा न हो तो दु ख का अनुभव करते हैं।

## खेती का महत्त्व

आप लोग हल हाकने वाले को हितकारक की निगाह से देखेगे तो फिर भगवान ऋषभदेव को भी हितकारक की दृष्टि से देखना पडेगा। इस युग मे सर्वप्रथम उन्होने ही हल हाका था। जब कल्पवृक्षो से आजीविका का निर्वाह होना सम्भव न रहा और मनुष्य कोई भी कला नही जानते थे, उस समय अगर उन्होने हल चलाकर आजीविका की समस्या हल न की होती तो मनुष्यो की क्या दशा होती? भगवान अनन्त शक्ति के धनी थे। उन्हे जादू के खेल की तरह के कई खेल करने भी आते होगे। अगर भगवान उस समय इस तरह के खेल करते तो कदाचित् उस समय काम चल जाता परन्तु आज भी क्या उसी खेल से आपका निर्वाह हो जाता? नही।

भगवान ने जादू सरीखा खेल करके तत्कालीन मानव–प्रजा का दु ख दूर नही किया। उन्होने पुरुषार्थ करने का उपाय बतलाया और स्वय

हाथ मे हल पकड कर जनता को समझाया – देखो, यह भूमि रत्नगर्भा है। इसमे से रत्न निकालते रहो। उनका कभी अन्त न आएगा।

## चर्खा

चर्खा भारतवर्ष का सुदर्शन चक्र है। इसके द्वारा भारत का बहुत–कुछ उत्थान होना सम्भव है। इस समय आपके समाज मे चर्खे का प्रवेश नई घटना है। कौन जानता है दैवी शक्ति क्या कार्य करना चाहती है? पर इसमे जरा भी सन्देह नहीं कि समाज मे चर्खे का प्रवेश होना शुभ लक्षण है। जब से भारत ने चर्खा छोडा या उसे छोडना पडा, तभी से वह पराधीन है। एक दिन भारत मे यह शक्ति थी कि वह विदेशो को भी कपडा दिया करता था। आज वही अपना तन ढकने के लिए पराया मुह ताकता है।

आप इस देश को अपनी मातृभूमि मानते हैं? अगर यह आपकी मातृभूमि है तो उसके प्रति आपका जो कर्तव्य एव दायित्व है वह आपको समझना चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन किये बिना आप अपनी मातृभूमि के ऋण से मुक्त नहीं हो सकते। अपना कर्तव्य न समझने का फल यह हुआ कि भारत के करोडो मनुष्यो को पेट–भर अन्न नही मिलता पर प्रतिवर्ष साठ करोड रुपयो का कपडा विदेश से आता है और विलास की अग्नि मे स्वाहा कर दिया जाता हे। मातृभूमि के प्रति कर्तव्य निर्धारित करना गृहस्थ के लिये ही नही, साधु के लिए भी आवश्यक हे। मातृभूमि गृहस्थ और साधु, दोनो के लिए हे।

भारत के कपडे न पहनकर, विदेशी वस्त्र पहनना मातृभूमि का द्रोह करना है। क्या कोई माता का द्रोही बनना पसन्द करेगा? क्या दयाधर्मी कहलाने वाला कोई भी पुरुष असख्य प्राणिया के निर्दयी घात से तेयार होने वाले कपडे पहनना पुण्य कार्य समझ सकता हे? पेर से एक चीटी मर जाने पर जिसकी आत्मा काप उठती हे वही धर्मात्मा हजारो प्राणियो के घात से तेयार होने वाले वस्त्रो को परोक्ष की बात कहकर निस्सकोच धारण कर सकता हे? जिस गाय को हिन्दू माता मानते हैं और जो वास्तव मे केवल हिन्दुओ की वरन् समस्त ससार की माता के समान हे उसकी चर्बी भी कपडो मे लगाई जाती हे ऐसे कपडे पहनने मे भी उन्हे घृणा नही आती उन्हे क्या कहा जाय?

याद रखिए यह भारतभूमि भगवान ऋषभदेव की भूमि हे। ऋषभदेव ने इसी भूमि पर जब सारा ससार घोर अन्धकार मे डूबा हुआ था सर्वप्रथम कला कौशल की स्थापना की थी। वस्त्रो की ही बात लीजिए। मनुष्य

मिलो की बदौलत जितने पचेन्द्रिय पशुओ का घात होता है, क्या इतना ऋषभदेव द्वारा प्रवर्तित चर्खे से भी होता है?

यह सत्य सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट होने पर भी लोगो की समझ मे क्यो नही आता? वे चर्खे का महत्त्व क्यो नहीं समझते? इसका कारण धार्मिक भावना का जीवन मे ओतप्रोत न होना ही है।

जिस वस्त्र की बदौलत भारत के निर्धनो को फासी दी जा रही है, उन्हे भूखो मारा जा रहा है, उनकी रोटी छीनी जा रही है, उस वस्त्र को पहनना क्या उचित हो सकता है? अगर आपको धर्म पर सच्चा विश्वास हो तो धर्मगुरु का मना किया हुआ काम आप कदापि न करेगे। अलबत्ता, धर्मगुरु बनाते समय आप गहरा सोच–विचार करले और देखले कि जिसे आप अपना धर्मगुरु बना रहे हैं उसमे वैसी योग्यता है या नही है। जिसे समझ–बूझकर आपने गुरु बना लिया हो वह अगर आपको कुपथ मे जाने से रोकता है, तो आपको मानना चाहिए। यदि आप अपने ही रास्ते पर चलते हैं तो गुरु बनाने का क्या प्रयोजन रहा? गुरु से आपने क्या लाभ उठाया?

**वस्त्र**

तुम लोग शरीर की चमडी को बडी मानते हो या वस्त्रो को बडा मानते हो? अनेक विशिष्ट गुणो वाली चमडी को भूलकर जो लोग वस्त्र के प्रलोभन मे पड जाते हैं वे ठूस–ठूस कर वस्त्र पहनने से चमडी को पहुचने वाली हानि की ओर ध्यान नही देते। वास्तव मे वस्त्र लज्जा की रक्षा के लिये थे और हैं परन्तु लोगो ने उन्हे शृगार की वस्तु बना लिया। शीत न होने पर भी इतने अधिक वस्त्र शरीर पर लादे जाते हैं कि बेचारी चमडी की दुर्दशा हो जाती है। लोग झूठे बडप्पन के लोभ मे फसकर अनावश्यक वस्त्र पहनते हैं। पसीना होता है और भीतर ही भीतर सूखता रहता है। परिणाम यह आता है कि चमडी के विशिष्ट गुण नष्ट हो जाते हैं और सन्तान दिनोदिन निर्बलता का शिकार बनती जाती है।

**अल्पपाप–महापाप**

आज कर्तव्य–अकर्तव्य के विषय मे बडी उल्टी समझ हो रही है। लोगो ने न जाने किस प्रकार अपनी कुछ धारणाए बनाली हैं। बाजार से घी लाने मे पुण्य है और घर पर गाय का पालन करके घी उत्पन्न करने मे पाप है ऐसा कई लोग समझते हैं। मगर विचारणीय यह है कि बाजार का घी क्या आकाश से टपक पडा है? बाजार का घी खरीदने से कितने जानवरो की हिंसा का भागी होना पडता है इस बात पर आपने कभी विचार किया है?

यह सभी जानते हैं कि एक रुपये का जितना विदेशी घी आता है उतने देशी घी के लिए दो रुपये लगते हैं, पर विदेशी घी मे किन–किन वस्तुओ की मिलावट होती है, वह स्वास्थ्य को किस प्रकार बिगाडता है, इस बात का भलीभाति विचार किया जाय तो नफे–टोटे की बात मालूम हो जायेगी।

जिस देश वाले भारतवर्ष से हजारो मन मक्खन ले जाते हैं लाखो मन गेहू ले जाते हैं, वही लोग जब आधी कीमत पर वही वस्तुए लाकर हमे देते हैं तो समझना चाहिए कि इसमे कुछ रहस्य अवश्य है। क्या वे दीवालिया बनने के लिए व्यापार करते हैं?

घर पर उत्पन्न हुए घी से बाजार के घी मे अधिक पाप क्यो है इस प्रश्न पर ऊपरी दृष्टि से विचार मत कीजिए। आप उस शास्त्र पर नजर रखते हुए विचार कीजिए, जो धनुष–बाण बनाने मे घोर आरम्भ–समारम्भ का होना बतलाता है। विदेशी घी तैयार करने के लिए कितने बडे–बडे कारखाने खडे किये जाते है और उसके लिए कितने पशुओ का वध किया जाता है इस बात का जब आपको पूरा पता लग जायेगा तब सहज ही आप जान सकेगे कि थोडा पाप किसमे है और अधिक पाप किसमे है?

बहुत–से भाई कहते हैं कि मैं गाये पालने का उपदेश देता हू। वे कहते हैं महाराज गाये पलवाते हैं, पर मैं क्या उपदेश देता हू, क्या कहता हू ओर किस आधार से कहता हू, इस बात को समझने का वे कष्ट नही उठाते। उन्हे कोन समझाए कि साधु का कर्तव्य जुदा हे ओर गृहस्थ का धर्म जुदा हे। दोनो की परिस्थितिया इतनी अधिक भिन्न हे कि उनका कर्तव्य एक नही हो सकता। साधु कभी सावद्य भाषा का प्रयोग नही करता।

शास्त्र म प्रतिपादित कर्तव्य क्या हे ओर आधुनिक श्राविकाए उसे किस रूप से समझती ह? इस बात का विचार करने स आश्चर्य होने लगता हे। कोई–कोई श्राविका चक्की न चलान की प्रतिज्ञा लती हे। वह समझती है – 'चक्की नही चलाऊगी ता पाप स वच जाऊगी। मगर उसे यह विचार नही आता कि आटा ता खाना ही पडगा फिर वह पाप स कैसे बच जायेगी'

म ता यहा तक कहता हू कि मशीन से आटा पिसवाने की अपेक्षा हाथ स पीसकर खान म कम पाप हाता हे। इसका कारण यह है कि हाथ स पीसने म यतना रक्खी जा सकती हे।

प्राय ताजा रहता है और जीव–जन्तु उतने नहीं पड सकते जितने एक साथ बहुत–से पिसाए हुए मशीन के आटे मे पड जाते हैं। इसके विरुद्ध मशीन मे आटा पिसवाने से हर तरह अधिक पाप होता है। गेहू आदि मे रहे हुए त्रसजीवो की रक्षा नही हो सकती, चक्की मे छिपे हुए जीवो की रक्षा नहीं हो सकती और एक साथ बहुत पिसने के कारण अधिक दिनो तक रहने से आटे मे अनेक जीव पड जाते हैं। इसमे जीवहिसा तो होती ही है साथ ही ऐसा आटा खाने वाले अपना स्वास्थ्य खराव कर बैठते हैं। और कभी–कभी प्राणो से भी हाथ धो बैठते हैं। यह सब पाप किसके सिर है? इस पाप का उत्तरदायित्व अविवेक के कारण चक्की न चलाने की प्रतिज्ञा करने वाली बाई पर पडता है। परन्तु इतना विचार करे कौन? इतनी परवाह किसे है? अगर परिश्रम का त्याग करने से धर्म की आराधना होती है तो इतना सस्ता धर्म कौन न करना चाहेगा? मगर ऐसा निठल्लापन धर्म नहीं हो सकता। धर्म विवेक–पूर्वक कर्तव्यपालन मे है।

बाइया आज सुकुमार बनना चाहती हैं। मजदूरो से काम कराने मे वे अपनी शान समझती हैं। मजदूरिन समय पर न आई तो क्रोध से लाल हो जाती है बेभान हो जाती हैं। कटुक वचन बोलती हैं। मजदूरिन के हृदय को पीडा पहुचाती हैं। स्वय निकम्मी बैठी निन्दा–विकथा मे अपना समय बर्बाद करती हैं।

जरा सावधानी से विचार कीजिए – चक्की चलाने से पाप घटता है या बढता है? पानी लाना, चक्की चलाना रसोई बनाना आदि कामो मे बहिने स्वय जितनी यतना रख सकती हैं, उतनी यतना अबोध मजदूरिन नही रख सकती। क्योकि चटपट काम करके पैसा लेना उसका उद्देश्य होता है। बहिनो! याद रक्खो जल्दी अपना सुधार न कर लोगी तो एक दिन ऐसा आ सकता है, जब मजदूरो के सामने तुम्हे नीचा देखना पडेगा।

## पहले छोटे पापो का त्याग

आज मेरे विषय मे कहा जाता है कि मैं त्याग करने कराने की बात कम करता हू। वनस्पति आदि के त्याग का उपदेश कम देता हू। पूर्ववर्ती आचार्य पूज्य श्रीलालजी महाराज तो इसके लिए बहुत उपदेश देते थे। मेरे विषय मे यह कहा जाता है। पर मै कहता हू – वनस्पति, जमीकन्द आदि के त्याग का उपदेश देना मेरे लिए आनन्द की बात है। परन्तु उसके लिए पात्र भी तो चाहिए। आज मानव–समाज मे बहुत बडे–बडे पाप फूट निकले हैं। ऐसे बडे–बडे पाप पहले नही थे। तब छोटे पापो का त्याग करने से पहले

बडे पापो का त्याग करना आवश्यक है या नहीं? जब बडे पापो की प्रचुरता न थी, तब छोटे पापो का त्याग करना उचित था और जब बडे पापो का प्राचुर्य हो गया है, तो पहले उन्हीं का त्याग करना उचित है। इस समय जमीकन्द और रात्रि भोजन के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाय या पचेन्द्रिय जीवो की घोर हिसा करके प्राप्त की जाने वाली चर्बी लगे हुए वस्त्रो के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाय? मैं जिन बडे पापो का उल्लेख अपने उपदेश मे करता हू, उन्हे आप लोग आज ही त्याग दीजिए। फिर छोटे पापो के त्याग का उपदेश देने मे मुझे असीम प्रसन्नता होगी। बडे–बडे पापो की ओर ध्यान न देकर अपेक्षाकृत छोटे पापो को पहले दूर करने के लिए कैसे कहा जाय?

# विविध विषय

## मानवभव, महिला मण्डल, आन्तरिक युद्ध, स्वावलम्बन, पापगोपन, दुःख–सुख, सेवा,

### मनुष्यता का माप

अमीर लोग मनुष्यता को शायद वस्त्रो और आभूषणो से नापते हैं। अगर मनुष्यता को नापने का यही गज है तो वे मनुष्यता की प्रतिस्पर्द्धा मे बहुत पिछड जावे। इसी से उन्होने यह गज मान लिया है। उनकी निगाह मे वह मनुष्य निरा जगली पशु है, जिसके पास पहनने को कपडा नही और सजने को आभूषण नहीं। मगर बात असल मे उलटी है। जिसके पास मनुष्यता का बहुमूल्य आभूषण है, उन्हें जड आभूषणो की क्या आवश्यकता है? जिन्हे मनुष्यत्व का वास्तविक और सहज आभूषण प्राप्त नही है, वे ही लोग ऊपर से आभूषण लादकर अपने–आप को आभूषित घोषित करते हैं।

### दो मार्ग

तुम ऐसी जगह खडे हो, जहा से दो मार्ग फटते हैं। तुम जिधर चाहो, जा सकते हो। एक ससार का मार्ग है, दूसरा मुक्ति का। एक बन्धन का, दूसरा स्वाधीनता का।

ससार के बन्धन के मार्ग पर चलोगे तो चलने का कभी अन्त ही न आ सकेगा और लक्ष्य तक न पहुच सकोगे। मोक्ष का मार्ग भवभ्रमण का शीघ्र ही अन्त लाता है। शास्त्रकारो ने मोक्षमार्ग पर चलने की प्रेरणा की है।

### शरीर का उपयोग

जो शरीर अरिहतो को गणधरो को, महान् मुनिराजो को और बडे–बडे श्रावको को मिला था वही शरीर आपको मिला है। ध्यानपूर्वक देखो

तो मालूम होगा कि इस शरीर मे कितनी सुन्दरता है। इस शरीर का सदुपयोग किया जाय तो परमात्मा और आत्मा की एकरूपता होने मे देर न लगे।

इस प्रकार के शरीर का मिलना कितना महान् पुण्य का फल है? फिर भी परमात्मा के साथ एकता स्थापित करने मे इसका सदुपयोग न करके निस्सार एव तुच्छ वासनाओ के पोषण मे लगाना कहा तक उचित है?

क्या इस शरीर के विषय मे यह कहना उचित होगा कि जो शरीर कालुक कसाई को मिला था, वही तुम्हे मिला है? अगर यह कहना उचित न हो तो इस बात का ध्यान रखना भी उचित है कि तुम्हारा शरीर कालुक कसाई के समान न बन जाये। पद्मासन लगाकर नेत्रो को नासिका पर केन्द्रित करके ध्यान करो तो इसी शरीर मे जिन–मुद्रा प्रकट की जा सकती है। जब यह शक्य है तो फिर जिनमुद्रा न प्रकट करके राक्षसी मुद्रा प्रकट करना क्या इस उत्तम शरीर का दुरुपयोग करना नहीं है?

इस बात से कोई इनकार नही कर सकता कि मनुष्य–जन्म बडे पुण्य से मिलता है। जो मनुष्य इस अमूल्य देह को पाकर भी व्यर्थ की मोज–शोक मे इसका अन्त कर देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नही कहला सकता। बुद्धिमान मनुष्य, इस देह को पाकर क्षण–क्षण मे अपनी श्रेष्ठ साधना का मन्त्र जपता रहता हे, पर मूर्ख यही समझता है कि मैंने मनुष्य–जन्म पाया है फिर ऐसी देह नहीं मिलेगी इसलिए जो कुछ मोज–शोक करलू वही मेरी है।

**मानव–शरीर**

मानवीय शरीर भोगोपभाग के लिए नहीं, किन्तु तप करने के लिए है। तप की साधना मे ही इस शरीर की महत्ता हे सार्थकता है। मगर यह न भूल जाना कि केवल अनशन ही तप नही हे अनशन तो तप का एक अंश अगमात्र हे। आज कुछ लाग अनशन तप की अवहेलना करते हैं और जो की वर्तमान दुर्बलता को अनशन का ही परिणाम प्रकट करते हैं परन्तु मैं इसके विरुद्ध यह कहता हू कि जेना म जा शक्ति और तजस्विता अवशिष्ट है वह अनशन तप के प्रभाव स ही हे।

मनुष्यता व्यर्थ हो जाती है। इसलिए मैं कहता हू – दुर्लभ मानव–शरीर का सदुपयोग करो।

## मानव जीवन

कुत्ते की बात रहने दो, देव भी मनुष्य के समान नही हो सकता। जितने अवतार–तीर्थंकर हुए हैं, वे सब मनुष्य ही थे। देवो मे से एक भी तीर्थंकर नहीं हुआ। मुसलमानो के सब पैगम्बर भी मनुष्य ही थे। फरिश्ते पैगम्बर नहीं हुए। मनुष्य–जीवन की इतनी बडी महत्ता है। मनुष्य इतना महान् है।

## मानव जीवन की महत्ता

जो लोग भोगो का उपभोग करने मे ही मनुष्य जन्म की सार्थकता समझते हैं वे भी कहते हैं कि मनुष्य जीवन की प्राप्ति दुर्लभ है। जो लोग भोगोपभोग के त्याग मे ही मानव–जीवन का विकास मानते हैं, इसीलिए उनके त्याग का उपदेश देते हैं, वे भी मानव भव को दुर्लभ कहते हैं। उनका कथन यह है कि मनुष्य–भव बारम्बार मिलना कठिन है अतएव अतृप्तिप्रद एव निस्सार भोगो के लिए मूल्यवान मानव–भव गवाना उचित नही है। इस प्रकार मनुष्य–भव की दुर्लभता सर्वसम्मत है, भले ही विभिन्न दृष्टिकोणे से देखा जाय। वास्तव मे इस अनमोल जीवन को पाकर इसे सफल बनाने का विचार अवश्य करना चाहिए।

बहिरात्मा पुरुष भोग भोगने मे ही मनुष्य–जन्म की सार्थकता मानते हैं। उनका कथन है कि 'खाना पीना, सुन्दर वस्त्र पहनना और सुन्दर भवन मे निवास कर विलास करना, मानवजीवन की सार्थकता है। मानव–जीवन पा करके भी ये सब भोग न भोगे तो फिर क्या पशु–जीवन मे ये भोग भोगे जाएगे? क्या पशु जीवन मे सुन्दर वस्त्र आभूषण और सुस्वाद भोजन–पान की उपलब्धि सम्भव है? इसी प्रकार रेलगाडी, स्टीमर एव वायुयान मे बैठकर मनुष्य मौज न करे तो पशु होने पर क्या हो सकेगा? अतएव भोग भोगने मे ही मनुष्य के जीवन की सार्थकता है। इसी मे प्राप्त अवसर का सदुपयोग है।' यह एक पक्ष है।

दूसरा पक्ष भोगो का स्वेच्छापूर्वक परित्याग करने मे ही मानव–जीवन की सिद्धि मानता है। इस पक्ष का समर्थन अध्यात्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष करते हैं। उनका कथन है कि विशिष्ट विवेक से विभूषित असाधारण बुद्धि–धन से सम्पन्न मानव–तन पाकर भी यदि तुमने केवल इतनी ही उन्नति की तो क्या किया? इतना तो पशु–पक्षी भी कर लेते हैं। फिर तुम्हारी उन्नति मे क्या विशेषता रही?

तुम कहते हो, वायुयान मे बैठकर यदि मनुष्य व्योमविहार न करेगा तो क्या पशु–पक्षी करेगे? पर तुमने तो अब वायुयान बनाये हैं और यत्रो की सहायता लेकर आकाश मे विचरण करते हो परन्तु पक्षी स्वतन्त्र रूप से बिना किसी की सहायता लिये ही, आकाश मे स्वछन्द विहार करते हैं।

तुम कहते हो, मनुष्य सुन्दर वस्त्र न पहनेगा तो क्या पशु पहनेगे? पर इधर–उधर से कपास इकट्ठा करके, कपडा बना कर पहनने मे क्या विशेषता है? साधारण जीव, जो अपने शरीर मे से तन्तु निकाल कर अपना जाल बनाते हैं, उसमे तुम्हारे वस्त्र की अपेक्षा अधिक विशेषता है। तुम कपडे पहन कर अकडते फिरते हो, मगर जरा सूक्ष्मदर्शक यत्र से देखो तो सही कि तुम्हारे कपडे मे कितने छिद्र मौजूद हैं?

और मकडी जैसे सामान्य जन्तु के बनाये हुए जाल से अपने वस्त्र का मुकाबिला करो तो मालूम होगा कि उसका जाल कितना सुन्दर और छिद्रहीन है। तब तुम्हारी सारी अकड क्षण–भर मे गल जायेगी।

तुम मनोरम प्रासाद का निर्माण कराने और उसमे रहने मे जीवन की सार्थकता समझते हो, किन्तु मधुमक्षिका ओर चीटी जेसे सामान्य जीव अपने रहने के लिए घोर श्रम करके जो मकान तेयार करते हैं उन्हे देखकर क्या मनुष्य का बोद्धिक गर्व गल नही जाना चाहिए? उनके घरा मे कितनी सुन्दर व्यवस्था होती हे? प्रसूतिगृह अलग, भोजनगृह अलग। कला ओर आविष्कार की दृष्टि से देखो तो मधुमक्षिका तुम्हारी अपेक्षा कही अधिक आगे बढ़ी हुई हे। उसका कला–कोशल देखकर आज का वेज्ञानिक भी चकित रह जाता है। वह अपना घर कलापूर्ण ओर नपा हुआ बनाती हे। यही नहीं वह थोड़े-से ही मोम मे अधिक से अधिक मधु भरने की व्यवस्था कर सकती है।

तात्पर्य यह हे कि जो लोग भोजन वस्त्र मकान आदि के उपभोग मे ही मनुष्य–जन्म को सार्थक मानते हैं वे पशु–पक्षियो से अधिक कुछ भी प्रगति नही कर सकते। मनुष्य–जन्म की सार्थकता आत्मा के उस विकास मे निहित हे जो न केवल क्षुद्र वर्तमान मे ही उपयोगी एव कल्याणप्रद है वरन् जिससे अनन्त मगल साधन होता है।

# महिलामण्डल

## स्त्रियो की उन्नति

स्त्रियो को हीन समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो बैठे हैं। जिस समय भारत उन्नति की चरम सीमा पर पहुचा था उस समय का इतिहास देखने से पता लग सकता है कि तब स्त्रियो को किस उच्चदृष्टि से देखा जाता था और समाज मे उनका कितना ऊचा स्थान था? पश्चात् जैसे–जैसे पुरुष स्त्रियो का सम्मान कम करते गये, वैसे ही वैसे स्वय अपने सम्मान को भी नष्ट करते गये। राष्ट्र मे नवीन चैतन्य आना स्त्रियो की उन्नति पर ही निर्भर है।

कई लोगो ने स्त्री–समाज को पगु समझ रक्खा है, या यो कहो कि पगु बना रक्खा है। यही कारण है कि यहा सुधार–आन्दोलनो मे पूरी सफलता नही होती। यदि स्त्रियो को इस प्रकार तुच्छ न समझ कर, उन्हे उन्नत बना दिया जाय तो जो सुधार–आन्दोलन आज अनेक प्रयत्न करने पर भी असफल रहते है फिर उन्हे असफल होने का सम्भवत कोई कारण न रहे।

स्त्रियो की शक्ति कम नही है। जैन शास्त्रो मे वर्णन है कि स्त्रियो की स्तुति स्वय इन्द्रो ने की है और उन्हे साक्षात् देवी कहकर त्रिलोकी मे उत्तम बताया है। त्रिलोकीनाथ को जन्म देने वाली स्त्रिया ही हैं, भगवान महावीर जैसे को उत्पन्न करने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है।

## मातृसमाज का महत्त्व

अगर आप तटस्थ होकर विचार करेगे तो आपको ज्ञात होगा कि महिलावर्ग के प्रति किस प्रकार अन्याय किया जा रहा है। पुरुषो ने स्त्री–समाज को ऐसी परिस्थिति मे रखा है जिससे वे निरी बेवकूफ रहना ही अपना कर्तव्य समझे। कई पुरुष तो स्त्रियो को पैर की जूती तक कहने का साहस कर जाते है। लेकिन तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके इन्द्र क्या बता गया है

इस पर विचार करो। इस पर विचार करो कि इन्द्र ने तीर्थंकर की माता को क्यो प्रणाम किया और तीर्थंकर के पिता को क्यो प्रणाम नही किया?

## स्त्री सुधार

मित्रो! स्त्री पुरुषो का आधा अग है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अग बलिष्ठ और आधा अग निर्बल हो? जिसका आधा अग निर्बल होगा उसका पूरा अग निर्बल होगा। ऐसी स्थिति मे आप पुरुष समाज की उन्नति के लिये जितने उद्योग करते हैं वे सब असफल ही रहेगे अगर पहले आपने महिला समूह की स्थिति सुधारने का प्रयत्न न किया। आप अग्रेजी सरकार से स्वराज्य की माग करते हैं, किन्तु पहले अपने घर मे तो स्वराज्य की स्थापना कर स्त्रियो के साथ समता और उदारता का व्यवहार करो। आप स्त्रियो के प्रति समभाव न रखकर उन्हे गुलाम बनाकर स्वराज्य की माग किस मुह से करते हैं?

ये स्त्रिया जगजननी का अवतार हैं। इन्ही की कूख से महावीर, बुद्ध राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष–समाज पर स्त्री का बडा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता हे।

मैं समभाव का व्यवहार करने के लिए कहता हू। इसका अभिप्राय यह नही हे कि स्त्रियो को पुरुषो के अधिकार दे दिये जाए। मेरा आशय यह हे कि स्त्रिया को स्त्रिया के अधिकार देने म कृपणता न की जाय। नर और नारी मे प्रकृति ने जो विभेद कर दिया हे, उसे मिटाया नही जा सकता। अतएव उनके कर्तव्य म भी भेद रहेगा ही। कर्तव्य के अनुसार अधिकारा म भेद भले ही रहे मगर जिस कर्तव्य के साथ जिस अधिकार की आवश्यकता हे वह उन्हे सौंपे विना वे अपने कर्तव्य का पूरी तरह निर्वाह नही कर सकती।

पुरुषो! स्त्री–जाति न तुम्हे ज्ञानवान् ओर विवेकी बनाया है फिर किस बूते पर तुम इतना अभिमान करत हो? किस अभिमान स तुम उन्हे पैर की जूती समझत हो? विना किसी कारण क एक उपकारिणी जाति का अपमान करना उनका तिरस्कार करना धूर्तता ओर नीचता है। आपकी इन करतूतो स आपका समाज आज रसातल की तरफ जा रहा है। प्रकृति के नियम तो याद रखिए विना स्त्री–जाति क उद्धार के आपका उद्धार होना अत्यन्त कठिन ह।

कभी–कभी विचार आता हे – धन्य है स्त्री–जाति! जिसे ... पुरुष घृणित समझता ह आर एक बार करने मे भी ...

है, उससे कई गुणा अधिक कष्टकर कार्य स्त्री–जाति हर्षपूर्वक करती है। वह कभी नाक–भौं नही सिकोडती। मुह से कभी 'उफ' तक नही करती। वह चुपचाप अपना कर्तव्य समझकर, अपने काम मे जुटी रहती है। ऐसी महिमा है स्त्री–जाति की।

हे मातृ–जाति! तू जिसका एक बार हाथ पकड लेती है, जन्म–भर के लिए उसी की हो जाती है। मृत्युपर्यन्त उसका साथ देती है। फिर भी निष्ठुर पुरुषो ने तुझे नरक का द्वार बतला कर अपने वैराग्य की घोषणा की है। अनेक ग्रन्थकार पुरुषो ने तुझे नीचा दिखलाया है। पुरुष के वैराग्य मे स्त्री अगर बाधक है तो स्त्री के वैराग्य मे पुरुष बाधक क्यो नही है? फिर क्यो एक की कडी से कडी भर्त्सना की जाती है और दूसरे को दूध का धुला बताया जाता है? इस प्रकार की बाते पक्षपात के अतिरिक्त और क्या हैं?

भाईयो! ससार मे स्त्री–पुरुष का जोडा माना गया है। जोडा वह है जिसमे समानता विद्यमान हो। पुरुष पढा–लिखा–शिक्षित हो और स्त्री मूर्खा, तो उसे जोडा नहीं कहा जा सकता। आप स्वय विचार कीजिए कि क्या वह वास्तविक और आदर्श जोडा है?

## स्त्रीशिक्षा

पुरुष आपको आपके अधिकार दे देगे तो बिना शिक्षा पाए आप उन्हे निभा न सकेगी। आपका शिक्षित होना इसीलिए जरूरी है। ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मीदेवी ने ही भारतवर्ष मे शिक्षा का प्रचार किया था। आपको इस बात का गर्व होना चाहिए कि हमारी ही बहिन ने भारत को शिक्षित बनाया था। उस देवी के नाम से भारतीय लिपि अब भी ब्राह्मी लिपि कहलाती है। ब्राह्मी का नाम सरस्वती है और अन्य ग्रन्थो मे उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा थे ओर उनकी पुत्री ब्राह्मीकुमारी थी। इस प्रकार दोनो कथनो से एक ही बात फलित होती है। जैन ग्रन्थो से पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने गणितविद्या का प्रचार किया।

स्त्रीशिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तकीय ज्ञान नही है। पुस्तक पढना सिखा दिया और छुट्टी पाई इससे काम नही चलेगा। याद रखना, कोरे अक्षरज्ञान से कुछ नही होने का अक्षरज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जायेगी तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।

स्त्रीशिक्षा के पक्ष मे कानूनी दलील देने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है। शिक्षा देने के विषय मे अब पहले जितना विरोध भी दिखलाई नही देता। पहले इतना अधिक वहम घुसा हुआ था कि लोग एक घर मे दो

कदम चलना अनिष्टजनक समझते थे। पर अब भी कुछ भाई स्त्रीशिक्षा का विरोध करते हैं। उन्हे समझ लेना चाहिए यह परम्परागत कुसस्कारो का परिणाम है। स्त्रियो को शिक्षा देना अगर हानिकारक होता तो भगवान् ऋषभदेव अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की पुत्रियो को क्यो शिक्षा देते? आज पुरुष स्त्रीशिक्षा का निषेध भले ही करे, मगर उन्हे यह नही भूल जाना चाहिए कि रमणीरत्न ब्राह्मी ने पुरुषो को साक्षर बनाया है। उसकी स्मृति मे लिपि का नाम आज भी ब्राह्मी प्रचलित है। जो पुरुष जिसके प्रताप से साक्षर हुए उसी के वर्ग (स्त्री–वर्ग) को अक्षरहीन रखना कृतघ्नता नहीं है? अन्य समाज मे ब्राह्मी का भारती' नाम भी प्रचलित है। भारती' और 'सरस्वती शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी बतलाई जाती है। विद्यालाभ के लिए लोग सरस्वती – अेक स्त्री की पूजा करते हैं, फिर कहते हैं कि स्त्रीशिक्षा निषिद्ध है। स्मरण रखिए जब से पुरुषो ने स्त्रीशिक्षा के विरुद्ध आवाज उठाई है तभी से उनका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध के कटुक फल भुगतने पड रहे हैं। स्त्रीशिक्षा का अर्थ यह नही कि आप अपनी बहू–बेटियो को यूरोपियन लेडी बनावे और न यही अर्थ है कि उन्हे घूघट मे लपेटे रहे। मैं स्त्रियो को ऐसी शिक्षा देने का समर्थन करता हू जैसी सीता सावित्री द्रोपदी, ब्राह्मी, सुन्दरी ओर अजना आदि को मिली थी जिसकी बदौलत वे प्रातःस्मरणीय बन गई हैं ओर उनका नाम मागलिक समझ कर आप श्रद्धा–भक्ति के साथ प्रतिदिन जपते हैं। उन्हे ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे अज्ञान के अधकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश मे आ सके। उन्हे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे वे भलीभाति धार्मिक उपदेशो को अपना सके। उन्हे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिसके कारण उन्हे अपने कर्तव्य का अपने उत्तरदायित्व का अपने स्वरूप का अपनी शक्ति का अपनी महत्ता का और अपनी दिव्यता का बोध हो सके। उन्हे एसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वे अबला न रहे – प्रबला बने। पुरुषो का बोझ न रहे शक्ति [illegible]। वे अकल्याणकारिणी न रहे – कल्याणी बने। उन्हे जगज्जननी वरदानी एवं भद्रा [illegible] वाली शिक्षा की आवश्यकता है।

# आन्तरिक युद्ध

तुम्हारे नेत्र बाहर की तरफ देखते हैं, क्योकि वे भौतिक हैं। जिस दिन तुम्हे आन्तरिक चक्षु प्राप्त होगे उस दिन अपने भीतर का हाल जानकर चकित रह जाओगे। तुम्हे दीख पडेगा – तुम्हारे भीतर दैवी शक्ति और आसुरी शक्ति के बीच निरन्तर तुमुल युद्ध मचा रहता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आसुरी शक्ति के प्रधान योद्धा हैं और अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सतोष आदि दैवी शक्ति के श्रेष्ठ सूरमा हैं।

तुम किसकी विजय चाहते हो? अगर आसुरी शक्ति को पराजित करना है तो दैवी शक्ति का विकास करो। जगत् के समस्त महान् पुरुष दैवी शक्ति का विकास करके ही महान् बने हैं। दैवी शक्ति के विकास द्वारा आत्मा का कल्याण करना महाजनो का राजमार्ग है।

मुमुक्षु आत्मा बाह्य युद्ध की अपेक्षा कर्मशत्रुओ को परास्त करने के लिए आन्तरिक युद्ध लडना ही अधिक पसन्द करता है। क्योकि बाह्य युद्ध से प्राप्त होने वाली विजय क्षणिक है और परिणाम मे परिताप उत्पन्न करने वाली है। एक बाह्य युद्ध अनेक युद्धो का जनक होता है। इस युद्ध से युद्ध की परम्परा चलती रहती है उसका कही विराम नही होता। बाह्य युद्ध से अशाति बढती ही है, कभी घटती नही है।

आन्तरिक युद्ध इससे विपरीत है। आन्तरिक युद्ध मे विजय प्राप्त करने पर शत्रु का सदा के लिए नाश हो जाता है – कोई शत्रु ही नही रह जाता। यह विजय सम्पूर्ण और शाश्वत है। अतएव बाह्य शत्रुओ को जन्म देने वाले आन्तरिक – भीतर छिपकर बैठे हुए शत्रुओ का अन्त करने के लिए ही प्रयास करना चाहिए।

जैन का अर्थ ही विजेता है। सच्चा जैन सदा ही सग्राम मे जूझता रहता है। वह कायर बनकर कभी घर मे बैठा नही रह सकता। वह अपने हाथ

मे क्षमा का खड्ग लेकर कर्मशत्रुओ पर धावा बोलता है और अपने जैनत्व को प्रकाशित करता है। जैन होकर भी अगर कोई कायर बना रहता है आन्तरिक शत्रुओ को परास्त करने का प्रयत्न नही करता है तो जैनत्व मलीन होता है। प्राचीन काल के जैन अपने जैनत्व की रक्षा के लिए प्राणार्पण कर देते थे पर जैनत्व को जरा भी मलीन नही होने देते थे। आज कायरता के कारण जैनो का जैनत्व उतना तेजस्वी नहीं रहा है। इसी कारण आज वीरोचित अहिसा या क्षमा आदि को भी निर्बलता का रूप दिया जाता है। वास्तव मे अहिसा या क्षमा निर्बलता के शस्त्र नही हैं। वे वीरो के शस्त्र हैं। तलवार चाहे जितनी तीक्ष्ण धार वाली क्यो न हो, कायर के हाथ मे पहुचकर उल्टी हानिकर हो जाती है – कायर के प्राणो की ग्राहक बन जाती है। वही तलवार वीर पुरुष के हाथ मे पहुच जाय तो उसका असली मूल्य होता है।

इसी प्रकार अहिसा और क्षमा के शस्त्र कायर के हाथ मे पहुचकर निष्फल हो जाते हैं और वीर पुरुष के हाथ मे जाकर अमोघ शस्त्र बन जाते है।

अगर जैन अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना चाहते हैं तो उन्हे अपने जैनत्व का प्रकाश फैलाना चाहिए। अपने जैनत्व को तेजस्वी और प्रभावशाली बनाना चाहिए। जैनो का जैनत्व क्षत्रियो के क्षात्रत्व से तनिक भी न्यून नही हैं – किंचित् भी उतरता नही है। बल्कि जैनत्व मे अहिसक क्षात्रत्व होने के कारण वह अधिक तेजस्वी है।

जैन – विजेता सदा ही सग्राम म लगा रहता है। वह जिस सामग्री से कर्मशत्रुओ के साथ आन्तरिक युद्ध करता है उसका उल्लेख करते हुए शास्त्रकार कहते हैं–

सद्ध नगर किच्चा तवसवरमग्गल।
खति णिउणपगार तिगुत्त दुप्पधसय।।
धणु परक्कम किच्चा जीव च इरिय सया।
धिइ च केयण किच्चा सच्चेण पलिमथए।।
तवनारायजुत्तेण भित्तूण कम्मकचुय।
मुणी विगय सगामो भवाओ परिमुच्चए।।

अर्थात श्रद्धा (सत्य पर अटल विश्वास) रूपी नगर तप एव संवर (सयम) रूपी अर्गला क्षमा रूपी भव्य सुदृढ गढ तीन गुप्ति (मन वचन और काय का नियमन) रूपी शतघ्नी – तोप पुरुषार्थ रूपी धनुष ईर्या [illegible]

प्रयाण) रूपी डोरी – ज्या और धैर्य रूपी ध्वजा, बना कर सत्य के द्वारा कर्म शत्रुओ का नाश करना चाहिए।

तपश्चर्या रूपी बाणो से युक्त मुनि कर्म को भेदकर सग्राम मे विजय प्राप्त करता है और सदा के लिए सगाम की झझट से छूटकर ससार से मुक्त हो जाता है।

हिसा के प्रयोग से या हिसाजनक अस्त्र–शस्त्र से प्राप्त की हुई विजय स्थायी नही रहती। इसके विपरीत प्रेम और अहिसा द्वारा जन–समाज के हृदय पर जो प्रभुता स्थापित की जाती है, वह सच्ची और स्थायी विजय है। वैर से वैर कभी शान्त नही हो सकता। अतएव अवैरवृत्ति से विजय प्राप्त करना चाहिए। यही जैन धर्म या सनातन धर्म है। शास्त्र मे कहा है–

**जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जये।**
**एग जिणज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ।।**

लाख सुभटो को दुर्जय सग्राम मे जीतने की अपेक्षा अकेले अपने आप को जीत लेना कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। आत्मविजय करनेवाले की विजय श्रेष्ठ है।

**अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।**
**अप्पाणमेवमप्पाण जइत्ता सुहमेहए।।**

आत्मा के साथ जूझो। बाहरी युद्ध से क्या होना जाना है? शुद्ध आत्मा के द्वारा अशुद्ध आत्मा पर विजय प्राप्त करने से ही सुख प्राप्त किया जा सकता है।

अन्त मे शास्त्रकार कहते हैं – 'सव्वमप्पे जिए जियं।' अर्थात् अगर आत्मा को जीत लिया तो सभी को जीत लिया। आत्मविजय के पश्चात् किसी को जीत लेना शेष नही रहता।

# स्वावलम्बन–परावलम्बन

## स्वावलम्बी बनो

किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो। समझ लो, तुम्हारी एक मुट्ठी मे स्वर्ग है, दूसरी मे नरक है। तुम्हारी एक भुजा मे अनन्त ससार है ओर दूसरी भुजा मे अनन्त मगलमय मुक्ति है। तुम्हारी एक दृष्टि मे घोर पाप है और दूसरी दृष्टि मे पुण्य का अक्षय भण्डार भरा है। तुम निसर्ग की समस्त शक्यिो के स्वामी हो। कोई भी शक्ति तुम्हारी स्वामिनी नही है। तुम भाग्य के खिलौना नहीं हो, वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बनकर दास की भाति तुम्हारा सहायक होगा। इसलिए ऐ मानव! कायरता छोड दे। अपने ऊपर भरोसा रख। तू सब–कुछ है। दूसरा कुछ नहीं है। तेरी क्षमता अगाध है। तेरी शक्ति असीम है। तू समर्थ है। तू विधाता है। तू ब्रह्मा है। तू शकर है। तू महावीर है। तू बुद्ध है।

## परावलम्बन

गृहस्थ हो या साधु, परावलम्बन सभी को समान रूप से हानिकारक होता है। परावलम्बन की भावना ही घृणास्पद है। परावलम्बन साहसहीनता दीनता, असमर्थता ओर रुग्णता आदि अनेक दोषो का जनक है। जो व्यक्ति स्वय यतनापूर्वक कार्य करता है, उसके चित्त मे एक प्रकार के सतोषमय उल्लास का आविर्भाव होता है। वह सुखी होता है।

जो अपने हाथ से काम नही करता आलस्य मे विभोर पडा रहता है वह अपनी अन्यान्य शक्तियो के साथ शारीरिक शक्ति को भी खो बैठता है। शारीरिक शक्ति नष्ट हो जाने पर मनुष्य अनेक रोगो का शिकार बन जाता है। जो बहिन अपने हाथ से चक्की नही चलाती अपने हाथ से भोजन नहीं बनाती या ऐसा ही परिश्रम का कोई दूसरा काम नही करती वे स्वस्थ और सबल सतान को जन्म नही दे सकती।

मैंने एक घटना सुनी थी। किसी करोडपति सेठ के सतान नही होती थी। उसने दूसरा विवाह किया। दूसरे विवाह से भी जब सतान न हुई तो चिकित्सक से परामर्श किया गया। चिकित्सक ने बतलाया – सेठानी शारीरिक परिश्रम नहीं करती, इस कारण सतान नही होती। अगर आप सतान चाहते हैं तो इनसे चक्की चलवाइए।

ऐसा ही किया गया। फल यह हुआ कि सेठानी के सतान होने लगी। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को उद्योगशील होना चाहिए। जो बहिन या भाई धर्म के नाम पर सीधा खाना खाते है वे पाप को प्रचण्ड रूप दे रहे हैं। जो बहिने आलस्य मे पडी रहती हैं, उनकी सतान निर्बल, रोगी और अल्पायुष्क होती है। वह ब्रह्मचर्य को नष्टभ्रष्ट करने वाली होती हैं। अपनी सन्तान को अगर आप मुसीबत मे नही डालना चाहते और पीछे पछताना नहीं चाहते तो पहले से ही आपको सावधान हो जाना चाहिए।

जो मनुष्य उद्योगशील होता है, उसे देखकर आलसी की आत्मा काप उठती है। उद्योगी को देखकर आलसी मनुष्य भी उद्योग के लिए कटिबद्ध बन जाता है। उद्योगी पुरुष मनुष्य को तो क्या, सारी की सारी प्रकृति को जाग्रत कर देता है। प्राकृत भाषा के एक कवि ने कहा है–

**तापविढत्ता लच्छी, नूर्णं पुत्तस्स होइ सा भागिणी।**
**होइ परस्स परित्थी, सय विढता तओ जुत्ता।।**

अर्थात् पिता के द्वारा पैदा की हुई लक्ष्मी पुत्र के लिए बहिन के स्थान पर है और दूसरे के लिए परस्त्री के समान है। कोई सुसस्कारी एव सदाचारी पुरुष न भगिनी को भोगता है, न परस्त्री को ही भोगता है। अतएव अपने पुरुषार्थ से उपार्जन की हुई लक्ष्मी का भोग करना ही योग्य है।

दूसरे दृष्किोण से पिता द्वारा उपार्जित लक्ष्मी पुत्र के लिए माता के समान भी कही जा सकती है क्योकि उस लक्ष्मी का पति उसका पिता है, जिसका पति हो वह पुत्र के लिए माता है। लड़का जब तक समझदार न हो, पढ–लिखकर समर्थ न हो जाय, तब तक पिता की लक्ष्मी का, माता के दूध के समान उपयोग कर सकता है, परन्तु जब सयाना हो जाय, समर्थ हो जाय, 15–20 वर्ष की उम्र का जवान–पट्ठा बन जाय, तब क्या वह माता के स्तन को हाथ लगाएगा? इसी प्रकार सामर्थ्य प्राप्त होने पर पुत्र अपने पिता की लक्ष्मी को हाथ न लगावे। जो पुरुष ऐसा न करके पिता की लक्ष्मी का उपभोग करता है वह दुश्शील है।

यह साधना सरल नहीं है। मगर उद्योग का मार्ग निराला है। जो स्वय उपार्जन नही कर सकता वह दूसरो के लिए बोझ है।

परावलम्बन–पग–पग पर दूसरो की सहायता मागना बातबात मे पराया मुह ताकना एक प्रकार का भिखारीपन है। भिखारी कभी सुखी नही होता। शास्त्र भिखारियो की प्रशसा नही करता। सच्चा साहुकार वह है जो अनायास प्राप्त सहायता को भी ठुकरा देता है और अपने बूते पर खडा रहता है, अपने ही पुरुषार्थ का भरोसा रखता है।

स्वाधीनता चाहना और स्वाधीनता पाना, दो बाते हैं। दोनो मे बहुत भेद है। आज लोगो को स्वतन्त्रता तो चाहिए, पर उसे प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्न करना नहीं चाहते है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उत्सर्ग की आवश्यकता होती है। स्वतन्त्रता का पथ फूलो से नही काटो से आकीर्ण है।

स्वावलम्बन स्वतन्त्रता की पहली शर्त है। और दूसरो की सहायता की तिल–भर भी अपेक्षा न रखना स्वावलम्बन है।

## परिश्रम दान

धर्म परिश्रम त्याग कर परिश्रम के फल को अनायास भोगने का उपदेश नही देता। धर्म अकर्मण्यता नही सिखाता। धर्म हरामखोरी का विरोध करता हे, हक के खाने का विधान करता हे। आनन्द ने जिस दिन भगवान का धर्मोपदेश सुना था उसी दिन पूजी बढाने का त्याग कर दिया था।

यह भी आशका की जा सकती हे कि आनन्द व्यापार म मुनाफा लेकर दान कर देता तो क्या बुराई थी? उसने ऐसा क्या नही किया? इसका उत्तर यह हे कि आनन्द ढाग करना न जानता था। पैर म कीचड लगाकर फिर उसे धोने की अपेक्षा कीचड न लगने देना ही अधिक श्रेयस्कर है। पहले दूसरे से लेने और फिर उसे देने से लाभ क्या है? हा इससे हानि अवश्य है। इस प्रकार का दान कीर्ति लूटने के लिए किया जाता हे और वह दाता के अहकार का पोषण करता हे। अतएव उसस लाभ और अभिमानकषाय [illegible] होता है। ऐसा दान दकर दाता दानीय व्यक्ति स अपने–आप को [illegible] ऊचा आर वडा अनुभव करता हे और लेने वाले को दीन [illegible] समझता ह। इस दुर्भावना क अतिरिक्त इस दान म और क्या [illegible] अतएव पहल स ही प्राप्त की हुइ वस्तुओ स ममत्व घटाने [illegible] प्रशस्त ह परन्तु कीर्तिकामना स प्रेरित होकर अहकार [illegible] लिए धन आदि का उपार्जन कर–करके दान [illegible] न करना ही बहतर ह।

आनन्द न तो कीर्तिकामुक था, न अहकारी था। इसी कारण उसने गरीबो से लेकर फिर देने की अपेक्षा नफा न लेने का प्रण करना ही उचित समझा। जिससे किसी को अपनी हीनता न खटके, किसी के गौरव को क्षति न पहुचे और कोई अपने-आप को उपकृत समझकर ग्लानि का अनुभव न करे। श्रावक का यह कितना उच्च आदर्श है?

### पापगोपन

कुछ लोग ऐसे है जो अपने पापो को यत्नपूर्वक छिपाने की चेष्टा मे सलग्न रहते हैं। वे सोचते हैं – पाप अगर प्रकाशित हो गया तो ससार घृणा एव उपहास की मुझ पर वर्षा करेगा। मैं लोगो की नजर से गिर जाऊगा। किन्तु पाप को छिपाकर, थोडे दिनो तक दुनिया मे भले कहला लो, पर स्मरण रक्खो, ऐसा करने से अनन्त कालपर्यन्त बुरे बने रहोगे। और पाप को प्रकट करने से, दुनिया भले ही कुछ भी कहे, परमात्मा तुम्हे बुरा नही कहेगा। पाप के प्रकाशन से मलीन से मलीन आत्मा भी निर्मल बन जाता है। बडे पापी भी परमात्मा के समक्ष अपने पापो को निवेदन करके निष्पाप बन जाते हैं।

खुली गटर की अपेक्षा ढकी गटर अधिक बदबूदार होती है। इसी प्रकार प्रकट किये हुए पापो की अपेक्षा छिपाये हुए पाप अधिक हानिकारक होते हैं, अतएव पापो को दबाने की चेष्टा न करो। उन्हे खोल कर प्रकट करदो और हार्दिक पश्चात्ताप करो। यही कल्याण मार्ग है।

आलोचना पाप की होती है, धर्म की नहीं। पर आजकल उल्टी गगा बह रही है। धर्म की आलोचना की जाती है और पाप को छिपाने का, दबाने का प्रयत्न किया जाता है। धर्म की आलोचना करना अर्थात् अपने कर्मों की प्रशसा करना, समाचार पत्रो मे नाम छपा देखने की कोशिश करना, अपने मुह मिया मिट्ठू बनना क्या दीनता नहीं है? भगवान ने कहा है – आत्मकल्याण के अभिलाषी को दीनता धारण करनी चाहिए जिससे तीनो शल्यो को बाहर निकाला जा सके।

### पाप छिपाये ना छिपे

दुनिया पापो को छिपाना चाहती है, दूर नही करना चाहती। लोग पाप करते झिझकते नही, केवल पापी कहलाने से डरते हैं। उन्हे पता नही, पाप छिपाने से नही घटता बढता है।

दूसरो की आलोचना करना जितना सरल है दूसरो की आलोचना का पात्र न बनने के लिए समुचित कार्य करना उतना ही कठिन है। आप लोग अगर अपने कुटुम्ब को पहले सुधारोगे तो दूसरे बहुत-से लोग आपके बिना

कहे, आपका अनुकरण करके ही सुधर जाएगे। दूसरो से त्याग कराने से पहले आपको त्याग करना चाहिए।

भूल हो जाना अच्छी बात नही है पर उस भूल को छिपाकर अपने आपको भूलरहित प्रकट करने की भूल करना बहुत ही जघन्य कृत्य है। अधिक से अधिक सावधान रहकर भूल न होने देने की चेष्टा करो पर फिर भी अगर भूल हो जाए तो सच्चे मर्द की तरह उसे स्वीकार कर लो। उसे प्रकट करदो। उसे दबाने की रचमात्र भी चेष्टा मत करो। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा को हरगिज धक्का नहीं पहुचेगा। अगर प्रतिष्ठा को धक्का लगता हो तो भी परवाह मत करो। ऐसा करने से तुम्हारा आत्मबल बढेगा और तुम अपनी नजरो मे ही गिरने से बच सकोगे।

ज्ञानवान् पुरुष दूसरो की दलीलो मे नही पडते। वे अपने–आप को अपनी ही तराजू पर तौलते हैं। थोडी–सी भूल हो जाने पर उसे हिमालय–सी भूल समझते हैं। वे अपने को दोष का पात्र प्रकट करते है। वे कहते हैं देखो मेरी दुष्टता का, मेरे नमकहरामीपन का कही ठिकाना नही है कि जिसकी कृपा से मैंने यह मानव–तन पाया है उसी को मैं भूल रहा हू।

वालक अपने पिता से उत्पन्न हुआ ओर माता ने उसे जन्म दिया अतएव यह कहा जा सकता हे कि यह शरीर माता–पिता ने दिया हे। लेकिन वहुत–से लोग माता–पिता के महान् उपकार को विस्मरण करके पीछे [illegible] स्त्री के मनोहारी हावभाव से मुग्ध होकर उसकी सम्मोहिनी माया के जाल मे फस कर माता–पिता के शत्रु वन जाते हैं ओर स्त्री की अगुली के इशारे पर नाचते हैं। वह जिस प्रकार नचाती हे पुरुष बन्दर की तरह उसी प्रकार नाचता हे। कई लोग तो माता–पिता को इतनी पीडा देते ह कि सुनकर हृदय मर्माहत हो उठता हे। उन्हे अपशव्द सुनाने मार पीट करने तक की घट [illegible] घटती ह। ये सव वात मनुष्य की कितने दर्जे की कृतघ्नता सूचित करती है? स्त्री को भी जाने दीजिए क्या वेश्या के मायापाश म फसकर वहुत से लोग अपने माता–पिता का तिरस्कार नही करते?

जिस माता न अपन योवन क सोन्दर्य की परवाह न करके [illegible] हृदय के रस स वालक क प्राणा की रक्षा की जिसने [illegible] मास ओर [illegible] तक अपन उदर म रखकर वालक को वढाया उसकी रक्षा [illegible] रही प्रसव क पश्चात जिसन सव प्रकार की घृणा को [illegible] कर दिया जो वालक पर अपना सर्वस्व निछावर करने [illegible] जिसकी वदोलत पुत्र पत्नी [illegible] [illegible]

वधू से अनेकानेक मधुर मसूबे बाधे, उसी माता की असहाय वृद्धावस्था मे जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथ से, तब उस 'पूत' को क्या कहा जा सकता है?

सर्वप्रथम यह देखने की आवश्यकता है कि हम किस जगह भूल करते हैं? किस स्थान पर हमारा सच्चा मार्ग हमसे छूट जाता है और हम विपथगामी बनते हैं? मेरे विचार मे सबसे पहली भूल तब होती है जब कोई मनुष्य बुरा काम करता है लेकिन उसे बुरा न समझ कर अच्छा समझता है। भूल को भूल समझ लेने से वह इतनी भयकर नही रहती। मगर जब भूल भूल ही नहीं मालूम होती, तब भूलो की परम्परा चल पडती है और भूल करने वाला उसका परिमार्जन करने की ओर भी ध्यान नही देता। इसी कारण ससार–चक्कर मे पडकर अपने अन्तर को मलीन बनाये हुए है। लोग अन्त करण की मलीनता अपनी आखो से देखना चाहते है परन्तु आखो से वह दीखती नहीं है। अतएव प्रत्येक वस्तु को पकड–पकड कर देखो और प्रत्येक भावना की जाच करो कि इसमे अन्त करण मलीन बनेगा या निर्मल होगा?

### दु ख–सुख

ससार सम्बन्धी लालसाओ को बढाना दु ख है और लालसाओ पर विजय प्राप्त करना सुख है।

### सच्चा सुख

मित्रो! दूसरे की सहायता मे शक्ति खर्च करना, दूसरे के दु ख को अपना दु ख मानना और दूसरे के सुख को अपना सुख समझना, मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है। ईश्वर से प्रार्थना करो कि आपकी प्रकृति ऐसी बन जाय। आपके हृदय मे ऐसी सहृदयता और सहानुभूति उत्पन्न हो जाय।

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा जब तक उसने दूसरे के दु ख को अपना दु ख मानने की सवेदना जाग्रत न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नहीं हो सकता। उसके जीवन का धरातल ऊचा नही उठ सकता। अवतारो और तीर्थंकरो ने दूसरो के सुख को ही अपना सुख माना था। इसी कारण वे अपना चरम विकास करने मे समर्थ हुए। जिस गरीब मनुष्य की भावना मे ऐसी विशालता आ जाती है वह राजा को भी डिगा सकता है। पर जो अपने ही सुख को सुख समझता है वह चाहे राजा ही क्यो न हो शैतान या दुनिया का सत्यानाश करने वाला ही कहा जायगा।

दु ख–लोग दु ख से दूर भागते हैं घबराते हैं और दु ख आ पडने पर दीनता धारण करते हैं। उन्हे नहीं मालूम कि दु ख जीवन–शक्ति बढाने मे जितने उपयोगी होते हैं उतनी दूसरी कोई भी वस्तु नही। वीर पुरुष दु ख

से दूर नही भागता और महावीर वह है जो स्वेच्छापूर्वक दु ख उत्पन्न करके उनसे सघर्ष करता है और आत्मा का ओज, तेज एव बल बढाता है। भगवान् महावीर की सिद्धि का रहस्य क्या है? उनके जीवन का बहुत–सा भाग दु खो से सघर्ष करने मे बीता और उस सघर्ष के पश्चात् उनकी आत्मा मे लोकोत्तर ज्योति प्रकट हुई।

ज्ञानी पुरुष मानते हैं – 'समस्त दु ख समाप्त हो जाते हैं पर मैं कभी समाप्त नही हो सकता।'

ससार मे अनादि काल से मैंने अनन्त दु ख सहन किये हैं। यह दु ख कहा से आते हैं? इस प्रश्न पर विचार करते हुए मैं इस निश्चय पर पहुचा हू कि दु ख मात्र अपने सकल्प से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार आत्मा स्वय अपने दु खो का स्रष्टा है, तो उसे विजेता भी क्यो नही बनना चाहिए?

## सच्चा सुख निरीहता

एक आदमी सुख को पकडने के लिए उसके पीछे दौडा। सुख भाग कर राजा के महल मे घुस गया। आदमी उसके पीछे राजमहल मे पहुचा तो सुख राजमहल की खिडकी मे से निकल कर नीचे आ पहुचा। वह आदमी भी उसके पीछे कूद पडा। तब तक सुख राजा के उद्यान मे चला गया। आदमी भी उसे कब छोडने वाला था? वह उद्यान की ओर लपका। इतने मे सुख वहा से भी निकल कर जगल मे भाग गया। आदमी ने उसका पीछा किया। अन्त मे आदमी जब बुरी तरह थक गया और सुख हाथ न आया तब निराश होकर वह एक पेड की छाया मे बेठ गया। उसे भूख लग रही थी। उसने रोटी निकाली ओर खाने लगा।

इसी समय एक भिखारी आया भूख से व्याकुल और थका हुआ। भिखारी ने कहा – 'प्यारे! तू सुखी प्राणी हे। मे भूख से मर रहा हू। मुझे भी कुछ खाने को दे ओर सुखी कर।

आदमी सोचने लगा – 'यह भिखारी क्या कह रहा हे? मैं सुखी हू, मेरे पास सुख हे? क्या दूसरे को सुखी बनाने म ही सच्चा सुख हे?

सुख के पीछ मारा–मारा फिरने वाला मनुष्य सुख का स्वरूप समझा आर वह सचमुच सुखी हो गया।

## सेवा

वास्तव म अखिल ससार सेवा क सहार टिका हुआ हे। ससार मे [illegible] सेवाभावना कम हा जाती हे तब उत्पात हाने लगता हे और जब [illegible] का उत्कर्ष हाता हे ता ससार स्वर्ग बन जाता हे। अतएव सेवा [illegible] जरा भी उपक्षा नही करनी चाहिए और न सेवा मे छल–कपट [illegible]

चाहिए। सेवा तप है और वह भी आभ्यन्तर तप है। बाह्य तप की अपेक्षा आभ्यन्तर तप से अधिक शुद्धि होती है। सेवा आत्मा और परमात्मा के बीच सबध जोडने वाली शृखला है। जो मनुष्य किसी प्रकार के दुर्भाव या घृणाभाव को पास नही फटकने देता और जनसेवा को परमात्मा की सेवा मानकर निरन्तर सेवा मे सलग्न रहता है वह महान् लाभ प्राप्त करता है। सेवा का उत्कृष्ट फल तीर्थंकर पद की प्राप्ति होना है। सेवा से जीवन सर्वगुणसम्पन्न बनता है।

## प्राणी–सेवा

समस्त प्राणियो मे ईश्वर विराजमान है। प्राणियो की सेवा करना ईश्वर की सेवा है। जिस मनुष्य मे इतना ज्ञान नही, वह पशु से भी गया–बीता है। अपने मनुष्यत्व को सार्थक करने के लिए जो सब प्राणियो की सेवा करता है वह देवत्व को प्राप्त करके अक्षय और असीम कल्याण का भाजन बनता है। वह 'सच्चिदानन्द' के सच्चे स्वरूप का ज्ञाता है।

## सेवा और उत्सर्ग

अगर तुम श्रावक होकर भी अपने घर का कचरा गली के नाके पर बिखेर देते और गन्दगी को बढाते हो तो कहना चाहिए कि तुमने अब तक नही समझा है कि गुरु की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए?

तुम्हे स्वामी बनकर नहीं वरन् सेवक बनकर जन–समाज की सेवा करनी चाहिए। सेवा करते–करते अगर प्राणो का उत्सर्ग करना पड जाय तो वह भी प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

## सच्चा सेवक

चोरी अत्याचार या अन्याय करके हथकडी–बेडी पहनना बुरी बात है पर चोरी अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य मे हथकडी–बेडी पहननी पडे तो सच्चे सेवक को उन्हे 'सेवा के आभूषण' समझ कर प्रसन्न होना चाहिए। हथकडी–बेडी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण हैं।

## उपकार

जो मनुष्य अपना केवल अपना ही स्वार्थ देखता है वह अपने ही स्वार्थ का नाश करता है। इसके विपरीत जो दूसरो का उपकार करता है वह अपना ही उपकार करता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो विदित होगा कि उपकारी का उपकृत पर जितना एहसान है उससे उपकृत का उपकारी पर कुछ कम एहसान नही है क्योकि उपकृत उपकारी को अपने उपकार का अवसर देता है।

# प्रकीर्णक

## पापी से घृणा न करो

आप पापी को देखकर घबराते हैं उससे भय खाते हैं। लेकिन उससे भी आप चाहे तो बहुत–कुछ सीख सकते है, साथ ही उसे बहुत कुछ सिखा सकते है। यदि आप मे सच्ची और सुदृढ धर्मनिष्ठा है तो आपको पापी से न घबराना चाहिए, न घृणा करनी चाहिए और न उसे उपेक्षा–दृष्टि से देखना चाहिए। अगर आपको पाप से सचमुच घृणा है तो जेसे आपको अपना पाप असह्य जान पडता है, उसी प्रकार अपने पडोसी का भी असह्य जान पडना चाहिए। आप पापी का उद्धार करके उसे निष्पाप बनाने की चेष्टा कीजिए। यह आपकी सबसे बडी धर्मसेवा होगी। अगर पापी अपनी पापबुद्धि नहीं छोडता यदि वह अपने पाप से चिपटा ही रहता है तब भी तुम्हे निराश नहीं होना चाहिए। आत्मा स्वभावत ऊर्ध्वगामी स्वभाव वाला है। धर्म उसका स्वरूप है। पाप आत्मा के लिए विकार है। विकार से आत्मा कभी न कभी ऊबेगा ही। अतएव आशा को न त्याग कर उसके पापों का अंत करने का प्रयास किये जाओ।

## अन्तर्ध्वनि

हमारे अन्दर अनेक त्रुटियो मे से एक त्रुटि यह भी है कि हम अपनी अन्तरग ध्वनि की ओर कान नहीं देते? अन्तरात्मा जिस बात को पुकार–पुकार कर कहता है उसे सुनने और समझने की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। अगर मनुष्य अपने अन्तर्नाद की ओर ध्यान दे तो उसे प्राय कर्तव्य के विषय मे विमूढ न होना पडे। अन्तरात्मा से ध्वनि निकल रही है – मैं पापी कहलाना भी पसन्द नही करता' फिर भी मनुष्य अपनी शिक्षा की ओर आप ही ध्यान नहीं देता। यह एक बडी भारी त्रुटि है। लोग पापी नाम भी नहीं धराना चाहते, फिर भी पाप करते चले जाते हैं। यह तो ऐसी ही बात है कि कोई 'कलमुहा' कह दे तब तो बुरा लगे और अपने–आप अपने मुह पर कोयला पोतने मे बुरा न लगे। यह कितनी बेढगी बात है? यह कैसे मिट सकती है?

## भय

भय का वास्तविक कारण न होने पर भी बहमी भय की कल्पना करके भीत होता है। उसे साधारण वस्तु भी भयकर प्रतीत होने लगती है। ससारी जीव को बाहरी भूत ने ही नहीं आन्तरिक भूत ने भी भ्रम मे डाल रखा है। यह आन्तरिक भूत घोर अनर्थ का कारण बना हुआ है। मिथ्यात्व रूपी भूत ने जीव को ऐसा फसा रक्खा है कि उसके मारे जीव ससार के भ्रमजाल को अपना मान बैठा है। उसका ज्ञान विपरीत हो रहा है। अधेरे मे पडी हुई रस्सी मे भी साप का भ्रम हो जाता है। इसका कारण यह है कि रस्सी का रस्सी–रूप मे निर्णय करने के लिए अपेक्षित प्रकाश का वहा अभाव रहता है। जहा पर्याप्त प्रकाश नहीं है वहा भ्रम हो, इसमे आश्चर्य ही क्या है?

## मनुष्य और पशु

मित्रो! यह ससार परमात्मा का घर है। इसमे रहने वाले मनुष्यो के लिये जितने काटे मनुष्यो ने बिखेरे हैं उतने किसी ने किसी प्राणी के लिए नही बिखेरे। मनुष्य मनुष्य के साथ जैसा सलूक करता है वसा कोई राक्षस भी मनुष्य के साथ नही करता। मनुष्य के लिए मनुष्य ही सबसे अधिक खतरनाक है। आज मनुष्य ने मनुष्य को घोर सकट मे डाल रखा है। वैसा सकट कोई और पैदा नही कर सकता। मनुष्य की यह स्थिति देखकर अनायास ही मुह से निकल जाता है कि वर्तमानकालीन स्वार्थी मनुष्यो मे पशुओ के भी उज्ज्वल अश नजर नही आते। ऐसे मनुष्यो के साथ पशुओ की तुलना की जाय तो पशुओ की अपेक्षा मनुष्य ही निकृष्ट सिद्ध होगा। वह अपने बुद्धिवैभव के कारण पतन के मार्ग मे अधिक कौशल के साथ अग्रसर हो रहा

है। ईश्वर ही जाने, कहा उसके मार्ग का अन्त होगा? न जाने किस निविड अन्धकार मे जाकर वह रुकेगा।

ऐसी स्थिति मे मनुष्य के साथ प्रेम करना, मैत्री स्थापित करना यही ईश्वर के पथ के कटको को बीनना है। ऐसा करके ही मनुष्य अपने पुराने पापा का प्रायश्चित्त कर सकता है। परमात्मा के साथ मिलाप होने का भी यही मार्ग है।

हमारे अकेले के प्रयास से क्या होगा? ईश्वर के मार्ग मे काटे बिखेरने वाले बहुत हैं। मैं अकेला कितने काटे बीन सकूगा? जब पूरा आसमान फट पडे तो थेगली – कारी कहा–कहा लगाई जाय? इस प्रकार का कायरता का विचार मत करो। यह कर्तव्य से विमुख बने रहने का बहाना है। तुम्हे दूसरो के विषय मे सोचने का अवकाश ही क्यो मिलता है? तुम्हारे सामने कर्तव्य का पहाड खडा है। इससे तुम्हे फुर्सत ही कहा? यह विचार छोडो कि दूसरे क्या करते हैं या क्या नही करते? जो कुछ कर्तव्य है उसे अकेले ही करना पडे तो किये चलो। दूसरे के विषय मे तनिक भी न सोचो।

## सफाई

जब मैं श्रावको के गदे घर देखता हू तो सोचने लगता हू – क्या सच्चे विवेकी श्रावक का घर गदा हो सकता है? जो गन्दगी फैलाता है वह दोषी नहीं और जो गदगी साफ करता है वह दोषी कहलाए [illegible] जाय? मैं पूछता हू – यह कहा का अनोखा न्याय है? वास्तव मे अहिंसा धर्म को ठीक तरह न समझने के कारण ही घर मे गन्दगी रहती है। [illegible] मे आटा दाल या इसी प्रकार की कोई अन्य खाद्य वस्तु सडी–गली [illegible] रहती है और उसमे जीव–जन्तु उत्पन्न होते रहते है उन लोगो ने अहिंसा धर्म के मर्म को समझा ही नही है। इस कथन मे जरा भी अत्युक्ति नही है।

जो लोग अपना ही घर साफ–सुथरा नही रख सकते वे दूसरो के घरो की क्या खाक सफाई करेगे?

कुछ लोग कहते है – जैन धर्म तो निवृत्तिप्रधान [illegible] प्रवृत्ति मे किसलिए पडना चाहिए? बात सही है। [illegible] जाओ तब निवृत्तिधर्म का पालन करो यह उचित ही है [illegible] ससार से निवृत्त नही हुए हो प्रवृत्ति मे पडे हुए हो [illegible] और परावलम्बन का पोषण करने की आज्ञा [illegible] यह नही बतलाता कि तुम प्रवृत्ति मे पडे रहकर [illegible] अतिरिक्त एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिए। [illegible]

पर एकान्त निवृत्ति रूप नहीं है। जो प्रवृत्ति निवृत्ति में साधक हो और बाधक नही हो, उसका जैन धर्म मे एकान्त निषेध नहीं है। जैन धर्म अनेकान्त पोषक धर्म है।

भगवान महावीर ने गृहस्थ धर्म का जो विधान किया है उसके अनुसार आचरण करने से गृहस्थ के घर मे अशुचि या अपवित्रता को अवकाश ही नही है। पर आजकल कुछ लोग गृहस्थ होते हुए भी सूक्ष्म हिसा का गहरा विचार तो करते हैं, पर परम्परा से होने वाली स्थूल हिसा की ओर ध्यान भी नही देते। जो स्थूल हिसा परम्परा से मनुष्य–हिसा तक का रूप धारण कर लेती है उसे जब सरकारी कानून से बाध्य होकर मानते ही हो तो क्या यह बेहतर न होगा कि उसे धर्म का कानून समझ कर मानो? स्वेच्छा से अहिसा का पालन करना क्या श्रेष्ठतर नहीं है?

## शारीरिक सफाई

तुम अपना बगला साफ रखना चाहते हो पर अगर तुम्हारा शरीर साफ न हुआ तो बगले की सफाई से क्या होगा? तुम आलमारी, मेज आदि फर्नीचर को साफ रखो पर शरीर–सुधार की और तनिक भी ध्यान न दो तो वह सुधार है या बिगाड?

## मितव्ययी बनो

तुम इतना अधिक खर्च मत रखो जिससे तुम्हे कर्ज लेना पडे। आय के परिमाण मे व्यय करो। अनिवार्य आवश्यकता के समय कर्ज लेना पडे तो उसे नियत समय से पहले ही चुका डालो। अगर कर्ज सिर पर चढा लोगे और समय पर चुक न सकेगा तो लेनदार तुम पर दावा करेगा। इसमे तुम्हारा पतन है।

जिसमे जो गुण हो हमे उस गुण को ग्रहण करना चाहिए। जो लोग नाम से बडे हैं पर दुर्गुणो का प्रचार करने मे ही अपने बडप्पन का प्रयोग करते है उनके साथ हमारा लेनदेन नही है।

## सुन्दर रूप

बाहरी चमक–दमक को सुन्दर रूप मत समझो। जिस रूप को देखकर पाप कापता है और धर्म प्रसन्न होता है, वही सच्चा सुरूप है सौन्दर्य है।

असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौन्दर्य की सुनहरी किरणे जो बाहर प्रस्फुटित होती हैं उन्हीं से शरीर की सुन्दरता बढती है।

## पाश्चात्य सभ्यता

पश्चिम की सभ्यता ईश्वर का वरदान समझी जाती है। लोग उसके पीछे पागल हो रहे हैं। मगर उन्हे यह नही मालूम कि सभ्यता की इस रेल

का इजिन ही खराब है। पाश्चात्य सभ्यता मानव–जीवन का कितना ह्रास कर रही है यह कौन जानता है?

जहा व्यभिचार को भी पाप नही माना जाता, वहा की सभ्यता कैसी अलबेली होगी? पेरिस बहुत सुन्दर शहर है पर सुना गया है कि वहा अगर कोई बाहरी पुरुष किसी स्त्री से मिलने आता है तो उसके पति को बाहर चला जाना पडता है। अमेरिका खूब सुधरा हुआ देश माना जाता है। पर वहा सुनते हैं, पचानबे प्रतिशत विवाह सबध तोड दिये जाते हैं। पाश्चात्य देशो की ऐसी सभ्यता है।

## ईश्वरीय आज्ञापालन

ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नही हो सकता।

आखिर तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारे काम आयगा। विश्व का कोई भी पदार्थ तुम्हारे काम नहीं आ सकता। यह सत्य है और इतना स्पष्ट है कि कभी भी इसकी परीक्षा की जा सकती है। फिर भी न जाने क्यो मनुष्य अपनी आख बन्द किये सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट सत्य को नही देखता और दुनिया की वस्तुओ को आत्मा बेचकर खरीदने मे ही अपना कल्याण मानता है।

## सग

सग मात्र त्याज्य हे चाहे वह सत्सग हो या कुसग। आत्मा असग हे, सबसे निराला हे एकरूप हे इसलिए सग मात्र उपाधि है। अतः **कण्टकेनैव कण्टकम्** नीति के अनुसार कुसग का त्याग करने के लिए सत्सग का आश्रय लना कर्तव्य हा जाता है।

## चेतावनी

तुम्हार काले बाल रूई के समान सफेद हो गये है सो तुम्हारी इच्छा से या अनिच्छा स? तुम तो उन्हे काला ही रखना चाहते थे पर उन्होने तुम्हारी चाह की परवाह नही की। तुम्हारे आदेश को अस्वीकार कर दिया और सफेद हो गये। सिर क ये बाल मानो चेतावनी दे रहे है कि तुम हमे भी अपने काबू म नही रख सकते तो अन्य वस्तुओ को कैसे रख सकोगे? बालो की यह चेतावनी बहुत स्पष्ट ह लेकिन सब उसे सुन नही पाते। यह कैसी दयनीय दशा ह?

## विपत्ति–सम्पत्ति

साधन समझकर विपत्ति आने पर प्रसन्न रहना चाहिए। गजसुकुमार मुनि के सिर पर सोमल ब्राह्मण ने धधकती आग रख दी थी। लेकिन गजसुकुमार मुनि तनिक भी नही घबराये। उन्होने माना, मैंने इस विपदा को निमन्त्रण दिया था इसीलिए यह आई है। सचमुच वह भयकर विपदा मुनि के लिए सम्पदा के रूप मे परिणत हो गई। मुनि ने आत्मकल्याण की साधना करके परमात्मा पद प्राप्त किया।

## मिथ्याभिमान और धर्माभिमान

जहा मिथ्याभिमान धर्म को ठोकर मारता है, वहा धर्माभिमान धर्म के लिए बलिदान हो जाता है। जहा मिथ्याभिमान कर्तव्य से पराडमुख होता है, वहा धर्माभिमान उसे हृदय के सिहासन पर विराजमान करता है। जहा मिथ्याभिमान विलास के चरण चूमता फिरता है, वहा धर्माभिमान अपने नेत्र के थोडे–से इशारे से उसे अपना गुलाम बना देता है। मिथ्याभिमान जहा कायरता से थरथर कापता है, धर्माभिमान वहीं पैर जमा कर उस पर विजय प्राप्त करता है। मिथ्याभिमान जीवन का अपकर्ष करने वाला है और धर्माभिमान उत्कर्ष करने वाला है।

## आगम प्रमाण (1)

आगम प्रमाण के आगे हमारे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण तुच्छ है, क्योकि हमारा अनुभव और हमारा अनुमान अत्यल्प और बहुत ही सीमित है। आगम मे जो कुछ भी कहा गया है वह अनन्त ज्ञानियो द्वारा प्रत्यक्ष देखे हुए का विवरण है। इसलिए जैसे सूर्य के प्रकाश के सामने सभी प्रकाश तुच्छ है, उसी प्रकार आगम प्रमाण के सामने सभी दूसरे प्रमाण तुच्छ है।

आगम सर्वज्ञ भगवान् की अनुभूत वाणी है, अतएव वह अन्य प्रमाणो की अपेक्षा अधिक श्रद्धेय और मान्य है। यह सत्य होने पर भी ज्ञानीजनो का यह उपदेश है किसी की देखादेखी तुम आगम को न मानो, परन्तु अन्तरात्मा से परिपूर्ण विचार करके उसकी श्रेष्ठता को समझो और तब उस पर अविचल श्रद्धा करो। आगम के विषय मे वही अन्तरात्मा विचार करने का अधिकारी है जिसमे पर्याप्त परिमाण मे निर्मलता विद्यमान है।

पानी मे मुख देखा जा सकता है, पर उसी पानी मे, जो स्थिर और निर्मल हो। जो पानी ताप के कारण उबल रहा है या जिसमे मैल मिला हो, उसमे मुख नही देखा जा सकता। इसी प्रकार जो अन्तरात्मा विषय–कषाय के ताप से उबल रहा हो और इस कारण अस्थिर हो, वह आगम के सबध मे विचार करने का अधिकारी नही है। आत्मा स्थिर निर्मल ओर शात होकर

विचार करेगा तो स्पष्ट हो जायेगा कि आगम प्रमाण के समान दूसरा कोई प्रमाण नहीं है और आगम सदेह से परे है।

महापुरुषो के अनुभव को ही शास्त्र कहते हैं। महापुरुषो ने जो बात बडे आत्मभोग से समझी उनके प्रताप से उस बात का ज्ञान हम सरलता से कर सकते है। जैसे खेती करने वाले सब नही होते, पर उनका लाभ सबको मिलता है, वैसे ही उन महापुरुषो ने आत्मा का पूरा दमन किया होगा, क्रोध मान, माया और लोभ आदि कषायो को वश किया होगा दया की भावना रग–रग मे रमाई होगी, परमात्मा मे लीन हो गये होगे तब शास्त्र फरमाये हैं। ऐसे शास्त्र अपन नहीं प्ररूप सकते, पर उनका उपयोग तो अपन भी कर सकते हैं।

आकाश मे गरुड पक्षी के बराबर पतगिया नही उड सकता पर उडने का अधिकार दोनो को समान है। उसी प्रकार ऊचे महात्मा लोग शास्त्रो का मथन कर, जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नही पर फिर भी पतगियो के माफिक अपने हक को काम मे लाना चाहिए। अपने जैसे अल्पज्ञानी जीवो के लिये यदि ये शास्त्र न होते तो अपने को ऐसे ज्ञान का कुछ भी लाभ न होता।

आप लोग शास्त्र को समझ कर उनके बतलाए हुए मार्ग का अनुसरण करेगे तभी आपको उनकी (महात्माओ की) तरह आनन्द मिलेगा।

**आगम प्रमाण (2)**

अनुमान को प्रमाण माने बिना काम नही चल सकता इसी प्रकार आगम को प्रमाण माने बिना नही चलता। लोकोत्तर व्यवहार मे तो पद पद पर महात्माओ के वचनो की आवश्यकता होती है – [illegible] मुमुक्षु को अज्ञान के अधेरे मे भटकना पडेगा परन्तु लोकव्यवहार मे भी आगम अर्थात् शब्द प्रमाण की आवश्यकता है। मुमुक्षु जीव जिस अपरिचित मार्ग पर आरूढ होता है वहा पथ–प्रदर्शक कौन है? आगम के [illegible] कदम बढाएगा? व्यवहार मे माता–पिता बन्धु आदि हितैषी [illegible] अनुसार प्रवृत्ति की जाती है

क्या बिगडेगा? महात्माओ की वाणी को प्रमाणभूत न मानोगे तो तुम्ही हानि उठाओगे।

## महापुरुषो का आदर्श

ससार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषो ने जो आचरण किया है उन्होने जिस पथ पर प्रयाण किया है, उस पथ का अनुसरण करने के लिए वे समस्त ससार को आह्वान कर गये हैं। उन्होने कहा – ऐ जगत के जीवो! समय की विचित्रता और विपरीतता के कारण कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब तुम किकर्तव्यविमूढ हो जाओ। तुम्हे यह न सूझ पडे कि ऐसी दशा में क्या करे, क्या न करे? उस समय तुम लोग हमारे आचरण को दृष्टि मे रखकर, हम जिस मार्ग पर चले हैं उस मार्ग पर चलोगे और उस मार्ग को छोडकर उलटे मार्ग पर नही चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होना निश्चित है। इस प्रकार महापुरुष अपने आचरण का आदर्श जगत् के हित के लिए उत्तराधिकार के रूप मे छोड गये हैं।

## निर्मल बुद्धि से कल्याण

जब कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि की निरन्तर चौकसी करता रहता है – उसमे विकारो का लेशमात्र भी प्रवेश नहीं होने देता, वरन् भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण ग्रहण करके अपनी बुद्धि को निर्मल बनाये रखता है, तभी वह कल्याण का भाजन बनता है। ऐसा करने मे कितने ही सकट क्यो न आ पडे अपने पथ से विचलित नही होना चाहिए। प्राचीन काल के अनेक उदाहरण ऐसे मौजूद हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल के धर्मात्माओ ने मारणान्तिक कष्ट उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धि मे विकारो को प्रवेश नहीं होने दिया था। उन उदाहरणो को सुनकर यह सदेह होता है कि यह कल्पनामात्र है या घटित घटना है? मगर जब वर्तमान मे भी किसी को ऐसा करते देखा जाता है तो प्राचीन कथानको की प्रामाणिकता मुक्तकण्ठ से स्वीकार करनी पडती है। हमे यह विश्वास हो जाता है कि पूर्ववर्ती पुरुषो के सबध मे जो–कुछ कहा जाता है, वह सर्वांश में सत्य है। उदाहरण – अहिसा, क्षमा आदि के सबध मे अतीत वृत्तान्त उपस्थित किये जाते हैं, उन्हे सत्य मानने के लिए आज गाधीजी प्रमाण रूप हो जाते हैं।

## बालक

किस गृहस्थ को बालक की अभिलाषा नही होती? बालक के बिना घर सूना लक्ष्मी अनाथ और प्रतिष्ठा लगडी समझी जाती है। पर बालक अगर सस्कारी न हुआ तो माता–पिता की समस्त कामनाए मिट्टी मे मिल जाती हैं।

बालक को सस्कारी बनाने के लिए माता–पिता को स्वय सस्कारी बनना चाहिए। जिस बालक से देश, समाज और धर्म का उत्कर्ष सिद्ध न हो उसका होना, न होना समान–सा है। पर बालक तो अपने माता–पिता का उत्तराधिकारी है। न केवल उनकी धन–दौलत का, मगर उनके सद्गुणो एव दुर्गुणो का भी वह उत्तराधिकारी है। यह बात अगर मा–बाप की समझ मे आ जाये तो बालक का बहुत–कुछ भला हो सकता है।

## पारिवारिक

अपने आश्रितो से प्रेमपूर्वक काम लेना एक बात है और उन्हे मार–पीटकर, लाल आखे दिखाकर काम लेना अलग बात है। प्रेम के साथ काम लेने मे स्वामी और सेवक दोनो को सतोष मिलता है और मार– मारकर लाल–लाल आखे दिखाकर काम लेने मे दोनो असतुष्ट रहते हैं और काम भी यथावत् नही होता।

हमेशा डाट–फटकार बताने वाला स्वामी अपने सेवक के शरीर पर कदाचित् अधिकार रख सके, मगर उसकी आत्मा पर अधिकार नही जमा सकता।

मुस्लिम धर्म का कथन है कि जिसके घर मे रहने वाले पशु–पक्षी या आश्रित मनुष्य दु खी होते हैं वह पापी है। अमेरिका मे नोकरो के साथ कुटुम्बीजन के समान व्यवहार किया जाता है तब आप लोग आर्य देश के निवासी उनके प्रति केसा व्यवहार करते हैं?

## समभाव

जेसे सेनिक बन्दूक या तीर का निशाना लगाना एक ही साथ नही सीख लेता पर सावधान होकर, एकाग्र भाव से अभ्यास करता है इसी प्रकार जीवन–सिद्धि का लक्ष्य सिद्ध करने के लिए समभाव का अभ्यास करना चाहिए। सेनिक अभ्यास करते समय बहुत बार निशाना चूक जाता है फिर भी उसका लक्ष्य तो निशाना साधना ही होता है। इसी प्रकार समभाव को अगर जीवन म सहसा न उतारा जा सक तब भी लक्ष्य [illegible] चाहिए ओर उसक लिए साधना भी करत रहना चाहिए। निरन्तर के अभ्यास [illegible] दिन ऐसा आयगा जब सच्ची सामायिक भी हो सकेगा और जीवन [illegible] बन सकगा।

## प्रकृति की पाठशाला

प्रकृति की पाठशाला मे जो सस्कारमय बोध प्राप्त होता है वह कॉलेज या हाईस्कूल मे नही मिल सकता। जो महापुरुष जगत के कोलाहल से हटकर जगल मे रहकर प्रकृति से शिक्षा लेते हैं वे धन्य हैं। उनसे सभ्यता का निर्माण होता है। भारतीय सस्कृति नगरो मे नहीं वनो मे ही उत्पन्न हुई और सुरक्षित रही है।

## प्रकृति से शिक्षा

मघा ने प्रकृति से यह पाठ सीखा था कि जो बात मुझे अनुकूल हो वही दूसरो के लिए करनी चाहिए। भूतकाल और वर्तमान काल के अनेक उदाहरणो से यह स्पष्ट विदित होता है कि प्रकृति की पाठशाला मे जैसी सजीव शिक्षा मिल सकती है वैसी अन्यत्र कही नही मिल सकती। ज्ञानियो ने विश्व को पुरुषाकार बतलाया है। अगर पुरुष की आकृति वाले इस विश्व का ध्यान किया जाय तो आत्मा को अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रकृति के रहस्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो उसमे से आत्मा अपूर्व शिक्षा ग्रहण कर सकता है। छोटी–सी पाखुडी मे कौनसा तत्त्व रखा गया हुआ है उसकी इस प्रकार की रचना है और उससे हम क्या सीख सकते हैं इस प्रकार यदि गहरा विचार किया जाय तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा।

बडे–बडे कुशल कारीगर विशाल और सुन्दर प्रासाद के निर्माण मे जिस कौशल को अभिव्यक्त करते हैं उनका यह कौशल भी फूल की पाखुडी की रचना की रमणीयता के सामने पानी भरता है।

# आत्मनिवेदन और क्षमायाचना

## आत्म–निवेदन

तुम लोग मेरी प्रशसा करते हो पर प्रशसा का यह भार मेरे लिए असह्य हो रहा है। वास्तव मे मैं शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से अभी तक बहुत दूर हू। ज्ञान मेरा अपूर्ण है। केवल गुरुचरण के प्रताप से जो वस्तु मुझे विरासत मे मिली है वही तुम्हे सुना देता हू और उसी से सबकी आत्मा को सतुष्ट करने का प्रयत्न करता हू। जो बात सुनाने मे मुझ से भूल होती हो या जिस बात को तुम्हारी आत्मा कबूल न करती हो उसे त्याग सकते हो और जो तुम्हे उपयोगी एव हितकर प्रतीत हो उसे ग्रहण कर सकते हो।

सत्य को ग्रहण करो। असत्य को त्याग दो। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया है उसका पूर्ण रूप से पालन भी अब तक मुझ से [illegible] पडा है। अभी तक मुझ म बहुत अपूर्णता है। अपनी अपूर्णता मिटाने [illegible] ही में भगवान की प्रार्थना करता हू।

जेसे हस मोती चुगता है उसी प्रकार मेरे कथन [illegible] कर ग्रहण कर लो। समुद्र म अनेक तरग आती हैं पर सभी तरगो म मोती [illegible] होते। फिर भी मोती चुगने वाला हस उन्हीं तरगो म से मोती [illegible] है। तुम भी हस की भाति विवेक से काम लो और मोती जैसा अच्छा [illegible] स्वीकार कर लो और शेष अश का त्याग दो।

मैं स्वय भी हसवृत्ति प्राप्त करने की [illegible] सख्यक मनुष्यो के परिचय म आना पडता है। मेरी [illegible] म वह शक्ति आ जाय कि मै उन सबके मोती [illegible] कर लू।

## क्षमापना

न करे। उसकी इच्छा हो तो वदन करे, इच्छा न हो तो न करे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ भोजन करे। इच्छा न हो तो न करे, उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ रहे इच्छा न हो तो न रहे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे प्रति उपशान्त हो, इच्छा न हो तो उपशान्त न हो। तुम उसके इन कृत्यो को मत देखो। तुम अपने अपराध के लिए क्षमा माग लो और उसके अपराधो के लिए अपनी ओर से क्षमा कर दो।'

अन्त मे, मैं अपनी भूलो के लिए तुम से क्षमायाचना करता हू। मेरी हार्दिक भावना है कि तुम सबका कल्याण हो और तुम मेरे शरीर से नही वरन मेरे सद्विचारो से प्रेम करो।



# श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

## – एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए हैं। आषाढ शुक्ला अष्टमी सवत 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर म ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य हे। आज गौरवान्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता है जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हैं। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती है। प्रतिदिन करीब 50 60 पाठक इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय–वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ओर क्षेत्र मे अद्वितीय है।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यों मे योगदान दे सकती हे और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती है।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वाना को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते हैं।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी का विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे।

विद्यापीठ द्वारा ठण्ड मीठ जल की प्याऊ का सचालन किया जाता हे। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय सिद्ध है। इस प्रकार अपन बहुआयामी कार्यों से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर हे।